सर्वोदय

अेष वः पन्था: सुकृतस्य लोके

सम्पादक

काका कालेलकर

दादा धर्माधिकारी

वर्ष [illegible]

जनवरी

सर्वोदय का मूल्य

अेक अंक...	... रु०	०—६—०
वार्षिक ...	... रु०	३—०—०
बर्मा में ...	... रु०	३—८—०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर
(सब डाक-व्यय-सहित)		

अनुक्रमणिका

1942 SAR

१. शान्तिश्चेत् अनलेन किम् ? (श्री काका कालेलकर) ... २४५
२. सरकार की चुनौती का जवाब (श्री विनोबा) २४६
३. रचनात्मक कार्यक्रम (श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला) २५३
४. हमारी तर्कशुद्ध भूमिका (श्री विनोबा) २५६
५. हिन्दी जगत् से विनय (श्री काका कालेलकर) ... २६६
६. सर्वोदय की दृष्टि २६८
गीता देवी का मन्दिर; रचनात्मक कार्यक्रम; अंक बनाम अक्षर; खादी-कार्यकर्ताओं की कसौटी का समय; सार्वत्रिक अविश्वास का प्रतिबिम्ब
७. कॉंग्रेस और युद्ध (श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला).... २७२
८. हिन्दुत्ववाद या शबल राष्ट्रवाद ? (श्री दादा धर्माधिकारी) २७८
पूर्ति—
विधायक कार्यक्रम (गांधीजी) ... .

पाठकों से निवेदन—

सर्वोदय के अंक हर महीने की ठीक पहली तारीख को कार्यालय से दो-तीन बार जाँच कर ही नियमितरूप से भेजे जाते हैं। जिन्हें अुसी महीने की दस तारीख तक भी अंक न मिले, वे यदि अपने यहाँ के डाकघर में तहकीकात करें और पोस्ट-मास्टर के जवाब के साथ कार्यालय को तुरन्त शिकायत लिख भेजें, तो अुनकी शिकायत पर ध्यान देने में सुविधा होगी।

पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या लिखना आवश्यक है। बिना ग्राहक-संख्या के पत्रों का जवाब देने में हम असमर्थ हैं। ग्राहक-संख्या रैपर पर लिखी हुअी होती है।

व्यवस्थापक

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जनवरी, १९५२

'ज्ञातिश्चेत् अनलेन किम्' ?

कभी-कभी अैसा माना जाता है कि जातपाँत वर्णों का ही अेक विभाग है—जातिभेद वर्णभेद की ही शाखा-प्रशाखा है। लेकिन थोड़ा सोचने पर स्पष्ट होगा कि दर असल बात वैसी नहीं है। वर्ण-व्यवस्था, समाज-सेवा के विभाग के अनुसार बनायी गयी है। वह गुणकर्म और आजीविका-प्रकार पर अवलम्बित है। वर्ण कर्मानुसारी विभाग (फंक्शनल डिविजन) है। अेक वर्ण कभी अेक संपूर्ण समाज नहीं माना जाता। अेक अेक वर्ण समाज-शरीर का अेक अेक अवयव है। जाति अिससे बिल्कुल भिन्न चीज है। 'जन्मना जातिः।' अेक खानदान के विस्तार से जाति होती है, अैसा माना जाता है। जिन लोगों के बीच रोटी-बेटी व्यवहार है, वे अेक जाति के होते हैं। जाति का पर्याय है 'कुनबा', 'बिरादरी', 'जमात'। यह कोअी वर्ण-व्यवस्था नहीं है। अंग्रेजी में जिसे 'क्लैन' कहते हैं, वही जाति है। जाति में मुख्य चीज आपपर-भाव होता है। जो जाति के अन्दर हैं, वे अपने माने जाते हैं; बाकी के सब पराये। न्याय, धर्म, अुदारता, सहयोग, सेवा, ये धर्म अपनी जाति के अन्दर ही आवश्यक माने जाते हैं। जो जाति के बाहर हैं, अुनके प्रति शत्रुता भले ही न हो; किन्तु अुनके हित के लिअे, अुनके विकास के लिअे, अपनी तनिक भी जिम्मेवारी नहीं मानी जाती है। 'अुनका कुछ भी हो अससे हमें क्या मतलब? वे थोडे ही हमारे हैं?'—अिस वृत्ति को अंग्रेजी में 'क्लैनिश स्पिरिट' (गोत्रवृत्ति) कहते हैं। सचमुच यह 'हर्डअिन्स्टिक्ट' (समूह-भावना) है। स्वभाषा में अिसे क्या कहें? 'समूहवृत्ति'? या 'झुंडधर्म'?

अिस झुंड-धर्म ने ही हिन्दुस्तान का और मनुष्यजाति का सत्यानाश किया है। झुंड-वृत्ति मानवता की विरोधी है। अिसी वृत्ति से मनुष्य मनुष्य के बीच पुश्त-दर-पुश्त युद्ध चलते रहते हैं।

झुंड-वृत्ति की यह भयानकता देख कर ही राजा भर्तृहरि ने निराश हो कर कहा—'ज्ञातिश्चेत, अनलेन किम्'? अगर 'झुंड-वृत्ति का जातिभेद किसी समाज में मौजूद है, तो वहाँ दूसरी आग की जरूरत ही क्या है?'

हिन्दू धर्म में जब तक अुच्च-नीच-भाव नहीं था, जातिभेद नहीं था, और वर्ण सामाजिक सहयोग का महत्त्व जानते थे, तबतक हिन्दू-समाज का अुत्कर्ष ही हुआ। जब से भेदपटु, तंग-दिल, झुण्ड-वृत्ति दाखिल हुअी, ज्ञाति ने हिन्दू-समाज पर कब्जा किया, तब से समाज का ऱ्हास ही हो रहा है।

—का॰ का॰

सरकार की चुनौती का जवाब

[विनोबा]

(रिहाअी के बाद वर्धा में ता० सात दिसम्बर अुन्नीस सौ अिकतालीस को दिया हुआ भाषण)

मेरे मित्रो,

मिलन की खुशी क्यों नहीं ?

जब जब मैं जन-समूह के सामने बोलने खड़ा होता हूँ, तब तब हमेशा मेरे हृदय में अत्यन्त अुत्साह भरा होता है। क्योंकि आप भाअी-बहनों के दर्शन में अेक प्रकार की पावनता अनुभव होती है। मगर मुझे कबूल करना चाहिअे कि आज आपके सामने बोलने में मुझे हमेशा का-सा अुत्साह अनुभूत नहीं होता। अिसका कारण यह है कि जिस तरह हम लोगों की रिहाअी हुअी है और आपके सामने बोलने का प्रसंग आया है, अुसमें अुत्साह का सा न ही नहीं है। अुल्टे अुदासीनता का कारण है। आपमें से बहुतों को आनन्द होता होगा कि जेल में से हमारे भाअी छूट कर हमारे बीच में आ गये हैं और हमसे मिलेंगे। परन्तु मिलने का आनन्द भी, परिस्थिति विपरीत हो, तो विलीन हो जाता है। जरा-सा विचार करके देखने से ध्यान में आ जायगा कि आज का मिलना आनन्द का विषय नहीं है।

सरकार की चाल

सरकार ने सत्याग्रही कैदियों को छोड़ने का निश्चय किया है, अिसकी जड़ में सद्भावना प्रतीत होती, तो वह अलग चीज होती। परन्तु आज तक अेमरी साहब के जो व्याख्यान-प्रवचन, आये दिन, सुनने को मिले, अुन पर ध्यान देने से दूसरा ही दृश्य दिखायी देता है। हम जेल में अपनेआप गये थे। हमारे सामने भाषण स्वातन्त्र्य का बड़ा भारी सवाल था। वह जब तक हल न हो जाय, तब तक जेल से बाहर रहना हमारे लिअे जहर जैसा है। परन्तु सरकार ने अेक जाल बिछाया है। हमें छोड़ने में अुसकी अैसी कल्पना और अिच्छा मालूम होती है कि हमलोग जो वाक्-स्वतन्त्रता के संग्राम में सत्याग्रह करके जेल में गये, वे बाहर आने पर लोप हो जायेंगे और सरकार का काम अपने आप हो जायगा। यह सरकार ने बड़ी चतुराअी का काम किया है। हमें चाहिअे कि हम अिस जाल में फँस कर अपनी लड़ाअी बन्द न करें; बल्कि और भी तीव्र बनावें। अहिंसा के अुपासक के नाते संसार में चलनेवाली अहिंसा का विरोध करने का हमारा यह मूलभूत हक और कर्तव्य जब तक सिद्ध नहीं होता, याने जनता के सामने हमें अपने विचार अहिंसकरूप से आजादी के साथ रखने का अधिकार नहीं मिल जाता, तब तक हमारा यह धर्म है कि हम अपना अहिंसक युद्ध जारी रक्खें। जारी रखने का यह अर्थ है कि हम अुसे और भी जोर के साथ चलावें।

अहिंसक युद्ध की परिभाषा

'अधिक जोर के साथ' के क्या माने हैं ? हिंसक और अहिंसक युद्ध की परिभाषा में भी फर्क है। हिंसक युद्ध में साधनों की हिंसकता बढ़ायी जाती है और अहिंसक युद्ध में अुनकी शुद्धता। हिंसक युद्ध में हम क्या करते हैं ? सामनेवाले के हथियारों के सामने जब हमारे हथियार असमर्थ साबित होते हैं, तो अुनसे भी ज्यादा भयानक हथियार हम खोजते

हैं और अुनका प्रयोग करते हैं। यह प्रक्रिया आज यूरोप की लड़ाअी में प्रत्यक्ष हो रही है। चर्चिल साहब कहते हैं कि अगले साल हम जर्मनी से भी ज्यादा हिंसक और भयानक शस्त्रास्त्र तैयार करेंगे। हिटलर की रणगाडियों (टैंकों) से अधिक तादाद में और अधिक भयानक रणगाडियाँ बनवायेंगे; तब हमारी जीत होगी। अिस प्रकार अेक-दूसरे की अपेक्षा ज्यादा हिंसक शस्त्रों का निर्माण दोनों दल करते हैं।

सरकार की चुनौती

अहिंसक युद्ध की रीति अिससे जुदी है। अंग्रेज सरकार ने हमें छोड़ कर यह चुनौती दी है कि, "अरे, हिन्दुस्तान के छूटे हुअे गुलामो! अगर तुम्हें स्वतन्त्रता चाहिअे, तो तुम और जोश से लडो।" मगर अिसका जवाब हम अहिंसक रीति से कैसे देंगे? हिंसक लड़ाअी में अैसी चुनौती का जवाब साधनों की हिंसकता बढ़ा कर दिया जाता है। अहिंसक लड़ाअी ज्यादा जोश के साथ चलाने का तरीका दूसरी तरह का है। अहिंसक युद्ध अधिक जोर से चलाने का मतलब साधनों की शुद्धता बढ़ाना और अधिक आत्मशुद्धि करना है। हमारे अिस छुटकारे की बुराअी में से यह भलाअी निकली है। अीश्वर की कृपा से अंग्रेज सरकार को हमें जेल में डालने की प्रेरणा हुअी। अिसलिअे हमें आत्म-परीक्षण का और जिन साधनों को हमने शुद्ध समझ कर अपनाया था अुनकी शुद्धता परखने का सुयोग मिल गया। हमारे साधनों में जो कुछ अशुद्धि रह गयी हो, अुसे दूर करके अब हमें अधिक तीव्रता से लड़ना चाहिअे। अहिंसक प्रक्रिया में ज्यादा जोर के साथ लड़ने के यही माने हैं।

हमारा जेल-जीवन

अपने साधनों में छिपी हुअी अशुद्धि का निरीक्षण करने का अवसर हमें जेल मे मिलता है। लेकिन मुझे खेद के साथ कबूल करना पड़ता है कि जेल में जितनी संयमशीलता और मर्यादा रखनी चाहिअे थी अुतनी हममें से बहुत-से न रख सके। शायद अिसीलिअे परमेश्वर ने हमें फिर विचार करने का यह अवसर दिया है कि हम अपने औजारों को कैसे शुद्ध करें। जेल में हमें छूट मिले या हमारे साथ ढील का बर्ताव हो तो, भी हमारे संयम, विवेक और तपश्चर्या का सरकार, अधिकारीवर्ग और दूसरे लोगों पर अनुकूल परिणाम होना चाहिअे। लेकिन हमने तो यह किया कि जितने भोग प्राप्त हो सके, प्राप्त किये। अैसी हालत में अगर हमें लड़ाअी जोर से चलानी है, तो ज्यादा शुद्ध कसौटी पर अुतर कर सत्याग्रह करना चाहिअे। तभी हमारे अगले सत्याग्रह में अधिक बल आवेगा। अगर हम अपनी लड़ाअी अधिक शुद्ध मन से, अधिक शुद्ध जन से और अधिक शुद्ध योजना से चलायेंगे, तो वह निःसंशय सफल होगी।

अेक सवाल

अेक सवाल यह अुठाया गया है कि अिस छुटकारे को सरकार की सद्भावना समझ कर हमें अपना कार्यक्रम क्यों न बदलना चाहिअे? अिस पर मुझे रविबाबू की अेक अुक्ति याद आती है। अुन्होंने कहा है कि भारतवर्ष अेक महामानव-सागर है। यह यूरोप के अेक-अेक करोड़ के नन्हे-नन्हे देशों के समान टूटपूंजिया नहीं है। जिनके अलग अलग धर्म, अलग अलग भाषाअे, अलग अलग रहन-सहन, भिन्न-भिन्न प्रान्त, जुदे-जुदे रीतिरिवाज हैं, अैसे चालीस करोड़ भाअी-बहिनों का यह देश अेक महान संयुक्त कुटुंब के समान है। यह हमारा सद्भाग्य है। अिस विविधता के कारण अितने बड़े सागर में तरह तरह की लहरें अुठती हैं, जुदा जुदा विचार पैदा होते हैं। अिसी तरह का अेक खयाल यह भी है कि कार्यक्रम बदला जाय।

लेकिन सवाल यह है कि क्यों बदला जाय? क्या जिस मुद्दे पर हमारी लड़ाओी शुरू हुओी थी वह मान लिया गया ? अुसकी खातिर हम बाहर से जेल के भीतर गये थे। अब वह माँग स्वीकार किये बिना हमें फिर बाहर भेज दिया गया। तो भी अगर कार्यक्रम में परिवर्तन करना है, तो हम जेल में गये ही क्यों थे ? जेल में जाने से पहले तो हम आजाद थे ही। हमारी माँग स्वीकार न होने पर भी अगर हम कार्यक्रम बदल देते हैं, तो अुसका मतलब यह है कि वह माँग ही छोड़ देने लायक है। में आप से कहना चाहता हूँ कि जिस मुद्दे पर हमने यह अहिंसक लड़ाओी छेड़ी है वह छोड़ने के लायक नहीं है। बहुत से हक अैसे होते हैं कि अुनका अमल करना हमेशा जरूरी नहीं होता। लेकिन भाषण-स्वातन्त्र्य के हक पर अमल न करने से काम नहीं चलेगा।

हक ही नहीं धर्म भी है

भाषण-स्वातन्त्र्य तो हमारा हक ही नहीं है, धर्म है। धर्म का तो पालन हमेशा करना ही पड़ता है। हमें आज जो भी बल मिला है, वह पिछले बीस वर्ष की अहिंसा की साधना से मिला है। आप लोगों में से जो मुझसे बड़े या मेरी अुम्र के हैं, वे जानते हैं कि तीस वर्ष पहले हिन्दुस्तान की क्या हालत थी। अुस वक्त हम 'वन्देमातरम्' बोलने से घबड़ाते थे और 'स्वराज्य चाहिअे' कहना भयानक था। शरीर को सुगठित करने के लिअे अखाड़े खोलते, तो वे भी भयानक माने जाते। बीस-पच्चीस वर्ष पहले हमारी अैसी हीन-दीन दशा थी। होती भी क्यों नहीं? जब कि दो सौ वर्षों से हम निःशस्त्र और परतन्त्र थे। हम अपनी बुद्धि, लक्ष्मी और शक्ति सब कुछ गँवा चुके थे। अैसी हालत में हम कैसे समर्थ हुअे? अितने बलाढ्य सरकार का विरोध—और सो भी पचास वर्षों तक—लगातार करने की शक्ति क्योंकर कॉंग्रेस में आयी ? यह किस जादू की लकड़ी का प्रताप है ?

शस्त्रों द्वारा शान्ति-प्रचार

परसों अेक जर्मन वक्ता ने बड़े गर्व से कहा था कि अब यूरोप निःशस्त्र हो गया है और हमारी रणगाड़ियाँ शान्ति कायम रख लेंगी। यह विश्वास रिबनट्रॉप को अिसी आधार पर हुआ कि टैंकों के सामने निहत्थी प्रजा क्या कर सकती है? वह जरा भी चूं-चपड़ करेगी, तो दबा दी जायगी। यही श्रद्धा अंग्रेजों को थी कि जिस हिन्दुस्तान के हथियार छीन लिये हैं, अुसपर हमारा पंजा आराम से रहेगा। वे समझते थे कि हम अपने शस्त्रास्त्रों के जोर पर निःशस्त्र हिन्दुस्तान में बड़ी आसानी से शान्ति का प्रचार करेंगे। मगर अिस तरह की दुर्दशा में पड़े हुअे देश ने अितने जबरदस्त साम्राज्य से टक्कर लेनेवाली कॉंग्रेस जैसी महान संस्था कैसे खड़ी कर ली? यह अहिंसा का ही चमत्कार है। अहिंसा के तत्त्व में संगठन करने की बड़ी शक्ति है।

संघ-बल का युग

यह युग संघ-बल का युग है। पहले तो अिक्के-दुक्के आदमियों के बल से भी काम चल जाता था, परन्तु अिस जमाने में बलवान संगठन के बिना सत्ता नहीं मिल सकती। यूरोप में वह संगठन हिंसा के आधार पर होता है। तो भी वहाँ के देशों को हिंसा को राष्ट्रव्यापी बनाना पड़ता है; तभी वे मुकाबिला कर सकते हैं। देखिये, रूस ने अेक करोड़ सेना खड़ी की है। यह कोअी छोटी बात नहीं है। फिर भी, अुसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। बात यह है कि हिंसा में शत्रु से भी प्रचण्ड संगठन होना चाहिअे। फुटकर हिंसक संगठन बेकार होता है। या तो अत्यन्त व्यापक और तीव्र स्वरूप का संगठन होना चाहिअे; या बिलकुल नहीं। और कोअी

चारा नहीं है। गुप्तरूप से षड्यन्त्र करके दो-चार खून करने से विजय नहीं मिलती। राष्ट्र के तमाम लोगों को अुसी काम में जुट जाना पड़ता है। अिंग्लैंड को देखो। वहाँ स्त्रियों तक की भरती हो रही है। साढे अठारह वर्ष से अूपर के तो सभी स्त्री-पुरुष जबरन भर्ती किये जा रहे हैं। सोलह से साढे अठारह वर्ष के तरुण-तरुणियों को भी भरती होने के लिअे प्रेरणा, अुत्तेजन और प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अितना भयानक संगठन करने पर कहीं आशा हो सकती है। नहीं तो चुपचाप गुलाम बन कर टैंक के आगे शिर झुकाओ। यूरोप में ये ही दो मार्ग पाये जाते हैं।

हमारा नया शस्त्र

लेकिन महात्माजी ने हमारी संस्कृति और स्थिति देख कर हमें अेक नया हथियार दिया है। वह है अहिंसा। अिसमें जागृति और संगठन की कितनी विलक्षण शक्ति है, यह हमारे जैसे निःशस्त्र, विशाल और पराधीन देश की आज की निर्भयता से साबित है। चोरी-चुपके की हत्या में यह शक्ति नहीं है। क्या हम अितनी बडी शक्ति को खो बैठें? फिर तो अंग्रेजों की शरण जाने के सिवा हमारे पास और कोअी अुपाय ही नहीं रह जायगा। हम अैसे शस्त्र को हरगिज न छोडेंगे। अुसे हम और भी तेजस्वी बनायेंगे। चुपचाप नहीं बैठेंगे। जब अितना भयंकर हिंसा-काण्ड हो रहा है, दुनिया तबाह की जा रही है और हमारे देश को भी अुसमें घसीट लिया गया है, तो हम अुसके विरोध में प्रचार किये बिना कैसे रह सकते हैं?—लोगों से यह कहे बिना हम कैसे रह सकते हैं कि लडाअी में शामिल मत होओ। अिस वक्त अगर हम चुप रहेंगे, तो सारा राष्ट्र खस्सी हो जायगा। हम गुलाम बने रहेंगे। यह भाषण-स्वातन्त्र्य कोअी मामूली हक नहीं है; वह हमारा महान कर्तव्य है। जब तक अुसे पूरा करने का हक न मिले, तब तक खाली छुटकारे के जाल में फँस कर हम अपनी लड़ाअी बन्द कैसे कर सकते हैं? यह हुआ शुद्ध, याने आत्यंतिक अहिंसा, के पहलू से विचार।

अेक दूसरी दृष्टि

अेक दूसरी भी दृष्टि है। वह यह कि 'हमारे लिअे हिंसा-अहिंसा का मुद्दा प्रधान नहीं है। हम तो साम्राज्यवादी युद्ध में मदद नहीं करना चाहते। और जब तक सिर्फ अंग्रेजों का ही सवाल था, तब तक अुनका साथ न देना ठीक था। लेकिन रूस के शामिल होने से लड़ाअी का स्वरूप ही बदल गया है। वह साम्राज्यवादी राष्ट्र नहीं; समाजवादी मुल्क है। अब तो जो लोग अिस युद्ध को साम्राज्यवादी और साम्राज्यवाद को बढानेवाला समझ कर अुसका विरोध करते थे, अुन सबको चुप रहना चाहिअे'। लेकिन अिस बारे में अेक सवाल अुठता है—'अंग्रेज और रूस की दोस्ती का क्या मतलब है?' या तो अिंग्लेंड ने साम्राज्यवाद छोड़ा होगा या रूस अपने आदर्श से कुछ नीचे अुतर आया होगा। अब तक जो घटनाअें घटी हैं, अुनसे साफ है कि रूस ही अपने आदर्श से गिर रहा है। यों तो रूस अपने आदर्श से पहले भी कुछ कुछ गिर चुका था। अिस पतन के बीज रूसी क्रान्ति में ही थे। और अुसकी योजना में भी हिंसा को स्थान है। मतलब यह कि रूस में पहले ही से हिंसक शक्ति थी। अब वह बढ़ गयी है।

साम्राज्यवाद के मुद्दे पर भी विरोध कायम

हिंसक शक्ति का विरोध कांग्रेस के तत्त्वज्ञान में है। लेकिन साम्राज्यवाद की बिना पर जो विरोध किया जाता था वह भी कायम ही रहता है। क्योंकि अिंग्लेंड की साम्राज्यवादी

मनोवृत्ति में कोअी फर्क नहीं हुआ है। अगर हुआ होता तो अुसका प्रकाश हिन्दुस्तान में जरूर पड़ता। अिंग्लैंड के रुख में कोअी फर्क नहीं पड़ा है। अैसे साम्राज्यवादी राष्ट्र से रूस ने हाथ मिलाया है। अैसी हालत में यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध का स्वरूप बदल गया है। अुल्टे रूस और अिंग्लैंड के मिल जाने से तो युद्ध की हिंसकता और भी बढ़ेगी और अिंग्लैंड के साम्राज्यवाद की छूत रूस को भी लगेगी। अिसलिअे साम्राज्यवाद के विरोध के कारण भी हमें सत्याग्रह जारी रखना चाहिअे।

दरबारी कार्यक्रम क्यों नहीं?

अेक तीसरी बात यह कही जाती है कि पार्लमेंटरी कार्यक्रम क्यों न शुरू किया जाय? यह कौंसिलों का मोह अुसी हालत में अच्छा हो सकता है, जब राष्ट्र के हाथ में सच्ची सत्ता होती है। आज वह सत्ता कहाँ है? आज तो पार्लमेंटरी कार्यक्रम फिर-से शुरू करने का मतलब सरकार के जाल में फँसना होगा। अेसेम्ब्ली में जा कर कमांडर-अिन-चीफ की हाँ में हाँ मिलानी होगी। ठीक वही हाल होगा जैसा कि हमारे यज्ञयागादि धार्मिक समारम्भों में होता है। पति संकल्प करता है, पत्नी अुसके हाथ में हाथ लगा कर अनुमोदन देती है। अिसके माने यह हैं कि हिन्दुस्तान खुशी से युद्ध में धन-जन की सहायता दे। अिसका यही अर्थ हुआ कि हम सरकार के दरबार में जायें और वहाँ भारत के सेनापति वेवैल साहब के प्रवचन सुन कर हिंसक कार्य में अुनकी मदद करें। फिर तो काँग्रेस को अहिंसा द्वारा स्वराज्य लेने का अपना अुद्देश्य बदल देना होगा। लेकिन गांधीजी को और मुझ जैसे असंख्य व्यक्तियों को यह बात नहीं जँचती कि हिंसा के मार्ग से स्वराज्य मिलेगा। अिसीलिअे हमें पार्लमेंटरी प्रोग्राम (दरबारी राजनीति) नहीं जँचती।

यथाशक्ति युद्ध-विरोध जारी रहे

अिसलिअे हमें अिस युद्ध का यथाशक्ति विरोध करना ही चाहिअे। हाँ, हमको अपने साधन पहले की अपेक्षा अधिक शुद्ध रखने होंगे। जो लोग जेलों में जायें, अुन्हें अधिक संयमशीलता, अधिक कर्तव्यनिष्ठा और अधिक भक्ति रखनी होगी। अिसका वातावरण पर शुभ परिणाम होगा। अितनी दक्षता और सावधानी से हमें आगे बढ़ना चाहिअे।

शक्ति का स्रोत

मगर जेल जानेवालों में युद्ध के प्रतीकार की ताकत कहाँ से आयेगी? वह तो तब आयेगी, जब आप-सबका सहयोग और अनुमोदन होगा, हम आप सबके प्रतिनिधि हो कर जायेंगे और आपमें और हममें अेकसूत्रता रहेगी। तभी युद्धविरोधी प्रचार में शक्ति पैदा होगी। जब हमारे विचार के पीछे आपका समर्थन होगा, तभी सत्याग्रह में प्रचण्ड शक्ति आयेगी। खाली हाथ अुठा कर समर्थन करने से काम नहीं चलेगा। देखिये, यूरोपवाले अपनी आजादी के लिअे कितना बलिदान कर रहे हैं? लाखों आदमी और विपुल धन कुर्बान किया जा रहा है। अिसी तरह आपको प्रत्यक्ष सहयोग देना होगा। वह सहयोग अिसी तरह हो सकता है कि लाखों लोग रचनात्मक कार्यक्रम में भाग लें। केवल हाथ अुठाने के त्याग से काम नहीं चलेगा। अगर आपलोगों का सहयोग सजीव और व्यापक हो, तो जेल में भले ही मुट्ठीभर ही आदमी चले जायें, तो भी हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हनूमान का अुदाहरण आपको मालूम है। वह अकेला लंका में पहुँचा था। महाबली राक्षसों के बीच अिस तरह पहुँच कर पराक्रम करने की

शक्ति अुसमें कैसे आयी ? यह पराक्रम अुसने किसी अखाडे में कसरत करके प्राप्त नहीं किया था। जब अिस निर्भयता का कारण अुससे पूछा गया, तो अुसने कहा, 'मेरा असली बल शरीरबल नहीं है। श्री रामचन्द्र का पृष्ठ-पोषण ही मेरे अिस पराक्रम का आधार है। मैं राम का दास हूं'।

जनता का समर्थन

कहावत है कि 'पंचों में परमेश्वर' होता है। जनता ही जनार्दन है। अुस देवता का समर्थन हमारा सच्चा बल है। वह समर्थन रचनात्मक आचार के रूप में ही हो सकता है।

अखंड विधायक प्रवृत्ति की जरूरत

हिंसात्मक युद्ध की तैयारी में भी अखंड विधायक कार्यक्रम की जरूरत होती है। हिंसक युद्ध में सिर्फ सेना ही नहीं लड़ती। समूचे राष्ट्र को विधायक कार्य में जुट जाना पड़ता है। जब प्रचण्ड विधायक संगठन होता है, तभी हिंसक युद्ध की तैयारी होती है। युद्ध की सामग्री बनाने के लिअे बडे बडे कारखाने खोलने और चलाने पड़ते हैं, रास्ते और पुल बनवाने पड़ते हैं, वर्दियाँ बनवानी पड़ती हैं, खेती और दूसरे अुद्योगों द्वारा खुराक और रसद का प्रबन्ध करना पड़ता है, लडके-लड़कियों को पाठशालाअें छोड़ कर अिस काम में लग जाना पड़ता है, स्त्रियों को घर का काम सम्हाल कर युद्ध की विधायक तैयारी में हाथ बटाना पड़ता है। जरा हिटलर से पूछिये तो वह कहेगा कि मुझे चौदह आने विधायक कार्य करना पड़ता है और सिर्फ दो आने प्रत्यक्ष लड़ाअी का काम। सेना लड़ती है, परन्तु सारा राष्ट्र अुसके पीछे काम करता है। स्त्रियाँ सीने-पिरोने का, मरहम पट्टी का और सेवा-शुश्रूषा का कार्य करती हैं। छोटे छोटे बालक भी कारखानों में अपने बूते का काम करते हैं। बूढे अपने लायक काम करते हैं। हाँ, अिस सारे विधायक कार्य का अुपयोग तो हिंसक लड़ाअी के ही लिअे होता है। लेकिन वह कार्य अपने में विधायक ही होता है। जब हिंसात्मक युद्ध में जनता के अितने विधायक सहयोग की जरूरत है, तब अहिंसक लड़ाअी की तो बात ही क्या ? अुसमें तो सोलह आने शक्ति रचनात्मक कार्य की ही है।

तेल और बत्ती की आवश्यकता

खाली युद्धविरोध सफल कैसे हो सकता है ? युद्धविरोधी सत्याग्रह तो अैसा है जैसे चिराग को दियासलाअी लगा कर सुलगाते हैं। लेकिन चिराग किस शक्ति के आधार पर प्रकाश देता है ?—बत्ती और तेल के आधार पर। वह न हो तो दिया प्रकाश नहीं दे सकता। सारी बत्ती को तेल से पोषण मिलता है। दियासलाअी तो निमित्तमात्र होती है। बत्ती का अेक सिरा दियासलाअी से परचा देने पर चिराग अखण्ड जलता रहता है। अुसी तरह सिर्फ युद्धविरोध की दियासलाअी से काम नहीं चलेगा। जब तक रचनात्मक कार्यक्रम का तेल और बत्ती नहीं होगी, तब तक प्रकाश नहीं पडेगा, दिया नहीं जलेगा। अगर तेल और बत्ती होगी और बत्ती को तेल की खुराक बराबर मिलती रहेगी, तो युद्धविरोध सफल होगा, तेजस्वी होगा। लाखों नरनारी जब रचनात्मक कार्य द्वारा सत्याग्रह-रूपी दीपक को तेलबत्ती पहुँचाती रहेंगी, तभी अुसकी ज्योति अखण्ड और प्रचण्ड रहेगी।

रचनात्मक कार्यक्रम

अिस तेल के भंडार को भरपूर रखने के लिअे हिन्दू-मुस्लिम अेकता होनी चाहिअे। लेकिन वह कैसे हो ? हमें अेक-दूसरों का विश्वास करना सीखना चाहिअे। हजार-हजार और बारह-बारह सौ वर्षों से हम अेकत्र रह रहे हैं। फिर भी

आपस में अविश्वास और डर है। अुसे बिलकुल नष्ट कर देना चाहिअे। दूसरी महान विधायक प्रवृत्ति हरिजन-सेवा है। हमें अपने हरिजन भाअियों को नजदीक ले कर अुनके साथ कुटुम्बियों का-सा बर्ताव करना चाहिअे। घर घर में चर्खा भी चलना जरूरी है। हमारा राष्ट्र गरीब है। वह तो जब दोनों हाथों से काम करेगा, तभी भूख मिटेगी।

हमारी सच्ची लक्ष्मी

अेक गृहस्थ ने मुझसे कहा, "मेरे यहाँ तो खाने-वाले छह-सात मुंह हैं।" जवाब में मानो अीश्वर की वाणी ही मेरे मुंह से निकली। मैंने कहा, "घबड़ाने की क्या बात है? सात मुंह हैं तो चौदह हाथ भी तो हैं? यह तो अीश्वर की दयालु और प्रेममय योजना है कि अुसने अेक मुंह के पीछे दो हाथ दिये हैं; दो हाथों के पीछे अेक मुंह नहीं"। हम चालीस करोड़ हैं। हमारे अस्सी करोड़ हाथों में कितनी शक्ति भरी है! यह हमारा दुर्भाग्य या मुसीबत नहीं है; महान सद्भाग्य और लक्ष्मी है। दोनों हाथ काम में लगाअिये। सूत कातने का काम बिलकुल आसान है। लड़ाअी की वजह से आज मिल का कपड़ा बहुत महँगा हो गया है। लड़ाअी का कोअी ठिकाना नहीं कब तक चले। मुझे तो वह लम्बी जाती दीखती है। अैसी हालत में महंगाअी के कारण कदाचित कपड़े के अभाव में हम सभी को जाड़े के दिनों में ठिठुरना पड़े। परावलम्बी का यही हाल होता है। लेकिन सूत कातने का काम तो बच्चे, बूढ़े, कमजोर सभी कर सकते हैं।

देशप्रेम की नित्य क्रिया

स्वावलम्बन के अलावा अेक दूसरी दृष्टि भी है। देश के लिअे हररोज कुछ-न-कुछ करना चाहिअे। अिस तरह की प्रत्यक्ष क्रिया कौन-सी हो सकती है? हमें अपने बच्चों को कातने के संस्कार में भी वैसी ही भावना देनी चाहिअे जैसी तुलसी की पूजा में। छुटपन में हमारी माँ हमें तुलसी में पानी डालने के लिअे कहा करती थी। हर अेक घर में अिस तरह प्रत्यक्ष क्रिया के द्वारा बच्चों के दिल में धर्म-प्रीति का संस्कार पैदा किया जाता था। प्रत्यक्ष अुपासना सिखायी जाती थी। हम भी छोटे बच्चों से प्रति-दिन देशप्रीति के प्रतीक के रूप में प्रत्यक्ष कार्य करावें। राष्ट्र-प्रेम की द्योतक अिस क्रिया में हमें अभिमान मालूम होना चाहिअे।

अिसी तरह सब तरह के व्यसन छोड़ने चाहिअे।

'पराजय' शब्द ही नहीं करेंगे

याद रखो अगर सबलोग रचनात्मक काम करेंगे, तो हमारी सत्याग्रह की लड़ाअी में वह जोर पैदा होगा जिसको कोअी शक्ति दबा न सकेगी। फिर आपके लिअे 'पराजय' जैसा कोअी शब्द ही नहीं रहेगा। मुझे हमारी अन्तिम विजय के बारे में तनिक भी सन्देह नहीं है। मेरे मित्रो, सिर्फ आपका सक्रिय समर्थन चाहिअे।

रचनात्मक कार्यक्रम

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

१

मालूम होता है कि जेल में गये हुओ अनेक काँग्रेस-कार्यकर्ताओं ने अपना समय रचनात्मक कार्यक्रम की विविध बाबतों पर विचार करने में बिताया । कओी जनों के लिअे जेल अेक विद्यापीठ का काम देता है । बाहर तरह तरह के काम-काजों में लगे रहना पड़ता है । असलिअे पढ़ने या सोचने के लिअे बहुत कम वक्त मिलता है। जेल में असके लिअे काफी फुरसत मिल जाती है और गम्भीर कार्यकर्ता अुससे अच्छा लाभ अुठाते हैं । अक्सर देखा यह गया है कि प्रायः साम्यवाद, गांधीवाद, गीता, कुरान और ज्योतिष (!) जैसे विषय कारा-विद्यापीठ में पढे जाते हैं । मालूम होता है अिस बार गांधीवाद के अन्तर्गत अहिंसा और रचनात्मक कार्यक्रम पर ज्यादा ध्यान दिया गया है । श्री बालूभाओी महेता ने रचनात्मक कार्यक्रम पर मराठी में अेक पुस्तक लिखी है, जो छप रही है । यरवदा जेल के कुछ मित्रों ने भी अिसी विषय पर मराठी में अेक छोटा-सा मार्गदर्शक निबन्ध तैयार किया है । दूसरी जेलों में भी विभिन्न भाषाओं में अिसी तरह का कुछ-न-कुछ प्रयत्न हुआ ही होगा। ये सब शुभ चिन्ह हैं ।

रचनात्मक कार्यक्रम का हमारे देश की राजनीति से क्या सम्बन्ध है, असके बारे में कॉंग्रेस के बहुत-से कार्यकर्ताओं के दिल में बराबर शंका रही है । अिसलिअे अुन्हें अिस कार्यक्रम में रस नहीं होता और गांधीजी के सुबह-शाम अुसी कार्यक्रम पर जोर देने में तथा अुसके खातिर सत्याग्रहियों पर आये दिन नयी नयी शर्तें लगाने में, अन्हें कुछ कुछ दुराग्रह की भी बू आने लगती है । साम्यवादी मित्र गांधीजी के अिस आग्रह की खुल्लमखुल्ला टीका करते हैं, अिसमें कोओी आश्चर्य की बात नहीं । लेकिन गैर-साम्यवादी या दाहिने दल के बडे पुराने कार्यकर्ता भी कओी बार दबी आवाज से रचनात्मक कार्यक्रम का मजाक अुड़ाते पाये जाते हैं ।

अिसके यही माने हैं कि अभी अिस विषय को ज्यादा स्पष्ट करने की जरूरत है । गांधीजी के बताये हुअे रचनात्मक काम का अहिंसक युद्ध-नीति और देश की आजादी से क्या सम्बन्ध है, यह जब तक समझ में नहीं आता, तब तक अुसके विषय में अश्रद्धा और अुदासीनता रहना स्वाभाविक है। जिस चीज पर मनुष्य का विश्वास नहीं बैठता, अुसकी बार बार याद दिलाते रहने से अुस बात से अुसे घृणा होने लगती है । अिसलिअे, अिस विषय को युक्तियुक्त रीति से स्पष्ट करने की कोशिश से फायदा ही होगा । प्रस्तुत लेख में अिसी तरह का प्रयत्न करता हूँ ।

हमारे सामने आज दो बडे सवाल पेश हैं: 'अंग्रेज-सरकार से हम अपनी स्वतन्त्रता किस तरह लें ?' और 'यदि विदेशी आक्रमण हो ही जाय, तो अुसका मुकाबिला किस तरह करें ?'

कुछ लोगों की राय में पहला सवाल ज्यादा महत्त्व का है और दूसरे कुछ लोग मानते हैं कि आज की परिस्थिति में तो दूसरा ही सवाल ज्यादा जरूरी और महत्त्व का है । मैं अिसकी चर्चा में पड़ना नहीं चाहता । मान लीजिये कि दोनों सवाल अेक साथ हमारे सामने खडे हैं । फर्ज कीजिये कि अेक भेडिया हिरनों के अेक झुण्ड को सता रहा है । अितने में पास ही शेर की

गर्जना सुनायी पड़ती है। वह भेड़िया न तो हिरनों को छोड़ना चाहता है और न शेर के हाथों मरना चाहता है। वह जैसी दुविधा में पड़ जाता है, अुसी तरह की असमंजस में अिस वक्त अंग्रेज सरकार पड़ी हुअी है। हिरनों की असमंजस और संकट तो और भी भारी है। वे न तो भेड़िया का शिकार बनना चाहते हैं और न शेर का। अुनके न तो पैने और बड़े बड़े दाँत हैं, न पंजे। सींग भी तो सबके नहीं हैं। तिसपर भी वे दोनों का मुकाबिला करने का हौसला रखते हैं। हिन्दुस्तान का ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा जर्मनी-जापान से कुछ-कुछ अिसी तरह का सम्बन्ध है। अेक बहुत बड़ा फर्क यह जरूर है कि विरोध होते हुअे भी हम सब अेक ही मानव योनि के प्राणी हैं। हिरन और भेड़िया तथा शेर की तरह हमारे बीच सदा भक्ष्य-भक्षक का सम्बन्ध होना जरूरी नहीं है। देश, भाषा, धर्म, सभ्यता, स्वार्थ आदि के भेदों के कारण मनुष्यों में अत्र-तत्र अत्यन्त अुग्र झगड़े भले ही होते रहते हों; फिर भी मानव मानव के झगड़े कभी स्थायी नहीं होते। चाहे वे अहिंसा का नाम तक न जानते हों, तो भी कड़ुअे झगड़े के बाद सुलह-समझौता होता ही है और कुछ समय तक, अमन के दिनों में, विरोधियों में भी मीठा सम्बन्ध रहता है।

लेकिन अिस समय दुनिया से मिठास अुठ गयी है। अविश्वास और स्वार्थ का साम्राज्य चारों तरफ फैल गया है। अिस वक्त हिन्दुस्तान ही अेक अैसा मुल्क है जो कि, अगर वह अपना घर ठीक कर ले तो, सारी दुनिया में मिठास का दिन लाने की परिस्थिति निर्माण कर सकता है।

परन्तु यह 'अगर' अेक बहुत बड़ी खाअी है। जब तक हम अपना घर ठीक नहीं कर सकते, तब तक हमारे लिअे न तो स्वाभिमानपूर्वक जीवन बिताना सम्भव है और न जगत में ही ज्यादा दिन शान्ति रहना सम्भव है। हमारी परतन्त्रता केवल हमारे अपने दुःखों की ही जड़ नहीं है, बरन् सारे जगत के कष्टों का कारण है।

अिसलिअे जर्मनी या जापान का आक्रमण हमारे लिअे चाहे तात्कालिक महत्त्व का सवाल हो या न हो, अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करना बहुत ही महत्त्व की बात है। विदेशी आक्रमण का भय निकट आ जाने से अिस सवाल के महत्त्व में कोअी फर्क नहीं पड़ता। और आज यह सब कोअी मानते हैं कि स्वतन्त्रता हासिल करने के लिअे हम हिंसा के रास्ते से नहीं जा सकते।

तब हमें अिस तरह की अहिंसक योजना बनानी चाहिअे जो हमें स्वतन्त्र कर दे और साथ ही विदेशी आक्रमण का मुकाबिला करने में भी सहायक हो। यदि जनता की समझ में यह भलीभाँति आ जाय कि गांधीजी का कार्यक्रम अिस दुहरी कसौटी पर खरा अुतरता है, तो अुसके लिअे अश्रद्धा, अुदासीनता और घृणा की भावना न रहेगी।

यह समझाने की जरूरत नहीं कि हम तब-तक स्वतन्त्र नहीं हो सकते जब तक कि कम-से-कम करीब दो-तीन करोड़ लोगों के लिअे स्वतन्त्रता ही जीवन का अितना महान ध्येय नहीं बन जाती, कि अुसके लिअे वे अपनी पूरी शक्ति लगा दें और अपने जीवन में आवश्यक परिवर्तन करें। केवल देशभक्ति की गाथाअें सुनने-सुनाने, देशभक्ति के गीत गाने, आजादी के नारे लगाने या झंडा-वन्दन करने भर से स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी।

अिसकी पूर्ति में बीच बीच में सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ कर लाख-सवा-लाख सत्याग्रहियों के जेल जाने से भी पूर्ण स्वराज्य नहीं मिलेगा। हमारे निजी और सार्वजनिक जीवन में जिन खामियों के दाखिल होने से हम पराधीन हुअे हैं, अुन खामियों को दूर करने पर ही हम स्वतन्त्रता का आस्वाद कर सकते हैं। अितना काफी नहीं है कि मुट्ठीभर आदमियों के जीवन में से ये खामियां दूर हो जायँ या जनता थोड़े दिनों के लिअे अुन्हें दूर करने का स्वांग रचे; बल्कि करोड़ों लोगों के जीवन में से वे हमेशा के लिअे दूर हो जानी चाहिअे। भारतीय जीवन की

पराधीनता-पोषक खामियों को दूर करके स्वाधीनता-साधक आदतों को बढ़ानेवाले सब तरीकों पर अमल करना ही रचनात्मक कार्यक्रम है।

किसी समय गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम का रूप चतुर्विध याने चार तरह का बताया था। अब वे तेरह प्रकार का बताते हैं। अिसमें संख्या महत्त्व की नहीं है। सभी बातें किसी अेक ही शब्द के द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं या अलग अलग पचास शब्द भी काम में लाये जा सकते हैं। यह तो समझाने और अमल करने की सहूलियत का ही सवाल है। मुख्य चीज है हमारे खानगी और सार्वजनिक जीवन में पायी जानेवाली त्रुटियों की पूर्ति।

हमारे सामाजिक जीवन मे सब से बड़ी त्रुटि यह आ गयी है कि हम हिल-मिल कर बहुत कम काम कर सकते हैं। अेक गांव, अेक जिला, अेक प्रान्त या अेक देश में बसने के कारण जिस अेकता का अनुभव होना चाहिअे,अुसकी अपेक्षा अेक जाति, पेशे या पक्ष की अेकता को हम ज्यादा महसूस करते हैं। अिसके अलावा, अगर किसी आदमी में थोडी-सी भी विशेष शक्ति होती है, तो अुसे वह अेक अलग फिरका बनाने में ही लगा देता है। हम लोगों में यह मनोवृत्ति बहुत गहरी पैठ गयी है कि हमारे साथ रहनेवाला हमारी बराबरी का न हो, बल्कि हम से छोटा और हमारे अधीन रहनेवाला हो। हमारे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक या साहित्यिक, चाहे जिस क्षेत्र को ले लीजिये, यही प्रवृत्ति पायी जायगी। अिस कारण हमारा समाज मधुमक्खियों के अेक सुव्यवस्थित समाज की अपेक्षा घर-मक्खियों के समूह से ज्यादा समानता रखता है। अैसे परिवार बिरले ही होंगे जिनमें घर की फूट न हो और सारा परिवार मानो अनेक शरीरों में अेक आत्मा की तरह रहता हो। अिस तरह के अेक-दिल गांव तो परिवारों से भी कम पाये जायंगे। हमारी दलबन्दियां सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यक्तिगत द्वेष पर ही अधिक तर कायम की जाती हैं। अक्सर तात्त्विक मतभेद का महज बहाना होता है।

मेरी दृष्टि से रचनात्मक कार्यक्रम का प्रधान अुद्देश्य यह है और होना चाहिअे कि अुसके विविध अंगों द्वारा हम सारे हिन्दुस्तान की जनता में अेक ठोस घनिष्ठता कायम कर सकें। हजारों साल पहले वेद के प्राचीन ॠषि ने हमें संगठन के महान मंत्र का अुपदेश दिया—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना अुपासते॥
(ॠग्वेद अ० ८ मं० १८)

(हे भक्तो, तुम सब (संगच्छध्वं) अेक हो कर प्रगति करो। (संवदध्वं) अुत्तम प्रकार से संवाद करो। (वः मनांसि) तुम सबके मन (सं जानतां) अुत्तम संस्कारों से युक्त हों। तथा (पूर्वे) पूर्व कालीन (संजानाना देवाः) अुत्तम ज्ञानी और व्यवहारचतुर लोग (यथा) जिस प्रकार (भागं) अपने कर्तव्य का भाग (अुप-आसते) करते आये हैं, अुसी प्रकार तुम भी अपना कर्तव्य करते जाओ। अेक हो जाओ, मिल कर रहो, आपसमें अुत्तम प्रेमपूर्वक भाषण करो, संवाद करके सर्व-संमति से बातों का निश्चय करो, तथा अपने मन सुसंस्कार से युक्त करो। जिस प्रकार तुम्हारे पूर्वकालीन ज्ञानी लोग अपने अपने कर्तव्य का भाग अदा करते आये हैं, अुसी प्रकार तुम भी अपने कर्तव्य का हिस्सा अुत्तम रीति से पूरा करो)।

लेकिन पता नहीं कि यह मन्त्र हमारे समाज में किसी भी जमाने में पूरी तरह चरितार्थ हुआ था या नहीं? आज तो वह लुप्त-सा हो गया है। अुसे सिद्ध किये बिना स्वराज्य असम्भव है। अिसलिअे हमें सोचना चाहिअे कि हम 'साथ चलने की शिक्षा पाने के लिअे क्या करें? साथ बोलने की तालीम कैसे प्राप्त करें? हमारी विचारधारा समान किस तरह बनेगी?' अित्यादि अित्यादि। अिस ध्येय की पूर्ति का हरअेक अुपाय अहिंसक रचनात्मक कार्यक्रम का अंग है।

हमारी तर्कशुद्ध भूमिका

[विनोबा]

(तारीख चौदह दिसम्बर अुन्नीस सौ अिकतालीस को स्थानीय वासुदेव आर्ट्स कॉलेज के स्नेहसम्मेलन के अवसर पर दिया हुआ प्रवचन)

मेरे मित्रो

प्रास्ताविक

मुझे पता नहीं था कि मैं यहाँ अपने अधिकार की कक्षा में आनेवाला काम करने आ रहा हूँ। परन्तु प्रारम्भ में अिस कॉलेज के प्राचार्य का जो भाषण सुना अुस पर से मालूम हुआ कि मैं अपने अधिकार के ही काम के लिअे यहाँ आया हूँ। अभी कहा गया कि यह कॉलेज अगले सत्र में नागपुर जानेवाला है और अिसलिअे यह अन्तिम प्रसंग है। अक्सर अन्तिम अवसरों पर ही मेरी बुलाहट होती है। मालूम होता है वही मेरा अधिकार है। योग्य स्थान पर योग्य व्यक्ति की नियुक्ति अपने आप कैसे हो जाती है यह देख कर आश्चर्य होता है। मैंने जब अिस निमन्त्रण को स्वीकार किया तो मेरे आसपास रहने वालों को जरा आश्चर्य ही हुआ। वे सोचने लगे, 'यह कहाँ का प्राणी कहाँ पहुँचेगा'? ज्ञानदेव ने लिखा है, "अेक जंगली जानवर पकड़ा कर राजमहल में—कोलाहल से भरे राजमहल में—लाया गया। बेचारा हैरान हुआ कि कैसे शून्य स्थान में आ पहुँचा हूँ। अुसे दसों दिशाअें सुन-सान प्रतीत होने लगीं।" साथियों ने सोचा कि यहाँ मेरा भी वही हाल होगा। क्योंकि कॉलेज जैसे स्थानों का वातावरण और होता है और हमारा वातावरण कुछ और तरह का। अिसलिअे अुनकी शंका के लिअे गुंजािअश जरूर थी।

मुझमें और विद्यार्थियों में अभेद

परन्तु मेरे दिल में अिस तरह की कोअी शंका तनिक भी नहीं थी। क्योंकि विद्यार्थी चाहे कहीं का हो, चाहे कौन-सा भी हो,—वह दूसरे प्रकार का हो सकता है—लेकिन अुसकी वृत्ति मेरी वृत्ति से मेल खाती है। वह मुझे मेरा आत्मा ही प्रतीत होता है। यह अनुभव मुझे कअी बार, याने जब जब मैं विद्यार्थियों के सामने बोला हूँ तब तब, हुआ है। जब मैं विद्यार्थियों से बोलता हूँ तो मुझे अैसा मालूम ही नहीं होता कि मैं किसी दूसरे से बोल रहा हूँ। अैसा मालूम होता है मानो मेरा आत्मा ही साकार होकर सामने खड़ा है, मैं अपने आपसे ही बोल रहा हूँ। कारण मैं अेक विद्यार्थी हूँ। अगर मैं विद्यार्थी न होअूं तो मैं कुछ भी नहीं हूँ। यह स्थिति है। आज तक विद्यार्थी रहा हूँ और, अगर अिस जन्म की ही बात करूँ, तो अन्ततक भी रहूंगा, अैसी आशा करने में हर्ज नहीं। अिसलिअे वातावरण चाहे कितना भी भिन्न क्यों न हो, मेरे सामने जब विद्यार्थी होते हैं तो अुनमें और मुझमें भेद नहीं रहता। अिस विषय में मुझे कोअी सन्देह नहीं था। अिसीलिअे यह निमन्त्रण मैंने स्वीकार किया।

लेकिन यहाँ आने पर मैं किस विषय पर बोलूं? मैं समझता हूं कि मैं कौन-से काम में लगा हूं, यह जानते हुअे, या यों कहिये, यह जानने

के कारण ही मुझे यहाँ बुलाया है। अिसलिअे मुझे क्या बोलना चाहिअे अिसके विषय में आपकी अपेक्षा स्पष्ट ही है। मैं अुस अपेक्षित विषय पर ही बोलनेवाला हूँ।

'पठितमूर्ख' की व्याख्या

परन्तु अेक बात मुझे कह देने दीजिये। कारण, प्रास्ताविक भाषण में मुझसे यह अपेक्षा की गयी है। कि मैं विद्यार्थियों को कुछ अुपदेश दूं। लेकिन मैं अुपदेश हरगिज नहीं दूंगा। क्योंकि मैंने यह सूत्र ही बना लिया है कि जो विद्यार्थियों को अुपदेश देता है वह अेक पढ़न्त-मूर्ख (पठित-मूर्ख) है और जो अैसे अुपदेश सुनता है वह दूसरा पढ़न्त-मूर्ख है। रामदास ने पठितमूर्ख के लक्षण बतलाये हैं। आप अुन्हें जानते हैं। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि वे लक्षण बराबर बढ़ते चले जा रहे हैं। अब वह पुरानी तालिका काम की नहीं है।

संपूर्ण स्वतन्त्रता का अेकमेव अधिकारी

विद्यार्थियों को अुपदेश देना मूर्खता का लक्षण है, यह कहने से मेरा यह अभिप्राय है कि संसार में यदि कोअी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का हकदार हो सकता है तो विद्यार्थी ही। क्योंकि दूसरे सब लोगों के पीछे कोअी-न-कोअी दंद, कठिनाअी, दबाव, अंकुश, मर्यादा लगी ही रहती है और लगी रहना अुचित भी है। लेकिन विद्यार्थी किसी बन्धन से बँधा हुआ नहीं होना चाहिअे। मैं अपने अनुभव से यह कह रहा हूँ। मैं भी विद्यार्थी ही हूँ। अेक विद्यार्थी की हैसियत से मैं कोअी भी बन्धन स्वीकारने को तैयार नहीं हूँ। अेक नागरिक के नाते मुझपर कुछ बन्धन हैं। मैं अपने माता पिता का बेटा हूँ अिसलिअे भी कुछ बन्धन हैं। मैं अपने मित्रों का सहयोगी हूँ अिस कारण भी कुछ बन्धन प्राप्त होते हैं। अुन्हें मैं स्वीकार करूंगा, यह बात और है। परन्तु विद्यार्थी के नाते में किसी बन्धन का स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। विद्यार्थी से यही अपेक्षा रक्खी जानी चाहिअे कि वह तटस्थ वृत्ति से हरअेक बात की जाँच-पड़ताल करे। अुसके सामने कोअी विषय या ज्ञान अिसी अपेक्षा से अुपस्थित किया जाना चाहिअे। 'क्या अुपयुक्त है और अनुपयुक्त क्या है' अिसका निश्चय करने का अुसको हक है। अिसलिअे मैं अुपदेश नहीं दूंगा।

ज्ञान दर्पण है

ज्ञान का कार्य दर्पण के समान है। दर्पण स्वयं स्वच्छ है। वह देखनेवाले को अुसका रूप दिखायेगा। लेकिन आअिना अुठ कर किसी की नाक साफ नहीं करेगा या जबरदस्ती से अथवा समझा-बुझा कर नाक साफ नहीं करायेगा। यह काम माता खुशी से करे। आअिना तो अितना ही बतायेगा कि नाक साफ है या गन्दी। वह अपनी स्वच्छता के द्वारा सिर्फ दिखाने का काम करता है। अगला कार्य वह देखनेवाले को सौंप देता है। वह अुसकी मर्जी की बात है, अुसका हक है। अपने स्वच्छता के गुण की बदौलत दर्पण देखनेवाले के हक में दखल नहीं देता। ज्ञान की प्रक्रिया में अुपदेश के बराबर दूसरी गलती नहीं है। हमारे शास्त्रकार अिसी सिद्धान्त के अनुसार चले। अिसीलिअे अुन्होंने शासन किया। अुन्होंने समाज का शासन किया; अिसलिये वे शास्त्रकार कहलाये। परन्तु अुनका शासन का तरीका यह था कि वे वस्तु का स्वरूप स्पष्टरूप से दिखा कर चुप हो जाते थे। शास्त्रकारों की अिस रीति के अनुसार तुम्हारे सामने विषय अुपस्थित करके अुचित-अनुचित के निर्णय का अधिकार तुम्हें दे कर—वह अधिकार तुम्हें पहले से ही प्राप्त है—मैं भाषण करूंगा।

अभूत-पूर्व अुदर-पीड़ा

तुम कॉलेज के विद्यार्थी हो। अिसलिअे वर्तमान परिस्थिति की तरफ तुम्हारा ध्यान अवश्य गया होगा। अुस सम्बन्ध में तुम्हारा श्रवण और वाचन जाग्रत होगा। जरा देखो, आज का जमाना कैसा है ? सारे मानव-समाज के पेट में जबरदस्त दर्द हो रहा है। पृथ्वी के पेट में भी अिसी प्रकार की वेदना होती है और भूकम्प जैसे अुत्पात होते हैं। अिस भयानक वेदना में से कौन कौन-से अुत्पात संसार में होनेवाले हैं, यह कोअी नहीं बतला सकता। अिधर कअी सदियों से अितना अुत्पाती समय हुआ ही नहीं। लोगों का यह खयाल है कि मानव समाज का अितिहास पाँच-दस हजार वर्षों का पुराना है। तुम अितिहास की जो पुस्तकें पढते हो, अुनमें मुश्किल से दो-तीन हजार वर्ष पहले का अितिहास दिया हुआ होता है। अुसके पहले के करीब हजार दो हजार वर्षों का हाल मोटे तौर पर अन्दाजन से बतलाया जाता है। परन्तु वस्तुतः मानवसमाज का अितिहास कम-से-कम दस लाख वर्षों का है। अिसलिअे हमें जो अितिहास सिखाया जाता है वह तो मानवसमाज के अितने लम्बे अितिहास का अिधर का आखिरी सिरा है। अितने बडे अवकाश में कअी क्रान्तियाँ हुअी होंगी, कअी अुदरपीडाअें हुअी होंगी। परन्तु पिछले सारे ज्ञात अितिहास में अितनी भयानक अुदरवेदना आज तक कभी नहीं हुअी थी।

'संकुल युद्ध'

आज के अिस युद्ध में समूची दुनिया शामिल हुअी-सी है। समूची दुनिया ! मैं लाक्षणिक या अलंकारिक अर्थ में नहीं कहता। अक्षरशः सारी दुनिया अिस युद्ध में शरीक है। यह बात हमें खूब अच्छी तरह समझ लेनी चाहिअे। *आज का, युद्ध सारी दुनिया का 'संकुल युद्ध',* है। 'टोटल वॉर' के लिअे मैंने 'संकुल युद्ध' शब्द का प्रयोग किया है। मतलब, यह अैसा युद्ध है जिसमें समूचे राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के दुश्मन माने जाते हैं—यहाँ के पुरुषों का वहाँ के पुरुषों से बैर है, यहाँ की स्त्रियों की वहाँ की स्त्रियों से अदावत है, यहाँ के जानवरों की वहाँ के जानवरों से दुश्मनी है, यहाँ के पेडों का वहाँ के पेडों से शत्रुत्व है, यहाँ के ओजारों का वहाँ के ओजारों से, यहाँ के जड़ पदार्थों का वहाँ के जड़ पदार्थों से सीधा, तिरछा, आड़ाटेढ़ा, अूपर से, नीचे से, चारों तरफ से,सारे शब्दयोगी और अुभयान्वयी अव्ययों से व्यक्त होनेवाला, सब तरह का, बैर है। अिसे और कोअी विधिनिषेध लागू नहीं है—जिसकी बदौलत विजय होगी वह विधि और जिसके कारण पराजय की सम्भावना हो वह निषेध। अिसलिअे में जो यह कह रहा हूँ कि समूचा जगत अिस युद्ध में शामिल है, अुसका आप अक्षरार्थ लीजिये।

अनोखी राष्ट्रव्यापी तैयारियाँ

अभी अुसी दिन पढ़ा कि अिंग्लैंड ने जो बात अपने अितिहास में कभी नहीं की वह आज की है। वहाँ अैसा कानून बना दिया गया है कि अठारह साल से अधिक अुम्रवाली जो स्त्रियाँ अविवाहित हों अुन्हें, और विवाहित होते हुअे भी जिनके सन्तान नहीं है अुन्हें, युद्ध में शामिल होना चाहिअे। यह भी हिसाब लगाया गया है कि अिस तरह की सोलह लाख ओरतें मिल सकती हैं। लेकिन अितने से भी तसल्ली नहीं हुअी। वे कहते हैं कि सोलह और अठारह के बीच की अुम्र की स्त्रियों को युद्ध में शामिल होने के लिअे अुत्तेजन दिया जायगा। हमारे यहाँ कहा

करते हैं न कि 'प्राप्तेतु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्र वदाचरेत्' ? ('पुत्र सोलह वर्ष का होते ही अुससे मित्र के समान बर्ताव करना चाहिअे।') अुसी न्याय से सोलह वर्ष की होते ही स्त्री युद्ध के काबिल मानी गयी।

रूस की तैयारियाँ

अुधर रूस ने भी अेक दूसरा ही अैलान निकाला है। कहा जाता है कि अिन पाँच महीनों की लड़ाअी के बाद, मैदान में मारे गये, घायल हुअे या कैद किये गये मिला कर, कोअी अेक करोड़ सैनिक लड़ाअी के लिअे अयोग्य हो गये हैं। अटारह करोड़ के राष्ट्र में, किसी भी हिसाब से कूतिये, तो लड़ाअी के लायक साढे चार करोड़ से ज्यादा आदमी होने की सम्भावना नहीं है। और अुनमें से भी सभी लड़ाअी पर नहीं भेजे जा सकते। प्रत्यक्ष लड़ाअी पर जानेवाले हरअेक सिपाही के पीछे तीन दूसरे आदमियों की जरूरत होती है। बिजली, पानी, आदि का अिन्तजाम करना, रास्ते बनवाना, ओजार बनवाना आदि आदि कअी काम होते हैं। मतलब यह कि प्रत्यक्ष सिपाही और अुसके मददगारों का अनुपात अेक और तीन माना जाय, तो सवा करोड़ से ज्यादा सैनिक सेना में दाखिल नहीं किये जा सकते। बहुत तो डे़ढ़ करोड़ समझ लीजिये। अिन सवा या डेढ़ करोड़ में से अेक करोड़ सिपाही युद्ध के लिअे अक्षम हो गये। अिसका साफ यह मतलब है कि अब अुन्हें आदमियों की कमी महसूस होने लगी। लेकिन अितने से वे हारने वाले नहीं हैं। अुन्होंने घोषित किया कि जिस पुरुष या स्त्री के सन्तान न हो, अुसपर कर लगाया जायगा। विवाह की निर्धारित अुम्र के बाद जिसकी शादी न हुअी हो, अुसपर भी कर लगाया जायगा। सन्तान होने के बाद ही अिसमें से छुटकारा मिल सकता है। याने, टैंकों की कमी महसूस होते ही जिस प्रकार कारखानों द्वारा अुनकी अुत्पत्ति बढ़ाने की कोशिश होती है, अुसी प्रकार मरने के लिअे आदमियों की कमी महसूस होते ही मनुष्य-निर्माण के कारखानों को यह प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अिस योजना से मरने के लिअे तुरन्त आदमी मिल जायँगे, अैसी बात नहीं है। कम-से-कम सत्रह-अठारह साल लगेंगे। लेकिन कभी-न-कभी मनुष्यों की कमी पूरी होनी चाहिअे। अिसलिअे यह मनुष्य-निर्माण की योजना है। कैसी भयानक परिस्थिति है यह !

युद्धोत्तर नव-विधान

अिस भयानक परिस्थिति में से क्या निष्पन्न होगा ? अिस अुदर-वेदना में से आगे जो नव-निर्माण होगा अुसीको ये लोग 'नवीन रचना' (न्यू ऑर्डर) कहा करते हैं। आज वे जो विध्वंसक कार्य कर रहे हैं, अुसे वे तात्त्विक दृष्टि से निंदाअी का काम कहते हैं। जिस तरह हम अपने खेतों में पहले निंदाअी करके फिर नयी फसल के लिअे अुसे तैयार करते हैं, अुसी तरह का अुनका यह काम है। वे कहते हैं—अुन्हें यह आशा है—कि अिस युद्ध के बाद मानवसमाज की रचना और तरह की होगी। माना कि होगी। लेकिन विद्यार्थियों को यह सोचना चाहिअे कि जो कुछ अपने आप होगा अुसे हम स्वीकारना चाहते हैं या हम अपनी योजनानुसार कोअी निश्चित परिणाम चाहते हैं। अिसका खूब विचार कर लीजियें। अिस युद्ध के बाद मानव-समाज की आज जो स्थिति है वह नहीं रहेगी; अिसमें कोअी शक नहीं।

युद्धतंत्र मनुष्य

जिन्होंने युद्ध शुरू किया अुनके लिअे अुसे शुरू कर देना आसान था। परन्तु ज्यों ज्यों युद्ध की प्रगति होती जाती है, त्यों त्यों ये

लोग युद्ध नहीं करते; बल्कि युद्ध अिन्हें करता है। ये युद्ध के नियामक नहीं रहते; अुसके नियम्य बन जाते हैं। युद्ध अुनका नियमन करता है। अिन्हें युद्ध के पीछे पीछे जाना पड़ता है। कहा जाता है कि हिटलर सबसे बलवान् और योजना-कुशल है। लेकिन आज जो जागतिक युद्ध चल रहा है, वह अुसकी रचना के अनुसार नहीं कहा जा सकता। अर्थात अिस युद्ध की निष्पत्ति जो होगी सो होगी। लेकिन अितनी भयंकर क्षति और त्याग के बाद जो निष्पन्न होगा, वह प्राप्त करने के लायक भी होगा? कोअी-न-कोअी नतीजा तो होगा ही।

मानव-नियोजित क्रान्ति

प्रचण्ड भूकम्प के बाद कुछ अघटित घटनाअें हो जाती हैं। अिधर का समुद्र अुधर हो जाता है; यहाँ का पर्वत अुधर चला जाता है। अैसी कुछ-न-कुछ अुथल-पुथल होती है। भूकम्प से अैसी प्राकृतिक क्रान्तियां होती हैं। लेकिन वह क्रान्ति मनुष्यकृत या मानवनियोजित नहीं होती—चाहे अुसका परिणाम मनुष्यों पर भले ही होता हो। वह स्वैर क्रान्ति है। आज की लड़ाअी में से अगर हम अपना वांछित परिवर्तन अुपस्थित कर सकें, तब तो अुसे नियोजित कह सकते हैं। अन्यथा अपने आप परिवर्तन तो यों भी होने ही वाला है। तो क्या आज की स्थिति बदल कर अुसकी जगह कुछ-न-कुछ नया स्वरूप आ जावे, अितने ही के लिअे यह सारी मारकाट शुरू की गयी? योजना के अनुसार कोअी निश्चित फल प्राप्त करने के लिअे ही तो अितनी भयानक लड़ाअी शुरू की गयी न?

हमारी भूमिका

लेकिन आज यह साफ साफ दिखायी दे रहा है कि ये बडे बडे तगडे कहलाने वाले लोग—चर्चिल, हिटलर, स्टॅलिन, रूजवेल्ट, सभी—युद्ध-परतन्त्र हो गये हैं। अिनके वश में युद्ध नहीं है। ये अुसके अधीन हैं। जिधर वह ले जायगा, अुधर जाने के लिअे ये बाध्य हैं। मैं अितना भयानक युद्ध भी हजम करने के लिअे तैयार हूँ। लेकिन अगर अुसके बाद मैं जैसा परिवर्तन चाहता हूँ वैसा परिवर्तन हो सके तभी। वरना, 'जो होगा सो होगा', कहने की नौबत आयेगी। नवीन रचना के लिअे वर्तमान युद्ध बेकार है। वह अिष्ट या निश्चित दिशा में प्रगति नहीं कर रहा है। अिसके बारे में तो लॉर्ड हॅलिफॅक्स ने जो जवाब दिया था वही यथार्थ है। अुनसे पूछा गया, "अिस युद्ध का अुद्देश्य क्या है?" बेचारे के मुंह से सच बात निकल गयी। अुसने कहा, 'विजय ही अिस लड़ाअी का अुद्देश्य है।' पहले तो 'हम प्रजातन्त्र के लिअे लड़ते हैं' अित्यादि अित्यादि स्वरूप की भाषा थी। लेकिन अब भेद खुल गया। दूसरा क्या अुद्देश्य बताते बेचारे? विजय प्राप्त करने के आनन्द के लिअे या लड़ने के मजे के लिअे ही क्या कभी लड़ाअी की जाती है? लड़ाअी के लिअे अुद्देश्यों की जरूरत होती है। लेकिन यह लड़ाअी शुरू करने के समय अुद्देश्य भले ही रहे हों, परन्तु अब युद्ध चक्र शुरू हो जाने के अुपरान्त अुसे गति देनेवाला हाथ ही अुसमें अुलझ गया है। अब यंत्र अुस हाथ के काबू में नहीं रहा। अैसी लड़ाअी में से अिष्ट निष्पत्ति, निश्चित निष्पत्ति, नियोजित निष्पत्ति होना अशक्य है।

अैसे युद्ध में शामिल क्यों हों?

तब हम अिस में शामिल क्यों हों? फलाना युद्ध में शामिल हो गया, ढिमाका शामिल हो गया, अिसलिअे हमारा भी शामिल होना कहाँ तक अुपयुक्त है? बुद्धिमान लोगों को अिसका विचार करना चाहिअे। सिर्फ हिन्दुस्तान के बुद्धिमानों को नहीं, दुनियाभर के समझदार

लोगों को अिसका विचार करना चाहिअे। 'जिस युद्ध से हमारा अभीष्ट परिणाम नहीं निकल सकता, अैसे अनाडी, स्वैर, जड़मूढ, युद्ध में हम शरीक हों या न हों?' अिसका अुत्तर अेक ही हो सकता है—'शरीक होना मुनासिब नहीं है।'

तटस्थता भी अनुचित

अेक बार शरीक न होने का निश्चय हो जाने के बाद दूसरा सवाल यह होता है कि हमारा तटस्थ प्रेक्षक बन कर रहना कहाँ तक अुचित होगा? हमारे सब भाअी अैसे युद्ध में फँस गये हैं जो कि अब अुनके काबू में नहीं रहा है; अुलटे, अनकी छाती पर सवार हो गया है। 'अुनकी अैसी बेबसी में क्या हमारा युद्ध में शामिल न होना काफी होगा? क्या हमारा तटस्थ साक्षी हो कर रहना अुचित होगा'?—अिस प्रश्न का कोअी भी सयाना आदमी यही अुत्तर देगा कि तटस्थ रह कर देखते रहना अुचित नहीं है।

तीसरा सिद्धान्त

तो अब दो बातें पक्की हो गयीं। तुम कॉलेज के विद्यार्थी हो। आगे चल कर दुनिया तुम्हारे ही हाथों में आनेवाली है। तुम अिस प्रश्न का निष्पक्षपात रीती से विचार करके निर्णय दो। देखो, यह बात तुम्हें कहाँ तक जँचती है। थोडी देर के लिअे यह भूल जाअिये कि यह युद्ध अत्यन्त हिंसक है। लेकिन जो युद्ध मनुष्य के वश में नहीं रहा; बरन मनुष्य ही जिसके अधीन हो गया है; अुस युद्ध में सम्मिलित होना अुचित नहीं है—यह पहला सिद्धान्त है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि जो लोग अिस युद्ध में शरीक हुअे हैं, अुनका विनाश स्पष्टरूप से देखते हुअे भी युद्ध में शामिल न होनेवाले शेष लोगों को तटस्थ रह कर देखते रहना शोभा नहीं देता। ये दो सिद्धान्त निश्चित हुअे। अब आगे क्या हो? अगर चुपचाप नहीं बैठना है, तो क्या किया जाय? अिसका विचार करने पर हम कॉंग्रेसी लोग जो कुछ कर रहे हैं, अुसकी अुपयुक्तता आपके ध्यान में आयेगी। यह युद्ध आरम्भ करके जगत् में विचारों की जो भूमिका आज अुपस्थित की गयी है, अुसकी विरोधी दूसरी विचारसरणि और भूमिका का निर्माण करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। यह तीसरा सिद्धान्त है।

युद्ध-विरोधी विचार का मोर्चा

लोग पूछते हैं, "अजी अिससे क्या होगा? सभी लोग अिस युद्ध में शामिल हो गये हैं। तुम्हारे मुट्ठी भर आदमियों के प्रतीकार करते रहने से क्या होने-जाने वाला है?" मैं कहता हूँ, "तो फिर क्या मेरे पहले दो सिद्धान्त फिजूल गये?" अिससे क्या होगा, सो बाद में देखा जायगा। पहले अपना कर्तव्य निश्चित कीजिये। युद्ध की भूमिका की विरोधी भूमिका बनाना हमारा कर्तव्य साबित होता है न? अिसका क्या कोअी नतीजा नहीं होगा? क्यों नहीं होगा? विरुद्ध भूमिका का क्रियात्मक विचार तो अुपस्थित कीजिये। मन्तव्यों और विचारों की शक्ति पर भरोसा क्यों नहीं है? मैं यह नहीं कहता कि विचारों की क्रियात्मक भूमिका का निर्माण करने से वर्तमान युद्ध बन्द हो जायगा। अैसी कोअी आशा मुझे नहीं है। परन्तु बुद्धिमान मनुष्य अगर विरुद्ध विचारों की भूमिका अपने मन में और जनता में दृढ करेंगे, तो मानसिक शक्ति का अेक फरण्ट (मोर्चा) बन जायगा। और जब युद्ध कुण्ठित होगा या बन्द होगा, अुसके अुपरान्त तुम्हारे विचारों की भूमिका जाग्रत होगी और अुस समय मानव-समाज की नवरचना का कार्य तुम्हारे हाथों में आने का सम्भव रहेगा। अुस दिन के लिअे क्या आज ही से तैयारी नहीं करनी होगी? करनी ही चाहिअे। लेकिन जब हम

वह तैयारी करने लगते हैं, तो सरकार कहती है, "हम तुम्हें रोकेंगे।" लेकिन अैसा मोर्चा बनाना हमें अपना कर्तव्य प्रतीत होता है। अिस मोर्चे की बदौलत युद्ध-समाप्ति के अनन्तर हम संसार को निश्चित मार्ग पर मोड़ सकेंगे। ये मतवाले आज युद्ध में चूर हैं। युद्ध अब अुनके हाथों में नहीं रहा। निश्चित फल पाने की कोअी आशा नहीं रही। अिसलिअे जो समझदार लोग युद्ध से बाहर रहना चाहते हैं, अुन्हें युद्ध-प्रतीकार की भूमिका रचनी चाहिअे। कारण, युदध के बाद अिन लोगों के शरीरों की तरह बुद्धि भी थक जायगी; बल्कि शरीर से बुदधि ज्यादा थकी हुअी होगी। आप अैसी भूमिका रचिये कि अुन्हें सहज ही आपके रास्ते पर आना पड़े। अिसलिअे अिसमें संख्या का सवाल नहीं है। जिनका दिमाग साबित है, वे मार्ग-दर्शन कराने के अधिकारी हैं। नियोजित समाज-रचना करने का कार्य अुन्हींके जिम्मे आनेवाला है। अिसलिअे युदध-विरोधी विचार की सक्रिय भूमिका का निर्माण करना अुन्हींका कर्तव्य है।

लेकिन यह कर्तव्य हमें आराम से कौन करने देगा? विद्यमान राज्यकर्ता और व्यवस्थापक हमारा दण्डन और दमन अवश्य करेंगे। अगर वे अैसा करेंगे तो वह भी अेक अन्याय ही होगा। और अन्याय का प्रतीकार करना तो हमारा परम कर्तव्य है।

युद्धवादियों का सामान्य सूत्र

सारांश, युद्ध किन कारणों से शुरू हुआ अिसका विचार करके अुसके विरुद्ध कारणों का निर्माण करना हमारा कर्तव्य है। हमारा पहला सिद्धान्त यह है कि अन्याय का प्रतीकार करना ही चाहिअे। दूसरा यह कि प्रतीकार की रीति भिन्न होगी, अुसका हथियार अनोखा होगा। संसार को गान्धीजी की यह देन है। अन्याय के प्रतीकार का अुनका तरीका अगर संसार स्वीकार कर लेता, तो यूरोप में आज जो दृश्य दिखायी देता है, वह न दिखायी देता। अुस दिन रिबनट्रॉप ने कहा न, कि अब यूरोप की शान्तता भंग होने का डर ही नहीं है। क्यों? अिसलिअे कि यूरोप की सारी जनता निःशस्त्र बना दी गयी है और अुसके बन्दोबस्त के लिअे जर्मनी के टैंक जहाँ-तहाँ गश्त दे रहे हैं। ये अुन्मत्त लोग अंग्रेजों से ही यह गुरुमन्त्र सीखे हैं। अंग्रेजो ने हिन्दुस्तान के हथियार छीन लिये और वे सोचने लगे कि 'अब हम कुशल हैं। अिनके पास हथियार नहीं हैं और हम शस्त्रास्त्रों से लैस हैं। अब मनमानी हुकूमत करने में हर्ज नहीं है।' रिबनट्रॉप भी यही कहता है। जो अुसका सूत्र है वही और सबका है। दीगर फुटकर भेद भले ही हों; लेकिन सूत्र अेक ही है। शान्ति के लिअे लोगों को निःशस्त्र बना देना और व्यवस्थापकों का नखशिख सुसज्जित हो जाना—यही अिंग्लैंड, रूस, जापान और अमेरिका अिन सब की युक्ति है।

कार्लमार्क्स की प्रमेय-मीमांसा

कार्लमार्क्स ने अेक बड़ा भारी सिदधान्त पेश किया है। अुसे जानने के बाद गान्धीजी के दिये हुअे विचार की महिमा आपके ध्यान में आयगी। कार्लमार्क्स का नाम तो आप जानते ही हैं। अुसकी किताबें भी आपने पढ़ी होंगी।

अुसका यह सिद्धान्त है कि जब कोअी प्रमेय संसार में प्रसृत होता है, तो अुससे कुछ फायदे होते हैं और कुछ नुकसान भी होता है। अेकतन्त्र राज्यपद्धति, पूंजीवाद आदि किसी भी पद्धति को ले लीजिये। जबतक लाभ की मात्रा अधिक और हानि की मात्रा कम होती है, तभी तक वह प्रमेय टिकता है। लेकिन जब फायदे की बनिस्बत नुकसान ही ज्यादा होने लगता है, तो अेक

तीसरा तद्विरोधी प्रमेय संसार में प्रवृत्त होता है और अुस पुराने प्रमेय पर आक्रमण करता है। अिस आक्रमण में से अेक तीसरा ही तत्त्व अुदय होता है, जिसमें पहले के दोनों तत्त्वों के गुण ही शेष रह जाते हैं। अुदाहरण के लिअे वर्ण-व्यवस्था का सिद्धान्त ले लीजिये। समाज में मनुष्यों के भिन्न भिन्न समूहों की कार्य-क्षमता भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। अिन समूहों को अुनकी विशेष भूमिका के अनुरूप काम सौंपा जाता है। अिस व्यवस्था को वर्ण-व्यवस्था कहते हैं। अिस व्यवस्था में गुण और दोष दोनों हैं। भिन्न भिन्न शक्तियों का भिन्न भिन्न संगठन करना अिसका गुण है और अुच्च-नीच-भाव अेवं परस्पर-विरोध अिसके दोष हैं। परन्तु जब तक गुणों का अंश अधिक रहेगा, तब तक यह व्यवस्था बनी रहेगी। लेकिन जब अुच्च-नीच-भाव और पारस्परिक हित-विरोध जैसे दोष प्रकट हो कर जोर पकड़ने लगते हैं, तो अुनके खिलाफ 'अभेद', 'अभेद', 'अभेद', 'साम्य', 'साम्य''साम्य', का अेक ही तत्त्व वेग के साथ अग्रसर होता है। अिन दोनों का संघर्ष होगा और अुस संघर्ष में से अेक अैसा तीसरा तत्त्व अुदय होगा जिसमें वर्ण-व्यवस्था और अभेदवाद के भी गुण होंगे, ठीक अुसी तरह जिस तरह कि हम कलमें बांधते हैं। नीबू पर मुसंबी की कलम बांधते हैं,— जिससे खट-मिट्ठा संतरा पैदा होता है; जिसमें नीबू और मुसंबी दोनों के गुण होते हैं। लेकिन यह सामाजिक क्रिया कोअी योजना-पूर्वक नहीं करता। वह अपने आप होती रहती है। अेक तत्त्व के अन्दर छिपे हुअे दोष प्रकट होने लगते हैं और अुसीकी कोख से तद्विरोधी दूसरा तत्त्व पैदा होता है। जैसा कि बुद्ध ने कहा है—'तदुद्वाय तमेव खादति'। ('अुसमें से पैदा हो कर अुसी को खाता है'।) जिस प्रकार यह तीसरा तत्त्व अपने आप तैयार होता है, अुसी प्रकार प्रतीकार का यह नया तरीका मार्क्स के सिद्धान्तानुसार अितिहास में से ही पैदा हुआ है। गान्धी केवल निमित्तमात्र हुआ है।

वितर्कवाद की प्रक्रिया

आज तक की यह प्रणाली थी कि सशस्त्रों को परास्त करके हम खुद विशेष संगठित और विशेष सुसज्जित रहें। अुसमें से अब दूसरी यह प्रणाली अुत्पन्न हुअी कि सामनेवाले को पूरी तरह निःशस्त्र बना कर हम खुद सशस्त्र रहें। अब अुसीमें से अिन शस्त्रहीन लोगों को प्रतीकार की यह नयी युक्ति सूझी है। अिस सूझ का निमित्त गांधी है। वह न होता तो दूसरा कोअी हुआ होता। पैंतीस-चालीस करोड़ लोग अगर हमेशा के लिअे गुलाम ही रहे, तो वे मनुष्य ही नहीं होंगे। और अगर वे मनुष्य हों, तो अुनके लिअे स्वतन्त्र होने का रास्ता होना ही चाहिअे। वह रास्ता अुन्हें सूझता है, अिसीमें अुनकी मानवता है। अिस सिद्धान्त को 'वितर्कवाद' कहते हैं। सामान्य तर्क से यह विशेष और भिन्न है, अिसलिअे अुसे 'वितर्क' यह पारिभाषिक संज्ञा दी गयी है। सबसे पहले पूर्ववर्ती तर्क का विरोधी तर्क अुत्पन्न होता है; फिर अुन दोनों का समन्वय हो कर अुन दोनों में से तीसरा तर्क अुत्पन्न होता है—यह वितर्क की प्रक्रिया है। यह 'वैतर्किक सरणि' मैंने संक्षेप में आपके सामने अुपस्थित की है।

मध्ययुग की अुपज

समूचे राष्ट्रों के निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया मध्ययुग के लोगों की खोपडी की अुपज है। जिन लोगों ने समूचे राष्ट्र को निःशस्त्र बनाया और अूपर से अुसकी रक्षा की जिम्मेवारी का स्वीकार किया, अुन्होंने अेक बड़ा ही खतरनाक प्रयोग किया है। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को निःशस्त्र

कर दिया। लेकिन आज अिंग्लैंड के लोग जरूर महसूस कर रहे होंगे कि हमने यह कोअी अक्ल का काम नहीं किया। अिसीलिअे अब कहने लगे हैं कि "आओ, लड़ाअी में शामिल हो, हम तुम्हें हथियार चलाना सिखाते हैं।"

हमारा अनपेक्षित लाभ

लेकिन अुनका यह अुत्पाती प्रयोग अेक दृष्टि से बड़ा लाभकारी साबित हुआ। क्योंकि निःशस्त्र होने के कारण ही हम प्रतीकार के अिस अनोखे शस्त्र का आविष्कार कर सके। गांधी तो केवल अुसे व्यक्त करनेवाला मुख है। गांधी के रूप में हिन्दुस्तान की सारी प्रजा बोलती है। बीस वर्ष तक अुन्होंने अिस नये शस्त्र की महिमा लोगों पर प्रकट की। तलवार की शक्ति भी कोअी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। तलवार भी आखिर लोहा ही तो है। वह तो खदान में पड़ा ही है। अुसे कारीगरी से अुपयोगी आकार दे दिया गया, तो भी आखिर लोहा ही है। घड़ा और मिट्टी क्या अलग अलग हैं? शस्त्र जड़ ही है। शस्त्र के पीछे चेतन शक्ति है। अिसलिअे अुसमें बल आ जाता है। अगर चेतन शक्ति न हो, तो वह तलवार या बन्दूक अपने आप नहीं चलती। तलवार या बन्दूक की शक्ति चलानेवाले पर, धारण करनेवाले पर, निर्भर करती है। पहले यह बात समझ में नहीं आती थी। परन्तु परिस्थिति की प्रेरणा से गांधी के ध्यान में यह बात आ गयी कि शस्त्र की शक्ति का आधार चैतन्य है।

अेक मजेदार किस्सा

नहीं तो हथियार होते हुअे भी कैसी फजीहत होती है, अिसका अेक किस्सा हमारे अेक मित्र सुनाया करते हैं। अेक सज्जन के घर में चोर घुस गये। चोरों को देखते ही अुसके होश-हवास अुड़ गये और वह चिल्लाने लगा, "अरे मेरी बम्बूक! बम्बूक! बम्बूक!!" अुससे 'बन्दूक' शब्द भी नहीं कहते बना। बन्दूक अुसके होती भी किस कामकी। हाँ, अगर चोर अपनी बन्दूक लाना भूल गये हों, तो अुन्हें अलबत्ते अुसका अुपयोग हो सकता था।

भावार्थ यह कि शस्त्र स्वतंत्र रीति से काम नहीं कर सकते। अगर हम निःशस्त्र न होते तो यह पृथक्करण हमारी समझ में न आता। परिस्थिति-निरपेक्ष कल्पना सहसा सूझती भी नहीं। अृषियों को भी विचार और स्फूर्ति तथा प्रेरणा परिस्थिति में से ही मिलती है। गांधी को यह जो स्फूर्ति हुअी अुसमें अुनकी बुद्धि की कुछ विशेषता जरूर है; परन्तु अुसका वास्तविक कारण भी हिन्दुस्तान की परिस्थिति ही है।

परिणाम-वादियों से अनुरोध

अिस शस्त्र का भला-बुरा प्रयोग हमने बीस साल तक किया और यह अनुभव हुआ कि निःशस्त्र होते हुअे भी अिस युक्ति की बदौलत हम लड़ सकते हैं। लेकिन लोग पूछते हैं, "अिसका क्या परिणाम निकला?" मैं कहता हूँ, "अरे परिणाम वादियों, जरा सब्र तो करो। तुमने दस हजार वर्ष तक हिंसा के प्रयोग देखे हैं। क्या अब भी हिंसा के प्रयोग होना बाकी है? अितने वर्षों के बाद भी फिर नित्य शस्त्र चलाने ही पड़ते हैं न?" छुटपन में हम रटा करते थे। 'चटनीवाला रातदिन पीस-पीस पीसता है।' अुसी तरह ये तलवरिये रातदिन तलवार घिस-घिस घिसते आये हैं। अिन लोगों को अितना समय दिया, अितना मौका दिया। हमें तो बीस ही साल हुअे। हमें भी तो प्रयोग करने के लिअे मौका दोगे? यह भी तो देखो कि हमने बीस साल में कितनी योग्यता प्राप्त की।

नागपुर जेल में नित्य अिसकी चर्चा हुआ करती थी। वहाँ जमा हुअे सब 'सत्याग्रही' ही

थे (!) 'मिथ्यावादी' कोओी नहीं थे (!) लेकिन हम सोचते रहते थे कि अैसे दिखावटी साधनों से जो प्रयोग किया या प्रयोग का स्वाँग रचा, अुसका भी अगर अितना असर हो सकता है, तो असली चीज प्रवृत्त होने पर कितना प्रचण्ड कार्य होगा ?

हमारी सफलता का सबूत

दस हजार साल तक हिंसा के प्रयोग करते रहने के बाद भी अुसकी यह दशा है और हमारी टूटी-फूटी अहिंसा का प्रयोग केवल बीस ही साल का है, तो भी हम अितना प्रतीकार कर सके । तो बतलाअिये क्या हम आगे के लिअे आशा नहीं कर सकते ? कम-से-कम अिस शंका की तो गुंजाअिश है कि शायद हिंसा असफल साबित हो और अहिंसा के मार्ग से ही बहुत-सा कार्य हो जाय। यह शंका भी अगर तुम्हारे दिल में पैदा हो गयी, तो मैं समझूंगा कि मेरे व्याख्यान से बहुत बड़ा काम हो गया ।

हिंसा की असफलता

अगर यह विचार यूरोप के गले अुतर जाता, तो आज की परिस्थिति में हिटलर को चैन नहीं पड़ता। वह देश के बाद देश फतह करता चला गया। अुधर रूस जैसे प्रतापी राष्ट्र से अुलझ गया। अैसी हालत में भी अिंग्लैंड को जर्मनी पर धावा बोल देने की हिम्मत नहीं हुअी। बहुतों को अिस बात का आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि जर्मनी पर हमला करने के लिअे अिससे अच्छा मोका और कौन-सा हो सकता था ? लेकिन अिंग्लैंड अेक कोने में चोरी-चुपके से लीबिया में लड़ने लगा। सारांश, अिंग्लैंड सरीखे बलवान्, सामर्थ्यशाली और सम्पन्न राष्ट्र को भी प्रतीकार करना अितना मुश्किल मालूम होता है, तो दूसरे राष्ट्र क्या करें ? कर ही क्या सकते हैं ? चुपचाप बैठें और टेक के आते ही अुसके सामने सिर झुका दें। और कुछ सूझता ही नहीं।

प्रतीकार का व्रत

लेकिन गांधीजी ने हमें यह नया हथियार दिया है। अगर प्रतीकार का व्रत लेना है, तो अिस हथियार के बल पर ही लिया जा सकता है। तलवार के बल पर अगर प्रतीकार की शपथ ली जाय; तो जब तक तलवार हाथ में है, तभी तक आप अुस शपथ को निबाह सकेंगे। तलवार हाथ से गिरते ही व्रत खुल जायगा, अुसका पारण हो जायगा, अेकादशी समाप्त हो कर द्वादशी शुरू हो जायगी। अन्याय के प्रतीकार की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिअे अहिंसा का ही आश्रय जरूरी है। जो अहिंसक प्रतीकार का व्रत लेगा वह पुरुष या वह स्त्री जहाँ खडी हो वहीं से प्रतीकार शुरू कर सकती है ।

महाराष्ट्र की तामसी श्रद्धा

अिसलिअे आप अिस सारी परिस्थिति का शान्तिपूर्वक विचार कीजिये। कहा जाता है कि महाराष्ट के लोग बुद्धिवादी और तार्किक हैं। महाराष्ट्र पर लगाया जानेवाला यह बुद्धिवाद का आरोप अगर सही होता, तो मुझे आनन्द हुआ होता। लेकिन मुझे दुःख है कि यह आरोप वास्तविक नहीं है। महाराष्ट्र अेक तरह की तामसी श्रद्धा से प्रेरित हुआ है। हम समझते हैं कि हमारा वह पुराना मराठी बाना और नाना फडनवीस की परम्परा हमारे खून में है। भाअी मेरे, अब वह नाना फडनवीस की पुरानी विद्या और परम्परा अिस बदली हुअी परिस्थिति और समय में बिलकुल निरुपयोगी और बेकार साबित होगी। ये लोग कहते हैं कि नाना बड़ा बुद्धिमान था और अिसलिअे अुसने बडी सिफत से राज्य की रक्षा की। लेकिन नाना की बुद्धिमानी अिस बात में थी कि वह भाँप गया था कि अंग्रेजों का आसन हिन्दुस्तान में जमने वाला है। ये लोग कहते हैं कि अहिंसक प्रक्रिया हमारे खून में नहीं है,

हमारी विचारधारा में नहीं है। लेकिन ज्ञानदेव, तुकाराम आदि सन्तों ने जिस प्रक्रिया को गौरवान्वित किया, वह हमारे रक्त में नहीं है, यह मानने के लिअे में तैयार नहीं हूँ। लेकिन अगर अैसा ही हो, तो समझ लीजिये कि आप हमेशा के लिअे पिछड़ जायँगे। अब फिर-से आप कभी समाज का नेतृत्व नहीं कर सकेंगे। अुस पेशवाओ और नाना फडनवीस की परम्परा के भरोसे बैठोगे, तो बैठे ही रहोगे; अुठ नहीं सकोगे।

दुर्बलों को भी बलवान् बनानेवाला अस्त्र

जिस शस्त्र के आधार पर दुर्बल भी बलवान बन सकता है, अुसे चलाने की विद्या अगर तुम खुद सीखोगे, दूसरों को सिखाओगे, तो युद्ध के बाद शरीर, बुद्धि और प्राण से थके हुअे लोगों का नेतृत्व सहज ही तुम्हें प्राप्त होगा।

हिन्दी जगत् से विनय

देशी हिसाब से तारीख चौदह नवम्बर अुन्नीस सो अिकतालीस को मेरा जन्म-दिन था। अपने रिवाज के अनुसार अुस दिन मैंने व्रत (अुपवास) रक्खा था। वह दिन साबरमती आश्रम की पवित्र भूमि में व्यतीत करने का सौभाग्य मुझे मिला था। जन्म-गाँठ का दिन अन्तर्मुख होने में और आत्मशुद्धि साधने में काम आ सकता है। अगले दिन मेरे पुराने विद्यार्थी और आज के प्रिय मित्र प्राध्यापक पाण्डुरंग देशपाण्डे मुझसे मिलने आये थे। साहित्यिक बातें चलीं। अिसी सिलसिले में अुन्होने कहा, "काका साहब, आप जब गुजराती मे लिखते हैं, तब अुसमें अेक प्रकार का अनुनय पाया जाता है। किन्तु जब आप मराठी या हिन्दी में लिखते हैं, तब अुसमें आप डॉग्मॅटिक (आग्रही) बन जाते हैं। अिसका आपकी शैली पर असर हो जाता है।" अुनकी बात सही थी। गले अुतरते देर न लगी।

व्रत के दिन मैंने अिसी पर विचार किया। अुसका कारण भी मुझे मिल गया। यह में कभी भूल नहीं सकता कि महाराष्ट्रियों ने गुजरात पर राज्य किया, यह बात अच्छी नहीं हुअी गुजरात के प्रति यह जो अन्याय हुआ, अुसका परिमार्जन करना अेक महाराष्ट्री की हैसियत से में अपना कर्तव्य मानता आया हूँ। यह परिमार्जन हमने किया है, अैसा में नही मानता। अिसीसे मेरी वाणी तथा लेखनी में अनुनय है। मराठी लिखते वक्त भावना कुछ अलग तरह की रहती है। महाराष्ट्र की कमी महाराष्ट्र के सामने रखने में ही मेरी अुत्कट महाराष्ट्र-भक्ति काम आती है। यही कारण है कि मै महाराष्ट्रियों से अनुनय नहीं कर सका। अिसमें शुद्ध महाराष्ट्र-भक्ति तो है सही; किन्तु भक्त होने का अभिमान भी है। यही कारण है कि मेरी भक्ति कलुषित होती है और मेरी वाणी निस्तेज बन जाती है।

हिन्दी के बारे में अैसा ही हुआ है। मैंने अपने हृदय की पूरी अुत्कटता से हिन्दी की सेवा शुरू की। में अिससे पागल-सा बन गया। अन्यथा पिछले कुछ वर्षों का अपना अखण्ड भारत-भ्रमण में न कर सकता। किन्तु मुझमें यह

अभिमान आ गया कि हिन्दी का मैं अेकनिष्ठ सेवक हूँ और सम्मेलन का हितचिंतक। अिसी दावे से मैं लिखने लगा। मेरी निष्ठा शुद्ध है। मेरी हितचिंता भी सच्ची है। किन्तु अिसका अभिमान क्या करना था? यहाँ पर भी मेरी भक्ति मेरे अभिमान से कलुषित हुअी।

मैंने 'सर्वोदय' के नवम्बर के अंक में जो लिखा था, वह चुनौती नहीं थी। वैसा अभिमान मुझमें कभी नहीं था। आज भी नहीं है। किन्तु सेवा के अभिमान से कलुषित सच्ची हृदय-वेदना अुसमें थी। नम्र सेवक जब गम्भीर परिस्थिति में अपने मालिक को चेतावनी देता है, तब वह सेवा के बल पर अपनी नम्रता अेक क्षण के लिअे छोड़ देता है और तीखे शब्दों में भी अपनी बात अपने मालिक के सामने रख देता है। मैंने मान लिया था कि "मालिक मेरी शुभ कामना तो जानता ही है। मेरी बात पर ध्यान अवश्य देगा। मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से कब का निकल गया हूँ। निकलने पर भी सम्मेलन की सेवा लगातार करता आया हूँ। अिससे मेरी सद्बुद्धि का सबूत मिल ही जायगा। और सम्मेलन हिन्दी के हित के ख्याल से मेरी बात मान जायगा। कम-से-कम अुस दिशा में विचार तो जरूर करेगा"।

किन्तु परिणाम अुलटा ही हुआ। लोगों ने मेरी चेतावनी को चुनौती माना। श्रद्धेय टण्डनजी भी मुझ पर बिगड़ गये और मेरे निष्ठावान सेवक होने के बारे में भी अुनको सन्देह होने लगा। सम्मेलन में मुझे कुछ भी स्थान न हो, तो अुसका मुझे रंज नहीं होगा। किन्तु हिन्दी-जगत् के हृदय में मुझे अगर स्थान न मिले, अथवा मिला हुआ स्थान मैं अपने ही दोषों के कारण खो बैठूं, तो वह मेरे लिअे असह्य होगा।

जो दोष नजर आया अुसे दूर करना ही चाहिअे, अैसा सोच कर मैंने पिछले ही अंक में यह सब कुछ लिखना चाहा था। किन्तु काठियावाड़ के राष्ट्रभाषा-प्रचार-भ्रमण में मुझे समय ही न मिला। और यह भी खयाल हुआ कि यह मुहूर्त अच्छा नहीं है। सम्मेलन के चुनाव में सफल होने के लिअे यह नाटक रचा जा रहा है, अैसा भी अुसका अर्थ शायद लिया जाता। अिसलिअे जनवरी में ही यह सब प्रकट करना ठीक होगा, अैसा मैंने स्थिर किया।

किन्तु अैसा करने में (अुक्त टिप्पणी लिखने में) मैंने महात्माजी और श्री राजेन्द्र बाबू के साथ अन्याय किया। अुनका प्रस्ताव और अुनकी नीति (पॉलिसी) की ओर हिन्दी जगत् अभिमानयुक्त लेख की दृष्टि से देखने लगा। गांधीजी ने या राजेन्द्रबाबू ने अिसकी ओर मेरा ध्यान कभी आकर्षित नहीं किया, यह अुनकी अुदारता है।

सामर्थ्य या सत्ता का अभिमान मुझमें नहीं है। मैं महात्माजी का आदमी हूँ। अिसलिअे तो मैं हमेशा नम्र बनता आया हूँ। किन्तु मुझमें सेवा का अभिमान जरूर आगया।

अिसलिअे मैंने नवम्बर के 'सर्वोदय' में जो कुछ लिखा है, वह शुद्ध हृदय से लिखा होते हुअे भी, मैं अुसे वापस लेता हूँ और हिन्दी जगत् से क्षमा माँगता हूँ।

वर्धा नम्र बना हुआ हिन्दी का सेवक
२४ : १२ : '४१ काका कालेलकर

सर्वोदय की दृष्टि

गीता-देवी का मन्दिर

श्री प्रेमल महाराज नाम के अेक सज्जन से गांधीजी ने यह समाचार पाया कि बडौदा में अेक नया मन्दिर बना है और अुसमें गीताजी की अेक देवी के रूप में प्रतिष्ठा की गयी है। गीताजी की मूर्ति की जो तसवीर अखबारों में छपी थी, वह भी अुन्होंने गांधीजी को भेज दी। अुसके साथ अिस आशय का पत्र लिखा: "क्या गीता, भागवत, रामायण आदि धर्म-ग्रन्थों की पाषाण या धातु की मूर्तियाँ बना कर अुनकी स्थापना करना अुचित है? यह समझ में आ सकता है कि गीतामन्दिर में गीता के विषय में अुत्तम अुत्तम ग्रन्थों का पुस्तकालय हो, जगह जगह से प्राप्त गीता की प्राचीन प्रतियों का संग्रह हो और गीता के अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध हो। अिससे कुछ आगे बढ़ कर यह भी कल्पना की जा सकती है कि अुसकी दीवारों पर गीता के अध्याय या अुद्धरण अंकित किये गये हों। परन्तु धर्म-ग्रन्थों की मूर्तियों के रूप में प्रतिष्ठा कर के आरती, पूजा, नैवेद्य आदि का आडम्बर रचना दोषरूप ही मालूम होता है।"

प्रेमल महाराज का यह अनुरोध है कि अगर अुनका यह मत ठीक हो, तो गांधीजी अिस प्रवृत्ति का निषेध करें।

अिस समय गांधीजी देश के अन्य महत्त्व के विषयों पर ही अपनी शक्ति और ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं। तो भी अुनपर काम का बोझ अितना भारी है कि दूसरे प्रश्नों का अुत्तर— जो अपने अपने क्षेत्र में बहुत ही महत्त्व के भले ही हों; लेकिन व्यापक दृष्टि से गौण हैं— अुनके मन्त्रियों को ही देने पडते हैं। अिसलिअे अिस पत्र के अुत्तर में मैंने लिखा, "आपकी बात बिलकुल सही है। लेकिन गांधीजी अुसे रोकने में समर्थ नहीं होंगे।" अुत्तर देने के बाद मौका पा कर मैंने गांधीजी को पत्र का आशय और अपना अुत्तर सुना दिया था।

श्री प्रेमल महाराज को अितने से सन्तोष नहीं हुआ; अुन्होंने लिखा, "यद्यपि गांधीजी अिस बात को रोकने में समर्थ न हों, तो भी वह अुसके बारे में वक्तव्य निकालने में समर्थ तो हैं ही।" और मुझसे अुन्होंने आग्रह किया कि अगर गांधीजी वक्तव्य न निकाल सकें, तो मैं ही अपने विचार व्यक्त करूं।

अूपर बतलाये हुअे कारण से गांधीजी के लिअे हरअेक विषय पर वक्तव्य निकालना सम्भव नहीं है। मुझे अपने विचार प्रकट करने में आपत्ति नहीं है।

किसी भी धर्म की विडम्बना अुस धर्म के विरोधी जितनी करते हैं, अुतनी ही, बाज दफा, अुसके अनुयायियों द्वारा भी हो जाती है। गीता की अिसी तरह की विडम्बना कुछ वर्षों से हिन्दू समाज में शुरू हो गयी है।

महर्षि व्यास ने अपने तात्त्विक सिद्धान्त महाभारत के अेक स्वतन्त्र प्रकरण में संकलित करने का विचार किया। महाभारत युद्ध के आरम्भ में ही श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद के बहाने अुसकी रचना करना अुन्हें अुपयुक्त मालूम हुआ। गणितज्ञ पण्डितों ने महाभारत में लिखित ग्रह और नक्षत्रों की स्थिति पर से यह अनुमान निकाला कि कौरव-पाण्डवों का युद्ध किसी वर्ष की मार्गशीर्ष शुक्ल अेकादशी के दिन शुरू हुआ होगा। अिसका यह अर्थ हुआ कि अिस राष्ट्रविनाशक युद्ध की वर्षगाँठ मार्गशीर्ष शुक्ल अेकादशी है।

परन्तु कोअी कारण नहीं कि गीता के लेखन की तिथि भी वही मानी जाय। क्योंकि कृष्णार्जुन-संवाद तो केवल अेक निमित्त है और काल्पनिक है।

समझ लीजिये कि अुसमें निरूपित तत्त्वज्ञान स्वयं श्रीकृष्ण का ही तत्त्वज्ञान है। तो जिस तरह गान्धीजयन्ती को ही खादीजयन्ती मान लिया गया है, अुस तरह श्रीकृष्णजयन्ती को ही गीताजयन्ती मानना अुचित है। श्रीकृष्णजयन्ती का अेक परम्परागत प्रसिद्ध दिन है ही। अिसलिअे अब दूसरा दिन नियुक्त करने की जरूरत नहीं है।

लेकिन अेक कल्पना में से दूसरी कल्पना का निर्माण करना और अुसमें से फिर तीसरी का और अुनके आधार पर कल्पना की अेक आलीशान अिमारत खडी कर देना—यह अुद्योग सिर्फ शेखचिल्ली ही नहीं करते। श्रद्धा, पाण्डित्य, और कवित्व के अयुक्त संकर का भी यही नतीजा होता है। अिस न्याय से मार्गशीर्ष शुद्ध अेकादशी के दिन गीता-जयन्ती मनाने की अेक नयी रूढ़ि प्रचलित होने लगी है।

कल्पना की यह अेक शाखा है।

अिसी प्रकार कल्पना की अेक दूसरी शाखा भी निकली है। अनेक साधकों को गीता से बहुत प्रेरणा मिली है। अिसलिअे गीता के प्रति गहरा कृतज्ञता-भाव अुत्पन्न होना स्वाभाविक है। किसीने अुसे माँ की अुपमा दी, किसीने अुपमा को रूपक में परिणत कर दिया और अुस तरह का गीताप्रशस्ति का श्लोक रचा। कल्पना की लता फैलती ही चली। अठारह अध्यायों के अठारह हाथ हो गये। चित्रकारकवि को अुस तरह का चित्र बनाने की कल्पना सूझी और धनिक श्रद्धालुओं या अुनके गुरु को अुस तरह की मूर्ति बनवाने की अिच्छा हुअी। जब मूर्ति ही बनवानी है, तो अुसे श्रद्धापूर्वक स्थापित करना अनिवार्य ही है। अिस तरह मन्दिर बन गया। अब देवी के रूप में मूर्ति प्रतिष्ठित हो जाने पर अुसकी आरती, नैवेद्य, आदि षोडशोपचार पूजा करना अुतना ही क्रमप्राप्त है जितना कि सुअी के पीछे पीछे धागे का जाना।

अिस तरह जो विषय बुद्धि से समझने और प्रयत्न से सिद्ध करने का था, वह अेक पत्थर की मूर्ति बन कर नैवेद्य और प्रसाद के रूप में परिणत हो गया।

अिसे मैं धर्म का विडम्बन ही मानता हूँ। मूर्तिपूजा में जो कुछ तथ्यांश है, वह भी अिससे नष्ट हो जाता है। अपनी कृत्रिम महिमा के बोझ के नीचे स्वयं बेचारी गीता ही पिस कर चूरचूर हो जाती है। ज्ञान की अुपासना के बदले अन्ध-श्रद्धा, भ्रम और अबुद्धि ही पनपते हैं। लेकिन जब तक मनुष्य में धन का सदुपयोग करने की अक्ल नहीं है और धन की समृद्धि तो है, तब तक आश्चर्य नहीं कि खान से निकला हुआ पदार्थ खनिज द्रव्य में ही जा कर मिल जाय। याने सोना पत्थर में रूपान्तरित हो जाय, पत्थर पर चढ़ाया जाय और पत्थर के रूप में ही पूजा जाय।

१०:११:'४१ कि० घ० म०

रचनात्मक कार्यक्रम

अिस अंक से मैंने जो लेखमाला शुरू की है, अुसे शुरू करते समय मुझे पता नहीं था कि गान्धीजी ही स्वयम् अिस विषय पर अेक निबंध लिखने जा रहे हैं। मेरा अिरादा रचनात्मक कार्यक्रम के विविध अुपांगों को दूसरी तरह से विशद करने का है। लेकिन फिर भी मुमकिन है कि गान्धीजी के विचारों का ही अनुवाद मेरे लेखों में हो जाय। क्योंकि आखिर अिन विचारों का मूलस्रोत वही तो हैं न? जब पाठकों को मेरे लेखों में अुन्हींके विचारों की पुनरुक्ति-सी मालूम हो, तो वे कृपया अिस बात का खयाल रक्खें।

२६:११:'४१ कि० घ० म०

अंक बनाम अक्षर

"अेक श्रद्धास्पद 'श्रद्धालु' पाठक लिखते हैं,

"श्री संपादक 'सर्वोदय,'

आजकल कअी जगह पुस्तकों के पन्नों की संख्या, तारीख वगैरा, अंकों में लिखने के बदले अक्षरों में लिखने का नया फैशन चल पड़ा है। मैं देखता हूँ कि आपने भी अिस नये फैशन का अनुसरण किया है। पाठक और लेखक की दृष्टि से आंकड़े पढ़ने और लिखने में ज्यादा सुविधा है। छपाअी में भी वे कुछ कम जगह लेते हैं। परन्तु कअी तज्ज्ञों का यह मत है कि फैशन की सुन्दरता का रहस्य यही है कि अुसका सुखसुविधा से कोअी सम्बन्ध नहीं होता; अुसे केवल नवीनता से ही मतलब होता है। 'सर्वोदय की दृष्टि' से अिसका रहस्य समझाने की महरबानी करें और यह बतलावें कि, मसलन्, मैं अिस पत्र की तारीख '२६:१२:१९४१' लिखूं? या 'तारीख छब्बीस, महीना बारहवाँ, सन अुन्नीस सौ अिकतालीस-अीसवी,' लिखूं?

आपका
श्रद्धालु पाठक

'सर्वोदय' के संपादक भी 'श्रद्धालु पाठक' महोदय से सहमत हैं। लेकिन अुन्होंने अिस नये फैशन का अनुसरण जानबूझ कर किया है। कारण यह है कि 'सर्वोदय' के अहिन्दी-प्रान्तीय पाठक जब अंक पढ़ने लगते हैं, तो अटक जाते हैं और अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाओं के अनुसार अुनका अुच्चारण कर लेते हैं। अिसलिअे यह अुपयोगी समझा गया कि जहां संभव हो, या बहुत असुविधाजनक न हो, वहां 'सर्वोदय' में अंकों की जगह अक्षर दिये जायँ। आज हमारे कअी पाठक 'अुन्नीस' की जगह 'गुन्नीस,' अुगणीस' या 'अेकूणवीस' पढ़ लेते हैं। अुनकी दृष्टि से 'सर्वोदय' ने अिस नये रिवाज का अनुसरण किया है। हम 'श्रद्धालु पाठक' को विश्वास दिलाते हैं कि यह तजवीज निरपवाद या स्थायी नहीं है।

२७:१२:'४१ दा० ध०

खादी-कार्यकर्ताओं की कसौटी का समय

रचनात्मक कार्यक्रम विशद करने के लिअे गान्धीजी ने हाल ही में जो पुस्तिका लिखी है, अुसमें धनुष-तकली की सिफारिश करते हुअे अुन्होंने यह संकेत किया है कि शायद अिस लड़ाअी के दौरान में हमें कपड़ों के दुर्भिक्ष का सामना करना पड़े। श्री काका साहब भी आजकल कहा करते हैं कि कदाचित् अैसी नौबत आ जाय कि लोगों को या तो खादी पहननी पड़ेगी, या फिर दिगम्बर रहना पड़ेगा।

अुस दिन श्री विनोबा ने बातचीत के सिलसिले में अिस सम्भावना की तरफ गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिलाने की आवश्यकता बतलायी। खादी-निष्ठों का यह दावा और शिकायत रही है कि खादी सारे हिन्दुस्तान की कपड़े की आवश्यकता पूरी कर सकती है; लेकिन लोग अुसे हृदय से अपनाते नहीं हैं। अब वह दिन आने का संभव है जब कि लोग लाचार हो कर खादी की तरफ मुड़ेंगे। खादी-कार्यकर्ताओं के लिअे वह कसौटी की घड़ी होगी। लेकिन खादीवृत्ति के प्रचार और खादी-कार्य की तरक्की की दृष्टि से वह अेक अपूर्व सुयोग भी होगा। लोग जब खादी मांगने लगेंगे, तो क्या हम यह कहेंगे कि हम आपकी माँग पूरी करने में असमर्थ हैं? या अुन्हें कोअी निश्चित रास्ता दिखाने के लिअे अुनके सामने निश्चित योजना पेश करेंगे? यदि अिस समय हम अिस यदृच्छा-प्राप्त अवसर को चूकने देंगे, तो शान्ति के साधारण समय में हमारी खादी की बातों पर कोअी ध्यान नहीं देगा। लोग समझेंगे कि जब अैन मौका आता है, तब ये लोग हिम्मत हार जाते हैं। अिस दृष्टि से खादी-वृत्ति का भविष्य संकटकाल में जनता की सहायता करने की हमारी क्षमता और तत्परता पर निर्भर है। खादी कार्यकर्ताओं के लिअे यह परीक्षा का मुहूर्त है। श्री विनोबा की अिस गम्भीर चेतावनी की तरफ हम खादी कार्यकर्ताओं का ध्यान दिलाते हैं।

३०:१२:'४१ दा० ध०

सार्वत्रिक अविश्वास का प्रतिबिम्ब

तारीख छब्बीस दिसंबर को अखिल भारतीय मुस्लिम विद्यार्थी परिषद में सभापति के नाते भाषण देते हुअे श्री मुहम्मद अली जीना साहब ने कहा, "Muslims have no friends. They are surrounded by opponents in all directions" (मुसलमानों का कोअी दोस्त नहीं है। वे चारों तरफ से दुश्मनों से घिरे हुअे हैं।)

यह हकीकत नहीं है; जीना साहब की धारणा मात्र है। यह धारणा पाकिस्तानी मनोवृत्ति का सीधा परिणाम है। श्री जीना साहब ने यह मान लिया है—और बरबस मान लिया है—कि हिन्दूओं के साथ रहने से अुनका मज़हब, तहजीब और अदब सलामत नहीं रह सकते; अिसलिअे अुनको अपना अलग राज्य बना लेना चाहिअे। अुसे वे 'पाकिस्तान' कहते हैं। जिस हिस्से में मुसलमान कसरत से रहते हैं, वह 'पाक' है। पाकिस्तान-वाद की तह में यह भावना छिपी हुअी है कि भिन्नधर्मीय लोग अेक ही देश में समान नागरिकों के नाते नहीं रह सकते। अर्थात धर्म मनुष्यों को अेक-दूसरों के साथ रहने के नाकाबिल बना देता है। यह सिद्धान्त भयावह ही नहीं; अमानुष है। अिसीलिअे पाकिस्तानवाद केवल राष्ट्रीय दृष्टि से ही नहीं, अपितु यथार्थ धार्मिक दृष्टि से भी अनर्थावह है।

यही व्यावर्तक भावना दूसरे सम्प्रदायों में प्रति-व्यावर्तक भावनाअें पैदा करती है, जिनका नतीजा 'पुण्यभूमि' और 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' जैसे अुद्घोष हैं।

जीना साहब कहते हैं कि गांधीजी अपने विधायक कार्यक्रम की तेरह बातों में चौदहवाँ पाकिस्तान और जोड़ दें, तो हिन्दू-मुसलमानों का समझौता बहुत ही आसान हो जाय। बात बड़े मजे की है। जीना साहब कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान अगर अेक–दूसरे से अलग हो जायँ और अपनी अपनी अलग खिचड़ी पकाने लगें, तो अुनका टण्टा मिट जायगा। जब अेक-दूसरे के साथ ही नहीं रहेंगे, तो टण्टे का प्रसंग ही कहाँ रहेगा? टण्टा मिटाने की यह युक्ति नयी भले ही न हो, लेकिन अजीब जरूर है। अेक-दूसरे से मुंह मोड़ कर अलग हो जाने की यह नीति अगर दुनिया में फैलने लगे, तो मनुष्यों में सहजीवन के विकास की कोअी आशा नहीं रहेगी। गांधीजी तो भारत में अेक अखण्ड तथा अविभाज्य संयुक्तराष्ट्र का विकास करना चाहते हैं और अुसके द्वारा विश्वराष्ट्र के निर्माण में हाथ बँटाना चाहते हैं। अुनका विधायक कार्यक्रम अुसका साधन है। वह भला पाकिस्तानवाद का विष अुसमें कैसे दाखिल होने देंगे? पाकिस्तान जैसी जहरीली विषम भावना का ही प्रतिबिम्ब श्री जीना साहब का सार्वत्रिक अविश्वास और विश्वतोमुखी सन्देहवृत्ति है। अैसी भावनाओं के प्रकोप से मानवता को बचाने में श्री जीना साहब जैसे बुद्धिमान और मज़हब-परस्त व्यक्तियों को जुट जाना चाहिअे।

३०:१२:'४१ दा० ध०

कॉंग्रेस और युद्ध

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

बम्बअी और पूना की होड़ बहुत पुरानी है। बम्बअीविभाग की कॉंग्रेस-सरकार भी अुसका फैसला नहीं कर सकी। अेक दूसरी दृष्टि से खुद कॉंग्रेस ने ही बम्बअी और पूना में टण्टा लगा दिया है।

युद्ध जैसी अेक जबरदस्त राष्ट्रीय मुसीबत आने पर राष्ट्र के प्रमुख नेता या सरदार अेक हो जाते हैं या अुनमें फूट पैदा हो जाती है—अिसपर अुस राष्ट्र की हार-जीत आधार रखती है। हमें अदब के साथ अिस विषय में अिंग्लैंड की विशेषता तसलीम करनी होगी। पिछली और चालू दोनों लड़ाअियों में राष्ट्रीय मुसीबत ने वहाँ के सब दलों में मेल कराया। अुस तरह का मेल फ्रान्स आदि राज्यों में नहीं हो सका। नतीजा हमारे सामने है। लड़ाअी के शुरू में अिंग्लैंड के पास साज-सरंजाम की कमी थी। दूसरी तरह से भी अुसकी तैयारी अधूरी थी। अिसलिअे शुरू शुरू में अुसे बुरी तरह मार खानी पड़ी। फिर भी, अुसकी कमर नहीं टूटी। अुसने लगातार दो सालों तक न केवल अपनी जान ही बचायी; बरन कुछ दूसरे मुल्कों पर कब्जा भी कर लिया है।

हमारे देश पर युद्ध के संकट का क्या असर हुआ है? करीब डेढ़ साल से हम सुबह-शाम अखबारों में पढ़ते आये हैं कि लड़ाअी हमारी सीमाओं तक आ पहुंची है। अिस विचार से कुछ लोग संत्रस्त भी हुअे मालूम होते हैं। लेकिन अुसके फलस्वरूप हममें अेकता हुअी है, या बुद्धिभेद? दूसरे दलों की बात जाने दीजिये; हम सिर्फ कॉंग्रेस का ही विचार करें।

बीस साल तक कॉंग्रेस ने गांधीजी को अपने रथ का सारथी बनाया। बीच बीच में अुनके विरुद्ध तूफान भी अुमड़े; लेकिन थोड़े-से अनुभव के बाद फिर बागडोर अुन्हीं के हाथ में सौंपने में बुद्धिमानी समझी गयी।

परन्तु मौजूदा लड़ाअी छिड़ते ही कॉंग्रेस में बहुत ही गम्भीर फूट पड़ गयी। अिन बीस वर्षों में अुठे हुअे तूफानों के दौरान में जिन लोगों ने वफादारी और विश्वास से गांधीजी का साथ दिया, अुन्हींकी गांधीजी पर से श्रद्धा अुड़ गयी। लड़ाअी ने नये डर और नये लालच अुपस्थित कर दिये। अिस भय और लोभ से प्रेरित बुद्धि ने कुछ तो नेताओं को घबरा ही दिया और कुछ उनमें परिस्थिति से शीघ्र लाभ अुठाने की वृत्ति पैदा कर दी। सिवा गांधीजी के और किसी के पैर अपनी जगह पर जमे नहीं रह सके। अकेले गांधी ही जहां वे पहले खड़े थे, वहां से तनिक भी खिसकने को तैयार नहीं हुअे। बल्कि बीस साल के अनुभव के बाद अुन्होंने अुसी स्थान पर ज्यादा दृढ़ता के साथ डँटे रहने में कर्तव्य और बुद्धिमानी देखी। अुनके साथियों की अुसी स्थान पर डँटे रहने की हिम्मत नहीं रही। अुनकी यह राय थी कि थोड़ा-सा पीछे हटने में हर्ज नहीं है। जिस नीति के आधार पर आज तक कांग्रेस का संगठन किया, अुसे कुछ ढीला करना अुन्हें अुचित मालूम हुआ।

अपने पचास साल के कार्यकाल में कॉंग्रेस तरुणों को हमेशा अपनी तरफ खींचती रही है, अिसका क्या रहस्य है? जब मैं स्वयं अपनी ओर देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि कॉंग्रेस जब सरों, रायबहादुरों और खानबहादुरों के हाथ में थी, तब भी अुस जमाने की लोकजागृति के लिहाज से वह तरुणों को दो जबरदस्त भावनाओं की प्रेरणा देनेवाली मालूम होती थी।

१. अुस जमाने के अनुसार अुसने अपने सामने जो ध्येय रक्खा था, वह जब तक प्राप्त न हो, तब तक सरकार के सम्बन्ध में वह किसी-न-किसी तरह की प्रतीकारवृत्ति (स्पिरिट आव रेजिस्टन्स) बनाये रखेगी। और

२. देश की स्वतन्त्रता के लिअे हिंसात्मक अुपायों को आजमाने की तरुणों की वृत्ति को रोकने की कोशिश करती हुअी अहिंसात्मक तरीकों की ही खोज में रहेगी।

पुराने जमाने में अहिंसात्मक तरीके वैध अुपायों (कॉन्स्टिटयूशनल मीन्स) तक ही सीमित थे। आगे चल कर अुनमें अवैध किन्तु अहिंसात्मक अुपायों का भी समावेश हुआ। लेकिन हिंसात्मक अिलाज आजमाने की वृत्ति का कॉंग्रेस के मंच पर से सदा निषेध ही होता रहा और अैसे अहिंसात्मक तरीकों की खोज बराबर जारी रही जो हिंसात्मक तरीकों का स्थान ले सकें। जितने अंश में नेताओं की प्रतीकार-वृत्ति मन्द रही, अुतने अंश में अहिंसात्मक अुपाय भी कमजोर तरह के रहे। अिसलिअे अहिंसक अुपायों से काम लेते हुअे भी जो दल अुग्र प्रतीकार-वृत्ति का परिचय देता था, अुसके हाथ में कॉंग्रेस अुत्तरोत्तर जाने लगी। कॉंग्रेस के नेतृत्व में अिस तरह का फर्क होता रहने पर भी, वह सदैव प्रतीकार-वृत्ति और अुसकी मदद के लिअे अहिंसात्मक अुपायों की खोज तथा प्रयोग की भावनाओं की पोषक बनी रही। अगर अुसकी प्रतीकार-वृत्ति नष्ट हो जाती, तो वह जोशीले तरुणों को कभी आकर्षित नहीं कर सकती। और अगर वह हिंसात्मक अिलाजों के चक्कर में पड़ जाती, तो हिन्दुस्तान की आबोहवा में अेक विशाल बरगद की तरह लाखों लोगों का आश्रय-स्थान न बन सकती।

सन् अुन्नीस सौ अुन्नीस से गांधीजी ने अिन दोनों भावनाओं को अुनके शुद्ध रूप में व्याख्या करके अुन्हें समझाया। तब से कांग्रेस जनता को अिन दोन भावनाओं के ही पदार्थपाठ देती आयी है और जनता को तथा अपने आप को बलवान बनाती आयी है।

अिन्हीं दो भावनाओं में से असहयोग का जन्म हुआ। परिस्थिति के अनुसार अुसका अमल कभी मन्द, कभी मध्यम और कभी तीव्र गति से भले ही हुआ हो, पर अुसकी तह में भी कांग्रेस की प्रतीकार-वृत्ति याने सरकार की खुशामद या मिन्नतें न करने की और अुसकी योजनाओं में खुशी से सहयोग न देने की नीति, ही रही है।

जब सात प्रान्तों में कॉंग्रेसी सरकारें कायम करने की बात चल रही थी, तब गांधीजी ने अिस आशय की राय प्रकट की थी कि अिसमें हम सरकार की मेहरबानी नहीं चाहते। लेकिन जब सरकार हमारा सहयोग माँगती है, तब अपनी शर्तों पर सहयोग देने में हर्ज नहीं है; और सो भी अुसी हद तक जिस हद तक कि हम मंजूर करें। सहयोग की माँग सरकार की तरफ से आनी चाहिअे। सात प्रान्तों में कॉंग्रेस का बहुमत होने की वजह से सरकार को अपने ही बनाये हुअे कानून के मुताबिक कॉंग्रेस-पक्ष को मंत्रिमण्डल बनाने के लिअे नेवता देना पड़ा। याने अपने ही कानून को अमल में लाने के लिअे अुसे कॉंग्रेस का सहयोग माँगना पड़ा। तब कॉंग्रेस ने अुसे स्वीकार करने से पहले अपनी शर्तें पेश कीं। अिसीके अूहापोह में दो-तीन महीने निकल गये और आखिर सरकार को कॉंग्रेस की शर्तों को तत्त्वतः स्वीकार करना पड़ा। बाद में जब तक कॉंग्रेसी मन्त्रिमण्डल रहे, तब तक जब जब सरकार की तरफ से अनुचित व्यवहार हुआ, तब तब कॉंग्रेस को अपनी प्रतीकार-वृत्ति से काम लेना पड़ा।

परन्तु अिस लड़ाअी के छिड़ जाने पर सिर्फ कांग्रेस की अहिंसा-नीति ही नहीं, बरन अुसकी प्रतीकार-वृत्ति भी ढीली पड़ गयी। सरकार ने हमारा सहयोग पाने की जितनी अुत्कण्ठा दिखायी, अुससे ज्यादा अुसे सहयोग देने की तत्परता हमने दिखायी। हाँ, शर्तें जरूर पेश कीं। लेकिन अुसमें सरकार के मध्यवर्ती मन्त्रि-मण्डल में प्रवेश पाने का लालच, आन्तरराष्ट्रीय मसलहतों में शरीक होने की अिच्छा और कुछ अंश में विदेशी आक्रमण का डर, आदि के कारण अधीरता स्पष्ट दिखायी देती थी। परिणाम यह हुआ कि विरोधी द्वारा किसी शर्त का स्वीकार कराने के लिअे जिस नैतिक बल की जरूरत होती है, अुसकी कमी रह गयी। सरकार की सूक्ष्म दृष्टि से भला यह बात कैसे छिप सकती थी? अुसने सहयोग देने की हमारी तजवीज ठुकरा दी। मेरे विचार में, कांग्रेस ने सरकार के खिलाफ आजतक जितने आन्दोलन किये, अुन सब में नैतिक दृष्टि से अिस मामले में कांग्रेस की करारी हार हुअी।

यह पूना का किस्सा है। फिर बम्बअी में अुस गलती को सुधारने की चेष्टा हुअी। पर कुछ नेताओं ने अिस हार का कारण अपनी तत्त्व-भ्रष्टता समझने के बदले अेक तरह से पूना-प्रस्ताव का विरोध करने में गांधीजी की जिद को ही समझा। अिसलिअे यद्यपि अुन्होंने बम्बअी में गांधीजी से समझौता तो कर लिया, लेकिन वह दिल से नहीं किया। अुनका दिल तो यही कहता रहा कि क्या ही अच्छा हो अगर किसी प्रकार फिर पूना में अखतियार किये हुअे रुख पर लौट कर जा सकें।

तब से अेक साल से ज्यादा तक सत्याग्रह आन्दोलन चला। कअी हजार लोग जेल में गये या जाने की कोशिश करते रहे। बहुत-से दो-दो तीन-तीन बार गये। कअी अेक बार जा कर रुक गये। अिनमें से जिनका दिल पूना-वाले ठहराव के साथ ही था, अुन्हें अिस सत्याग्रह में रस नहीं आया। देश के कअी राष्ट्रीय माने जानेवाले अखबारों को भी अिन्हीं में शुमार करना होगा। अुन्होंने रातदिन 'समझौता करो' और 'पूना प्रस्ताव फिर से जिन्दा करो' की पुकार जारी रक्खी।

अब बहुत-से लोग जेलों से बाहर आ गये हैं और फिर 'बम्बअी या पूना'? की चर्चा चल रही है। बड़े बड़े विद्वान नेता गांधीजी की अहिंसा और काँग्रेस की अहिंसा के भेद का, तथा गांधीजी की आदर्शपरायणता और काँग्रेस की व्यवहारपरायणता का, बड़ा बारीक और तार्किक विश्लेषण करके जनता को अुलझन में डाल रहे हैं। गीता का प्रमाण तो बड़ी आसानी से मिल जाता है। लेकिन अब तो यह भी कहा जाने लगा है कि स्वयं अहिंसा की दृष्टि से भी गांधीजी की मौजूदा राजनीति हिंसायुक्त है और पूना-प्रस्ताव में ही सच्ची अहिंसा है। जब चारों ओर से वायुमण्डल में लड़ाअी के बादल मंडरा रहे हैं, बलवान राज्यों के आक्रमण आये दिन बढ़ते जा रहे हैं, अंगरेज और अुनके दोस्तों की हार की खबरें बारबार कानों पर पड़ती हैं, 'देखो दुश्मन आया' की पुकार दस दिशाओं में अुठायी जाती है, तब आश्चर्य ही क्या कि शहरों में रहनेवाले मध्यम और व्यापारी वर्ग के छक्के छूटने लगें और वे गांधीजी को जिद्दी समझ कर अुनसे नाराज हो जायँ?

मेरी समझ में हमें अिस वक्त कोरी तार्किकता से बचने की सख्त जरूरत है। जिन बातों का हमें निश्चय करना है, अुनकी दृष्टि से, 'गांधीजी लड़ाअी मात्र का विरोध करते हैं या अिसी लड़ाअी का? वह देश की स्वतन्त्रता को

अधिक महत्त्व देते हैं या अहिंसा के आदर्श को? और, अुनकी भूमिका आध्यात्मिक है या राजनैतिक'?—वगैरा प्रश्न अप्रस्तुत हैं। महत्त्व का मुद्दा अितना ही है कि "हिन्दुस्तान आज जिस परिस्थिति में आ पड़ा है, अुसमें अिस देश के करोड़ों की भलाअी की दृष्टि से क्या वह अैसी दारुण लड़ाअी करने के लिअे राजी हो सकता है? और अगर हिन्दुस्तान पर किसी पर-राज्य का हमला होने की सम्भावना ही हो, तो अुसका मुकाबिला किस तरह करने में जनता की भलाअी और कुशल है? सफल हिंसक मुकाबिला करने की कहां तक सम्भावना है? जबरदस्ती करने पर भी जनता का कितना अंश अुसमें शामिल किया जा सकता है? और कितना सामान-सरंजाम बनवाया जा सकता है? अितनी विराट लड़ाअी का खर्च बरदाश्त करने की जनता में कितनी कूवत रह गयी है? कांग्रेस का विरोध होते हुअे भी युद्ध के लिअे जनता चूसी जा रही है और युद्ध तथा अकाल की सम्मिलित महँगाअी की बदौलत भुखमरापन फैल रहा है; अैसी हालत में यदि कांग्रेस भी युद्धवादी बन जाय तो जनता किसका मुंह ताकेगी? देश की सेना सरहद्दों पर पहरा देगी और लड़ेगी। कदाचित् शहरों की थोड़ी-बहुत रक्षा करेगी। पर अगर वह शत्रु को भीतर घुसने से रोक न सकी, तो जिनके हाथ में मोटा डण्डा भी नहीं है और, अगर हो भी तो अुसे चलाना जिन्हें याद नहीं है, अुन करोड़ों देहातियों को हम आत्मरक्षा का कौन-सा तरीका बतलाना चाहते हैं?—निष्फल और पराधीन हिंसक चेष्टा का या स्वाधीन अहिंसक प्रतीकार का"?

'लोकशाही,' 'व्यक्तिस्वातन्त्र्य' और 'दुनिया की नवरचना' जैसी बड़ी बड़ी बातें सुना कर लड़ाअी के पक्ष में हमारी भावनाअें अुत्तेजित करने की कोशिशें हो रही हैं। लेकिन अुन करोड़ों हिन्दुस्तानियों को अिस वागाडम्बर से क्या वास्ता है जिनके लिअे हिन्दुस्तान का पूर्ण स्वराज्य भी अेक अैसी सुहावनी ध्वनि है जिसका पूरा पूरा अर्थ वे नहीं समझ सकते? वैद्य-हकीमों का कहना है कि अभ्रक आदि औषधियों को जितना ज्यादा घोंटा जाय अुतनी ही वे अधिक गुणकारी होती हैं और अिसलिअे वे अैसी औषधियों को शतपुट, सहस्त्रपुट देते हैं। बेचारे भोड़ल से थोड़े ही पूछा जाता है कि अुसे खल में पिसना कैसा लगता है? हमेशा पिसनेवाली हमारी जनता के लिअे भी युद्ध के मानी शतपुट से सहस्त्रपुट बनाया जाना है।

अिसके अलावा, मेरी नम्र राय में विधान-परिषद की माँग पेश करनेवाली कांग्रेस को पूने का प्रस्ताव करने का अधिकार ही नहीं था। अेक तरफ से कांग्रेस ने कह दिया कि हिन्दुस्तान के नाम से युद्ध का अैलान करने का सरकार को कोअी हक नहीं था; वह स्वतन्त्र हिन्दुस्तान का हक है; हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र सरकार विधान-परिषद द्वारा कायम की जानी चाहिअे; और दूसरी तरफ से पूना में यह जाहिर किया गया कि अगर सरकार हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता घोषित कर दे, तो कांग्रेस तुरन्त देश की तरफ से युद्ध में तन-मन-धन से सहयोग का वचन देती है। याने जिस बात का निर्णय करने की आजादी देश को आज नहीं है, अगर कॉंग्रेस की चले तो, वह आजादी स्वतन्त्र हिन्दुस्तान को भी नहीं दी जायगी। अिस प्रस्ताव में कांग्रेस का सिर्फ अपने आप से ही नहीं, बल्कि सारे देश से द्रोह प्रकट हुआ है।

कहा जाता है कि कॉंग्रेस केवल हिन्दुस्तान की ही सब-से बड़ी राजनैतिक संस्था नहीं है; बल्कि सारी दुनिया में अितना बड़ा राजनैतिक

पक्ष दूसरा नहीं है। हमारे अितने बडे देश की अिस महान संस्था से तो यह आशा की जाती थी कि वह घोषित करती कि स्वतन्त्र भारत की सारी ताकत संसार में भाओीचारा और शान्ति स्थापित करने के लिअे लगा देने की कॉंग्रेस की कोशिश रहेगी।

यह तो मानना ही पडेगा कि पूना-प्रस्ताव के प्रस्तावकों को अुसके सरकार द्वारा स्वीकृत होने की खासी आशा रही होगी। यदि अुनकी आशा पूर्ण होती, याने सरकार हिन्दुस्तान की आजादी घोषित कर देती, तो अहिंसा की अद्वितीय विजय होती। जो कॉंग्रेस अितनी बडी अहिंसक क्रान्ति अुपस्थित करने में कामयाब होती, अुसकी और अुसके देश की अिज्जत कितनी बढ़ जाती? आज रूजवेल्ट की जो प्रतिष्ठा है, अुससे कओी गुनी प्रतिष्ठा हमारी कॉंग्रेस के अध्यक्ष की होती। और चूंकि वह न्याय, अहिंसा और अशोषण का हिमायती होता— जैसा कि रूजवेल्ट नहीं हो सकता,—संसार में शान्ति स्थापित करने की अुसकी ताकत अद्वितीय होती। खुद अिंग्लैंड को भी अिस कारण से यश और प्रतिष्ठा मिलती।

परन्तु मानना होगा कि यह सारा 'अगर-मगर' का ही खेल है। कांग्रेस के नेताओं में अितना आत्मविश्वास नहीं था और न होना स्वाभाविक ही था। आज की हमारी गिरी हुआी हालत में अैसी बातें कोरी शेखी ही मानी जातीं। अिसलिअे यह तो अच्छा ही हुआ कि अितनी बडी बात कॉंग्रेस के मुंह से नहीं निकली। परन्तु अुस दृष्टि से तो दुनिया की नवरचना में हिन्दुस्तान अपना कुछ स्वतन्त्र कर्तृत्व दिखावे, यह आशा भी रखना फिजूल है। आज तो हमारा देश केवल अिंग्लैंड का बैल है। अुसकी मेहनत से अिंग्लैंड की खेती होती है। लेकिन वह अुस खेती का कर्ता नहीं; करण, औजार, 'पैसिव अेजण्ट' ही है। परन्तु हमारी अिस लाचारी के मानी यह नहीं हैं कि कांग्रेस द्वारा हम अुलटी बात कहें और स्वतंत्रता मिलने के पहले ही स्वतन्त्र हिन्दुस्तान को युद्धाभिलाषी देश बनाने का आयोजन करें। अिस महान आत्महानि से सद्भाग्यवश ही कांग्रेस बच गयी है। अब फिर-से अुस बात को दोहराने की बुद्धि हमको न सूझे।

यह भलीभाँति समझ लेने की जरूरत है कि लोकशाही और स्वतन्त्रता की रक्षा तथा दुनिया की नवरचना किसी भी अेक पक्ष की हार या दोनों पक्षों की थकावट के कारण की हुआी सुलह से नहीं हो सकती। वह तो तभी हो सकती है जब कि हार-जीत या थकावट के पहले ही दोनों पक्ष यह महसूस करने लगें कि अिस लडाओी से किसी देश की आम जनता की भलाओी नहीं है; सिर्फ चन्द सराफ, सौदागर और हथियारों के कारखाने वालों का ही अिस से लाभ होता है और अुन्हीं के द्वारा लडाओी जारी रखने के पक्ष में प्रचार किया जाता है। लोकशाही, स्वतन्त्रता, साम्यवाद, नवरचना आदि, अथवा नाजीवाद, यूरोप का संगठन अेशिया का संगठन आदि, सुन्दर सुन्दर शब्दों की ओट में 'अेशिया और आफ्रिका की जनता और सम्पत्ति कौन चूसे'?—अिसीके लिअे यह खूंखार होड़ चल रही है। क्या अिसे स्वतन्त्र हिन्दुस्तान पसन्द कर सकता है? और यदि पसन्द नहीं कर सकता, तो किसी भी पक्ष को जिताने के लिअे वह क्यों कोशिश करे? अगर स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अहिंसानिष्ठ होगा, तो वह सभी को न्याय और शान्ति के रास्ते पर लाने की कोशिश करेगा। और यदि वह क्षात्रवृत्ति-परायण होगा, तो जिनके बाहुबल के आधार पर अंग्रेजों ने आज आफ्रिका और वायव्य अेशिया पर कब्जा कर,

लिया है, अुन बाहुबलियों का यह फर्ज होगा कि वे अेशिया और आफ्रिका को यूरोप, अमेरिका और जापान जैसे लोभी राज्यों से बचाने की कोशिश करें और अुनकी स्वतन्त्रता के त्राता बनें।

मेरी नम्र राय में हमारा पहला ध्येय अपने देश की आजादी है। वह मिलते ही हमारा अगला ध्येय होगा अेशिया और आफ्रिका के निवासियों की आजादी और अुसके लिअे यूरोप, अमेरिका और जापान के साम्राज्य-लोभ का निग्रह। अिसके लिअे शक्ति सम्पादन करना हिन्दुस्तान के क्षात्रवृत्ति लोगों का भी ध्येय हो सकता है और अहिंसावृत्ति लोगों का भी। अिस शक्ति का संगठन प्रचण्ड हिंसा से भी किया जा सकता है और बलवान अहिंसा से। प्रचण्ड हिंसा की सामग्री जुटाने की वृत्ति हो, तो भी अुसकी गुंजाअिश नहीं है। और मानव जाति के सदियों के अनुभव से यह कहा जा सकता है कि अुसमें ध्येयपरायणता बहुत समय तक ठहर नहीं सकती। हिंसक शक्ति ज्यादा दिन निःस्वार्थी नहीं रह सकती। और अुससे भी महत्त्व की बात यह है कि भीतरी बलवान अहिंसक संगठन के बिना मजबूत हिंसक संगठन भी असम्भव है। अहिंसक संगठन हमारी समझदारी और अिच्छा-शक्ति पर ही अवलम्बित है और वही सबसे पहली जरूरत है।

२६:१२:'४१

भारत की विशेषता

भारत की विशेषता किसी जाति-विशेष या किसी धर्म-विशेष में नहीं है, लेकिन अेक परम्परा में, अेक जीवन दृष्टि में, सृष्टि की ओर देखने के अेक विशेष तरीके में है, जिसका प्रभुत्व अिस देश की सभी जातियों पर रहा है। वह परंपरा यह सिखाती है मनुष्य की श्रेष्ठता अिस पर निर्भर नहीं है कि अुसके पास क्या क्या है; प्रत्युत अिस बात पर कि वह स्वतः क्या है? अुस परम्परा का यह तकाजा है कि हम यह मानें कि हम सब अेक ही मिट्टी के बने हैं और अिसलिअे अेक ही सामान्य परिवार के सदस्य हैं। अिस परम्परा ने अिस देश के जीवन और दर्शन पर आध्यात्मिकता की मुहर लगा दी है। यह हमारी अेतद्देशीय परम्परा है। वह अेक-जातित्व नहीं है, धार्मिक अैक्य भी नहीं है; लेकिन वह यह आध्यात्मिक दृष्टि ही है, जिसने अिस देश के सभी निवासियों को अेक सूत्र में पिरोया है।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

हिन्दुत्ववाद या शबल राष्ट्रवाद ?

[दादा धर्माधिकारी]

हिन्दूसभा पर निर्बन्ध

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के नियोजित अधिवेशन में अुसके मनोनीत अध्यक्ष वीर सावरकर जो अभिभाषण देनेवाले थे, वह समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है। हिन्दू महासभा की नीति, वृत्ति और कार्य-प्रणाली के विषय में हमारा तीव्र मतभेद है। परन्तु अपने विचार प्रकट करने के अुसके मूलभूत अधिकार पर आक्रमण करके बिहार सरकार ने हिन्दू महासभा के साथ जो अन्याय किया है, अुसकी निन्दा हरअेक नागरिक-स्वातन्त्र्यप्रेमी व्यक्ति करेगा। हिन्दूसभा के अधिवेशन पर पाबन्दी लगाने के पक्ष में सरकार ने जो दलीलें दी हैं वे बिलकुल लचर हैं। अैसी स्थिति में हिन्दूसभा ने अपनी मानरक्षा और स्वत्वरक्षा के लिअे जो करना आवश्यक और अुचित था, वही किया। अिस सम्बन्ध मे वीर सावरकर ने अपने अभिभाषण में जो कुछ कहा है, अुससे हरअेक स्वातन्त्र्य-प्रेमी नागरिक बहुत दर्जे तक सहमत होगा।

व्यावहारिक प्रतीकार

प्रत्यक्ष व्यवहार में जब प्रतीकार का प्रयोग करने का अवसर आता है, तो कॉंग्रेस के कट्टर से कट्टर विरोधियों को भी कॉंग्रेस की ही नीति और भाषा का अनुसरण किस प्रकार करना पड़ता है, अिसका प्रमाण सावरकरजी के अिस भाषण में भी मौजूद है। आप कहते हैं : "सरकार हम पर कानूनी निर्बन्ध और शरीर-बल का प्रयोग भले ही करे; लेकिन हमारा यह निश्चय है कि हम अपनी तरफ से सरकारी अधिकारियों पर शरीरबल का कोअी प्रयोग, या प्रदर्शन किये बिना गिरफतारी या अुससे भी अधिक सख्त सजाअें भुगतने को तैयार रहेंगे।" हम हिन्दूसभा को अुसकी दृढ़ता के लिअे बधाअी देते हैं।

सावरकर-प्रणीत राष्ट्रवाद

खैर, यह अवान्तर विषय हुआ। अिस लेख में हमें विशेषरूप से सावरकरजी-प्रणीत राष्ट्रवाद की थोड़ी-सी समीक्षा करनी है। हिन्दू-सभापति को जब जब मौका मिलता है—या नहीं भी मिलता—तब तब वे गांधीजी की अहिंसा और कॉंग्रेस की राष्ट्रीयता की आलोचना करने का दम भरते हैं। अपने अिस अभिभाषण में भी कॉंग्रेस की राष्ट्रीयता का धिक्कार करते हुअे अुन्होंने कहा है: "The baneful influence of the pseudo-nationalistic opiates of the Gandhist School of thought," etc ('गांधी सम्प्रदाय के मिथ्या राष्ट्रवाद के घातक नशे के असर के कारण' अित्यादि अित्यादि)

अर्थात सावरकरजी की राय में कॉंग्रेस या गांधीजी की राष्ट्रीयता मिथ्या और नशीली चीज है याने लोगों को भुलावे में, आत्म-विस्मृति मे, डालने वाली है और हिन्दू सभा की राष्ट्रीयता विशुद्ध अेवं प्रबुद्ध राष्ट्रीयता है। सावरकरजी की राष्ट्रीयता की थोड़ी-सी समीक्षा हम मार्च १९४१ के 'सर्वोदय' में और अुससे भी पहले फरवरी १९३९ में और समय समय पर 'सर्वोदय' के दूसरे कुछ अंकों में कर चुके हैं। अब की बार भी श्री सावरकरजी ने अपनी राष्ट्रीयता की कल्पना का संकेत किया है। अुनका यह निश्चित मत है कि हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। अपने अभिभाषण में अुन्होंने कहा है कि हिन्दू-

सभा के प्रयत्न से हिन्दू समाज में अेक मानसिक क्रान्ति हुअी है और अुस क्रान्ति का द्योतक युद्धघोष "हिन्दुस्तान हिन्दुओं का" है। सावरकरजी कहते हैं : "This mental revolution could not have found a better expression to voice forth its significance than that 'Hindustan Hinduon ka' (यह मानसिक क्रान्ति अपना महत्त्व व्यक्त करने के लिअे 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' की अपेक्षा अधिक अुपयुक्त शब्द प्रयोग नहीं चुन सकती थी।)

अेक प्रश्न

सावरकरजी अिसे शुद्ध राष्ट्रीयत्व कहते हैं तथा गांधी और कॉंग्रेस के राष्ट्रीयत्व को मिथ्या या शबल जैसे विशेषणों से विभूषित करते है। सवाल यह है कि सावरकरजी का राष्ट्रीयत्व किस तत्त्व पर अधिष्ठित है ?

१. वह रक्ताश्रित है ?

२. धर्माश्रित है ? या

३. क्षेत्राश्रित या देशाश्रित है ?

१. अगर रक्ताश्रित हो, तो हमारा निवेदन यह है कि मुसलमान चाहे भिन्नधर्मीय भले ही हों, लेकिन हमारे ही वंश और खून के हैं। अिसलिअे वे भी हमारे ही राष्ट्र के घटकावयव समझे जाने चाहिअें।

२. अगर धर्माश्रित है, तो जापान, चीन और अन्य बौद्ध धर्मावलम्बी देशों के निवासियों को भी हिन्दू राष्ट्र में शामिल करना होगा और अुनको अपनी प्रचलित राष्ट्रीयत्व की कल्पनाओं का त्याग करना होगा। अिस देश में भी जितने धर्म हैं, अुतने ही राष्ट्रों की कल्पना करनी होगी।

३. यदि देशाश्रित है, तो यह सिद्धान्त छोड़ देना होगा कि अिस देश में राष्ट्र केवल हिन्दुओं का है और दूसरे सब अल्पसंख्याक संप्रदाय या पक्ष हैं।

विभिन्न व्याख्याअें

'हिन्दू' शब्द को 'हिन्दुस्तानी' शब्द का समानार्थक और समव्याप्त पर्यायवाची शब्द ठहराने के प्रयास में से जो विरोध और असंगतियाँ पैदा होती हैं, अुन्हें महसूस करने के कारण ही भारत के अनेक विद्वानों ने 'हिन्दुत्व' शब्द की भिन्न भिन्न परिभाषाअें करने की कोशिश की है। अिनमें से कुछ व्याख्याओं का परीक्षण मार्च १९४१ के 'सर्वोदय' में आ चुका है। यहाँ दूसरी कुछ व्याख्याओं का संक्षेप में परीक्षण करने की कोशिश की जाती है।

तुलजापुरकरजी की व्याख्या

मराठी के अेक प्रसिद्ध लेखक श्री दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर ने अपनी 'माझें रामायण' (मेरी रामकहानी) नामक पुस्तक में हिन्दुत्व की व्याख्या अिस प्रकार की है।

सृष्टयादि कारणं ब्रह्म सच्चिदानन्दमेव हि
गृह्णात्या पुनर्जन्म विपाकात् कर्मणस्तथा।

(पृष्ठ २४५; 'माझें रामायण')

यह अुनकी 'हिन्दुत्व' की व्याख्या है। अब 'हिन्दू' शब्द की व्याख्या सुनिये—

"जन्मतः हिन्दू हो कर जिसने हिन्दू धर्म का त्याग नहीं किया है और जन्मतः हिन्दू न होते हुअे भी जिसने हिन्दू धर्म के तत्त्व स्वीकार किये हैं, अैसा प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है। हिन्दू शब्द की यही व्याख्या है।"

अिस व्याख्या में भी 'हिन्दुत्व' का लक्षण धार्मिक पहलू से ही निरूपित है। केवल धार्मिक दृष्टि से भी श्री तुलजापुरकरजी की व्याख्याअें सदोष और अपूर्ण हैं। अुनकी व्याख्या के अनुसार जो लोग 'सृष्टि का आदिकारण ब्रह्म' और 'कर्मविपाक' का सिद्धान्त नहीं मानते वें जातितः

हिन्दू होते हुअे भी धर्मतः हिन्दू नहीं हैं। श्री तुलजापुरकरजी 'हिन्दू' शब्द 'हिन्दुस्तानी' शब्द का समानार्थ मानते हैं या नहीं, अिसके विषय में निश्चितरूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। अिसलिअ धर्मतः और जातितः अथवा तत्त्वतः जो हिन्दू है वही राष्ट्रतः भी हिन्दू है या नहीं ?— अिस प्रश्न का सन्तोषजनक अुत्तर अुनके विवेचन में नहीं है।

गौड़जी का हिन्दू विश्वकोष

काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त की प्रेरणा से स्वर्गीय रामदास गौड़ ने, श्री बाबूरावजी पराड़कर के शब्दों में, 'हिन्दुत्व' नामक जो 'विश्वकोष' लिखा है, अुसमें भी 'आर्य' और 'हिन्दुत्व' की व्याख्या तथा मीमांसा का प्रयास किया है। 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ की समीक्षा करने के बाद गौडजी लिखते हैं:

"भारतीय वैदिक 'ॠ' धातु और 'ण्यत्' प्रत्यय से आर्य शब्द की व्युत्पत्ति बताते हैं। 'ॠ' धातु का अर्थ चलना और फैलना है। मानवजाति गमनशील है और जहाँ जाती है, फैल जाती है। प्रत्येक सभ्य जाति का यह दस्तूर है कि अपने को ही मनुष्य और श्रेष्ठ समझती है और भिन्न भाषा-भाषियोंको मनुष्येतर, बर्बर, पशु, राक्षस आदि कहती है। अपनी जाति और भाषा का प्रायः कोअी विशेष नाम नहीं रखती। आर्यावर्त का अर्थ हुआ मनुष्यों का आवास और यहीं से मनुष्य-जाति चारों ओर संसार में फैली। अिसीलिअे यहाँ के मनुष्य आर्य कहलाये। अिसी यौगिक अर्थ से लाक्षणिक और रूढ़ि अर्थ बने—श्रेष्ठ, कुलीन, साधु, पूज्य, मान्य, अुदारचरित, विद्वान, मित्र, वैश्य और देशभक्त। अिसके यौगिक अर्थ से घुमक्कड जाति भले ही कह लें।"

('हिन्दुत्व' पृष्ठ ७७१)

हिन्दूजाति की विशेषता बतलाने की दृष्टि से यह व्याख्या कितनी अनुपयुक्त है, अिसकी चर्चा अनावश्यक है।

अब गौड़जी की हिन्दुत्व की व्याख्या देखिये। हिन्दू शब्द की अर्वाचीनता और अितिहास का विवेचन करने के बाद गौड़जी लिखते हैं: "हिन्दू शब्द का पहले का वाच्यार्थ चाहे आर्य ही रहा हो, परन्तु अितिहास अिस बात का साक्षी है कि वह अनार्य भी हिन्दू समझे और माने जाते हैं जो आर्यों के अनुकूल धर्म मानते हैं।...... गोवा में अैसे अीसाअी मौजूद हैं जो हिन्दू शब्द का व्यवहार अपने लिअे नहीं करते; परन्तु हिन्दुओं के अैसे कोअी देवी-देवताअें नहीं जिनकी पूजा वे प्रभु अीशू के साथ न करते हों। अैसे मुसलमान हैं जो गोमांस से बचते हैं और हिन्दू त्यौहार मानते हैं और देवी-देवताओं के स्थान पर जा कर मुण्डन व्यवहार करते हैं। साथ ही अैसे हिन्दू भी खोजे मिल ही जायँगे जिन्हें गोमांस तो क्या, नरमांस से घृणा नहीं है। मुर्दे खानेवाले अघोर पंथी औघड़ से ले कर श्री-सम्प्रदायवाले ब्राह्मण आचारी तक हिन्दू हैं, जिनके यहां बिल्ली देख ले तो रसोअी अशुद्ध हो जाय। सूअर की हड्डी से गोंठ कर मुसलमानों की पकाअी रोटी को ले कर 'अमृत छकनेवाले' गुरु गोविंदसिंह भी हिन्दू क्या, हिन्दुओं के सिरताज हैं और अपने हाथों से ही पकाया हुआ भोजन करनेवाले स्वयंपाकी हिन्दुओं की संख्या भी थोडी नहीं है।... वर्णाश्रमधर्मी भी हिन्दू और वर्णाश्रम के न माननेवाले भी हिन्दू हैं। कंदहार और बुखारे से आ कर त्रिवेणी में नहा कर और अक्षयवट की पूजा करके कृतार्थ होनेवाले भी हिन्दू हैं और प्रयाग और काशीजी में रह कर अपने को हिन्दू मानते हुअे अिन कृतियों के विरोधी कम हिन्दू नहीं हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि भारत,

वर्ष से निकले हुअे सभी धर्म, मत, सम्प्रदाय हिन्दू कहलाने चाहिअें।....यह परिभाषा अति-व्यापक ठहरती है। अिसमें संसार में फैले कम-से-कम चालीस करोड़ बौद्ध धर्म के लोग भी आ जाते हैं, जिनमें तिब्बती, चीनी, जापानी, मोगल, तातारी और सिंहली तथा बर्मी भी संनिविष्ट हो जाते हैं। धार्मिक दृष्टि से चाहे हिन्दू को यह गर्व भले ही हो कि संसार में आज भी हिन्दू धर्मानुयायी साठ करोड़ से अधिक हैं जो पुनर्जन्म, अहिंसा, सत्य, कर्म, आदि मौलिक हिन्दू सिद्धान्तों को मानते हैं—और अुचित भी है; क्योंकि भारतीय हिन्दू तो भगवान बुद्ध को परमात्मा का या विष्णु का नवाँ अवतार मानता ही है—परन्तु तिब्बती, तातारी और जापानी को तो समाजशास्त्री हिन्दू संस्कृतिवाले राष्ट्र नहीं मान सकते।

"हिन्दू शब्द कितनी अभिधा-शक्ति रखता है, अिस पर बहुत कुछ विवाद हुआ है और अेक भी परिभाषा सर्ववादि-सम्मत नहीं ठहरायी गयी है।

"अितनी बात पर तो सभी वादी सहमत हैं कि हिन्दू शब्द से अेक विशेष धर्म, अेक विशेष सम्प्रदाय, अेक विशेष जाति या अेक विशेष राष्ट्र का, कम-से-कम भारत के भीतर जहाँ, आज अिस शब्द का अतिप्रयोग हो रहा है, बोध नहीं होता।"

('हिन्दुत्व' पृष्ठ ५-६)

अिसके बाद श्री गौड़जी ने सावरकरजी की व्याख्या—जिसे वह गलती से लोकमान्य तिलक-प्रणीत मानते हैं—की आलोचना की है। परन्तु यह भी कह दिया है कि अुस "श्लोक से हिन्दू शब्द की प्राय: अैसी अुपयुक्त परिभाषा होती है जिसे सभी स्वीकार करेंगे"।

('हिन्दुत्व' पृष्ठ ७ (टिप्पणी)

अपनी सारी मीमांसा का निष्कर्ष गौड़जी अिन शब्दों में व्यक्त करते हैं; "हमने अब तक जो विचार किया है, अुससे हम यह कह सकते हैं कि भारत की प्राचीनतम आर्यपरम्परा को अपनी परम्परा स्वीकार करता हुआ जो भारत की संस्कृति और भारत के धर्म को पूर्णरूप से या अंशरूप से अपनावे वही भारतीयों के लिअे हिन्दू है।"

('हिन्दुत्व', पृष्ठ ७)

अेक तर्कदोष

'ज्ञात की व्याख्या अज्ञात के द्वारा करना' तर्कशास्त्र में अेक महान दोष समझा जाता है। वह दोष गौड़जी की अिस व्याख्या में भी है। अेक 'हिन्दुत्व' शब्द समझाने के लिअे अुन्होंने 'आर्यपरम्परा', 'भारतीय संस्कृति' और 'भारत का धर्म' जैसी तीन दुर्बोध और अव्याख्येय संज्ञाओं का प्रयोग किया है। ये तीनों संज्ञाअें क्लिष्ट और अव्याख्येय किस प्रकार हैं, अिसके प्रमाण अुन्हींकी पुस्तक में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। अुदाहरणार्थ, अुपसंहार में श्री गौड़जी लिखते हैं: "हिन्दू धार्मिक साहित्य तो मतभेदों का अेक विशाल संग्रह है। लोग अिस प्रकार के विरोधी मतों को देख कर चकराते हैं और समझते हैं कि हिन्दू धार्मिक साहित्य का यह अेक दूषण है। परन्तु जिसे वे दूषण समझते हैं, वह वस्तुत: अुसकी प्रकृत महत्ता है, व्यापकता है, अुदारता है और भूषण है।...... अिसलिअे हिन्दू धर्म सार्वभौम धर्म है और अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। समस्त मतों और सम्प्रदायों को मिलानेवाला है। जहाँ और धर्मवाले अपना प्रचार करते हैं और दूसरों को खदेड़ते हैं, वहाँ हिन्दू धर्म अपना प्रचार नहीं करता और किसीको खदेड़ता नहीं। हिन्दू धर्म से मेल करने की केवल अेक ही शर्त है और वह शर्त

यही है कि हिन्दू संस्कृति अक्षुण्ण रहे। किसी व्यक्ति के विचार चाहे कैसे ही हों, प्रचार चाहे जिस मत का करता हो, परन्तु आचार हिन्दू का ही हो। चरित्र आपाद-शिखान्त हिन्दू हो। **हिन्दू चरित्र और हिन्दू आचार रखनेवाला यदि ओसाओी या मुसलमान विचार भी रखता हो, तो भी हिन्दू समाज अुसका बहिष्कार न करेगा।** अिसीके विपरीत जिसने हिन्दू संस्कृति का परित्याग किया है, अुसके विचार कितने ही आस्तिक हों, पर हिन्दू अुससे मिलते हुअे झिझकता है और अुसका बहिष्कार करने के लिअे समाज तैयार रहता है। हिन्दू होने के लिअे अिसीलिअे हिन्दू संस्कृति ही मुख्य है।" ('हिन्दुत्व' ७९९-८८०)

यहाँ पर गौड़जी ने हिन्दू संस्कृति की व्याख्या अप्रत्यक्षरूप से हिन्दू आचार और हिन्दू चरित्र की है। पृष्ठ पाँच पर आप कहते हैं कि "आदि-द्रविड अब्राह्मणों में अधिकांश अपने को अनार्य समझते हैं; परन्तु हिन्दू कहलाने में अुन्हें कोअी संकोच नहीं है।....अिसके विपरीत अनेक आर्य-समाजी और ब्राह्मसमाजी और सिक्ख अपने को हिन्दू कहलाने में संकोच करते हैं।" अर्थात् गौड़जी के अवलोकन के अनुसार ही अिसी देश में हिन्दुत्व की कक्षा में आनेवाले कअी अैसे व्यक्ति हैं जो आर्य-परम्परा या हिन्दू संस्कृति को मानने से अिनकार करते हैं। हिन्दू शब्द की अियत्ता का निरूपण करते हुअे अुपसंहार में अुन्होंने जिस हिन्दू आचार और हिन्दू चरित्र का अुल्लेख किया है, अुसका खण्डन भी अुन्हींके पृष्ठ पाँच-छह के विवेचन से हो जाता है। और फिर गौड़जी तो कुछ शर्तों पर अीसाअियों और मुसलमानों को भी हिन्दू मानने के लिअे तैयार हैं। स्पष्ट है कि धर्मतः जो अीसाअी या मुसलमान होगा, अुसकी पुण्यभू भारतवर्ष नहीं रहेगी। हिन्दू चरित्र और आचार भी सभी देश-कालों में अेक-से और अपरिवर्तनीय रहे हों, सो भी बात नहीं। अिसलिअे हिन्दुत्व की व्यवहारोपयोगी या तात्त्विक दृष्टि से शुद्ध व्याख्या करने में गौड़जी का विश्वकोष हमारी कोअी मदद नहीं करता।

डॉ० पटवर्धन

न जाने क्यों, हिन्दू शब्द की अव्याख्येयता को अुसका दूषण समझ कर अिधर कुछ वर्षों से अुसको परिमित करने का प्रयास हिन्दू-धर्म-प्रेमी पण्डित बराबर कर रहे हैं। बरार के सुप्रसिद्ध कॉंग्रेसी नेता डॉ० शिवाजी गणेश पटवर्धन ने 'अीश्वरस्य स्वरूपं हि ॐकारे व्यक्ततां गतम्' यह हिन्दुत्व का सामान्य लक्षण बतलाया है। अिसका यह अर्थ है कि जो व्यक्ति ॐकार अिस अक्षर या ध्वनि को अीश्वर का विग्रह अथवा मूर्तस्वरूप नहीं मानता, वह हिन्दू नहीं हो सकता। ॐकार शब्द का या प्रतीक का प्रयोग चाहे भारत के अधिकांश सम्प्रदाय भले ही करते हों, लेकिन ब्राह्मसमाज जैसे सुधारक सम्प्रदाय अुसे अीश्वर का व्यक्त स्वरूप या मूर्ति नहीं मानते। अिसके अतिरिक्त, आज कअी व्यक्ति अैसे पाये जायँगे जो अपने को हिन्दू कहते हुअे भी ॐकार को नहीं मानते; ठीक अुसी तरह जिस तरह कि हिन्दू धर्म के संरक्षक होने का दावा करते हुअे भी वीरवर सावरकर और कुछ कलंकी सम्प्रदाय के लोग गाय को पवित्र या अवध्य नहीं मानते।

अिस कार्य की दुष्करता

हिन्दुत्व की व्याख्या करने में हमें वस्तुस्थिति का विशेष ध्यान रखना चाहिअे। आज की वस्तुस्थिति के अनुसार हिन्दुत्व की व्याख्या करना कितना दुष्कर काम है, यह अिन पण्डितों की असफल चेष्टाओं पर से विदित होता है।

सवाल यह नहीं है कि हिन्दुत्व के लक्षण क्या होने चाहिअें? अपितु यह कि हिन्दुत्व के वर्तमान लक्षण क्या हैं ? और दूसरा अधिक महत्त्व का सवाल यह है कि क्या हिन्दुत्व के जो लक्षण बतलाये जाते हैं, वही भारतीय राष्ट्रीयता के भी लक्षण माने जायँ ?

प्रा० शं० ल० गोखले

हिन्दुत्व और राष्ट्रीयत्व के लक्षण बहुत तो अविरोधी हो सकते हैं; लेकिन अेकरूप या समान नहीं हो सकते। यह कठिनाअी महसूस कर के अमेरिकानिवासी प्राध्यापक शंकर लक्ष्मण गोखले ने मअी १९३८ के 'पुरुषार्थ' में हिन्दुत्व की दो अलग अलग व्याख्याअें की हैं:

१. धार्मिक दृष्टि से हिन्दुत्व की व्याख्या:—
अविभक्तं विभक्तेषु धर्मं यो वेत्ति तत्त्वत:।
निर्वैर: सर्व धर्मेषु स हिन्दुरितिशंकर: ॥

अर्थात् जो धार्मिक भेद में अभेद देखता है और किसी धर्म से वैर नहीं करता, वही हिन्दू है। कहना न होगा कि प्राध्यापक गोखलेजी की यह परिभाषा हिन्दुत्व की विशेषता नहीं बतलाती। अगर आप किसी भी दूसरे धर्म के समझदार और विवेकशील अनुयायी से अुसके धर्म के विषय में पूछें, तो वह भी यही कहेगा। सारांश, यह व्याख्या हिन्दू धर्म की नहीं है; प्रत्युत धर्म-सहिष्णुता या धार्मिक अुदारता की है।

२ राष्ट्रीय भावना के पहलू से प्राध्यापक गोखले की हिन्दुत्व की व्याख्या अिस प्रकार है:—
राष्ट्रस्य भूत्यर्थं अहिन्दु: धर्मतोऽपिसन्
कायेन मनसा वाचा यतते हिन्दुरेव स: ।

अर्थात धर्मत: हिन्द्वेतर होते हुअे भी जो काया-वाचा-मन से राष्ट्र के अभ्युदय के लिअे प्रयत्नशील है वह हिन्दू है। अपने सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के लिअे प्राध्यापक गोखले ने बाजीराव और मस्तानी के पुत्र समशेर बहादुर का अुदाहरण दिया है। प्राध्यापक गोखले के मत से धर्म से मुसलमान होते हुअे भी, समशेर बहादुर हिन्दू राष्ट्र का घटक था।

तब तो प्राध्यापक गोखले से हमारा अितना ही निवेदन है कि वे 'हिन्दू' शब्द को द्व्यर्थी बनाने का आग्रह न रक्खें। हिन्दू शब्द धर्म या जाति-वाचक ही रहे और राष्ट्र या देश की भावना का वाचक शब्द 'हिन्दुस्तानी,' 'भारतीय' या 'हिन्दी'—अिनमें से कोअी चुना जाय।

श्री ग० वि० केतकर

अुपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि यदि हिन्दुत्व शब्द को राष्ट्रवाचक बनाने का नाहक आग्रह न रक्खा जाय, तो ये असंगतियाँ और विप्रतिपत्तियाँ अुपस्थित नहीं होंगी। यह विरोध अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के मन्त्री श्री ग० वि० केतकर के भी ध्यान में आया। अुसका परिहार करने के अुद्देश्य से अुन्होंने २९ जुलाअी १९४१ के 'केसरी' में 'हिन्दूराष्ट्र याने हिन्दूराज्य नहीं है' शीर्षक अेक लेख लिखा। हिन्दू राज्य और हिन्दू राष्ट्र के पृथक्करण का जो निरूपण केतकर महाशय ने किया है, वह हमें परस्पर-विरोधी और असंगत प्रमेयों से परिपूर्ण प्रतीत होता है। केतकर महोदय लिखते हैं—
'हिन्दूसभा के ध्येय और नीति की बाबत सभा के आलोचकों और प्रतिस्पर्धियों के द्वारा जाने-अनजाने बहुत अपसमझ फैलायी जाती है। गलत आभास अुत्पन्न किया जाता है। अिनमें से पहला आभास यह है कि हिन्दू-महासभा 'हिन्दू-राज्य' स्थापित करना चाहती है। और विशेषता यह कि यह गलती अच्छे अच्छे जानकार भी करते हैं। 'हिन्दू-राष्ट्र' की ही कल्पना महासभा ने अपने सामने रक्खी है। परन्तु भली भाँति याद रहे कि हिन्दू राष्ट्र माने हिन्दू राज्य नहीं है।"

अिन दोनों का पृथक्करण केतकरजी अिस प्रकार करते हैं:—"हिन्दू-महासभा के विधान में हिन्दू राष्ट्र के तीन मूलतत्व समाविष्ट किये गये हैं। वे ये हैं—

(१) हिन्दू जाति; (२) हिन्दू संस्कृति और (३) हिन्दू राज्यशास्त्र। अिन तीन मूलतत्त्वों में हिन्दू राज्य का समावेश नहीं है। अिन तीनों का अेकत्रीकरण माने संस्कृति, परंपरा, जाति और सामाजिक चाल-रीतियों की अेकरूपता से संबद्ध अेक समाज। हिन्दूसभा की नीति के अनुसार हिन्दुस्तान की भावी सरकार का स्वरूप सम्पूर्णतः जनतंत्रात्मक और धर्म, जाति, पन्थ के अतीत समान नागरिक अधिकारों से परिपूर्ण रहेगा। महासभा के विधान में अुसके साध्य का नीचे लिखे अनुसार स्पष्ट अुल्लेख किया गया है—

'हिन्दुस्तान की हिन्दू और अहिन्दू जातियों में परस्पर सद्भावना बढ़ाना और बिना जाति या पन्थ के भेद का विचार करते हुअे नागरिकता के अधिकार और कर्तव्यों पर अधिष्ठित स्वायत्त तथा संगठित भारतीय राष्ट्र अुन्नत करने का प्रयत्न करना'।

श्री केतकरजी ने 'हिन्दू राष्ट्र', 'हिन्दू राज्य' और 'भारतीय राष्ट्र' अिन तीन संज्ञाओं का प्रयोग किया है और अुनका यह दावा है कि ये तीनों परस्पर-अविरोधी संज्ञाअें हैं। अुनके प्रतिपादन से यह ध्वनि निकलती है कि भारतीय राष्ट्र हिन्दू राष्ट्र की अपेक्षा अधिक व्यापक होगा और जाति-पन्थातीत होगा। अथच भारतीय राज्य भारतीय राष्ट्र का होगा, हिन्दू राष्ट्र का नहीं। याने हिन्दुत्व भारतीयत्व का पर्यायवाची प्रतिशब्द नहीं होगा। अिसका फलितार्थ यह है कि राष्ट्रीयता के लिअे हिन्दुत्व अनिवार्य नहीं है। और अिसलिअे 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' यह घोषणा गलत है।

हिन्दू राष्ट्र के लक्षणों में केतकरजी ने हिन्दू राज्य-शास्त्र का भी अन्तर्भाव किया है। प्रश्न यह है कि भारतीय राज्य हिन्दू राज्य-शास्त्र के अनुसार होगा या अर्वाचीन राज्यशास्त्र के अनुसार? जाति, धर्म, पन्थ-निरपेक्ष लोकसत्ता का हिन्दूराज्य शास्त्र से कहाँतक मेल होगा? क्या यह भी विचार किया जायगा कि भारत की भावी राज्यप्रणाली अन्य-धर्मावलम्बी भारतवासियों के राज्यशास्त्र से कहाँतक मेल खाती है? अगर नहीं, तो क्या वह 'भारतीय राज्य' वस्तुतः और परिणामतः हिन्दू राज्य ही नहीं होगा?

अनेक राष्ट्रवाद

श्री केतकरजी की मीमांसा में से दूसरा प्रश्न यह अुपस्थित होता है कि क्या अेक ही देश में अनेक राष्ट्र होंगे? क्या हिन्दुस्तान में जितने धर्म हैं, अुतने ही राष्ट्र भी होंगे? जो हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राज्यशास्त्र में समाविष्ट नहीं हो सकते, अैसे भिन्नजातीय, भिन्न संस्कृतिवाले और भिन्न राज्यशास्त्र को माननेवाले अनेक राष्ट्र क्या अेकत्र अेक ही राज्य के घटक बन कर हिल-मिलकर रहेंगे? तब तो श्री मुहम्मद अली जीना साहब का अनेक-राष्ट्रवाद मानना पड़ेगा। क्या केतकरजी का यह आशय है कि भारतीय राष्ट्र अनेक अुपराष्ट्रों का समुच्चय होगा? तो फिर अुस समुच्चय का आधारभूत तत्त्व सिवा सामान्य देश या भौगोलिक राष्ट्रीयता के और क्या हो सकता है?

भौगोलिकता का आरोप

श्री सावरकरजी ने अपने भागलपुर के अभिभाषण में कॉंग्रेस और तत्सदृश दूसरी संस्थाओं की निन्दा अिन शब्दों में की है: 'The Congress, the Forward Block and all such organisations in

India have sinned against this conception of real nationality under a false nation of geographical nationality.' ('कॉंग्रेस, फार्वर्डब्लाक, और अुसी तरह की दूसरी संस्थाओं ने भौगोलिक राष्ट्रीयता की मिथ्या धारणा के चक्कर में पड़ कर यथार्थ राष्ट्रीयता की अिस कल्पना के विरोध का पाप किया है)

समान दोष

लेकिन जब वह स्वतः धर्म-जाति-निरपेक्ष भारतीय नागरिकता का प्रतिपादन करते हैं, तब क्या अिसी भौगोलिक तत्त्व का आश्रय नहीं करते ? अन्यथा वह यह कैसे कह सकते हैं कि जो भारत की चतुःसीमा में आ कर बस गया हो, अुसे नागरिकता के समान अधिकार होंगे ? मुस्लिम-सत्तावादियों के जवाब में अुन्होंने अेक बार बेशक यह कहा था कि अगर तुम्हारा तुर्कस्तान से ले कर अफगानिस्तान तक अेक अखण्ड प्रदेश है, तो हमारा भी हिन्दूकुश से टोकियो तक अेक अखण्ड क्षेत्र है। लेकिन वर्तमान युद्ध में जापान के शामिल होते ही, अुन्होंने कहा कि जापान अपने स्वार्थ की भावना से प्रेरित हुआ है, अिसलिअे हमें अुसका विरोध करने में झिझक नहीं होनी चाहिअे। जापान और हिन्दुस्तान के हितों के विरोध की यह कल्पना भी क्या देशाश्रित राष्ट्रीयता पर ही स्थित नहीं है ?

पाकिस्तानवाद से समानता

सारांश, अगर हमारा राष्ट्रीयत्व जाति-धर्म-निरपेक्ष हो, तो हिन्दुत्व राष्ट्रीयत्व का अेक अविरोधी और महत्त्वपूर्ण घटकावयव भले ही हो, पर वही राष्ट्रीयत्व नहीं हो सकता। अगर हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, तो जाति-धर्म-निरपेक्ष राज्य भी वस्तुतः हिन्दू राज्य ही होगा, जिसमें अ-हिन्दू अल्प-संख्याकों को नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकार होंगे। अर्थात् राष्ट्रीयत्व धर्माश्रित ही होगा और अिसलिअे पाकिस्तानवाद का भी हमें तत्वतः समर्थन ही करना पडेगा। श्री रामानन्द बाबू भी हमारे कथन की ताअीद अिन शब्दों में करते हैं : " अुनकी (सावरकरजी की) अिस राय से कुछ हिन्दुस्तानी मुसलमानों की अिस कल्पना का कि वे अेक स्वतंत्र राष्ट्र हैं, अप्रत्यक्ष समर्थन होता है। (मॉडर्नरिव्यू, फरवरी १९४०)

विशुध्द जनतंत्र और धर्माश्रित राष्ट्रीयता दो विसंवादी प्रमेय हैं।

बहुमत का सम्प्रदायवाद

अिस दृष्टि से हिन्दुत्ववाद बहुसंख्य सम्प्रदाय का जातिवाद है। वह बहु संख्यांकों का जातिवाद है, अिसलिअे अुसका रूप राष्ट्रीयता के समान है। परंतु अुसमें और पाकिस्तानवाद में कोअी तात्त्विक भेद नहीं है। हिन्दुत्व को राष्ट्रीयत्व सिध्द करने की दृष्टि से अबतक जो व्याख्याअें की गयी हैं, अुनकी समीक्षा से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अपने अभिभाषण में वीर सावरकरजी ने भी कहा है :

It (The Hindu Mahasabha) realies that the best interests of the Hindus them-selves demand under the present circumstances that the Indian Nation and the Indian State should be based on these fundamental foundations.

(हिन्दूमहासभा महसूस करती है कि हिन्दुओं के सर्वश्रेष्ठ हितों की यह मांग है कि वर्तमान परिस्थिति में भारतीय राष्ट्र और भारतीय राज्य का आधार ये ही मूलभूत सिद्धान्त हों।)

The conception of any genuine nationality also, that takes no account of any communal or credal super-arrogations into consideration, can go no further.

('यथार्थ राष्ट्रीयता की कल्पना भी, जो किसी तरह के अनुचित साम्प्रदायिक या जातीय दावों का लिहाज नहीं करती, अिससे आगे नहीं बढ़ सकती ।)

मतलब यह कि आज की परिस्थिति में हिन्दू हित और राष्ट्रहित में विरोध नहीं है, अिसी लिअे हिन्दुत्वनिष्ठ व्यक्तियों को विशुद्ध राष्ट्रीयता के पक्षपाती होने में आपत्ति नहीं है ।

ऑक्सफोर्ड में अेक प्रश्न के अुत्तर में गांधीजी ने भी अिसी आशय का मत प्रकट किया था :

'They will have a national solution of the question, not because they are nationalists; but because it suits them.'

('वे अिस प्रश्न का राष्ट्रीय समाधान अिस लिअे चाहते हैं कि वह अुनके अनुकूल है; अिसलिअे नहीं कि वे राष्ट्रीय हैं' ।)

अिस आक्षेप का अेक ही समाधान-कारक अुत्तर हो सकता है । वह यह कि हम हिन्दुत्व और राष्ट्रीयत्व को अेक या पर्यायवाची ठहराने का प्रयास छोड़ दें । ये दोनों भाव अन्योन्य-व्यावर्तक या विरोधी नहीं हैं । लेकिन समकक्ष और समान भूमिका पर भी नहीं हैं ।

यथार्थ राष्ट्रधर्म

हिन्दुत्व की अव्याख्येयता अुसकी व्यापकता और सर्व-संग्राहकता का परिणाम है । अिसलिअे हिन्दुत्व की व्यावर्तक व्याख्या नहीं हो सकती, यह अुसका दूषण नहीं; भूषण है । अिसलिअे, 'जो अपने को हिन्दू कहलावे या माने, या हिन्दू-धर्म का त्याग न करे,' वह हिन्दू समझा जावे । लेकिन यही राष्ट्रीयत्व नहीं है । हिन्दुत्व राष्ट्रीयत्व के अविरुद्ध है; पर राष्ट्रीयत्व की अनिवार्य शर्त नहीं है । 'जो हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि मानता है, अन्य देशों से द्वेष न रखता हुआ हिन्दुस्तान को विशेष प्रेम करता है और जो अन्य देशों में बसनेवाले स्वधर्मीयों की अपेक्षा भारत में रहनेवाले अन्यधर्मीयों को अपने प्रेम और सेवा के सबसे पहले और विशेष अधिकारी मानता है, वह अिस राष्ट्र का घटक है, हिन्दुस्तानी है'—यह राष्ट्रीयता का लक्षण हमारे लिअे पर्याप्त है । यह केवल भौगोलिक नहीं है ।

अिस लक्षण के अनुसार दादाभाअी नौरोजी, जोसेफ बॅप्टिस्टा, नारायण वामन तिलक, मो० आजाद आदि देशभक्त हिन्दू न होते हुअे भी हिन्दुस्तानी हैं और जेम्स कजिन्स, सावित्री देवी भगिनी निवेदिता आदि हिन्दुस्तानी न होते हुअे भी हिन्दू हैं ।

मेरी नम्र सम्मति में यही शुद्ध राष्ट्रीयता है । राष्ट्रवाद के नाम पर जो सिद्धान्त हिन्दू-महासभा-निष्ठों और मुस्लिमलीगियों द्वारा अुपस्थित किये जाते हैं, वे सदोष हैं । तार्किक दृष्टि से वही सबल राष्ट्रवाद है और गांधीजी तथा कॉंग्रेस जिस राष्ट्रीयता का प्रतिपादन और प्रयोग द्वारा विकास कर रहे हैं, वही यथार्थ राष्ट्रीयता है ।

विधायक कार्यक्रम

अुसका रहस्य और स्थान

[मो० क० गांधी]

१

दूसरे और अधिक अुपयुक्त शब्दों में, विधायक कार्यक्रम को सत्य और अहिंसक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आजादी की रचना या निर्माण की प्रक्रिया कह सकते हैं।

हिंसक, और अिसीलिअे अनिवार्यत: असत्यमय, साधनों द्वारा स्वतन्त्रता या पूर्ण स्वराज्य की रचना का दुखदायी दर्शन हमें भरपूर हो चुका है। जरा मौजूदा लड़ाअी में होनेवाले द्रव्य, जीवन और सत्य के विनाश पर गौर फर्माअिये।

तात्त्विक दृष्टि से सत्य और अहिंसा के द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की स्थापना का अर्थ जनता के प्रत्येक घटकावयव की, चाहे वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो, जाति, रंग या धर्म-निरपेक्ष स्वतन्त्रता है। यह स्वराज्य कभी संकुचित या व्यावर्तक नहीं होता। अिसलिअे वह परस्परावलम्बन से पूरी तरह सुसंगत है। जिस तरह यूक्लिड की पारिभाषिक रेखा के मुकाबले में मनुष्य की खींची हुअी कोअी भी रेखा बहुत अपूर्ण ही रहेगी, अुसी तरह सिद्धान्त की तुलना में व्यवहार बहुत अपूर्ण रहेगा। अिसलिअे, हमारा व्यवहार पूर्ण स्वराज्य की तात्त्विक परिभाषा की दिशा में जितनी प्रगति करेगा, अुतनी ही मात्रा में हमारा पूर्ण-स्वराज्य पूर्ण होगा।

पाठक यदि अपने मन में सारे विधायक कार्यक्रम की योजना का चित्र खींचे, तो वह मेरे साथ सहमत होगा कि अगर विधायक कार्यक्रम सफलता से कार्यरूप में परिणत किया जाय, तो अुसका परिणाम हमारा अभीष्ट स्वराज्य ही होगा। क्या श्री अेमेरी ने नहीं कहा है कि मुख्य मुख्य दलों के बीच जो समझौता होगा—अिसका मेरी भाषा में अनुवाद किया जाय तो 'साम्प्रदायिक अेकता के बाद' जो समझौता होगा—वह मान्य किया जायगा। हमें अुनकी सचाअी पर सन्देह करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि अगर अिस तरह की अेकता प्रामाणिकता से याने अहिंसक रीति से, सम्पन्न हो, तो अुसमें सर्व-सम्मत योजना स्वीकृत कराने की स्वत:सिद्ध शक्ति होगी।

अिसके विपरीत 'हिंसा के जरिये स्वतन्त्रता' की निर्दोष या काल्पनिक परिभाषा जैसी कोअी चीज है ही नहीं। क्योंकि अुसमें राष्ट्र का जो दल हिंसा का अधिक-से-अधिक परिणामकारी प्रयोग कर सके, अुसका प्रभुत्व गृहीत है। अुसमें आर्थिक या अन्य प्रकार की सम्पूर्ण समानता की कल्पना भी नहीं हो सकती।

परन्तु अिस लेख का प्रयोजन तो अहिंसक प्रयत्न में विधायक कार्यक्रम के अनुसरण की आवश्यकता सिद्ध करना ही है। अिसलिअे यह जरूरी नहीं है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिअे हिंसा की अक्षमता के विषय में मेरी दलील स्वीकार की जाय। पाठक भले ही माने कि हिंसा की नींव पर रची हुअी योजना में भी हीन-से-हीन वर्ग की स्वतन्त्रता सम्भव है।

अब हम विधायक कार्यक्रम के तेरह अंगों की समीक्षा करें :

२

१. साम्प्रदायिक अेकता

अिस अेकता की आवश्यकता के बारे में सब कोअी हमराय हैं। लेकिन हरअेक को यह पता नहीं है कि अेकता का अर्थ केवल राजनैतिक अेकता नहीं है। क्योंकि राजनैतिक अेकता तो जबरदस्ती से लादी जा सकती है। साम्प्रदायिक अेकता के माने हृदय की वह अेकता है, जो तोड़ने से भी टूट न सके। अिस अेकता की स्थापना की पहली शर्त यह है कि प्रत्येक कॉंग्रेसजन, चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो, अपने आप में हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी, जरदुष्ट्रीय, यहूदी, आदि का, याने, अेक शब्द में, प्रत्येक हिन्दू और गैर-हिन्दू का, प्रतिनिधित्व करे। यह बात चरितार्थ करने के लिअे प्रत्येक कॉंग्रेसजन को दूसरे धर्म के व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत मित्रता कायम करनी और बढ़ानी चाहिअे। अुसे दूसरे धर्मों के प्रति अुतना ही आदर रखना चाहिअे जितना कि अपने धर्म के प्रति।

अैसी सुखद परिस्थिति में स्टेशनों पर 'हिन्दू पानी', 'अिस्लामी पानी', 'हिन्दू चाय', 'चाय अिस्लामिया' जैसी लज्जा-जनक पुकारें नहीं सुनायी देंगी। स्कूलों और कॉलेजों में हिन्दू और अ-हिन्दुओं के लिअे अलग अलग कमरे या बरतन नहीं रहेंगे और न साम्प्रदायिक स्कूल, कॉलेज या अस्पताल ही होंगे। अिस तरह की क्रान्ति का अुपक्रम कॉंग्रेसजनों द्वारा होना चाहिअे और अिस शुद्ध आचरण के पीछे कोअी राजनैतिक हेतु नहीं होना चाहिअे। राजनैतिक अेकता अुसका स्वाभाविक परिणाम होगी।

अैसी हार्दिक अेकता के सारे फलितार्थ शायद हमें चौंकानेवाले प्रतीत हों; हालाँकि वह अेकता तार्किक दृष्टि से अनिवार्य है। दूसरे धर्मों के व्यक्तियों के विरोध में कॉंग्रेसजन पार्लमेंटरी सत्ता प्राप्त करने की मन्शा नहीं रख सकते। अिसलिअे जबतक ये भेद-भाव विद्यमान हैं, तब तक कॉंग्रेसजनों को पार्लमेंटरी क्षेत्र से अलग रहना चाहिअे।

कअी दिनों से हमें यह सोचने की आदत हो गयी है कि सत्ता केवल धारा-सभाओं के जरिये ही आती है। मैं हमेशा मानता आया हूँ कि यह मान्यता निष्क्रियता और मोह में से अुपजी हुअी अेक गम्भीर भूल है। अिंग्लैंड के अितिहास को अूपर अूपर से पढ़ कर हम यह समझने लगे हैं कि सत्ता धारासभाओं में से धीरे धीरे जनता तक टपकती है। सच बात यह है कि सत्ता का अधिष्ठान जनता है और वह जिन्हें समय समय पर अपने प्रतिनिधि चुनती है, अुन्हें सत्ता सौंपती जाती है। अिन अिक्कीस वर्षों में लोगों के दिल में यह सामान्य सत्य जमाने का मेरा यत्न रहा है। सविनयभंग सत्ता का भण्डार है। जरा कल्पना तो कीजिये कि किसी देश की सारी की सारी जनता धारासभा के कानून मानने से अिनकार करती है और अुस अवज्ञा के परिणाम भुगतने के लिअे प्रस्तुत है। वह सारे धारा-विषयक और कार्यकारी शासनतंत्र को बिलकुल कुंठित कर देगी। अल्पसंख्याक जमातें कितनी ही प्रबल क्यों न हों, अुन्हें दबाने के लिअे पुलीस और सेना से काम लिया जाता है। लेकिन जो जनता पराकाष्ठा का कष्टसहन करने के लिअे तत्पर है, अुसके दृढ़ संकल्प को पुलीस या सेना के कोअी भी अत्याचार विचलित नहीं कर सकते।

और पार्लमेंटरी पद्धति तभी तक काम की होती है, जब तक अुसके सदस्य बहुमत की अिच्छा का अनुसरण करने के लिअे तैयार रहते हैं। दूसरे शब्दों में, वह परस्पर सुसंगत घटकों में ही कार्यक्षम साबित होती है।

हिन्दुस्तान में, जहाँ कि पृथक् निर्वाचनसंघों ने कृत्रिम प्रतिकूलताअें पैदा कर दी हैं, अुन र्वाचनसंघों के अनुसार हमने पार्लमेण्टरी पद्धति का प्रयोग करने का स्वाँग किया है। न कृत्रिम घटकों को केवल अेक मञ्च पर लाने से हम सजीव अेकता कदापि स्थापित नहीं र सकते। जो कोअी राज्यकर्ता हों, अुनके फेंके हुअे टुकडों के लिअे झड़पा-झड़पी और खींच-न का ही वह अखाड़ा हो सकता है। ये राज्यकर्ता लोहे के दण्ड से शासन करते हैं और रोधी दलों को अेक दूसरे के गले का घूंट लेने से रोकते हैं। अैसी लज्जास्पद स्थिति में से पूर्ण स्वतन्त्रता का अुदय होना मैं सर्वथा असम्भव मानता हूँ।

२. अस्पृश्यता-निवारण

आज अितने वर्षों के बाद हिन्दू-धर्म पर लगा हुआ यह काला धब्बा और कलंक मिटा डालने । आवश्यकता के बारे में बहुत लिखने की जरूर नहीं है। कॉंग्रेसजनों ने अिस विषय में बेशक हुत काम किया है। परन्तु मुझे यह कहते खेद होता है कि कअी कॉंग्रेसजनों ने अिस काम को वल राजनैतिक दृष्टि से ही जरूरी समझा है और यह नहीं माना कि हिन्दुओं को अुसकी ावश्यकता अपने धर्म की रक्षा के लिअे है। कॉंग्रेसी हिन्दू यदि अिस काम को शुद्ध भावना हाथ में ले लें, तो सनातनी कहलानेवाले लोगों पर आज तक जो असर हुआ है, अुससे कहीं धिक असर पड़ सकेगा। अुन्हें सनातनियों के पास विवाद के लिअे नहीं, अपितु अपनी अहिंसा अनुरूप मित्रभाव से जाना चाहिअे। अिसके अलावा, हरअेक हिन्दू को हरिजनों को नाना चाहिअे, अुनके सुखदुःख में भाग लेना चाहिअे और अुनके भयानक पृथग्वास अुनके साथ मित्रता करनी चाहिअे। यह पृथग्वास जिस राक्षसी भीषणता में हिन्दुस्तान पाया जाता है, वैसा संसार ने शायद कभी नहीं देखा होगा। मैं अपने अनुभव से जानता हूँ ं यह काम कितना कठिन है। लेकिन स्वराज्य-मन्दिर के निर्माण के भगीरथ प्रयत्न का वह क अंग है। और स्वराज्य का मार्ग सीधी चढ़ाअी का तथा सँकरा है। अुसमें बहुत-से कने चढ़ाव और बहुत-सी गहरी खाअियाँ हैं। स्थिर कदमों से अिन सबको पार करने के बाद हम शिखर तक पहुँच कर स्वतन्त्रता की ताजी हवा चख सकेंगे।

३. शराब-बन्दी

साम्प्रदायिक अेकता और अस्पृश्यता-निवारण के समान यह वस्तु भी कॉंग्रेस के कार्यक्रम में न्नीस सौ बीस से ही रही है। लेकिन फिर भी अिस अति आवश्यक सामाजिक और नैतिक सुधार कॉंग्रेसी जितना रस ले सकते थे, अुतना अुन्होंने नहीं लिया। अगर हम अहिंसात्मक प्रयत्न के ारा अपना ध्येय प्राप्त करना चाहते हैं, तो जो लाखों स्त्री-पुरुष शराब, अफीम वगैरा ीली चीजों के व्यसन के शिकार हो रहे हैं; अुनके भाग्य का निर्णय हम भविष्य की सरकार र नहीं छोड़ सकते।

अिस बुराअी को दूर करने में डॉक्टर, वैद्य और हकीम बहुत परिणामकारक मदद कर कते हैं। अुन्हें शराबखोरों और अफीमचियों को व्यसन-मुक्त करने के अुपाय खोजने चाहिअे।

अिस सुधार को तेजी से आगे बढ़ाने का स्त्रियों और विद्यार्थियों को विशेष सुयोग है। नेक तरह की प्रेममय सेवा द्वारा वे व्यसनाधीन व्यक्तियों पर अितना काबू जमा सकते हैं ; अुन्हें विवश हो कर अपने अपने व्यसन छोड़ देने का अनुरोध मानना ही पड़ेगा।

काँग्रेसकमेटियाँ अैसे विश्रान्ति-गृह खोल सकती हैं, जहाँ थके-मांदे मजदूर के गात्रों को विश्राम मिले, अुसे स्वास्थ्यपूर्ण और सस्ता कलेवा मिले और अुसके लायक खेल खेलने का अिन्तजाम हो। यह सारा काम चित्ताकर्षक और अुन्नतिकारक है। स्वराज्य के बारे में अहिंसक दृष्टि सर्वथा नयी दृष्टि है। अुसमें पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्य दाखिल हो जाते हैं। हिंसा के मार्ग में अैसे सुधारों की गुंजाअिश नहीं है। जिनकी अुस मार्ग में श्रद्धा है, वे अपनी अधीरता के कारण, और मैं तो कहता हूं कि अज्ञता के कारण, अिन बातों को मुक्ति के दिन तक मुलतबी रखते हैं। वे भूल जाते है कि स्थायी और स्वास्थ्यपूर्ण मुक्ति भीतर से ही आती है; याने आत्म-शुद्धि से ही अुद्भूत होती है।

४. खादी

खादी विवादग्रस्त विषय है। बहुत से लोगों की यह राय है कि खादी का प्रतिपादन करने में मैं आंधी के खिलाफ अपनी नाव चला रहा हूँ और अिस स्वराज्य की नैया को डुबाने जा रहा हूँ—अितना ही नहीं, मैं देश को पुराने अंधकार युग की तरफ लिये जा रहा हूँ। विधायक कार्यक्रम की अिस संक्षिप्त समीक्षा में मैं खादी के पक्ष में सारी दलीलें पेश करना नहीं चाहता। मैंने अुन दलीलों को पहले कअी बार काफी विस्तार से पेश किया है। यहाँ तो मुझे अितना ही दिखा देने से मतलब है कि खादी के कार्य को तरक्की देने में प्रत्येक काँग्रेसी ही नहीं बल्कि प्रत्येक भारतवासी क्या मदद दे सकता है। खादी देश के सब प्रजाजनों की आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता के आरंभ की सूचक है। मसल मशहूर है कि पेड़ की परीक्षा अुसके ल पर से होती है। हर अेक स्त्री पुरुष अगर आजमा कर देखे, तो मेरे कथन की सचाअी अुसपर अपने आप प्रकट हो जायगी। खादी के स्वीकार के साथ साथ अुसमें अन्तर्भूत दूसरी सारी चीजों का स्वीकार भी होना चाहिअे। खादी के माने है सार्वव्यापी स्वदेशी भावना—जीवन की सारी आवश्यकताअें हिन्दुस्तान में से ही, और सो भी ग्रामवासियों की मेहनत और बुद्धि के प्रयोग के द्वारा, प्राप्त करने का निश्चय। अर्थात् आज की गंगा अुलटी बहानी होगी। याने आज की तरह हिन्दुस्तान और विलायत के आधा दर्जन प्रमुख शहर देहातों को तबाह करके पुष्ट नहीं होंगे; बरन देहात अधिकांश स्वयंपूर्ण रहेंगे और दोनों पक्षों के हितों की रक्षा करते हुअे जिस हद तक सम्भव होगा अुस हद तक, स्वयंप्रेरणा से हिन्दुस्तान और दूसरे देशों के शहरों की भी सेवा करेंगे।

अिसके लिअे बहुत लोगों की मनोवृत्ति और अभिरुचि में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने की जरूरत है। अहिंसक मार्ग कअी बातों में सुगम है लेकिन दूसरी बहुत-सी बातों में बहुत विकट भी है। वह हरअेक भारतवासी के जीवन को स्पर्श करता है, अुसके भीतर छिपी हुअी शक्ति की भावना का तेज प्रज्ज्वलित करता है और भारतीय महामानव-सागर के बूंद बूंद के साथ अपने तादात्म्य का अभिमान अुसके दिल में जाग्रत करता है। हम कअी युगों से अहिंसा को गलती से निष्प्राणता समझते आये हैं। लेकिन वह निष्प्राणता नहीं है; बल्कि मनुष्य का जीवन जिन पर निर्भर है, अैसी आज तक की सभी ज्ञात शक्तियों से अधिक प्रभावशाली शक्ति है। मैंने काँग्रेस को और अुसके जरिये दुनिया को यही शक्ति भेंट करने की कोशिश की है। मेरे लिअे खादी भारतीय मानवता की अेकता का, अुसकी आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का, प्रतीक है और अिसीलिअे, अन्त में, जवाहरलाल नेहरू की काव्यमय भाषा में 'हिन्दुस्तान की आजादी की वर्दी' है।

परन्तु खादीमनोवृत्ति के माने जीवन की आवश्यकताओं के अुत्पादन और विभाजन का विकेन्द्रीकरण है। अिसलिअे अबतक हम अिस सूत्र का विकास कर सके हैं कि हरअेक गांव अपनी जरूरत की सारी चीजों का अुत्पादन तथा अुपयोग खुद करे और साथ साथ शहरों की आवश्यकताअें पूरी करने में भी हाथ बटाये।

बडे बडे अुद्योगों का केन्द्रीकरण और राष्ट्रीकरण तो अवश्य करना ही पडेगा। लेकिन गांव की विशाल राष्ट्रीय प्रवृत्ति में अुनका स्थान कम-से-कम रहेगा।

खादी में कौन कौन-सी बातों का समावेश होता है, यह बतलाने के बाद अब मुझे यह सूचित करना चाहिअे कि अुसकी तरक्की के लिअे काँग्रेसजन क्या कर सकते हैं और अुन्हें क्या करना चाहिअे। खादी के अुत्पादन में कपास की खेती करना, कपास बीनना, लोढना, साफ करना, धुनना, पूनी बनाना, कातना, कलफ लगाना, रंग देना, ताना और बाना बनाना, बुनना और धोना, अिन क्रियाओं का समावेश होता है। रंगाअी के सिवा बाकी की सब आवश्यक प्रक्रियाअे हैं। अिनमें से हरअेक क्रिया गांवों में कार्यदक्षम रीति से की जा सकती है और हिन्दुस्तान में जिन बहुत-से गाँवों में अखिल भारत चरखा संघ काम कर रहा है, वहां अुनका प्रयोग हो भी रहा है। चरखा संघ की अुन्नीस सौ चालीस की रिपोर्ट में नीचे लिखे दिलचस्प आंकडे हैं :—

२७५,१४६ देहातियों को, जिन में १९,६४५ हरिजन और ५७,३७८ मुसलमान हैं और जो १३,४५१ गाँवों में बिखरे हुअे हैं, अुन्नीस सौ चालीस मे कताअी-बुनाअी आदि की मजदूरी के रूप में ३४,८५,६०९ रुपये मिले। अिनमें अधिकतर कत्तिनें ही थीं।

लेकिन अगर काँग्रेसजन खादी के कार्यक्रम को सच्चे दिल से अपनाते, तो जितना काम हुआ होता, अुसका यह सिर्फ सौवाँ हिस्सा है। अिस केन्द्रीय ग्रामोद्योग और अुसके सहचारी ग्रामोद्योगो के निर्दयतापूर्ण विनाश के बाद गाँवों से बुद्धि और तेज लोप हो गये हैं, गाँव निष्प्राण और निष्प्रभ हो गये हैं और अुनकी दशा करीब करीब अुनके अुपेक्षित पशुओं के जैसी ही हो गयी है।

अगर काँग्रेसजन खादी के बारे में काँग्रेस की आज्ञा का पालन करना चाहते हैं, तो खादी योजना में वे कौन-सा हिस्सा ले सकते हैं, अिसके विषय में चरखा संघ समय समय पर जो हिदायतें निकालेगा, अुनका वे अमल करें। लेकिन मैं यहाँ कुछ सामान्य नियम बनाये देता हूँ :

१. जिस परिवार के पास जमीन का अपना टुकडा हो, वह अपने अुपयोग के लिअे कपास बो सकता है। कपास की खेती की प्रक्रिया आसान है। बिहार के किसान अपनी जोतने लायक जमीन के ३/२० हिस्से में नील बोने के लिअे कानूनन बाध्य किये गये थे। यह नीलिये गोरों के स्वार्थ के लिअे किया गया था। हम अपनी अिच्छा से अपनी जमीन के कुछ हिस्से में राष्ट्र के लिअे कपास क्यों नहीं बो सकते? पाठक देखेंगे कि खादी-प्रक्रिया के आरम्भ से ही विकेन्द्रीकरण शुरू हो जाता है। आज कपास की खेती केन्द्रित है और कपास हिन्दुस्तान के दूर दूर के हिस्सों को भेजी जाती है। लडाअी के पहले खासकर विलायत और जापान को भेजी जाती थी। कपास व्यापारी फसल थी और है और अिसलिअे अुसपर बाजार की तेजी-मन्दी का असर होता है। खादी की योजना में कपास की खेती अिस अनिश्चितता और जुआबाजी में से मुक्त हो जायगी। बोनेवाले को जितनी जरूरत होती है, अुतना ही वह बोता है। किसान जानता है कि अुसका

पहला काम अपनी जरूरतों के लिअे बोना है। अिससे बाजार की मन्दी के कारण अुसके तबाह हो जाने की सम्भावना कम हो जाती है।

२. हरअेक कातनेवाले के पास अगर निजकी कपास न हो, तो वह लोढ़ने के लिअे काफी कपास खरीदे। वह हाथ-चरखी के बिना भी आसानी से लोढ़ सकता है। अपने हिस्से की कपास तो वह अेक तख्ती और लोहे की सलाअी से लोढ़ सकता है। जहाँ यह अव्यवहार्य मालूम हो, वहाँ हाथ की लुढ़ी हुअी कपास खरीद कर धुनी जाय। खुद के लिअे अेक छोटे-सी धुनकी पर आसानी से धुना जा सकता है। परिश्रम का जितना अधिक विकेन्द्रीकरण होगा, अुतने ही औजार सीधे-सादे और सस्ते होंगे। पूनियाँ बनने के बाद कताअी की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। मैं धनुष-तकली की बहुत जोर के साथ सिफारिश करता हूँ। अिधर ज्यादातर मैं अुसीका अुपयोग करता आया हूँ। मेरी गति चरखे के बराबर ही है। अिस तकली पर मैं ज्यादा महीन तार कातता हूँ और मेरे सूत की मजबूती तथा समानता चरखे के सूत से ज्यादा होती है। शायद सबके लिअे यह बात लागू न हो। धनुष-तकली पर मैं अिसलिअे जोर देता हूँ कि वह आसानी से बन सकती है, बहुत सस्ती है और चरखे की तरह अुसे दुरुस्त करने की जरूरत नहीं होती। जिसे चरखे की दोनों मालाअें बनाना नहीं आता, अुनके खिसक जाने पर अुनको ठीक ठीक लगाना नहीं आता, जब चरखा न चले, तो अुसे सुधारना नहीं आता, अुसका चरखा अकसर बेकार पड़ा रहता है। अिसके अलावा, अगर करोड़ों आदमी तुरन्त कातना शुरू कर दें—जैसा कि अिस लड़ाअी की तंगी के कारण भी शायद अुन्हें करना पड़े—तो अुनकी माँग धनुष-तकली ही पूरी कर सकती है; क्योंकि वह आसानी से बनायी और चलायी जा सकती है। वह तो सादी तकली से भी ज्यादा आसानी से बन सकती है। जरा कल्पना तो कीजिये कि अगर सारा राष्ट्र अेक साथ कताअी तक की सभी क्रियाओं में हिस्सा लेने लगे, तो अुसका अेकता और शिक्षा की दृष्टि से कितना असर होगा। धनवान और गरीबों के बीच समान परिश्रम के बन्धन की बदौलत जो समानता स्थापित होगी अुसके परिणाम का विचार कीजिये।

अिस तरह बने हुअे सूत का अुपयोग तीन प्रकार से हो सकता है: वह गरीबों के लिअे चरखा-संघ को दान कर दिया जाय, अपने लिअे बुनवा लिया जाय या अुसके बदले जितनी खादी मिल सके अुतनी ले ली जाय। यह तो स्पष्ट ही है कि सूत जितना महीन और अच्छा होगा अुतनी ही अुसकी कीमत आयेगी। अगर कॉंग्रेसजन दिलोजान से अिस काम में जुट जायँ, तो वे औजारों में सुधार करेंगे और कअी आविष्कार करेंगे। हमारे देश में श्रम और बुद्धि में विच्छेद रहा है। परिणाम अप्रगमनशीलता है। अगर अिन दोनों का अविच्छेद्य गठबन्धन हो जाय, और वह भी यहाँ सुझाअी हुअी रीति से, तो अपरिमित शुभ परिणाम होगा।

अिस राष्ट्रव्यापी सूत्रयज्ञ के आयोजन में मैं साधारण पुरुष या स्त्री से हररोज अेक घण्टे से अधिक की अपेक्षा नहीं करता।

५. अन्य ग्राम अुद्योग

अिन अुद्योगों की भूमिका खादी से भिन्न है। अुनमें अैच्छिक श्रम के लिअे ज्यादा गुंजाअिश नहीं है। हरअेक अुद्योग मे मनुष्यों की खास तादाद के ही परिश्रम की जरूरत पड़ती है। ये अुद्योग खादी के अनुचर जैसे है। वे खादी के बिना जी नहीं सकते और अुनके बिना खादी की सारी बकत नष्ट हो जायगी। हाथ की पिसाअी, हाथ की कुटाअी, साबुनसाजी, कागज

बनाना, दियासलाओी बनाना, चमड़ा कमाना, तेल पेरना आदि आवश्यक ग्राम अुद्योगों के बिना ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूर्ण नहीं हो सकती। कॉंग्रेसजन अिसमें रुचि ले सकते हैं। और अगर वे देहाती हों, या देहातों में जा कर बसें, तो अिन अुद्योगों में वे नयी जान डालेंगे और अुन्हें नया जामा पहनायेंगे। जहाँ जहाँ और जब जब देहात की बनी चीजें मिल सकें, वहाँ अुन्हींका अुपयोग करना हरअेक को अपना कर्तव्य मानना चाहिअे। अगर माँग हो, तो अिसमें शक नहीं कि, हमारी अधिकांश आवश्यकताअें देहातों में पूरी हो सकती हैं। जब हम ग्रामीण मनोवृत्ति के बन जायेंगे तब हमें नकली विदेशी चीजों की या यन्त्रों की बनी चीजों की जरूरत नहीं मालूम होगी। हम वास्तविक राष्ट्रीय अभिरुचि का विकास करेंगे जो कि अुस नवीन भारतवर्ष के दर्शन के अनुकूल होगी जिस भारतवर्ष में न कंगालियत होगी, न रोटियों की मुंहताजी होगी और न अकाली होगी।

६. गाँव-सफाओी

बुद्धि और श्रम के तलाक की बदौलत देहातों की अवहेलना का अपराध हमसे हुआ है। और अिसीलिअे सारे देश में जहाँ तहाँ रमणीय गांवों के बदले हम घूरे देखते हैं। बहुतेरे गाँवों के पास पहुंचते ही ताजगी का अनुभव नहीं होता। अगल-बगल में अितनी गन्दगी और सख्त बदबू होती है कि आंखें और नाक बन्द कर लेने की तबीयत होती है। अगर अधिकांश कांग्रेसजन देहातों से ही आये हुअे हों, जैसा कि होना चाहिअे, तो अुनमें अपने गांवों को हर माने में स्वच्छता के आदर्श बनाने की कूवत होनी चाहिअे। लेकिन देहातियों के दैनिक जीवन के साथ समरस हो जाना क्या अुन्होंने कभी अपना कर्तव्य समझा है? राष्ट्रीय और सामाजिक सफाओी का गुण हम लोगों में नहीं रहा है। हम जैसे तैसे स्नान कर लेते हैं। लेकिन हम जिस कुअें, तालाब या नदी पर नहाते-धोते हैं, अुसे गन्दा करने में कोओी बुराओी नहीं समझते। मैं अिस दोष को अेक महान दुर्गुण मानता हूँ। हमारे देहातों और पवित्र नदियों के घाटों की लज्जास्पद दशा के लिअे और गन्दगी से फैलनेवाली बीमारियों के लिअे यही दोष जिम्मेवार है।

७. नयी या बुनियादी तालीम

यह नया विषय है। लेकिन वर्किंगकमेटी के सदस्यों को अिसके प्रति अितनी आस्था हुओी कि अुन्होंने हिन्दुस्तानी तालीमी संघ को सनद दे दी। हरिपुरा कॉंग्रेस से यह संघ काम कर रहा है। कओी कॉंग्रेसजनों के लिअे यह अेक व्यापक कार्यक्षेत्र है। अिस शिक्षण का अुद्देश्य देहाती बालकों को आदर्श ग्रामवासी बनाना है। अुसका आयोजन ही खास अुन्हीके लिअे है। अुसकी प्रेरणा देहातों से मिली है। कॉंग्रेसजन, जो कि स्वराज्य के भवन का निर्माण बिलकुल पाये से ही करना चाहते हैं, बालकों की अुपेक्षा हरगिज नहीं कर सकते। विदेशी सत्ता ने भी अनजान में, लेकिन निश्चितरूप से, शिक्षा के क्षेत्र में बालकों से ही आरम्भ किया। प्रचलित प्राथमिक शिक्षण अेक ढकोसला है, जिसमें न तो ग्रामीण भारत की आवश्यकताओं का कोओी लिहाज रक्खा गया है और न शहरों की जरूरतों का ही। बुनियादी शिक्षण शहर और देहात के बालकों का सम्बन्ध भारत के अुत्कृष्ट और चिरस्थायी तत्त्वों के साथ कायम कर देता है। वह संबंध कायम करने के प्रयत्न में वह बालक या बालिका अपने विद्यार्थी-जीवन के आरम्भ से ही हाथ बटाने लगती

है। कॉंग्रेसजन अुसे अितना रुचिकर पायेंगे कि वे अुसी में मग्न हो जायंगे। अुससे जितना अुनके सम्पर्क में आनेवाले बालकों का फायदा होगा अुतना ही स्वतः अुनका भी होगा। जिनकी अिच्छा हो, वे संघ के मन्त्री, जो कि सेवाग्राम में रहते हैं, से सम्पर्क रक्खें।

८. प्रौढ़-शिक्षण

कॉंग्रेसजनों ने अिस विषय की घोर अुपेक्षा की है। जहाँ अुपेक्षा नहीं की है, वहाँ निरक्षरों को लिखना-पढ़ना सिखा कर ही अुन्होंने सन्तोष मान लिया है। अगर प्रौढ़शिक्षण मुझे सौंप दिया जाय, तो मैं अपने प्रौढ़ विद्यार्थियों में सबसे पहले अपने देश की महत्ता और विशालता का भान जाग्रत करूँगा। देहाती का हिन्दुस्तान अुसके अपने गाँव तक ही सीमित होता है। अगर वह दूसरे गाँव को जाता है, तो अपने गाँव का जिक्र अपना घर कहके करता है। अुसके लिअे हिन्दुस्तान अेक भौगोलिक संज्ञा है। देहातों में जो अज्ञान छा रहा है, अुसका हमें कोअी खयाल नहीं है। देहाती लोगों को विदेशी शासन और अुसकी बुराअियों का पता नहीं है। जो कुछ जरा-सा ज्ञान वे अिधर-अुधर से बटोर लेते हैं, अुसकी बदौलत अुनके दिल पर विदेशी की धाक जमती है और अपनी अशरणता का भान। नतीजा यह यह है कि अुन्हें विदेशियो और अुनके शासन से डर और घृणा होती है। अुससे छुटकारा पाने का अिलाज अुन्हें नहीं सूझता। वे नहीं जानते कि अुनकी कमजोरियों की बदौलत और विदेशी सत्ता से छुटकारा पाने की अपनी शक्ति के बारे में अुनके अज्ञान की बदौलत ही विदेशी यहाँ पर मौजूद हैं।

अिसलिअे मेरे प्रौढ़-शिक्षण के माने यह हैं कि सब-से पहले प्रौढ़ों को मौखिक रूपसे सच्ची राजनैतिक शिक्षा दी जाय। अिसकी रूपरेखा पहले-से ही बना ली जायगी। अिसलिअे वह बेखटके दी जा सकती है। मैं समझता हूँ कि अब अिस जमाने में सरकार अिस शिक्षण में बाधा नहीं डालेगी। लेकिन अगर बाधा पहुँचायी जाय, तो अिस प्राथमिक अधिकार के लिअे हमें लड़ना चाहिअे; क्यों कि अुसके बिना स्वराज्य नहीं हो सकता। कहना न होगा कि जो कुछ मैंने लिखा है अुसमें यह तो मान ही लिया गया है कि जो काम होगा वह सरेआम होगा, प्रकटरूप से होगा। अहिंसा को डर से घृणा है और अिसीलिअे गुप्तता से नफरत है। जबानी शिक्षा के साथ साथ लिखने-पढ़ने की शिक्षा भी दी जायगी। यह भी अेक विशेषता ही है। शिक्षा की अवधि घटाने के तरीके आजमाये जा रहे हैं। यहाँ जिस कल्पना की व्याख्या गयी है, अुसे मूर्त स्वरूप देने के लिअे और कार्यकर्ताओं के मार्ग-दर्शन के लिअे वर्किंगकमेटी विशेषज्ञों का अेक स्थायी या अस्थायी मण्डल मुकर्रर कर सकती है। मैं मानता हूँ कि अिस परिच्छेद में जो कुछ मैंने कहा है, अुससे सिर्फ दिग्दर्शन मात्र हो सकता है। यह काम करने की विधि हरअेक कॉंग्रेसजन के लिअे यहां नहीं बतलायी गयी है। अिस विशिष्ट काम के लिअे हरअेक कॉंग्रेसजन योग्य भी नहीं है। लेकिन जो कॉंग्रेसजन शिक्षक का काम करते हैं, अुनके लिअे अिन सूचनाओं के अनुरूप पाठ्यक्रम बनाना मुश्किल नहीं होना चाहिअे।

९. स्त्रियों की अुन्नति

मैंने स्त्रियों की अुन्नति का समावेश विधायक कार्यक्रम में किया है। क्यों कि यद्यपि सत्याग्रह ने स्त्रियों को अुनके अंधकारमय जीवन से अितने थोड़े समय में अुबारा है, जितना कि दूसरे किसी साधन से असम्भव था; तथापि अबतक कॉंग्रेसजनों ने अिस बात की आवश्यकता महसूस

नहीं की है कि स्त्रियों को भी स्वराज्य की लड़ाओी में पुरुषों की बराबरी का स्थान प्राप्त करा देना चाहिओे। अब तक यह बात अुनके गले नहीं अुतरी है कि स्त्री सेवाधर्म में पुरुष की यथार्थ सहधर्मिणी होनी चाहिओ। स्त्री अैसे कानून और रस्मरिवाजों से दबा दी गयी है, जिनके लिओ पुरुष जिम्मेवार है और जिनके गढ़ने में स्त्री का कोओी हाथ नहीं रहा। अहिंसा की नींव पर रची हुओी समाज-व्यवस्था में स्त्री को अपने भाग्य का विधान करने का अुतना ही अधिकार है, जितना कि पुरुष को। परन्तु अहिंसक समाज में प्रत्येक अधिकार कर्तव्यपालन में से अुत्पन्न होता है। अिसलिओ यह क्रम-प्राप्त है कि सामाजिक व्यवहार के नियम पारस्परिक सहयोग और विचार-विनिमय से बनाये जायँ। वे कभी बाहर से लादे नहीं जा सकते। स्त्रियों के प्रति अपने व्यवहार में पुरुषों ने यह सत्य पूरी तरह महसूस नहीं किया है। स्त्रियों को अपने मित्र और सहयोगी समझने के बजाय अुन्होंने अपने को अुनके स्वामी और शासक माना है। कॉंग्रेसजनों का यह विशेष अधिकार है कि वे भारत की स्त्रीजाति को अूपर अुठने में मदद दें। स्त्रियों की स्थिति कुछ कुछ पुराने जमाने के गुलामों जैसी है; जिन्हें यह होश भी नहीं होता था कि वे कभी आजाद हो सकते हैं या होना चाहिओ। अिसलिओ जब स्वतन्त्रता आयी, तो वे असहायता अनुभव करने लगे। स्त्रियों को यह सिखाया गया है कि वे अपने आपको पुरुषों की दासियाँ समझें। कॉंग्रेसजनों का यह फर्ज है कि वे स्त्रियों को अपना पूरा रुतबा प्राप्त करके पुरुषों की बराबरी से काम करने की शक्ति सम्पादन करा दें।

अगर हम निश्चय कर लें, तो यह क्रान्ति सरल है। कॉंग्रेसजनों को अपने घर से ही शुरू करना चाहिओ। हमारी पत्नियाँ गुड़ियाँ या भोग्य विषय नहीं होनी चाहिओं; बल्कि, अुन्हें हमें सेवा-धर्म के आदरणीय साथी समझना चाहिओ। अिस अुद्देश्य की पूर्ति के लिओ, जिन स्त्रियों को अुच्च शिक्षा नहीं मिली है, अुन्हें अुनके पतियों से यथा-सम्भव अुच्च शिक्षा मिलनी चाहिओ। आवश्यक हेरफेर के साथ यही बात माताओं और कन्याओं के लिओ भी लागू है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने भारत की स्त्रियों की बेकरार हालत का अेकांगी चित्र खींचा है। मुझे भलीभाँति पता है कि देहातों में साधारणत: वे पुरुषों की बराबरी करती हैं, और कओी बातों में अुनपर हुकूमत भी चलाती हैं। लेकिन किसी निष्पक्षपाती विदेशी की दृष्टि से सभी स्त्रियों का कानूनी और परम्परागत दर्जा काफी निकृष्ट है और अुसमें जड़मूल से परिवर्तन होना जरूरी है।

१०. स्वास्थ्य और शौच की शिक्षा

पूछा जा सकता है कि 'गाँव-सफाओी को अिस कार्यक्रम में स्थान देने के बाद स्वास्थ्य और शौच के शिक्षण को अलग स्थान देने की क्या जरूरत है? वह गांव-सफाओी के पेटे में दिया जा सकता था? लेकिन मैंने अुन कलमों के क्रम में दखल देना अुचित नहीं समझा। सिर्फ गांव-सफाओी के जिक्र में स्वास्थ्य और शौच नहीं आ जाता। अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने की कला और शौच का ज्ञान अध्ययन का और तदनुरूप आचरण का अेक अलग विषय है। सुव्यवस्थित समाज के नागरिक स्वास्थ्य और शौच के नियम जानते हैं और पालन करते हैं। यह बात नि:संदिग्धरूप से प्रमाणित हो चुकी है कि मनुष्यजाति को होनेवाले अधिकांश रोग स्वास्थ्य और शौच के नियमों

की अवहेलना के कारण ही होते हैं। हमारे यहां का मृत्यु का बहुत बड़ा परिमाण निःसंदेह हमारे प्राणों को कुतरनेवाले दारिद्र्य के ही कारण है। लेकिन लोगों को शौच और स्वास्थ्य की समुचित शिक्षा दी जाय, तो वह परिमाण घटाया जा सकता है।

'चंगा शरीर, चंगा दिल,' शायद मानवता का पहला कानून है। 'स्वस्थ शरीर, स्वस्थ चित्त', अेक स्वयंसिद्ध सत्य है। शरीर और मन में अनिवार्य सम्बन्ध है। अगर हमारे दिल चंगे होते, तो हम सारी हिंसा का त्याग कर देते और सहजभाव से स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने की वजह से अनायास ही हमारे शरीर भी चंगे रहते। अतः आशा है कि कोअी भी काँग्रेसजन विधायक कार्यक्रम के अिस मद का निरादर नहीं करेगा। स्वास्थ्य और शौच के मूलभूत नियम सीधे-सादे हैं और सहज याद रह सकते हैं। मुश्किल तो है अुनके अमल में। नियम अिस प्रकार हैं—

शुद्ध से शुद्ध विचार रखिये। सारे बेकार और अपवित्र विचारों को निकाल दीजिये।

रातदिन ताजी-से-ताजी हवा में रहिये।

शारीरिक और मानसिक श्रम का संतुलन सम्हालिये।

सीधे खड़े हूजिये। सीधे बैठिये। अपने हरअेक काम में साफ-सुथरे रहिये। अिन सब बातों में आपकी भीतरी स्थिति अभिव्यक्त होनी चाहिअे।

अपने भाअियों की सेवा के लिअे जीने के लिअे खाअिये। भोगविलास के लिअे जीवित न रहिये। अतः आपका आहार ठीक अुतना ही हो, जितना की मन और शरीर को सुस्थिति में रखने के लिअे आवश्यक हो। मनुष्य जो खाता है, वैसा बनता है।

आपका पानी, अन्न और हवा स्वच्छ होने चाहिअें और आपको सिर्फ व्यक्तिगत स्वच्छता से सन्तोष नहीं मानना चाहिअे; बल्कि जो त्रिविध स्वच्छता आप अपने लिअे चाहते हैं, अुसीसे अपने आसपास का वातावरण भर देना चाहिअे।

११. राष्ट्रभाषा-प्रचार

अपनी मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेजी के प्रति हमारे विशेष अनुराग ने सुशिक्षित और राजनैतिक वृत्ति के वर्गों के तथा जनता के बीच अेक गहरी खाअी खोद दी है। हिन्दुस्तान की भाषाअें श्रीहीन हो गयी हैं। जब हम अपनी मातृभाषा में कोअी गहन विचार व्यक्त करने का व्यर्थ प्रयास करते हैं, तो हम हकलाते हैं। शास्त्रीय संज्ञाओं के लिअे कोअी प्रतिशब्द नहीं हैं। परिणाम विनाशकारी हुआ है। आधुनिक मनोवृत्ति से जनसमूह दूर रह जाता है। हिन्दुस्तान की महान भाषाओं की अवहेलना से कितनी असेवा हुअी है, यह हम ठीक ठीक नहीं कूत सकते। क्योंकि हम अपने जमाने के अत्यधिक निकट हैं। यह आसानी से समझ में आ सकता है कि जबतक हम अिस अनर्थ का निराकरण नहीं करेंगे, तब तक जनता की बुद्धि जकड़ी हुअी रहेगी। जनता स्वराज्य के निर्माण में कोअी ठोस सहायता नहीं पहुँचा सकेगी। अहिंसा पर अधिष्ठित स्वराज्य में यह बात स्वयंसिद्ध है कि हरअेक व्यक्ति स्वतन्त्रता के आन्दोलन में प्रत्यक्ष सहायता दे। जब तक जनता स्वराज्य की लड़ाअी के हरअेक कदम का अुसके सारे फलितार्थों के साथ पूरा पूरा मतलब नहीं समझती, तब तक वह अपना हिस्सा पूरी तरह अदा नहीं कर सकेगी। जब तक अुसे हरअेक कदम अुसकी अपनी भाषा में नहीं समझाया जायगा, तब तक यह असम्भव है।

अिसके बाद अखिल भारतीय व्यवहार के लिअे हमें भारतीय कुटुम्ब की ही अेक अैसी भाषा चाहिअे जिसे ज्यादा-से-ज्यादा लोग पहले ही से जानते और समझते हों और जिसे दूसरे आसानी से सीख सकते हों। अैसी भाषा निर्विवादरूप से हिन्दी है। अुत्तर के हिन्दू और मुसलमान दोनों अुसे बोलते और समझते हैं। जब वह फारसी लिपि में लिखी जाती है, तो अुर्दू कहलाती है। अुन्नीस सौ पच्चीस की कानपुर कॉंग्रेस द्वारा स्वीकृत सुप्रसिद्ध प्रस्ताव में अिस अखिल भारतीय बोली को 'हिन्दुस्तानी' कहा गया है। और तब से, कम-से-कम सिद्धान्ततः, हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा रही है। मै 'सिद्धान्तरूप' से अिसलिअे कहता हूँ कि कॉंग्रेसजनों ने भी अुसका व्यवहार नहीं किया है। अिस परिच्छेद में मैंने जो चित्र खींचा है वह अुन्नीस सौ बीस के पहले की स्थिति का निदर्शक है। अुन्नीस सौ बीस से जनता की राजनैतिक शिक्षा की दृष्टि से भारतीय भाषाओं का महत्त्व और जिसे राजनैतिक वृत्ति का भारत आसानी से बोल सके और कॉंग्रेस की तथा अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी की बैठकों में आये हुअे विभिन्न प्रान्तों के कॉंग्रेसजन समझ सकें, अैसी अेक अखिल भारतीय बोली का महत्त्व, मान्य करने की कोशिश सोच-समझ कर की जाने लगी। और, अिसलिअे कॉंग्रेसजन स्वयं अंग्रेजी बोलने का आग्रह करते है और अपने लिअे दूसरों को भी अंग्रेजी बोलने को बाध्य करते हैं, अैसा, मेरी राय में शर्मनाक, नजारा हम देखते हैं। अंग्रेजी ने हम पर जो जादू का असर डाला है वह अभी नष्ट नही हुआ है। अुसके असर के कारण हम हिन्दुस्तान की अुसके ध्येय की ओर प्रगति में रोडे अटकाते है। हम अंग्रेजी सीखने में जितने साल बिताते, है अुतने महीने अगर हिन्दी सीखने में बिताने का कष्ट नही करते, तो जनता के लिअे हमारा प्रेम बिलकुल अूपरी है।

१२. स्वभाषा-प्रेम

अूपर के परिच्छेद में मै जो कुछ कह चुका हूँ, अुससे अधिक कहने की जरूरत नही है। हिन्दुस्तान को जो लोग अेक देश समझते हैं, अुनके लिअे ये दोनों प्रमेय अेक-दूसरे के साथ जुडे हुअे हैं।

१३. आर्थिक समानता के लिअे प्रयत्न

यह अन्तिम चीज अहिंसक स्वतन्त्रता की मानो गुरुकुंजी है। आर्थिक समानता के प्रयत्न के माने पूंजी और श्रम के शाश्वत विरोध का परिहार करना है। अुसके माने ये हैं कि अेक तरफ से जिन मुट्ठीभर धनाढ्यों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का अधिकांश अिकट्ठा हुआ है, वे नीचे को अुतरें; और जो करोडों लोग भूखे और नंगे है, अुनकी भूमिका अूंची अुठे। जब तक मालदार लोगों और भूखी जनता के बीच यह चौडी खाअी मौजूद है, तब तक अहिंसक राज्य-पद्धति सर्वथा असम्भव है। नयी दिल्ली के राजमहलों और गरीब मजदूरों की झोंपडियों में जो विषमता है, वह स्वतन्त्र भारत में अेक दिन भी नहीं टिक सकती। क्योंकि अुस समय गरीबों को अुतना ही अधिकार होगा जितना कि धनवान-से-धनवान आदमी को। अगर सम्पत्ति का और सम्पत्ति से प्राप्त होनेवाली सत्ता का खुशी से त्याग नहीं किया जायगा और सार्वजनिक हित के लिअे अुनका संविभाग नहीं किया जायगा, तो हिंसक क्रान्ति और रक्तपात अवश्यंभावी हैं। मेरे ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का जो मखौल किया गया है, अुसके बावजूद भी मैं अुस पर कायम हूँ। यह सच है कि अुसे कार्यान्वित करना मुश्किल है। परन्तु अहिंसा की सिद्धि भी तो अुतनी ही मुश्किल है। फिर

भी अुन्नीस सौ बीस में हमने यह सीधी चढ़ाअी चढ़ने का निश्चय किया। हमने पाया कि यह प्रयास व्यर्थ नहीं गया है।

अिस पुरुषार्थ के लिअे आवश्यक है कि अहिंसा किस तरह काम करती है, अिसका हमारा आकलन प्रति दिन बढ़ता जाये। जो कॉंग्रेसजन अध्यवसायपूर्वक खोजबीन करते हैं और अुन्हें दी जानेवाली आज्ञाओं के कारणों अेवं हेतुओं की मीमांसा करते हैं, अुनसे यह आशा रक्खी जाती है। अुन्हें समय-समय पर दी जानेवाली हिदायतों के प्रामाणिक या अधूरे पालन मात्र से अुन्हें सन्तोष नहीं मानना चाहिअे। अुन्हें अपने आपसे पूछना चाहिअे कि मौजूदा विषमताओं का अन्त अहिंसा या हिंसा से किस प्रकार किया जा सकता है। मैं समझता हूं कि हिंसक मार्ग हम सबको मालूम है। वह कहीं पर भी सफल नहीं हुआ है। कुछ लोगों का यह दावा है कि रूस में वह बहुत दर्जे तक सफल हुआ है। मुझे अिस बारे में सन्देह है। निर्विवाद्य दावा करने का समय अभी नहीं आया है। और आज जब कि रूस और जर्मनी में लड़ाअी छिड़ गयी है, हम कह भी नहीं सकते कि अिसका नतीजा क्या होगा।

हमारा अहिंसक प्रयोग अभी रचना की ही स्थिति में है। प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में अभी हम बहुत कुछ अुपस्थित नहीं कर सकते। लेकिन अपने अवलोकन के बाद मैं अिस विचार पर पहुँचा हूं कि, धीरे धीरे ही क्यों न हो, यह तरीका समानता की दिशा में काम करने लगा है। और अहिंसा तो मत-परिवर्तन की प्रक्रिया है। अिसलिअे अगर मत-परिवर्तन हुआ, तो वह स्थायी होगा। अहिंसकरूप से बने हुअे समाज में अितनी क्षमता होगी ही कि वह बाहरी या भीतरी आक्रमण का सामना कर सके। हमारे संगठन में धनवान् कॉंग्रेसजन हैं। अुन्हें अिस दिशा में नेतृत्व करना चाहिअे। यह संग्राम, जो कि हमारा अन्तिम संग्राम माना गया है, हरअेक कॉंग्रेसजन के लिअे अत्यन्त सूक्ष्म आत्म-परीक्षण का अवसर अुपस्थित करता है। अगर हम किसी समय अेकता कायम कर सकें, तो अुसकी नींव आज ही डालनी चाहिअे। जो लोग यह समझते हैं कि मुख्य मुख्य सुधार स्वराज्य की स्थापना के पश्चात् होंगे, वे अहिंसक स्वराज्य के संचालन के मूलभूत नियमों के विषय में अपने आपको धोखा देते हैं। वह स्वराज्य किसी दिन सुप्रभात में अेकाअेक आसमान से टपकनेवाला नहीं है। अुसका निर्माण अींट पर अींट रच कर सामुदायिक आत्मप्रयास से करना होगा। लेकिन अभी बहुत बडी और बिकट मंजिल तय करनी है; तब कहीं हम स्वराज्य का दर्शन अुसके पूरे अैश्वर्य में कर सकेंगे। हरअेक कॉंग्रेसजन को अपने आपसे यह पूछना चाहिअे कि आर्थिक समानता की स्थापना के लिअे अुसने क्या किया है।

३

किसान, मजदूर और विद्यार्थी

विधायक कार्यक्रम के तेरह अंगों की समीक्षा अब मैं खतम कर चुका हूँ। हरअेक अंग स्वराज्य की योजना के साथ किस तरह मेल खाता है और हरअेक कॉंग्रेसजन अुसका अमल किस प्रकार कर सकता है, यह बतलाने की मैंने कोशिश की है। यह कार्यक्रम अशेष नहीं है। स्वराज्य अेक भव्य भवन है। अुसके निर्माण में अस्सी करोड़ हाथों को काम करना होगा। अिसलिअे अिन तेरह अंगों की किस्म की और भी कअी बातें जोडी जा सकती हैं। अिन सबका केन्द्र चरखा होगा, जिसकी चारों तरफ दूसरी सारी प्रवृत्तियाँ घूमेंगी। निरन्तर सृजनात्मक सेवा की प्रेरणा चरखे से ही मिलनी चाहिअे।

मेरे कुछ सहयोगियों की तरह पाठकों के भी ध्यान में यह बात आयेगी कि किसान, कारखानों के मजदूर और विद्यार्थियों का कोअी अुल्लेख नहीं किया गया है। विधायक कार्यक्रम के अेक अंग के तौर पर अुनका जिक्र मैंने जानबूझ कर टाला है। अिस अुद्देश्य की पूर्ति के लिअे काम करनेवाले दूसरे कार्यकर्ताओं की तरह अुन्हें भी अिन तेरह बातों का अमल करना चाहिअे। स्वराज्य के आन्दोलन में वे जो हिस्सा ले सकते हैं, अुसकी अवहेलना करने के अिरादे से मैंने अुनका जिक्र नहीं टाला है। स्वतन्त्रता के आन्दोलन में अुनका जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, अुसका मुझे पूरा पूरा ध्यान है। अिस समीक्षा के पीछे प्रश्न यही है कि अुनका संगठन कौन करे? और कैसे?

मजदूर-संगठन

जहाँ तक मजदूरों का ताल्लुक है, अहमदाबाद के मजदूरों के संगठन के लिअे मैं जिम्मेवार हूँ। मेरी राय में वह सारे हिन्दुस्तान के लिअे अेक अनुकरणीय नमूना है। अुसका आधार सरल और शुद्ध अहिंसा है। अुसे अपने आज तक के कार्यकाल में कभी पीछे नहीं हटना पड़ा। वह बिना शोरगुल और आडम्बर के अुत्तरोत्तर अधिकाधिक बलवान बनता गया है। अुसका अपना अस्पताल है, मिल-मजदूरों के बच्चों केलिअे स्कूल हैं, प्रौढ़ों के लिअे वर्ग हैं, अपना निजका छापखाना है, खादी की दूकान है और रहने के मकान हैं। करीब करीब सभी मजदूर वोटर हैं और चुनावों में अपने भाग्य का निर्णय करते हैं। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रयत्न से अुनके नाम मतदाताओं की सूची में दर्ज हो गये। अिस संगठन ने कांग्रेस के राजकाज में कभी हिस्सा नहीं लिया। शहर की म्युनिसिपालिटी की नीति पर अुसका असर पड़ता है। अुसे कअी पूर्णतया अहिंसक सफल हड़तालों का श्रेय मिला है। मिल-मालिक और मजदूरों ने अपने व्यवहारों का नियन्त्रण अधिकतर स्वेच्छा से पंचों द्वारा कराया है। अगर मेरा वश चले, तो मैं हिन्दुस्तानभर के मजदूरसंगठन का नियन्त्रण अहमदाबाद के नमूने पर करूं। अुसने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस के कार्यक्षेत्र पर अतिक्रमण करने की कोशिश कभी नही की और न अुसकी नीति पर अुस कॉंग्रेस का प्रभाव पड़ा है। मुझे आशा है कि वह समय आयेगा जब कि ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस के लिअे अहमदाबाद की पद्धति का स्वीकार करना सम्भव होगा और अखिल भारतीय यूनियन का अहमदाबादसंघ अेक अंग बन जायगा। लेकिन मुझे हड़बडी नहीं है। वह यथा-समय होगा।

किसान-संगठन

किसान-आन्दोलन के बारे में भी मुझे यह डर है कि सत्ता के राजकारण के लिअे किसानों का अुपयोग करने के विषय में अेक तरह की भद्दी होड़ है। मैं अिसे अहिंसक विधि के प्रतिकूल समझता हूँ। जो लोग किसानों के संगठन का मेरा तरीका जानना चाहते हैं, वे चम्पारन के आन्दोलन के अध्ययन से लाभ अुठा सकते हैं, जहां हिन्दुस्तान में पहली बार सत्याग्रह का प्रयोग किया गया और जिसके नतीजे से सारा हिन्दुस्तान वाकिफ है। वह अेक जनआन्दोलन में परिणत हो गया, जो शुरू से आखिर तक बिलकुल अहिंसक रहा। अुसका सम्बन्ध बीस लाख से अधिक किसानों से था। संघर्ष का विषय अेक निश्चित शिकायत थी जो कि सौ साल पुरानी थी। अुस शिकायत को दूर करने के लिअे कअी हिंसक बलवे हो चुके थे। वे दबा दिये गये। अहिंसक अिलाज छह महीनों में बिलकुल सफल हो गया। किसी प्रत्यक्ष प्रयत्न के बिना चम्पारन के किसान राजनैतिक दृष्टि से सचेत हो गये। अुनकी शिकायत दूर करने में अहिंसा की कार्यक्षमता का जो प्रत्यक्ष सबूत अुन्हें मिला, अुससे वे कांग्रेस की तरफ आकृष्ट हुअे और सविनय-भंग के आन्दोलनों में बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद और बाबू राजेन्द्रप्रसाद के नेतृत्व में अुन्होंने अच्छा नाम कमाया।

पाठक खेड़ा, बारडोली और बोरसद के किसान-आन्दोलनों के अध्ययन से भी लाभ अुठा सकते हैं। सफलता का रहस्य यह है कि किसानों की व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष शिकायतों के सिवा-अवान्तर राजनैतिक मामलों में अुनका अुपयोग करने से हमें अिनकार करना चाहिअे। किसी निश्चित अन्याय के विरोध में संगठित होना वे समझ सकते हैं। अुन्हें अहिंसा पर प्रवचनों की जरूरत नहीं है। अुनकी समझ में आनेवाले कारगर अिलाज का वे प्रयोग करते हैं और बाद में जब अुनसे कहा जाता है कि जिस अुपाय का अुन्होंने प्रयोग किया वह अहिंसक था, तो वे अुसको अुस रूप में आसानी से समझ जाते हैं।

जो कॉंग्रेसजन चाहें, वे अिन अुदाहरणों से किसानों में और किसानों के लिअे काम करने के तरीकों का अध्ययन कर सकते हैं। मेरे मत से कुछ कॉंग्रेसजनों ने किसानों के संगठन का जो तरीका अखत्यार किया है, अुससे किसानों की भलाअी नहीं हुअी; बल्कि शायद कुछ नुकसान ही हुआ है। बहरहाल अुन्होंने अहिंसक पद्धति का प्रयोग नहीं किया है। अिनमें से कुछ कार्यकर्ताओं के पक्ष में यह कहना होगा कि वे साफ साफ कबूल करते हैं कि अहिंसक तरीके में अुनका विश्वास नहीं है। अैसे कार्यकर्ताओं को मैं यह सलाह दूंगा कि अुन्हें न तो कॉंग्रेस के नाम का अुपयोग करना चाहिअे और न कॉंग्रेसजन की हैसियत से काम करना चाहिअे।

अब पाठकों की समझ में आ जायगा कि अखिल भारतीय स्वरूप में किसान और मजदूरों का संगठन करने की प्रतिस्पर्धा से अब तक मैं क्यों अलग रहा हूँ। काश, सभी हाथ अेक ही दिशा में खींचनेवाले होते। लेकिन शायद हमारे जैसे विशाल देश में यह नामुमकिन है। अहिंसा में किसी भी हालत में जबरदस्ती की गुञ्जाअिश नहीं है। शान्त बुद्धिवाद और अहिंसा के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण अपना काम करेंगे, यह विश्वास रखना चाहिअे।

विद्यार्थी-संगठन

विद्यार्थियों का प्रश्न मैंने अन्त में विचार करने के लिअे रख छोड़ा है। मैंने अुनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम करने की कोशिश की है। मैं अुन्हें जानता हूँ और वे मुझे जानते हैं। अुन्होंने मेरा बहुत काम किया है। कअी भूतपूर्व कॉलेज-विद्यार्थी मेरे गण्यमान्य सहयोगी हैं। मैं जानता हूँ कि वे भविष्य की आशा हैं। असहयोग आन्दोलन जब पूरे जोर पर था, तब अुनसे स्कूल और कॉलेज छोड़ने के लिअे कहा गया। कॉंग्रेस के आव्हान के अुत्तर में जिन अध्यापकों और विद्यार्थियों ने अध्ययन-अध्यापन छोड़ दिया, अुनमें से कुछ आज तक दृढ़ हैं और अुससे अुनका अपना और देश का बहुत लाभ हुआ है। वह आव्हान दोहराया नहीं गया; क्योंकि अुसके लिअे वायुमण्डल नहीं है। परन्तु अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि यद्यपि प्रचलित शिक्षण मिथ्या और अस्वाभाविक है, तो भी, हमारे देश के तरुण अुसके मोह को नहीं रोक सकते। कॉलेज का शिक्षण जीविका का साधन प्रस्तुत करता है। वह भद्र-समाज में प्रवेश पाने का प्रवेश-पत्र है। हमेशा की पटरी से गये बिना दूसरे किसी प्रकार से ज्ञान की क्षम्य पिपासा भी तृप्त नहीं की जा सकती। अुन्हें बहुमोल वर्षों के अुस अपव्यय की भी पर्वाह नहीं होती जो मातृभाषा का आसन छीन कर अुसपर डँटी हुअी अेक बिलकुल परायी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में होता है। अुस पाप को कोअी महसूस ही नहीं करता। अुन्होंने और अुनके शिक्षकों ने यह निश्चय कर लिया है कि आधुनिक विज्ञान और आधुनिक विचार से परिचय प्राप्त करने के लिअे देशी भाषाअें निकम्मी हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि जापान के लोग अपना काम कैसे चलाते होंगे? क्योंकि सुनता हूँ कि अुनका सारा शिक्षण जापानी भाषा के द्वारा होता है। चीनी सेनापति को अगर अंग्रेजी आती भी हो, तो बहुत थोड़ी आती है।

परन्तु विद्यार्थी जैसे भी हों, अिन्हीं तरुण-तरुणियों में से राष्ट्र के भावी नेता पैदा होनेवाले हैं। दुर्भाग्यवश अुनपर कअी तरह की शक्तियाँ परिणाम करती रहती हैं। अुन्हें अहिंसा आकर्षक नहीं मालूम पड़ती। 'घूंसे के बदले घूंसा या अेक घूंसे के बदले दो घूंसे', यह सिद्धान्त अुनकी समझ में आसानी से आता है। अुसका, क्षणिक ही क्यों न हो परन्तु, तुरन्त परिणाम होता है। पशुबल का यह प्रयोग अनन्त है। अुसे हम पशुओं में पाते हैं और मनुष्यों में युद्ध के समय देखते हैं, जो कि अब लगभग विश्वव्यापी हो गया है। अहिंसा के आकलन के लिअे शान्तिपूर्वक शोध और अुससे भी अधिक धैर्य तथा कठिन आचरण की आवश्यकता है। किसानों और मजदूरों के सम्बन्ध में जिन कारणों से मैं स्पर्धा के क्षेत्र से अलग रहा हूँ, अुन्हीं कारणों से विद्यार्थियों के हाथ के लिअे भी प्रतियोगिता में मैं नहीं अुतरा। लेकिन मैं भी अुनका अेक विद्यार्थी-साथी हूँ। फर्क अितना ही है कि मेरा विश्वविद्यालय दूसरा है। मेरे विद्यापीठ में दाखिल हो कर मेरे शोध में सम्मिलित होने के लिअे मेरी तरफ से अुन्हें स्थायी निमन्त्रण है। मेरी शर्तें ये हैं :—

१. विद्यार्थियों को दलबन्दी के राजकारण में शामिल नहीं होना चाहिअे। वे विद्यार्थी हैं, अन्वेषक हैं; न कि राजकाजी।

२. वे राजनैतिक हड़तालों का आश्रय न करें। अुन्हें वीर पूजा करनी चाहिअे। लेकिन वीरों के प्रति अुनकी श्रद्धा वीरों के श्रेष्ठ गुणों के अनुकरण के रूप में व्यक्त होनी चाहिअे; न कि वीरों के जेल जाने के, मृत्यु के या फाँसी दिये जाने के अुपलक्ष में हड़तालों के रूप में। अगर अुनका शोक असह्य हो और सभी विद्यार्थियों को समानरूप से दुःख होता हो, तो प्राचार्यों की अनुमति से अैसे अवसरों पर स्कूल या कॉलेज बन्द किये जायँ। अगर प्राचार्य न मानें, तो विद्यार्थी सभ्यतापूर्वक अपनी संस्थाओं को तब तक छोड़ दें, जब तक कि अुनके सञ्चालक पछता कर अुन्हें वापस न बुलावें। अुन्हें अलग रहनेवाले विद्यार्थियों पर या अधिकारियों पर किसी भी हालत में जबरदस्ती तो करनी ही नहीं चाहिअे। अुन्हें यह विश्वास होना चाहिअे कि अगर वे अपने व्यवहार में अेकता और सभ्यता से काम लें, तो अुनकी विजय अवश्य होगी।

३. अुन सबको वैज्ञानिक रीति से सूत्रयज्ञ करना चाहिअे। अुनके औजार हमेशा साफ-सुथरे और सुस्थिति में तथा कार्यक्षम रहें। सम्भव हो तो वे अुन्हें खुद बनाना सीखें। स्वाभाविक है कि अुनका सूत अुत्कृष्ट होगा। कातने की क्रिया और अुसके आर्थिक, सामाजिक, नैतिक तथा राजनैतिक सहचारी भावों के सम्बन्ध में अुपलब्ध साहित्य का वे अध्ययन करें।

४. वे कुल कपड़ा खादी का ही बरतें। विदेशी या देशी यन्त्रों की बनी हुअी चीजों की जगह अुसी तरह की देहाती चीजें अिस्तेमाल करें।

५. वे 'वन्दे मातरम्' या राष्ट्रीय झंडा स्वीकारने के लिअे दूसरों पर जबरदस्ती नहीं करेंगे। वे खुद राष्ट्रीय झण्डे के बटन लगा सकते हैं; मगर दूसरों पर जबरदस्ती नहीं कर सकते।

६. तिरंगे झंडे का सन्देश वे अपने जीवन में चरितार्थ कर सकते हैं और अिसलिअे अुन्हें अपने हृदय में अस्पृश्यता या सम्प्रदायवाद की भावना नहीं रखनी चाहिअे। वे हरिजनों और अन्य-धर्मीय विद्यार्थियों से सच्ची मित्रता करें और अुन्हें अपने आत्मीय समझें।

७. वे अपने घायल पड़ोसी को तात्कालिक अुपचार के रूप में सहायता पहुँचाना अपना कर्तव्य समझें। अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में सफाअी और टट्टी अुठाने का काम करें और गांव के प्रौढ़ों तथा बच्चों को सिखायें भी।

८. वे राष्ट्रभाषा, हिन्दुस्तानी, के दोनों रूप—याने हिन्दी और अुर्दू—सीखेंगे; ताकि जहाँ हिन्दी या अुर्दू का चलन हो, वहां अुन्हें अटपटा न लगे।

९. वे जो कुछ नयी बात सीखें अुसका अपनी मातृभाषा में अनुवाद करें और प्रति सप्ताह जब आसपास के गांवों का चक्कर लगायें, तो अुस बात को लोगों तक पहुंचायें।

१०. वे लुकछिप कर कुछ भी न करें; अपने सारे व्यवहार सरे आम करें। अुनका जीवन पवित्र और संयमी हो। वे निर्भय हों और अपने कमजोर साथियों की रक्षा करने के लिअे हमेशा तत्पर रहें। दगों या बलवों को अपनी जान जोखिम में डाल कर अहिंसक पराक्रम से शान्त करने की कोशिश करें। और जब हमारे संग्राम की अन्तिम घडी आ पहुंचे, तब वे अपनी-अपनी संस्थाअें छोड़ कर अपने देश की आजादी के लिअे अपने आप को कुरबान कर दें।

११. सहाध्यायिनी लडकियों के प्रति अुनका व्यवहार अत्यन्त सभ्यतापूर्ण और दाक्षिण्य-युक्त हो।

विद्यार्थियों के लिअे मैंने जो कार्यक्रम बना दिया है, अुसका अमल करने के लिअे अुन्हें समय निकालना चाहिअे। मैं जानता हूं कि वे अलाली में बहुत-सा समय बरबाद करते हैं। अगर वे सख्त कतरब्योंत करें, तो कअी घण्टे बचा सकते हैं। लेकिन मैं किसी विद्यार्थी पर अतिरिक्त बोझ नहीं लादना चाहता। अिसलिअे देशभक्त विद्यार्थियों को मैं यह सलाह दूंगा कि वे अेक वर्ष अिस काम के लिअे गँवा दें—अेकदम नहीं; लेकिन टुकडे टुकडे करके अपने कुल विद्यार्थी जीवन में मिला कर। वे देखेंगे कि अिस तरह बिताया हुआ अेक वर्ष समय का अपव्यय नहीं होगा। अुससे अुनकी मानसिक, नैतिक और शारीरिक योग्यता बढेगी और अपनी विद्यार्थी दशा में भी वे स्वतन्त्रता के आन्दोलन में खासा भाग ले सके होंगे।

४
सविनय कानूनभंग का स्थान

मैं कह चुका हूं कि अगर विधायक कार्यक्रम में सारे राष्ट्र का सहयोग प्राप्त हो सके, तो अहिंसक प्रयत्न से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये सविनय कानूनभंग अनिवार्यरूप से आवश्यक नहीं है। परन्तु अैसा सद्भाग्य राष्ट्रों या व्यक्तियों को क्वचित ही प्राप्त होता है। अिसलिअे राष्ट्र-व्यापी अहिंसक प्रयत्न में सविनय कानूनभंग का स्थान समझ लेना जरूरी है।

अिसके तीन निश्चित कार्य हैं—

१. किसी स्थानीय अन्याय के निवारण के लिअे अुसका सफल प्रयोग हो सकता है।

२. यद्यपि वह किसी खास अन्याय या बुराअी को लक्ष्य करके शुरू किया गया हो, तो भी परिणामों की तरफ से लापर्वाह हो कर स्थानीय लोगों की चेतना या अुनकी अन्तरात्मा को जाग्रत करने के लिअे आत्मयज्ञ के रूप में अुसका प्रयोग किया जा सकता है। चम्पारण में अैसा ही हुआ। जब मैंने सविनय कानूनभंग शुरू किया, तो अुसके परिणाम का जरा भी खयाल नहीं किया था और मैं खूब जानता था कि शायद लोग भी अुदासीन ही रहें। मेरा अन्देशा गलत साबित हुआ। अिसे आप अपनी रुचि के अनुसार अीश्वर की कृपा या भाग्य की बलिहारी समझें।

३. विधायक प्रयत्न में जनता का पूरा सहयोग न मिले, तो अुसके बदले सविनय कानूनभंग का प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि आज किया जा रहा है। यद्यपि वह स्वतन्त्रता की लड़ाअी का अेक अंश है और अुसमें सहायक है, तो भी अुसे जानबूझ कर वाक्स्वातन्त्र्य के विशेष प्रश्न तक ही सीमित रक्खा गया है। स्वतन्त्रता के जैसे सामान्य अुद्देश्यों के लिअे सविनय कानूनभंग कभी नहीं हो सकता। अुसका विषय निश्चित होना चाहिअे, स्पष्ट रूप से समझ में आने लायक होना चाहिअे और अुसे मंजूर करना प्रति-पक्षी के वश में होना चाहिअे। अगर अिस पद्धति का प्रयोग ठीक तरह से किया जाय, तो हमारा अन्तिम ध्येय अवश्य प्राप्त होगा।

मैंने सविनय कानूनभंग की सम्पूर्ण व्याप्ति और सम्भावनाओं की मीमांसा नहीं की है। मैंने अुसका जो विवेचन किया है, वह पाठक को विधायक कार्यक्रम और सविनय कानूनभंग का सम्बन्ध समझाने के लिअे काफी है। मैंने अूपर जो अुदाहरण दिये हैं, अुनके लिअे विस्तृत और व्यापक विधायक कार्यक्रम की न तो आवश्यकता थी और न सम्भावना ही थी। लेकिन जब सविनय कानूनभंग का अुद्देश्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति होता है, तब पूर्वतैयारी की जरूरत होती है। अुसके पीछे जो लोग प्रत्यक्ष लड़ाअी में लगे हुअे हैं अुनका प्रत्यक्ष और बुद्धियुक्त प्रयत्न होना चाहिअे। अिस प्रकार सविनय कानूनभंग लड़नेवालों के लिअे प्रोत्साहन और प्रतिपक्षी के लिअे चुनौती है। आजकल के सविनय कानूनभंग में अधिकारियों को चुनौती है। पाठक की समझ में यह बात साफ तौर से आ जानी चाहिअे कि करोड़ों आदमियों के विधायक प्रयत्न के रूप में सहयोग के बिना स्वतन्त्रता के लिअे सविनय कानूनभंग कोरी गीदड़भबकी है और बेकार से भी बदतर है।

अुपसंहार

यह कांग्रेस की तरफ से या सदर दफ्तर के आदेश से लिखा हुआ निबन्ध नहीं है। सेवाग्राम में कुछ सहकारियों के साथ मेरी जो बातचीत हुअी अुसका यह फल है। अुनको अिस बात की आवश्यकता प्रतीत होती थी कि मैं विधायक कार्यक्रम और सविनय कानूनभंग के विषय में और विधायक कार्यक्रम के अमल के तरीके के विषय में कुछ लिखूं। वह मांग पूरी करने का प्रयत्न मैंने अिस पुस्तिका द्वारा किया है। यह पुस्तिका पूर्ण नहीं है। लेकिन अुस कार्यक्रम का अमल कैसे किया जाय, अिसके विषय में वह काफी दिग्दर्शन कराती है।

स्वतन्त्रता के आन्दोलन का अेक अंग माने जाने के कारण अिस कार्यक्रम के किसी अंश का अुपहास कोअी पाठक न करे। बहुत-से लोग कअी छोटी-बड़ी बातें करते हैं, जिनका वे अहिंसा या स्वतन्त्रता से कोअी सम्बन्ध नहीं बतलाते। अुन बातों का अुन्हें करनेवालों की अपेक्षा के अनुसार मर्यादित परिणाम होता है। अेक ही मनुष्य, अगर वह सामान्य नागरिक के रूप में सामने आवे, तो अुसका कोअी महत्त्व नहीं होता; लेकिन जब वह सेनापति की हैसियत से प्रकट होता है; तो बड़ा भारी आदमी समझा जाता है, जिसके अेक कृपाकटाक्ष पर लाखों की जिन्दगी अवलम्बित है। अुसी प्रकार गरीब विधवा के हाथ में चरखा अेक नगण्य पैसा कमाने का साधन होता है। किसी जवाहरलाल के हाथ में वह हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता का अुपकरण है। चरखे की प्रतिष्ठा अुसके पद पर अवलम्बित है।

विधायक कार्यक्रम को हमने जो स्थान दिया है, अुसीके कारण अुसे अमोघ प्रतिष्ठा और शक्ति प्राप्त हुअी है ।

कम-से-कम मेरा तो यही मत है । हो सकता है कि यह अेक दीवाने का मत हो । अगर कॉंग्रेसजनों को वह न जँचे, तो अुन्हें अुसे अस्वीकार कर देना चाहिअे; क्योंकि मेरे लिअे विधायक कार्यक्रम के बिना सविनय कानूनभंग का सञ्चालन करना वैसा ही होगा जैसा कि लकवा मारे हुअे हाथ का चम्मच अुठाने की चेष्टा करना ।

बारडोली
१३:१२:'४१

(अंग्रेजी से)

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

फरवरी, १९४२
वर्धा

दो सम्राटों की सीख

मांधाता, मरुत् अित्यादि जो पौराणिक कालीन बड़े बड़े सम्राट हो गये, अुनमें ययाति का नाम भी आता है। ययाति का चरित्र अनेक दृष्टियों से महत्व का है। सुर-असुर, ब्राह्मण-क्षत्रिय, दोनों के साथ अुसका संबंध आता है। अिस सम्राट ने अपना यौवन बढ़ा कर हजार वर्षों तक पृथ्वी का अुपभोग किया। अन्त में वह कहता है—

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः
अेकस्यापि न पर्याप्तं; तस्मात् तृष्णां परित्येजत्
या दुस्त्यजा दुर्मतिभि र्या न जीर्यति जीरयः
योऽसौ प्राणान्तिको रोगः ताम् तृष्णां त्यजतः सुखं।

यह वचन किसी विरक्त साधुमहात्मा का या 'अंगूर खट्टे हैं' कहनेवाले निर्धन का नहीं है। समुद्रवलयांकित अशेष पृथ्वी के साम्राज्य का अेक हजार वर्ष तक अुपभोग लेनेवाले सम्राट का यह वचन है। सम्राट ययाति कहता है—"अिस पृथ्वी में चावल, जव आदि जो कुछ धन-धान्य है, सुवर्ण है, पशुपक्षी हैं, दास-दासी हैं—यह सब अगर अेक ही आदमी को मिले; तब भी वह अुसके लिअे बस नहीं होगा (अुससे अुसको संतोष नहीं होगा)। तृष्णा तो अेक प्राणांतिक रोग है। अिसलिअे अुसका त्याग करना चाहिअे। किन्तु जिनकी वृत्ति शुद्ध नहीं है, वे तृष्णा को कभी छोड़ नहीं सकते। बुढ़ापे से शरीर क्षीण होता है, तो भी तृष्णा क्षीण नहीं होती। अिसे छोड़नेवाले को ही सुख मिल सकता है।"

ययाति आगे कहता है, "पूरे अेक हजार बरस तक मैंने पूरे चाव से विषयोपभोग किया; तो भी अुसके प्रति मेरी तृष्णा बढ़ती ही जाती है। अिसलिअे अब मैं अिस तृष्णा को ही छोड़ दूंगा।"

यूरोप-अमेरिका के बड़े बड़े राज्य और साम्राज्यों का क्या यही हाल नहीं है? दुनिया भर की साधन-सामग्री जुटा जुटा कर के वहां के लोगों ने अपना भोगैश्वर्य बढ़ाया। अुसकी प्राप्ति और रक्षा के लिअे बड़ी बड़ी फौजें रक्खीं। आसमान, जमीन, पानी और प्रचार—चार प्रकार के युद्ध चलाये। तो भी न किसी को संतोष होता है, न पृथ्वी पर शान्ति ही स्थापित होती है।

जब सारी पृथ्वी की धन-धान्य-संपत्ति अेक आदमी की तृष्णातृप्ति के लिअे भी पर्याप्त नहीं है, तो लाखों और करोड़ों की तादाद के साम्राज्यों के सन्तोष के लिअे वह कैसे काफी हो सकती है?

अितिहासकालीन सम्राटों में सब से बड़ा नाम गिना जाता है सम्राट अशोक का। हिमालय से ले कर समुद्र तक और कलिंग देश से पश्चिम

में बाल्हीक देश तक सारे हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान का राज्य प्राप्त करने के बाद, अुसने अनुभव किया कि दिग्विजय की अपेक्षा धर्मजय ही श्रेष्ठ है। अुसने अपने शिलालेखों में अपने साम्राज्य की अर्थनीति दो छोटे छोटे वाक्यों में दी है — 'अल्प-भाण्डता साधु। अल्प-व्ययता साधु'—थोड़ा संचय करना और थोड़ा व्यय करना, यही मनुष्य-समाज के लिअे श्रेयस्कर है। जिस तरह भूख से ज्यादा खाने से रोग पैदा होता है, अुसी तरह समाज के स्वास्थ्य के लिअे जितनी अुपयोगी हो, अुससे अधिक साधन-संपत्ति जुटाने से समाज में किस्म किस्म के रोग पैदा होते हैं।

और व्यय करनेमें भी जब हम कम-से-कम व्यय करने का नियम रक्खेंगे, तभी हमारा जीवन नीरोगी और निष्पाप बनेगा। वरना सर्वत्र अव्यवस्था, असंतोष, अीर्ष्या और मत्सर पैदा होंगे।

जिनके नाम पर हिन्दुस्तान गर्व कर सकता है और जिनकी जीवन विभूति के कारण भारतीय संस्कृति अपने को पुनीत मानती है, अैसे दो समर्थ और कृतकृत्य सम्राटों की यह राय न केवल हिन्दुस्तान ही के लिअे किन्तु दुनियाभर के प्रजाकीय सम्राटों के लिअे विचार का विषय है।

पृथ्वी के पेट में विपुल खनिज तथा अुद्भिज संपत्ति भरी पड़ी है। सोना, चांदी भी है और लोहा, कोयला तथा मिट्टी का तेल भी है। लेकिन ये सब पदार्थ परिमित मात्रा में ही हैं। पृथ्वी का पेट चीर कर अुसकी आंतें निकाल कर ये सब चीजें बाहर निकालने की शक्ति आज हमें प्राप्त हुअी है। अिसीलिअे पृथ्वी की आंतें निकालने की कोशिश करते करते मनुष्यजाति अपने को खत्म करने पर आमादा हो गयी है।

अुद्भिज पदार्थों की भी यही हालत है। प्रथम हद से ज्यादा अनाज, कपास और फल की पैदाअिश करने में और बाद बाजारभाव सम्हालने के लिअे अुनका नाश करने में मनुष्यजाति को आज संकोच नहीं है। जहाँ जो चीज पैदा होती है, वहींपर अुसका अुपयोग करने की अपेक्षा पृथ्वी के अेक कोने की वस्तु दूसरे कोने तक पहुँचाने का रिवाज मनुष्यजाति ने चलाया है। यह रिवाज अितना सार्वत्रिक हो गया है कि अुसकी विचित्रता किसीके ध्यान में ही नहीं आती।

दुनिया भर के अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि अगर अिस युग में कोअी बुराअी है, तो वह संपत्ति के बेमानी बँटवारे में है। किसी को भरपेट खानेको नहीं मिलता है, तो किसीको अिकट्ठे किये हुअे धन का क्या किया जाय, यह नहीं सूझता। मनुष्य-जीवन की अुपयोगी वस्तुओं का विषम वितरण तो बड़ा भारी दोष है ही। लेकिन बिना सोचे-समझे वस्तुअें पैदा करते जाना भी घोर विश्व-द्रोह है। अर्थशास्त्रियों का ध्यान अिस ओर भले ही न गया हो, लेकिन सम्राट अशोक का ध्यान अिस तरफ पूरा पूरा गया था। अिसीलिअे अशोक ने अपने धर्मानुशासन में स्पष्ट शब्दों में कहा है—'अल्प-भांडता साधु'।

आजकल का अर्थशास्त्र कहता है कि धन का जितना अधिक व्यय होगा, अुतना ही अच्छा; क्योंकि वैसा करने से लोगों को काम मिलता है, मजदूरी मिलती है, चीजों के भाव बढ़ते हैं, कला-कौशल्य की अुन्नति होती है और मनुष्य अधिक सुखी होता है। सम्राट ययाति अिस जीवन का अनुभव करके अपनी गवाही अिस सिद्धान्त के विरुद्ध देता है। वह कहता है कि दुनिया भरके साधन अेक ही आदमी को मिलें, तो भी अुसे सन्तोष होनेवाला नहीं है। मनुष्य अपनी जरूरतें जितनी बढ़ायेगा अुतनी ही वे बढ़ेंगी। लेकिन यह तो अेक प्राणान्तिक रोग है। अिसे छोड़ कर जरूरतें कम करने से ही समाज का कल्याण होगा। भगवान ने पृथ्वी

पर अुतनी ही चीजें पैदा की हैं, जितनी कि प्राणियों के लिअे आवश्यक हैं। मनुष्य यदि अपनी आवश्यकताअें बढ़ाता है, तो वह प्रकृति से अुतना अृण ही लेता है और अुसी मात्रा में अुसका सत्त्व क्षीण होता है। अिसलिअे परिग्रह कम करना चाहिअे, अुपभोग परिमित करना चाहिअे और साधन-संपत्ति के सामर्थ्य का विश्वास भी अेक हद के बाद छोड़ देना चाहिअे।

अिसके लिअे हमें अपना सारा जीवन ही बदलना होगा। शहरों को छोड़ कर गाँवों में जा कर रहना होगा। रुपये-पैसों का व्यवहार कम करके आवश्यक वस्तुओं का ही सीधा विनिमय करना होगा। कल-कारखानों का विस्तार घटा कर गृह-अुद्योगों और ग्राम-अुद्योगों को महत्त्व देना होगा और आलस्य, विलासिता और असन्तोष छोड़ कर अुद्यम, संयम और सन्तोष बढ़ाना होगा।

हम अगर मनुष्यों की आबादी अेक जगह पर शहरों में केन्द्रित न करें, सत्ता केन्द्रित न करें और सम्पत्ति भी केन्द्रित न करें, अपनी मेहनत से सिर्फ आवश्यक चीजें ही पृथ्वी से मांग लें और अपने ही हाथों से अुनपर संस्कार करके अपने काम की वस्तुअें बनावें, तो न केवल हिन्दुस्तान में किन्तु सारी दुनिया में सन्तोष और शान्ति, स्वातन्त्र्य और बन्धुता का वायुमण्डल स्थिर होगा।

१२:१:४२ काका कालेलकर

अगम पन्थ का यात्री

आज फिर से अुसने हमसे कहा है कि मानवता के कल्याण-साधन का पन्थ अगम नहीं, सुगम है। आज फिर से वह हम से कह रहा है कि विकारों के विस्फोट से मानव-मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा, यदि वास्तविक निःश्रेयस को प्राप्त करना अभीष्ट है तो मेरे साथ, मेरे पीछे मेरे सहयात्री या मेरे अनुगामी बन कर, मेरे मार्ग पर चलो। और हम अल्प-प्राण मानवों ने अुसके यात्रा-निमन्त्रण को सुना, और हम हिचके और स्तब्ध रह गये, और वह मुस्कराया, और, हमें आशीर्वाद देता हुआ, वह अकेला अपने मार्ग पर चल दिया।

वह चला जा रहा है,–ध्रुव, दृढ़, अकम्पित पग धरता हुआ, वह जा रहा है,—अपनी सत्य-निष्ठा की लकुटिया पर झुके हुअे वह जा रहा है,—अपने नेत्रों की अुज्ज्वल ज्योति से पन्थ के घनीभूत अन्धकार को आलोक-दान देता हुआ वह चल रहा है, अैसे स्थल पर जहाँ पूर्व-चरण-निर्मित पथ-रेखा नहीं है। वह मार्ग-क्रमण ही नहीं, मार्ग-अुत्क्रमण भी कर रहा है। और अुसके अिस तपःपूत, निष्ठा अुत्प्राणित, सर्वार्पण-प्रेरित पद-निःक्षेप से मानव-विकास की अेक पगडण्डी निर्मित हो रही है। बुद्धि-वाद की अुलझन और व्यावहारिकता का संकोच असके मार्ग में नहीं है। वहाँ अेक नैश्चित्य है, अेक आस्था है, अेक सुदृढ़ आत्मविश्वास है। अुसकी अिस चिरयात्रा में पुराण-गाथों का अुन्नत और अमिट गौरव है।

—पण्डित बालकृष्ण शर्मा

में बाल्हीक देश तक सारे हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान का राज्य प्राप्त करने के बाद, अुसने अनुभव किया कि दिग्विजय की अपेक्षा धर्मजय ही श्रेष्ठ है। अुसने अपने शिलालेखों में अपने साम्राज्य की अर्थनीति दो छोटे छोटे वाक्यों में दी है — 'अल्प-भाण्डता साधु। अल्प-व्ययता साधु'—थोड़ा संचय करना और थोड़ा व्यय करना, यही मनुष्य-समाज के लिअे श्रेयस्कर है। जिस तरह भूख से ज्यादा खाने से रोग पैदा होता है, अुसी तरह समाज के स्वास्थ्य के लिअे जितनी अुपयोगी हो, अुससे अधिक साधन-संपत्ति जुटाने से समाज में किस्म किस्म के रोग पैदा होते हैं।

और व्यय करनेमें भी जब हम कम-से-कम व्यय करने का नियम रक्खेंगे, तभी हमारा जीवन नीरोगी और निष्पाप बनेगा। वरना सर्वत्र अव्यवस्था, असंतोष, अीर्ष्या और मत्सर पैदा होंगे।

जिनके नाम पर हिन्दुस्तान गर्व कर सकता है और जिनकी जीवन विभूति के कारण भारतीय संस्कृति अपने को पुनीत मानती है, अैसे दो समर्थ और कृतकृत्य सम्राटों की यह राय न केवल हिन्दुस्तान ही के लिअे किन्तु दुनियाभर के प्रजाकीय सम्राटों के लिअे विचार का विषय है।

पृथ्वी के पेट में विपुल खनिज तथा अुद्भिज संपत्ति भरी पड़ी है। सोना, चांदी भी है और लोहा, कोयला तथा मिट्टी का तेल भी है। लेकिन ये सब पदार्थ परिमित मात्रा में ही हैं। पृथ्वी का पेट चीर कर अुसकी आंतें निकाल कर ये सब चीजें बाहर निकालने की शक्ति आज हमें प्राप्त हुअी है। अिसीलिअे पृथ्वी की आंतें निकालने की कोशिश करते करते मनुष्यजाति अपने को खत्म करने पर आमादा हो गयी है।

अुद्भिज पदार्थों की भी यही हालत है। प्रथम हद से ज्यादा अनाज, कपास और फल की पैदाअिश *करने में और बाद बाजारभाव सम्हालने के लिअे अुनका नाश करने में मनुष्यजाति को आज संकोच नहीं है। जहाँ जो चीज पैदा होती है, वहींपर अुसका अुपयोग करने की अपेक्षा पृथ्वी* के अेक कोने की वस्तु दूसरे कोने तक पहुँचाने का रिवाज मनुष्यजाति ने चलाया है। यह रिवाज अितना सार्वत्रिक हो गया है कि अुसकी विचित्रता किसीके ध्यान में ही नहीं आती।

दुनिया भर के अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि अगर अिस युग में कोअी बुराअी है, तो वह संपत्ति के बेमानी बँटवारे में है। किसी को भरपेट खानेको नहीं मिलता है, तो किसीको अिकट्ठे किये हुअे धन का क्या किया जाय, यह नहीं सूझता। मनुष्य-जीवन की अुपयोगी वस्तुओं का विषम वितरण तो बड़ा भारी दोष है ही। लेकिन बिना सोचे-समझे वस्तुअें पैदा करते जाना भी घोर विश्व-द्रोह है। अर्थशास्त्रियों का ध्यान अिस ओर भले ही न गया हो, लेकिन सम्राट अशोक का ध्यान अिस तरफ पूरा पूरा गया था। अिसीलिअे अशोक ने अपने धर्मानुशासन में स्पष्ट शब्दों में कहा है—'अल्प-भांडता साधु'।

आजकल का अर्थशास्त्र कहता है कि धन का जितना अधिक व्यय होगा, अुतना ही अच्छा; क्योंकि वैसा करने से लोगों को काम मिलता है, मजदूरी मिलती है, चीजों के भाव बढ़ते हैं, कला-कौशल्य की अुन्नति होती है और मनुष्य अधिक सुखी होता है। सम्राट ययाति अिस जीवन का अनुभव करके अपनी गवाही अिस सिद्धान्त के विरुद्ध देता है। वह कहता है कि दुनिया भरके साधन अेक ही आदमी को मिलें, तो भी अुसे सन्तोष होनेवाला नहीं है। मनुष्य अपनी जरूरतें जितनी बढ़ायेगा अुतनी ही वे बढ़ेंगी। लेकिन यह तो अेक प्राणान्तिक रोग है। अिसे छोड़ कर जरूरतें कम करने से ही समाज का कल्याण होगा। भगवान ने पृथ्वी

पर अुतनी ही चीजें पैदा की हैं, जितनी कि प्राणियों के लिअे आवश्यक हैं। मनुष्य यदि अपनी आवश्यकताअें बढ़ाता है, तो वह प्रकृति से अुतना अृण ही लेता है और अुसी मात्रा में *अुसका सत्त्व क्षीण होता है। अिसलिअे परिग्रह कम करना चाहिअे, अुपभोग परिमित करना* चाहिअे और साधन-संपत्ति के सामर्थ्य का विश्वास भी अेक हद के बाद छोड़ देना चाहिअे।

अिसके लिअे हमें अपना सारा जीवन ही बदलना होगा। शहरों को छोड़ कर गाँवों में जा कर रहना होगा। रुपये-पैसों का व्यवहार कम करके आवश्यक वस्तुओं का ही सीधा विनिमय करना होगा। कल-कारखानों का विस्तार घटा कर गृह-अुद्योगों और ग्राम-अुद्योगों को महत्त्व देना होगा और आलस्य, विलासिता और असन्तोष छोड़ कर अुद्यम, संयम और सन्तोष बढ़ाना होगा।

हम अगर मनुष्यों की आबादी अेक जगह पर *शहरों में केन्द्रित न करें, सत्ता केन्द्रित न करें और सम्पत्ति भी केन्द्रित न करें,* अपनी मेहनत से सिर्फ आवश्यक चीजें ही पृथ्वी से मांग लें और अपने ही हाथों से अुनपर संस्कार करके अपने काम की वस्तुअें बनावें, तो न केवल हिन्दुस्तान में किन्तु सारी दुनिया में सन्तोष और शान्ति, स्वातन्त्र्य और बन्धुता का वायुमण्डल स्थिर होगा।

१२:१:४२ काका कालेलकर

अगम पन्थ का यात्री

आज फिर से अुसने हमसे कहा है कि मानवता के कल्याण-साधन का पन्थ अगम नहीं, सुगम है। आज फिर से वह हम से कह रहा है कि विकारों के विस्फोट से मानव-मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा, यदि वास्तविक निःश्रेयस को प्राप्त करना अभीष्ट है तो मेरे साथ, मेरे पीछे मेरे सहयात्री या मेरे अनुगामी बन कर, मेरे मार्ग पर चलो। और हम अल्प-प्राण मानवों ने अुसके यात्रा-निमन्त्रण को सुना, और हम हिचके और स्तब्ध रह गये, और वह मुस्कराया, और, हमें आशीर्वाद देता हुआ, वह अकेला अपने मार्ग पर चल दिया।

वह चला जा रहा है,–ध्रुव, दृढ़, अकम्पित पग धरता हुआ, वह जा रहा है,—अपनी सत्य-निष्ठा की लकुटिया पर झुके हुअे वह जा रहा है,—अपने नेत्रों की अुज्ज्वल ज्योति से पन्थ के घनीभूत अन्धकार को आलोक-दान देता हुआ वह चल रहा है, अैसे स्थल पर जहाँ पूर्व-चरण-निर्मित पथ-रेखा नहीं है। वह मार्ग-क्रमण ही नहीं, मार्ग-अुत्क्रमण भी कर रहा है। और अुसके अिस तपःपूत, निष्ठा अुत्प्राणित, सर्वार्पण-प्रेरित पद-निःक्षेप से मानव-विकास की अेक पगडण्डी निर्मित हो रही है। बुद्धि-वाद की अुलझन और व्यावहारिकता का संकोच असके मार्ग में नहीं है। वहाँ अेक नैश्चित्य है, अेक आस्था है, अेक सुदृढ़ आत्मविश्वास है। अुसकी अिस चिरयात्रा में पुराण-गाथों का अुन्नत और अमिट गौरव है।

—पण्डित बालकृष्ण शर्मा

तीन मुख्य वादों की समीक्षा

[विनोबा]

('तारीख बाअीस दिसंबर अुन्नीस सौ अिकतालीस को वर्धा में जीवन-समीक्षक मंडल में दिया हुआ प्रवचन)

मेरे परम प्रिय मित्रो,

प्रान्तीय भाषा का महत्त्व

आज मैं जो कहना चाहता हूँ अुसे कहने के पहले थोड़ी-सी प्रस्तावना करनी होगी। अेक मित्र की चिट्ठी आयी है। वह लिखते हैं, "कृपया हिन्दी में बोलें"। अिसमें से 'कृपया' शब्द का मैं स्वीकार करता हूँ। याने 'कृपया' मराठी में बोलनेवाला हूँ। नागपुर-जेल में हमारी चर्चा और व्याख्यान सर्वदा हिन्दी में ही होते थे। वहाँ जो सत्याग्रही थे अुनमें से अधिकांश हिन्दी जानते थे। मराठी जाननेवाले थोड़े ही थे। अिसलिअे अुनसे हिन्दी में ही बातें और चर्चा हुआ करती थी। अिस प्रकार हिन्दी के द्वारा हमें अेक-दूसरों के विचार ज्ञात हुअे और सहवास में आनन्द मालूम हुआ। फलत: अब मुझे व्याख्यान देने लायक हिन्दी का अभ्यास हो गया है।

लेकिन यहाँ मराठी में बोलने में मेरी तत्त्व-दृष्टि है। हमें अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी अथवा अुर्दू अवश्य सीखनी चाहिअे। सभी प्रान्तों के लोगों को सीखनी ही चाहिअे। लेकिन साथ साथ यह भी जरूरी है कि जो लोग दूसरे प्रान्तों में आ कर रहते हैं, वे भी अुन प्रान्तों की भाषाअें समझने और बोलने लायक सीखें। अन्यथा समूचे राष्ट्र की संधि नहीं जुड़ेगी। मेल दोनों तरफ से होता है। विभिन्न प्रान्तीय भाषाभाषियों को राष्ट्रभाषा सीखनी चाहिअे और हरअेक प्रान्त में रहनेवाले अन्य-प्रान्तीयों को स्वदेशीधर्म के अनुसार दयालुता से अुस प्रान्त की भाषा अवश्य सीखनी चाहिअे। यह तत्त्व-दृष्टि तुम्हें अुपलब्ध कराने की कृपा करके अर्थात् 'कृपया' मैं मराठी में बोलनेवाला हूँ।

विद्यार्थियों का विशेषाधिकार

विद्यार्थियों के लिअे हाल ही में मेरा अेक व्याख्यान हो चुका है। मैं मान लेता हूँ कि आप लोगों में से अधिकतर लोगोंने वह सुना होगा। अुस व्याख्यान में मैंने अेक विचार पेश किया था। वही विचार मैं सब जगह अुसी भाषा में पेश किया करता हूँ। कारण मेरे दिल में वह अुसी भाषा में जम गया है। वह विचार यह कि सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अगर किसी का अबाधित और निरंकुश अधिकार हो सकता है, तो विद्यार्थियों का। दूसरों के लिअे बन्धन होते हैं और वे अुचित भी होते हैं। परन्तु विद्यार्थी को कोअी बन्धन नहीं होना चाहिअे। अिस अधिकार का अमल अगर अबतक शुरू न किया हो, तो आज शुरू करो। विद्यार्थी अेक हैसियत है। अुस हैसियत को लक्ष्य करके मैं बोल रहा हूँ; विद्यार्थी व्यक्ति की दृष्टि से नहीं। अेक व्यक्ति के नाते अुसे अनेक बन्धन होना सम्भव है। लेकिन विचार या सत्य का शोध करते समय सम्पूर्ण और केवल विद्यार्थी की ही हैसियत होनी चाहिअे। अमुक विद्या अिसलिअे ग्राह्य नहीं है कि अुसे अमुक महात्मा, गुरु या सन्त सिखाता है। 'यह सन्तवाणी है, यह हमारे पन्थ की वाणी है अिसलिअे प्रमाण है', अिस

तरह का बोझ ज्ञानार्जन के विषय में या विचार बनाने के विषय में अुसके अूपर नहीं होना चाहिअे। विद्यार्थी-व्यक्ति पर पुत्र, मित्र, शिष्य, या दूसरी हैसियत से अनेक बन्धन लागू हो सकते हैं। पर विद्यार्थी के नाते सम्पूर्ण स्वतन्त्रता ही तुम्हारा अधिकार है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण, बिलकुल मूलभूत, अधिकार है। अिस मूलभूत अधिकार की अगर तुम अवहेलना करोगे या अवहेलना होने दोगे, तो सच्ची विद्या प्राप्त होने की आशा नहीं रहेगी।

शैक्षणिक अत्याचार

आजकल जर्मनी, रूस, अित्यादि सभ्य राष्ट्रों में अितिहास, संस्कृति, व्यापार, भूगोल, अित्यादि सिखाने के बहाने विद्यार्थियों का यह अमूल्य अधिकार छीन लिया गया है। गणेशजी की मूर्ति बनानेवाला आज का शौकीन मूर्तिकार यह भूल जाता है कि 'गणपति' नामक अेक तत्त्व है और मिट्टी को मनमाना आकार दे देता है। मूर्तिकार समझते हैं कि गणपति की प्रतिमा बनाना हमारे हाथ की बात है। अिसलिअे अुसे अपनी मर्जी का आकार दे देते हैं। कोअी अुसके हाथ में त्रिशूल और बल्लम दे देते हैं, कोअी चरखा देते हैं और कोअी तो अुसे सिगारेट का चस्का लगा देते हैं। अिस तरह बेचारे गणेशजी की मिट्टी पलीत की जाती है। वही हाल विद्यार्थियों का होनेवाला है। सयाने विद्यार्थी अिसके लिअे तैयार नहीं थे; आज भी नहीं हैं। तुम्हें अैसी दुर्दशा सहने के लिअे हरगिज तैयार नहीं होना चाहिअे। जर्मनी में क्या होता है? 'विद्यार्थी को कौनसी विद्या सिखायी जाय, कौनसे ढाँचे में ढाला जाय', यह सरकार तय करती है। विचारों और गुणों का नियन्त्रण तथा नियमन सरकार करती है। सरकार को जो विकार और विचार अिष्ट जान पड़ते हैं, अुन्हें भिन्न भिन्न विद्यार्थियों के मगज में ठूँसने का अमोघ साधन माने शिक्षक। सरकार के अिष्ट-विचारों की दृष्टि से शिक्षण की योजनाअें बनती हैं। अैसी ज्यादतियाँ अगर तुम सह लोगे, तो तुम्हारा, हमारा और संसार का बुरा हाल होगा। पूँजीवादी राष्ट्र अिस प्रकार की योजनाअें बनाया करते हैं। अुनका पूरी तरह विरोध करना हमारा, विद्यार्थियों का, फर्ज है।

बुद्धिप्रामाण्य

यह पहली बात है, यह अुस अृषि के ध्यान में आया। अिसलिअे अुस वैदिक अृषि ने कहा। क्या कहा अुसने? "मेरे प्यारे शिष्यो, तुम बारह वर्ष तक मेरे पास रहे, विद्या सीखे; लेकिन तुम मुझे अपना आदर्श न मानना। सत्य को ही प्रमाण मानो। मेरी कृतियों या शब्दों को प्रमाण मत मानो। मेरे शब्द और आचरण सत्य की कसौटी पर परखो। जो खरे अुतरें अुनका स्वीकार करो। जो घटिया ठहरें अुन्हें छोड़ दो। सत्य की कसौटी हरअेक की बुद्धि के लिअे सहजगम्य है। अुसे काम में लाओ।—यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो अितराणि।" अुस अृषिने कहा, 'हमारे केवल अच्छे चरित्र अपनाओ, बुरों को छोडो।' क्योंकि वह यथार्थ ज्ञानदाता गुरु था। अुसका बतलाया तत्त्व नवीन नहीं है। लेकिन अुसका अमल नहीं होता। अिसलिअे अतिशय दयालु गुरु के नाते अृषि ने विद्यार्थियों को यह सन्देश दिया। अुसे खूब याद रखिये। अपना विचार-स्वातन्त्र्य का यह मूलभूत अधिकार अक्षुण्ण रखिये। अुसे गँवाअिये नहीं।

रीते दिमाग की गुंजाअिश नहीं है

मैंने कहा कि स्वतन्त्र बुद्धि विद्यार्थी का पहला और मुख्य लक्षण है। स्वतन्त्र बुद्धि माने वह बुद्धि जिस पर कोअी दबाव नहीं है। वही

सत्याग्रही बुद्धि है। अिस बुद्धि के द्वारा तुम संसार की तरफ देखो । तुम्हें अनन्त चमत्कार दिखायी देंगे । बुद्धि से अुन्हें समझो । अिस युग में खोखला भेजा रखने की गुंजाअिश नहीं है । अगर तुम अपने सुनिश्चित और पक्के विचार नहीं रखोगे, तो अुसमें किसी दूसरे के विचार घुस जायँगे । आज की दुनिया कहती है, 'दिमाग खाली नहीं रहना चाहिअे। अुसमें कुछ-न-कुछ भरना ही चाहिअे। सद्विचार भरो। और अगर सद्विचार नहीं भरना है। तो आलू भरो, पत्थर भरो, जी चाहे सो भरो । अिस युग की यह प्रतिज्ञा है कि तुम्हारा सिर खाली नहीं रह सकता। खुद विचार न करोगे, तो वह रेडियो रेंक रेंक कर तुम्हारी खोपडी में विचार ठूँसता है। समाचारपत्र विचार करने को बाध्य करते हैं । बिना विचार का दिमाग रखना सम्भव नहीं है । अिसलिअे सत्याग्रही बुद्धि रक्खो। सद्विचार करो । सद्विचारों को दृढ़ करना और संचित करना, यही अेक रास्ता है। अगर तुम कहोगे कि मैं विचार नहीं बनाअूंगा, तो लोग तुम्हें बनायेंगे। बनो मत । दुनिया के हाथों में महज मिट्टी बन कर न रहो।

अुदासीनता की गुंजाअिश नहीं है

आज की दुनिया में अुदासीन रहना असंभव है। केवल अेकान्त में अध्ययन करने की गुंजाअिश नहीं है। समाजशास्त्र के विचार और अध्ययन के बिना गति नहीं है। अुसके बिना किसी भी विषय का अध्ययन नहीं हो सकता। अितिहास, अर्थशास्त्र और राज्यशास्त्र का अध्ययन तो हो ही नहीं सकता । लेकिन गणित जैसे स्वतन्त्र और तटस्थ विषय का अध्ययन भी समाजशास्त्र के बिना नहीं होता। साधारण नीति, गणित, साधारण विज्ञान, भौतिकशास्त्र— किसी भी विषय का विचार समाजशास्त्र-निरपेक्ष करना सम्भव नहीं है। मानो सामजशास्त्र में से ही ये सारे शास्त्र निकले हों। अिसलिअे नित्य जागरूक रह कर विधायक विचार करना नितान्त आवश्यक है।

'फाँसी' और 'नासी' वाद

आज संसार में तीन बहुत बडे विचार-प्रवाह पाये जाते हैं। पहला 'फँासीवाद' और 'नासीवाद' है। दोनों वस्तुतः अेक ही हैं। अेक जर्मनी में पैदा हुआ और दूसरा अिटाली में। वह किसी-न-किसी रूप में सारे संसार में है । हमारे हिन्दुस्तान में भी है। दूसरा साम्यवाद है। समाजवाद अित्यादि अुसके पेटे में है। यह वाद रूस में प्रवृत्त हुआ और दुनियाभर में फैला। तीसरा महात्मा गांधी का विचार है। ये तीन ही यथार्थ विचार-प्रवाह हैं। अिंग्लेंड, अमेरिका आदि के विचारों की विचार की दृष्टि से कोअी गिनती नहीं है। गिनती करनी ही हो, तो ये 'फाँसी-नासी' के ही भाअीबन्द हैं। विजय किसी की भी हो, विचार की दृष्टि से अिनमें कोअी दम नहीं। अिसलिअे अिनकी गिनती करने की जरूरत नहीं है। अिनके विचार नष्ट होनेवाले हैं। अिनकी विजय भी हो जाय, तो वह अुसी तरह की होगी, जैसा कि बुझने के पहले अेक क्षण के लिअे चिराग का बड़ा होना। अन्त में अिनका विचार नष्ट होनेवाला है।

गांधीवाद और भारतवर्ष

अिन तीनों वादों की प्रगति हमारे सामने है। अुनका तुम तटस्थभाव से खूब अध्ययन करो। अिनमें से गांधीवाद का तो अुदय ही करीब-करीब हिन्दुस्तान में ही हुआ है। 'करीब-करीब' अिसलिअे कहा कि दूसरे देशों के विचारकों ने भी अिस तरह के विचार व्यक्त किये हैं। प्राचीन-काल में कुछ व्यक्तिओं ने प्रयोग भी किये हैं। लेकिन अिस सिद्धान्त को साकार बना कर अुसे

सगुण रूप दे कर अुसके प्रत्यक्ष प्रयोग गांधी ने ही और राष्ट्रीय पैमाने पर हिन्दुस्तान में ही किये हैं। अिसलिअे 'करीब-करीब' कहने में हर्ज नहीं है। गांधी के प्रयोग के लिअे हिन्दुस्तान में अनुकूल परिस्थिति और वातावरण था।

दूसरे दो वाद यूरोप में पैदा हुअे—साम्यवाद और नाजीवाद। ये क्यों और कैसे पैदा हुअे, अिसका विचार हमें करना चाहिअे।

अिन्द्राय-तक्षकाय स्वाहा

मैंने अपने जीवन के विषय में अेक न्याय (नियम) बनाया है। वह आपके सामने रखता हूँ। वह न्याय है– 'अिन्द्राय-तक्षकाय स्वाहा'। साँपों से तकरार हो जाने के कारण अेक ब्राह्मण ने साँपों का यज्ञ किया। अुसमें बहुत-से साँपों की आहुतियाँ दीं। लेकिन तक्षक अिन्द्र के आसन के नीचे जा छिपा। अिधर ब्राह्मण ने कहा, 'तक्षकाय स्वाहा;' लेकिन तक्षक का पता ही नहीं। तब तो ब्राह्मण ने सूक्ष्म दृष्टि से खगोल का निरीक्षण किया। अुसे पता चला कि तक्षक के अिन्द्राश्रित होने के कारण आहुति व्यर्थ गयी। अिसलिअे अुसने कहा, 'अिन्द्राय-तक्षकाय स्वाहा'। ब्राह्मण ने अुद्दण्डता से दोनों की आहुति का संकल्प पढ़ा। पृथक्करण का कष्ट नहीं किया। लेकिन अिन्द्र तो अमर ठहरा। अिसलिअे अुसकी आहुति होना असंभव था। ब्राह्मण ने पृथक्करण की झंझट से बचना चाहा, अिसलिअे अिन्द्र के साथ तक्षक भी अमर हो गया।

सर्वथा दोषयुक्त वाद नहीं है

अैसा कोअी भी वाद नहीं है जिसमें अेक-न-अेक गुण न हो। अगर हम किसी वाद को सर्वथा दुष्ट या दोषयुक्त करार कर अुसके गुणों का भी त्याग करें, तो वह वाद अमर हो जाता है। यदि किसी वाद के गुणदोषों का पृथक्करण न किया जाय, तो दोषों से भरा हुआ वाद भी पनपता है। अिसलिअे हरअेक वाद में जो गुण हों, अुन्हें जान लेना जरूरी है। जिसमें गुण ही न हों, अैसा वाद ही नहीं है। अिसीलिअे नाजीवाद को सर्वथा दुष्ट करार देने से वह जोर पकड़ता है और पनपता है। हम अुसके गुणों को नहीं देख सकते और न साम्यवाद के ही सत्य का अन्वेषण होता है। किसी भी वाद के सिर्फ दोष ही देखने से वह खण्डित नहीं होता।

नाजीवाद का गुण

अगर हम हरअेक वाद का गुण अपनालें तो फिर अुस वाद में स्थायी रहने लायक कुछ नहीं बचता। अिस दृष्टि से हम नाजीवाद के गुण की खोज करें। नाजीवाद अेक प्रकार के पूर्व-अभिमान पर स्थित है। प्राचीन परंपरा और पूर्व-अितिहास के अभिमान पर अधिष्ठित है। "हम जर्मन लोग श्रेष्ठ हैं। हमारे अितिहास में भव्यता है। अिसलिअे परमात्मा या कालात्मा ने अेक बड़े महत्त्व का कार्य हमें सौंपा है। हम अपनी पुरानी संस्कृति का रक्षण और पोषण करके ही अुस कर्तव्य को पूरा कर सकेंगे। अिसलिअे अिस जर्मन वंश को अक्षुण्ण रखना चाहिअे। हमारे अन्दर श्रेष्ठ गुण हैं। अिसीलिअे तो यह महत्कार्य हमारे सिपुर्द किया गया है। व्यक्ति की तरह समाज और राष्ट्र में भी विशेष गुण पाये जाते हैं। ये हमारे विशिष्ट गुण हमारा अपनापन, हमारा निजत्व, है। हमारी संस्कृति शुद्ध है। हम शुद्ध रक्त के, शुद्ध बीज के, शुद्ध विचार के जर्मन लोग ही यह कार्य पूरा करने के योग्य हैं। शुद्ध याने पूर्वपरंपरा से प्राप्त। मेंढ़क को मेंढ़कों की परंपरा से मिले हुअे गुण शुद्ध हैं। साँप को साँपों की परंपरा से मिले हुअे गुण शुद्ध हैं। शेर को शेरों की परंपरा से मिले हुअे गुण शुद्ध हैं। अुसी

प्रकार हमें हमारी परंपरा से मिले हुअे विशिष्ट गुण ही हमारी संस्कृति हैं। अिसलिअे हमें जर्मनवंश का अभिमान रख कर अपनी परंपरा की रक्षा करनी चाहिअे।"

नाजीवाद में दूसरे दोष होंगे; लेकिन यह अेक बड़ा आकर्षक गुण है। हाँ, आकर्षक होते हुअे भी वह सर्वथा ग्राह्य नहीं है। पूर्वपरम्परा का सातत्य बनाये रखना, अुसका धागा टूटने न देना, संस्कृति की परम्परा अविच्छिन्न रखने के लिअे अपने पूर्वजों की संस्कृति के प्रति आदर तथा प्रेम रखना—यह अुसका वास्तविक ग्राह्यांश है। वंशाभिमान रक्षण करने जैसी वस्तु नहीं है।

साम्यवाद का ग्राह्य अंश

अिसके विपरीत साम्यवाद में दूसरे ही प्रकार का गुण है। वह देखता है कि सारी दुनिया के गरीब अुत्तरोत्तर अधिक गरीब होते जाते हैं और अमीर ज्यादा अमीर। गरीबों के पेट की खाओी गहरी होते होते प्रशान्त महासागर के बराबर हो गयी है और श्रीमानों के धन की पहाड़ी अूंची होते होते हिमालय के सदृश हो गयी है। यह अन्तर सहा न जाने के कारण साम्यवाद पैदा हुआ। वह कहता है कि बहुमत के नाम पर आज जो प्रणाली जारी है, वह यथार्थ लोकसत्ता नहीं है। सिर गिनने की लोकसत्ता सच्ची लोकसत्ता नहीं है। क्योंकि अैसी लोकसत्ता में गरीबों के सिर श्रीमानों के हाथों में रहते हैं। अिसलिअे गरीबों के मतदान का कोओी मूल्य नहीं। जबतक श्रीमन्तों का नाश नहीं होगा, दोनों को समान अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। मौजूदा मतदान-पद्धति सिर्फ आकार में लोकसत्ता के समान है। हम आकार में नहीं; अपितु प्रकार में भी लोकसत्ता स्थापित करना चाहते हैं। वह पक्षपातहीन लोकसत्ता होगी। आज यदि निष्पक्ष रहना हो, तो गरीबों का पक्षपात करना ही होगा। आजतक समान-अधिकार के नाम पर श्रीमानों की प्रतिष्ठा खूब बढ़ायी गयी। समत्व, न्याय और समान-अवसर का स्वाँग रचा गया। समान-अवसर माने गरीबों की पिसाओी। गामा-पहलवान और लकड़ी-पहलवान की कुश्ती तय करा कर दोनों को समान-अवसर देने का दम भरा जाता है। गामा पहलवान की जीत निश्चित है। पहले गरीबों का अुद्धार कीजिये; बाद में समान-अवसर आदि सिद्धान्तों की बात कहिये। गरीबों के अुद्धार के लिअे चाहे जैसे साधन का प्रयोग करना पाप नहीं है। अिस प्रकार साम्यवाद में गरीबों के प्रति पराकाष्ठा की आस्था का गुण है।

हिन्दुस्तान में नाजीवाद

अिस प्रकार दो गुणों की बदौलत ये दो वाद संसार और हिन्दुस्तान में फैल रहे हैं। हमारे महाराष्ट्र में भी फैलना चाहते हैं। मैं महाराष्ट्र के ही विषय में बोलता हूँ। क्योंकि अगर मैं महाराष्ट्र के दोष दिखाअूं, तो, वह मेरा प्रान्त होने के कारण, गलतफहमी नहीं होगी। महाराष्ट्र में 'हमारा महाराष्ट्रधर्म,' 'हमारी पेशवाओी' (पेशवाशाही), हमारा 'मर्द मराठा सिपाही', 'हमारी संस्कृति' 'हमारे समर्थ (रामदास) और अुनकी बजरंगबली की अुपासना', आदि भावनाओं को जो प्रोत्साहन देता है, अुसके प्रति तरुणों में आकर्षण पैदा होता है। अिसी कारण महाराष्ट्र के तरुण को हिन्दू महासभावालों के विचार पसन्द आते हैं। वह अुन विचारों में प्राचीन अितिहास के अभिमान का बहुत बड़ा गुण देखता है। दासनवमी (श्री रामदास जयन्ती); हनूमानजयन्ती, भीष्माष्टमी, शिवाजी-अुत्सव आदि से प्रेरणा और आवेश मिलते हैं। अतः अुस पक्ष में दूसरे

कितने ही दोष क्यों न हों, तो भी वह तरुणों को आकर्षक प्रतीत होता है। अुसमें पूर्वपरंपरा के अभिमान का गुण है।

मुसलमानों में यही विचार मुस्लिमलीग ने फैलाया—'अिस्लाम कितना वैभवशाली था, हिन्दुस्तान में किसी समय अुसका साम्राज्य किस प्रकार था', अित्यादि। पूर्वपरंपरा के अभिमान का गुण अुसमें है।

अिस प्रकार हिन्दूसभा और मुस्लिमलीग का कार्य नाजी-परंपरा का है। वे जब आपस में खुल कर बोलते हैं, तब कभी कभी यह बात मान लेते हैं। आम तौर पर नहीं बोलते। लेकिन अुनकी सहानुभूति का स्थान वह है। शपथविधि, गुप्तता, आदि सारे लक्षण विद्यमान हैं। वह हरा झंडा, वह कुरान की कसम, वह हनूमानजी की साक्षी, वह शपथ, वह ध्वज—यह सारा देख कर अेक तरह का अुत्साह मालूम होने लगता है। अैसा अनुभव होने लगता है कि ये लोग हमें बिलकुल ही गलत रास्ते से नहीं ले जा रहे हैं; पूर्वजों के परिचित मार्ग से ले जा रहे हैं। अिस भावना के आधार पर ये नाजी-सम्प्रदाय हिन्दुस्तान में बढ़े हैं।

हिन्दुस्तान की बेजोड़ गरीबी

हिन्दुस्तान की गरीबी अुपनिषत् के ब्रह्म के समान है : अुसकी कोअी अुपमा या तुलना नहीं है। ब्रह्म के समान 'वह अेकमेवाद्वितीय' है। अिसलिअे गरीबों के लिअे आस्था और अमीरों के प्रति चिढ़ रखनेवाला साम्यवाद आकर्षक मालूम होता है और फैलता है।

अिस तरह दो भिन्न कारणों से ये दो भिन्न वाद आकर्षक हो गये हैं। पूर्वपरम्परा के अभिमान की बदौलत नाजीवाद आकर्षक हो अुठा है। हिन्दू और मुसलमानों को अभिमान का स्थान दिखा कर वह हिन्दुस्तान में फैला है। दरिद्रता के कारण साम्यवाद आसानी से गले अुतरता है। मैं दोषाविष्करण के अुद्देश्य से अिन वादों की समीक्षा नहीं करता। क्योंकि हमें केवल अुनके गुण ही देखने हैं।

तीसरा वाद

अब तीसरे वाद की समीक्षा करता हूँ। वह गाँधी ने अुपस्थित किया है। हमें अुसके रूप को भलीभाँति समझ लेना चाहिअे। कुछ लोग समझते हैं—यह बेचारा गुजराती 'सामलूभाअी' (ढीलाढाला, पिलपिला आदमी) ठहरा। अिसका क्या 'वाद-आद' हो सकता है। ये बेचारे गुजराती डरपोक, गाय जैसे सीधे, साँप को भी न मारनेवाले लोग हैं। अिन्होंने व्यापार के सिवा और कुछ नहीं किया है। तलवार कभी अुठायी नहीं है। अुस परंपरा का यह 'सामलू' है। अुसका वाद अुसी तरह के लोगों को जँचेगा।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि बात अैसी नहीं है। अगर अैसी बात होती—याने अिस वाद में डरपोकपन और 'सामलूपन' होता—तो अेक महाराष्ट्री के नाते मैंने अुसे कब का फेंक दिया होता। 'सामलूपन' कड़ुआ, मीठा, खट्टा, चाहे किसी भी तरह का क्यों न हो, मैं तुमसे अुसकी सिफारिश नहीं करूंगा।

परन्तु मैं कह चुका हूँ कि वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। तुम जाँच-पड़ताल कर देख लो। अगर अिस वाद की जाँच तुम नहीं करोगे, तो मैं कहूँगा कि तुम विद्यार्थी बुद्धू बन चले हो। दूसरा आरोप नहीं करूंगा। सिर्फ 'बुद्धू' कहूँगा।

केवल शक्तिहीन राष्ट्र

हिन्दुस्तान आज डेढ़सौ वर्षों से निःशस्त्र है। न शस्त्र-शक्ति है, न द्रव्य-शक्ति ही रह गयी है। अिस तरह यह अेक केवल शक्तिहीन राष्ट्र था। अिस राष्ट्र के सामने यह प्रश्न अुपस्थित था कि वह कमर सीधी रखने की शक्ति कैसे हासिल करे।

अिस विषय में विचार-मंथन शुरू हुआ। 'शस्त्र और द्रव्य दोनों तरह की शक्ति गायब हो जाने के बाद भी क्या कमर सीधी रह सकती है? क्या अपनी पूर्वपरंपरा पर कायम रहते हुअे यह सिद्ध हो सकता है'? अिस तरह का विचार का मंथन शुरू हुआ। चालीस करोड़ लोगों में सीधे खड़े होने की शक्ति निर्माण करनी है।

शक्ति-निर्माण के विविध प्रयत्न

किसी ने समझा पाश्चात्यों का अनुकरण करना चाहिअे, अुनकी विद्या सीखनी चाहिअे। किसी की राय में धर्म-सुधार से ही हमारी अुन्नति होगी। धर्मसुधार की शक्ति अुत्पन्न करने के लिअे ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, थिआसॉफी आदि संस्थाअें स्थापित हुअीं। ये सारे समाज अूपर से धार्मिक भले ही प्रतीत होते हों, अुनकी जड़ में दूसरी ही बात थी। 'हमारी द्रव्यशक्ति और शस्त्रशक्ति जाती रही, अब हम बुद्धिशक्ति के बल सीधे कैसे खड़े हो सकेंगे?'—यह वृत्ति अुन सबके पीछे थी।

बुद्धि-शक्ति का प्रयोग

बुद्धि-शक्ति की प्राप्ति के लिअे ही शिक्षण-विषयक सुधार शुरू हुअे। बुद्धि-शक्ति ही अेक मात्र आशा रह गयी थी। अिसलिअे गाँधी के पूर्वकाल में धर्म-सुधार के साथ शिक्षण-सुधार जोड़ दिया गया था। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, रानडे, रवि-बाबू, अरविंद, प्रभृति ने बुद्धि के जोर पर आगे आने का यत्न किया। जब शस्त्र की ताकत न रही, द्रव्य की ताकत न रही, तो और क्या करते?

शिक्षण-विषयक प्रयोग

शिक्षण-विषयक सुधार में अंग्रेजी विद्या का अनुसरण शुरू हुआ। तब दूसरा अेक पक्ष सामने आया। वह कहने लगा "हमें अंग्रेजी की अुपासना नहीं चाहिअे। प्राचीन विद्याओं को गति दे कर नवीन स्वरूप दो।" अिस विचार के अनुसार गुरुकुल आदि संस्थाअें खुलीं। अुसमें से तीसरा आन्दोलन राष्ट्रीय शिक्षा का निकला। प्राचीन संस्कृत विद्या और नवीन विद्या से लाभ अुठाने का यह प्रयत्न था। अैसा माना जाने लगा कि पुनरुज्जीवन और सुधार का शिक्षण ही राष्ट्रीय शिक्षण है। लेकिन तीनों प्रकारों के मूल में विचार अेक ही था। वह यह कि बुद्धि के द्वारा शक्ति निर्माण करेंगे। शक्ति निर्माण के तीन द्वार हैं—धन, बल, और बुद्धि। लक्ष्मी और शक्ति के दरवाजे प्रायः बन्द हो गये। तब अंग्रेजों से टक्कर देने के लिअे तीसरा विद्या का ही द्वार बाकी रह गया। अिस विचार से यह आन्दोलन शुरू हुआ। कअी सुधारकों ने अुसमें भाग लिया।

बुद्धि की शक्ति का अधिष्ठान

लेकिन बुद्धि में शक्ति कैसे आवे? बुद्धि का क्या स्वतन्त्र पोषण होता है? क्या आचार-हीन बुद्धि शक्तिशालिनी हो सकती है? निरा-चार बुद्धि शक्तिशाली नहीं हो सकती। जब तक बुद्धि आचार में परिणत करने की प्रक्रिया सिद्ध नहीं होती, तब तक स्वतन्त्ररूप से बुद्धि शक्तिशाली नहीं होती। जब यह ध्यान में आया, तब कॉंग्रेस स्थापित हुअी। अुसके पहले बुद्धिमान लोग कहने लगे कि "आओ, हम गरीबों की शिकायतें दूर करने के लिअे अपनी बुद्धि काम में लायें; अर्थात् अुसे सक्रिय बनायें। लेकिन शिकायतें पेश करके अुनका निरा-करण कराने का प्रयत्न अेक मर्यादा तक ही सफल होता है। पूर्ण सफल नहीं होता। अव्यक्त शिकायतें व्यक्त हो जाती हैं। लेकिन बुद्धि जब तक क्रियात्मक नहीं होती, तब तक सफल नहीं होती। अिसलिअे कॉंग्रेस शिकायतें तो पेश करती थी; लेकिन अुसकी बात हवा में अुड़ जाती थी।

अुसका प्रयत्न सफल नहीं होता था। क्यों नहीं होता था ? अिसलिअे कि शिकायतों के दूर होने की संभावना नहीं थी। सो कैसे ?—अिसलिअे कि सारी शिकायतों का मूल कारण, शिकायतों की शिकायत, परतन्त्रता ही है।

मूलभूत शिकायत

यह बात काँग्रेस के ध्यान में आ गयी। सहज ध्यान में आनेवाली है। मनुष्य और सब डालियाँ काट सकता है; लेकिन जिस शाखा पर वह खड़ा हो अुसे नहीं काट सकता। अंग्रेज सरकार कअी सुधार कर सकती है। लेकिन अुसकी सत्ता अकेली हमारी गुलामी की डाल पर खडी है। अुस मुख्य शाखा को वह कैसे तोडेगी ? तुम बुद्धिवाद करके कितना ही समझाओ; जैसे अिन्होंने मुझसे कहा 'कृपया हिन्दी में बोलिये', अुसी तरह तुम भी कहो, 'कृपया अितनी शाखा तोडिये', तो वह कैसे सुन सकती है ? वह कृपा अुसकी जान ले लेगी। सरकार फुटकर टहनियाँ तोडेगी। कहेगी "कहत में मदद करेंगे, मराठी-हिन्दी को विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में स्थान देंगे; लेकिन मुख्य शाखा को हाथ न लगाअिये। 'स्वतंत्रता की जय' न बोलिये; 'अंग्रेज सरकार की जय' बोलिये।"

शक्ति और युक्ति के प्रयोग

बात लोगों के ध्यान में आगयी। जिस शाखा पर अंग्रेजों की सत्ता खडी है, अुसे काट डालिये कहने से सरकार कैसे काटेगी ? यह बात ध्यान में आने पर सवाल यह हुआ कि अब क्या करें ? तब पता चला कि शक्ति से ही राज्य मिलते हैं और युक्ति से यत्न होता है। मतलब, शक्ति प्राप्त करनी चाहिअे। गुप्तरूप से कार्य करना ही युक्ति है, अैसा समझा जाने लगा। अब, 'अधिकारियों को मारें, षड्यन्त्र करके बम बनावें'—अिस प्रकार के विचार शुरू हुअे। अफसरों के खून हुअे। यह सब शुद्ध बुद्धि से हुआ। जिन लोगों ने बम का प्रयोग किया अुनका स्मरण मैं भी पवित्र मानता हूँ।

लेकिन अुन्हें क्या अनुभव हुआ ? बम बनाने के लिअे पैसों की जरूरत है। शिवाजी महाराज ने भी षड्यन्त्र किये। अुन्हें भी साधन जुटाने पडे। अुसके लिअे सूरत शहर लूटना पड़ा। मराठों ने बंगाल में डाके डाले। अब ये लोग भी भगवद्गीता की दुहाअी दे कर सद्भावना से डाके डालने लगे। लेकिन पहले से ही जो पेशेवर गरीब लुटेरे थे, वे भी डाके डालने लगे। अिनकी अपेक्षा वे निपुण थे। अुन्होंने ज्यादा डाके डाले। लेकिन अिसका लोगों को कैसे पता चले ? लोग कैसे जानें कि कौनसा डाका किसका है ? बकरा क्या जाने कि छुरी किसकी है ? अुसे क्या पता कि अुसकी गरदन काटनेवाली छुरी अुसे यज्ञ के लिअे मारनेवाले ब्राम्हणदेवता की है, या मांस बेचनेवाले कसाअी की ? लोक डाकों को पहचान न सके। 'हमें बचाओ' अितना ही कहने लगे। अिसलिअे सरकार की अच्छी बन आयी। अराजक और डाकू में फर्क न कर सकने की वजह से बमों का मार्ग बेकार हुआ।

अराजकों का पंथ सही, पद्धति गलत

बाद में महात्मा गाँधी आये। अुन्होंने कहा, "अराजकों का पन्थ तो ठीक है; लेकिन पद्धति सही नहीं है। मुख्य शाखा ही तोड़नी चाहिअे। अिसलिअे अुनका पन्थ अुचित है। लेकिन वह हिन्दुस्तान में हिंसा से हो नहीं सकता।" संसार में कहीं नहीं हो सकता। संगठित हिंसा पर रची हुअी यह प्रक्रिया जब व्यापक परिमाण में आजमायी जाय, तभी सफल हो सकती है। आज की सरकारें अत्यन्त संगठित और व्यापकतम हिंसा की सरकारें हैं।

अुतना व्यापक हिंसक संगठन प्रजा नहीं कर सकती। अिसलिअे अुसकी हिंसा किसी काम की नहीं साबित होती। प्रजा के हिंसक संगठन में से शक्ति निर्माण नहीं होती। बहुत तो राष्ट्रप्रेम की प्यास बुझती है। कुछ-न-कुछ करने की तमन्ना शान्त होती है। व्यक्तिगत सन्तोष मिलता है। लेकिन संगठन के लिअे यह पद्धति अुपयोगी नहीं है। राष्ट्रीय अुत्थान की दृष्टि से कार्यक्षम नहीं है।

सरकार की सत्ता का आधार

अिसलिअे गांधी ने कहा, "आम जनता का खुले तौर पर संगठन करने की मेरी पद्धति ही परिणामकारक ठहरेगी। सरकार स्व-सत्ता पर नहीं टिकती। लोगों से मिली हुअी सत्ता पर टिकी हुअी होती है। अुसे लोगों के आधार की जरूरत होती है। सरकार और लोग, अिन दोनों हाथों से राज्य की ताली बजती है। आप अपना हाथ हटा लीजिये, अुसका हाथ अपनेआप ढीला पड़ जायगा।' लोग अपनी दी हुअी सत्ता हटा लें, तो सरकार नहीं टिक सकती। अिस प्रकार के संगठन द्वारा ही हम प्रतीकार की शक्ति निर्माण कर सकेंगे"।

हमारी मर्यादा-स्वरूपी पूर्व-परम्परा

हिन्दुस्तान अितना बड़ा चालीस करोड़ का राष्ट्र कैसे बना? हमारी पूर्वपरम्परा के गुण की बदौलत अितना बड़ा राष्ट्र बना। यह हलका-पतला राष्ट्र नहीं है। हमारे परमपूज्य राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत को 'अेअि भारतेर महामानवेर सागरतीरे' कहा है। सारी दुनिया से आ आ कर लोग यहाँ बसे हैं। सभी तो आक्रमण करके जबरदस्ती आ कर नहीं बैठे हैं। हमने अुन्हें जान-बूझ कर आश्रय दिया। पारसियों ने आक्रमण नहीं किया था। हमने जान-बूझकर अुन्हें जगह दी। हमारे राष्ट्र की मर्यादा की अेक पुरानी परम्परा है—हम दूसरों को अवसर दे सकते हैं और दूसरों पर आक्रमण नहीं करते।

शस्त्र माने?

अिस परम्परा में से गांधी को यह विचार मिला। हमारे पास प्रतीकार का शस्त्र है। शस्त्र माने शासन या नियमन करनेवाला। यह अर्थ हाथ पर घटित होता है। हथियार तो शस्त्र ही नहीं है। वह औजार है, जड़ वस्तु है। वह स्वतन्त्र चीज नहीं है। अुसकी दरकार नहीं।

अहिंसा की प्रगति की पहचान

हिन्दुस्तान की महान आवश्यकता, अुसके अितिहास की अेकमात्र माँग, पूरी करने के लिअे यह विचार अुत्पन्न हुआ। अिसीलिअे वह फैला। संसार में अितरत्र अहिंसा को स्थान नहीं है। हिन्दुस्तान में तरुण भी अिसकी चर्चा करते हैं कि राष्ट्रीय व्यवहार में हिंसा बड़ी है या अहिंसा? अहिंसा के मार्ग पर यह बहुत बड़ी प्रगति है। हम यह नहीं कहते कि सब-के-सब फौरन अहिंसावादी बन जायँ। सबको विचार ही करना चाहिअे। आज तरुणों ने भी हिंसा का नये सिरे से विचार शुरू किया है, यह सच्ची प्रगति है। अिससे अधिक तेजी से गांधी का विचार फैलना मुमकिन नहीं था। फैलना भी नहीं चाहिअे। धीरे धीरे, विचार करने के बाद, सोच-समझ कर ही अुसका स्वीकार होना चाहिये।

भारतवर्षीय परम्परा

यह विचारधारा हिन्दुस्तान की पूर्वपरंपरा में से पैदा हुअी है या नहीं? मेरा मतलब हिन्दुस्तान की मुख्य पूर्व-परंपरा से है; फुटकर प्रवाहों से नहीं। हिन्दुस्तान में परंपरा के बहुत-से फुटकर प्रवाह हैं। मराठों की, राजपूतों की, सिक्खों की, अैसी कअी परंपराअें हैं। लेकिन असंख्य धर्मों और जातियों को अेकत्र रखनेवाली

जो परंपरा है, वही मुख्य परंपरा है । अुसीमें से अिस विचार का निर्माण हुआ । अुस परंपरा का अभिमान धारण कीजिये ।

अिस प्रकार नाजीवाद का तत्त्व, अर्थात् अुसका गुण, भी अिस विचार से भलीभाँति मेल खाता है । जेल में मैंने अिस परम्परा का विचार किया । महाराष्ट्र और हिन्दुस्तान का विचार किया । ठेठ वेद-काल से ले कर आजतक सारे भारत के अितिहास में जिन जिन व्यक्तियों ने क्रान्ति की, अुनका विचार किया । शक, हूण, द्राविड, आन्ध्र, मुसलमान, प्रभृति में हुअे क्रान्ति-कारक व्यक्तियों का अितिहास देखा । अुसमें महाराष्ट्र की परम्परा अितनी छोटी ठहरती है, ब्राह्मणों की अितनी क्षुद्र ठहरती है, कि अुनका अलग विचार करने की जरूरत नहीं । हिन्दुस्तान की परम्परा अेक महान वटवृक्ष की परम्परा है । अुस वटवृक्ष का आश्रय करने के बदले अुसकी शाखाअें काट कर सिर फोड़ लेना अुदात्त अभिमान का लक्षण नहीं है । हिन्दुस्तान की परम्परा हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, जैन, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, आदि सब के श्रेष्ठ शास्त्रकारों की और असंख्य साधुसन्तों की परम्परा है । अगर मैं अिस परम्परा को छोडूँगा तो अपने राष्ट्र का तेजोवध करूँगा; राष्ट्र को खस्सी करूँगा, अिसके विषय में मुझे सन्देह नहीं रहा ।

अिस अर्थ में नाजीवाद का पूर्वसंस्कृति के अभिमान का गुण भिन्न स्वरूप में गाँधीवाद में है । लेकिन अुसका स्वरूप अितना भिन्न है कि अुसमें 'नाजीवाद' के वंशाभिमान का दोष नहीं है । हमारी पूर्वपरम्परा व्यापक है । अिसलिअे अुसका अभिमान भी करीब करीब विश्वव्यापी है । अुस पूर्वपरम्परा का सातत्य बनाये रखने का, अुससे अनुसंधान रखने का, गुण गाँधीवाद में है । वह 'नाजीवाद' के पूर्वपरम्परा के अभिमान के सदृश है । अुतना ही आकर्षक भी है । लेकिन 'नाजी-वाद' के वंशाभिमान की संकुचितता अुसमें नहीं है । अिसलिअे अुसे अभिमान भी नहीं कह सकते । प्राचीन काल के सांस्कृतिक प्रयत्नों से अनुसंधान रखना ही अुसका मुख्य लक्षण है ।

साम्यवाद का सारभूत अंश

कुछ साम्यवादियों की यह भाषा कि गरीबों का अुद्धार करना चाहिअे, गलत है । 'गरीबों का अुद्धार करनेवाला, अुन्हें अुबारने वाला, मैं अलग हूँ', यह भावना अुसमें छिपी हुअी है । 'अगर मैं अुन्हें न बचाअूँ, तो अुनका अुत्थान नहीं हो सकता', यह मिथ्या अभिमान अुसमें है । गरीबों का अुद्धार अुन्हींके हाथों में है । गाँधी ने आम जनता को अैसी शक्ति प्रदान की है । साम्यवाद ने रूस में जो किया, वह यहाँ नहीं हो सकता । रूस सरीखी सुविधा यहाँ असम्भव है । और न आवश्यक ही है । कारण अुससे गरीबों को शक्ति नहीं मिलेगी । गरीबों का अुद्धार गरीबों के ही द्वारा होना चाहिअे । यह साम्य-वाद का सार है । अुसे हम अपना लेते हैं । बादाम और दूध का भी शरीर के लिअे अुपयोगी अंश ही हम स्वीकार करते हैं । साम्यवाद के बारे में भी सारासार विचार करना चाहिअे । गरीबों का अुद्धार गरीबों को ही करना चाहिअे यह अुसका सारभूत अंश हमें स्वीकार कर लेना चाहिअे और निःसार अंश त्याग देना चाहिअे ।

साम्यवाद का त्याज्य अंश

साम्यवाद की प्रक्रिया में हिंसा के द्वारा क्रान्ति का प्रतिपादन है । यह अुसका निःसार अंश है । हिंसा की शक्ति जनता की शक्ति नहीं हो सकती । विद्वत्ता भी आम जनता की शक्ति नहीं है । बुद्धि तो मुट्ठीभर ब्राह्मणों की शक्ति मानी जाती थी । वह अुन्हीं के ताले-कुंजियों में बन्द रहती

थी। तलवार भी आम जनता की शक्ति नहीं है। बूढे, स्त्रियाँ, बच्चे, अशक्त, अिनकी वह शक्ति नहीं है। वह तो बत्तीस अिंच या चौतीस अिंच छातीवाले तगडे प्राणियों की शक्ति है। अितने चौड़े सीनेवाले अूंचे-पूरे प्राणी हमेशा सज्जन ही नहीं होते। अुनकी शक्ति स्थायी नहीं होती। जो हिंसा की शक्ति से अर्जन करोगे, अुसे सम्हालने के लिअे निरन्तर हिंसा ही करनी पडेगी। गरीबों की, आम जनता की, वह शक्ति नहीं हो सकती।

जर्मनी के आक्रमण का तात्त्विक समर्थन

जर्मनी द्वारा रूस के आक्रमण का नैतिक समर्थन नहीं हो सकता। लेकिन तात्त्विक समर्थन हो सकता है। रूस का फौजी खर्च सालाना सोलह सौ करोड़ का है। मामूली, शान्ति के समय अितनी प्रचण्ड सैनिक शक्ति बढ़ती हुअी देख अुसे अनिरुद्ध बढ़ने देने के लिअे जर्मनी गधा नहीं है। रूस अितनी फौज किसलिअे बढ़ा रहा था? क्या सिपाहियों को गौरीमैया की तरह सजा कर अुनकी आरती अुतारने के लिअे? साम्यवाद हिंसा से संसार में रूढ़ करने की रूस ने ठान ली है। अिसलिअे वह अितना फौजी खर्च करता है। साम्यवादी विचारों की परम्परा पनपने देना जर्मनी के लिअे अिष्ट नहीं है। अिसलिअे रूस की ताकत तोड़ देना जर्मनी की दृष्टि से बुद्धियुक्त ठहरता है।

अिससे साम्यवाद लड़खड़ायेगा

रूस की शक्ति से लाभ अुठाना अिंग्लैंड की दृष्टि से बुद्धिमानी का लक्षण है। अिंग्लैंड कहता है, "रूस की फौजी शक्ति के प्रयोग द्वारा आज जर्मनी का सामना कर लें।—साम्यवाद से बाद में निपट लेंगे।" रूस अमेरिका से कहता है "भाअी, हमने धर्म की बिलकुल ही मिट्टी पलीत नहीं की है। तुम हमारी मदद कर सकते हो।"

अर्थात् रूस को पाखंडियों की खुशामद करनी पड़ती है। यह क्या हो रहा है? अुस राष्ट्र की परावलम्बी दशा है। क्या अिससे साम्यवाद टिकेगा? क्या वह सैनिक सत्तावाद से बच सकेगा? अगर असाम्यवादी और वैषम्यवादी राष्ट्रों की मदद से विजय भी हो जाय, तो भी साम्यवाद नहीं रह सकता। पराजय हो तो बिलकुल ही नहीं रह सकता। जो रूस में सम्भव नहीं है—संसार में कहीं सम्भव नहीं है—वह हिन्दुस्तान में कैसे हो जायगा? हिंसा जनता की शक्ति ही नहीं है। हम जनता में तेज निर्माण करें।

हमारी संग्राहक दृष्टि

हमने साम्यवाद का सार—गरीबों की अुन्नति करने के लिअे, अुन्हें अपना अुद्धार अपने तअीं करने को समर्थ बनाने की आस्था—ग्रहण किया। निःसार वस्तु त्याग दी। नाजीवाद का सदंश पूर्व-परम्परा से अनुसंधान का गुण भी ग्रहण किया। लेकिन हमारे अभिमान को 'अभिमान' शब्द ही लागू नहीं है। अितना वह व्यापक है। जो राष्ट्र अेकरंगी हैं, अुनका देशाभिमान संकुचित होता है। हिन्दुस्तान की परम्परा मिश्र और व्यापक है। व्यापक भारत की, अिस महामानवसमुद्र की, मिश्र परम्परा का अभिमान संकुचित हो ही नहीं सकता। वह निष्कलंक है। अिस प्रकार व्यापक भारत का अभिमान और गरीब लोगों की शक्ति प्रकट करना—ये दो गुण दो वादों से लेनेवाला यह तीसरा वाद मैंने यथासम्भव तटस्थता से तुम्हें बतलाया।

'यथा सम्भव' कहने का कारण अेक अर्थ में मैं भी पक्षपाती हूँ। मैं अुस वाद को मानता हूँ। वह मेरे जीवन में दाखिल हो गया है। फिर भी, मैं अुसे जितनी तटस्थता से रख सका, अुतनी तटस्थता से मैंने आपके सामने रक्खा है। मेरा पहला सूत्र याद रहे। मैं कहता हूँ अिसलिअे या

गाँधी कहते हैं असलिअे, अुसे न स्वीकारिये। व्यापक बुद्धि और तटस्थ वृत्ति से विचार कीजिये।

अहिंसा शक्ति कैसे ?

यह बतला चुका हूँ कि हिंसा जनता की शक्ति नहीं है। अब यह दिखाना बाकी है कि अहिंसा जनता की शक्ति कैसे हो सकती है? याने अहिंसा को सामाजिक रूप कैसे दिया जा सकता है? अेक अेक व्यक्ति की विजय के अुदाहरण हमारे यहाँ और संसार में पाये जाते हैं। अेकनाथ महाराज, येशू, सुकरात, ने दृढ़ता की सामर्थ्य प्रकट की है।

प्रयोग की प्रक्रिया

प्रयोग की प्रक्रिया अैसी ही होती है। विज्ञान के क्षेत्र में भी अेक अेक व्यक्ति प्रयोग-शाला में प्रयोग करता है। अुसके सिद्ध होने पर अुस सिद्धान्त का व्यापक प्रयोग अथवा सामाजिक विनियोग होता है। भाप की शक्ति का आविष्कार व्यक्तिगत प्रयोग से हुआ। चाय की केटली की भाप पर से आविष्कार हुआ। तदुपरान्त समाज में अुसका विनियोग हुआ। यदि वह शोध व्यक्ति तक ही सीमित रह जाता, तो बेकार साबित होता। अहिंसा में व्यक्तिगत प्रयोग भी अकारथ नहीं जाता। अहिंसा की शक्ति व्यक्तिगत होनेपर भी कार्य करती है; अुसे सामाजिक रूप दिया जाय, तो बहुत बड़ा कार्य करती है।

अेक शंका

अेक शंका पूछी जाती है: 'क्या सारा समाज अेकनाथ, बुद्ध या ख्रीस्त बन सकता है?' यदि बन सकता, तो तुम्हारे सामने योजनाअें ही पेश न करनी पडतीं। हम-तुम सामान्यजन अुनके प्रयोग से लाभ अुठा सकते हैं। अुसके लिअे अुनके बराबर शक्ति की जरूरत नहीं है। गुरुत्वाकर्षण के शोध के लिअे न्यूटन में विशेष बुद्धि होनी चाहिअे। लेकिन अुस शक्ति से काम लेने के लिअे मिस्त्री में अुतनी बुद्धि की जरूरत नहीं है। हिटलर भी अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। वह नये नये शस्त्रास्त्रों का शोध करता है। लेकिन अुसे जिस बुद्धि की जरूरत होती है, वह अुन अस्त्रशस्त्रों को बर-तनेवाले सिपाही को नहीं होती।

प्रथम आविष्कर्ताओं की विशेषता

प्रथम शोध करनेवालों को अद्भुत और अलौकिक होना ही चाहिअे। लेकिन सामाजिक प्रयोगों के लिअे हर अेक में अलौकिक शक्ति की जरूरत नहीं है। गाँधी को अलौकिक, अद्वि-तीय शक्ति की आवश्यकता है। अन्यथा वे आविष्कार नहीं कर सकते। लेकिन अुस शक्ति के सामाजिक प्रयोग के लिअे अलौकिक सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं है।

सामाजिक प्रयोग की महत्ता

गुण्य-गुणक का अुदाहरण लीजिये। तकली बिलकुल छोटी-सी है। अुसपर चालीस ही तार कत सकते हैं। लेकिन अगर अुसे चालीस करोड़ हाथ चलाने लगें, तो चालीस करोड़ गुने चालीस तार होंगे। अहिंसा भी अैसी ही है। तकली की तरह वह सीधी-सादी, सुविधाजनक और छोटी-सी है। अुसे बूढे, बच्चे, स्त्रियाँ, सब चला सकते हैं। मिल के लिअे हॉर्सपॉवर की जरू-रत होती है। तकली के लिअे नहीं। अेक अीसा को जितनी शक्ति की जरूरत होती है, अुतनी सामाजिक प्रयोग के लिअे नहीं होती। क्राअिस्ट अहिंसा के प्रयोग की मिल और हम चालीस करोड़ लोग अहिंसा के प्रयोग की तकलियाँ हैं। हम अेक अेक तोला अहिंसक शक्ति प्राप्त करें, तो भी वह समाज के लिअे हजरत अीसा की अहिंसा की अपेक्षा अधिक अुपयोगी ठहरेगी। खेत में अेक ही जगह मनों खाद डालने से काम नहीं चलता। अगर अेक अेक अिंच ही खाद सारे खेत में बिखेर दिया जाय और वह जमीन में गले, तो ज्यादा अुपयोगी साबित होता है। हम भी अगर थोडी थोडी अहिंसक शक्ति कमायें, तो हिमालय से भी बुलन्द कार्य होगा, जो अीसा की मनों अहिंसा की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक होगा।

रचनात्मक कार्यक्रम

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

२

मैं कह चुका हूँ कि रचनात्मक कार्यक्रम का असली मकसद अुसके जरिये सारी जनता में ठोस अेकता निर्माण करना है। अिसके लिअे हम अहिंसक तरीके से ही काम लेंगे। याने हमारे तरीके में जबरदस्ती नहीं की जा सकती। वह अेकता हमारे ज्ञान, प्रेम, श्रद्धा और सेवा का परिणाम होनी चाहिअे। अुसके द्वारा लोगों की श्रद्धा, बुद्धि, भावना और कर्तृत्व-शक्ति बढ़नी और शुद्ध होनी चाहिअे। अिस मकसद के लिअे और अिस तरीके से जो कार्यक्रम बनाया तथा चलाया जाय वह रचनात्मक कार्यक्रम है। और अगर रचनात्मक कामों की फेहरिस्त में आनेवाला काम भी अिस मकसद के लिअे और अिस तरीके से न चलाया जाता हो, तो परिणाम में वह रचनात्मक नहीं होगा।* अिसमें हमारे शरीर, स्वभाव, विचार और आदतें, जीवन की पद्धति और रूढ़ियाँ तथा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि प्रथाअें, कलाअें, और विषमताअें बदलने की बात आती है। कोअी चीज सिर्फ अिसी कारण से रक्षा करने लायक नहीं मानी जा सकती कि वह बहुत पुरानी है अथवा मजहबी समझी गयी है अथवा लोगों की रगरग में अुतर गयी है। और न अिसलिअे कि वह नये जमाने की खासियत है। हमें हर चीज की जाँच अिस दृष्टि से करनी चाहिअे कि वह हममें मेल करानेवाली है या फूट।

अब आगे बढ़ें।

रचनात्मक कार्यक्रम में जितने काम गिनाये गये हैं या गिनाये जा सकते हैं, अुनके दो भाग किये जा सकते हैं—अेक ध्येय को सिद्ध करने के साधन; और दूसरे जनता के वे खास खास वर्ग जिनमें काम करना है। अुदाहरण के लिअे खादी, गोसेवा, दवाअी और तीमारदारी, सफ़ाअी, ग्रामअुद्योग, व्यायाम, शिक्षा, अुत्सव, कष्ट और अन्याय-निवारण आदि काम जनसेवा और संगठन के साधन स्वरूप हैं। अिनके जरिये लोगों को हम प्रत्यक्ष लाभ पहुँचा सकते हैं और अुनपर संस्कार कर सकते हैं। जिन खास खास वर्गों में काम करना विशेष रूप से जरूरी है, अुनकी दृष्टि से मुसलमान, अीसाअी, ब्राह्मण, ब्राह्मणेतर, हरिजन, आरण्यक (आदि-निवासी), विद्यार्थी, मजदूर, किसान, स्त्रियाँ वगैरा का अुल्लेख है। मतलब यह कि हरअेक सेवक या संस्था को जनता के विविध वर्गों में से तथा विविध साधनों में से अपनी अपनी शक्ति और वृत्ति के अनुसार अेक या अनेक पसन्द कर के काम करना होता है। कोअी संस्था किन्हीं अेक या दो वर्गों में सभी या बहुत-से साधनों द्वारा सेवा कर सकती है और कोअी संस्था अेक या दो साधनों द्वारा सब या बहुत-से वर्गों में सेवा कर सकती है। हरिजन-सेवक संघ, महिला-संस्थाअें, किसानसंघ, मजदूरसंघ, तालीमीसंघ, वगैरा पहले प्रकार की संस्थाअें हैं। चरखा, ग्राम अुद्योग, शिक्षा, सफाअी, दवा, शुश्रूषा, व्यायाम आदि की संस्थाअें दूसरे किस्म की हैं।

---

* रचनात्मक काम को बंगाल और अुत्कल में 'गठन मूलक' कार्यक्रम कहते हैं। अर्थात् वह कार्यक्रम जो जनता का गठन या संगठन करनेवाला है। यह व्याख्या अच्छी है।

—र. श्री. धोत्रे

दूसरे प्रकार की संस्थाओं और सेवकों का काम साधन-विशिष्ट (तरीकेखास) है। चरखा-संघ को हिन्दू, मुसलमान, ओसाओी, हरिजन आदि भेदों से विशेष मतलब नहीं है। लेकिन वह जो कुछ करेगा, चरखे और खादी के जरिये ही करेगा। पहले प्रकार की संस्थाओं और सेवकों का काम वर्गविशिष्ट (लोगे-खास) है। हरिजन-सेवक संघ को सिर्फ हरिजनों में ही काम करना है। लेकिन अुनके लिअे वह चरखा, ग्राम-अुद्योग, आरोग्य आदि कअी साधन पसन्द कर सकता है और दूसरे भी अैसे अुपक्रम कर सकता है, जो दूसरे लोगों के लिअे महत्त्व के न हों। पहले विभाग का काम अधिकांश कला-शास्त्र-प्रधान (टैक्नॉलॉजिकल) है। अिसलिअे वह ज्यादा मुश्किल बेशक है। अुसमें धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, सामाजिक रूढ़ियाँ, परम्परा आदि बहुत-सी बातों का विचार करना पड़ता है। और जब तक हमें अपने ध्येय और अहिंसक तरीके का साफ साफ खयाल न हो, तब तक अुसमें भूलें होना सम्भव है।

अूपर बतायी हुअी दृष्टि से रचनात्मक कामों की दो सूचियाँ बनेंगी :

वर्ग-विशिष्ट काम (लोगे-खास)

१. भिन्नधर्मीय जनता-संबंध
(हिन्दू, मुसलमान आदि)
२. भिन्नवर्णीय जनता-संबंध
(हरिजन, ब्राम्हण, ब्राम्हणेतर अित्यादि)
३. भिन्नप्रांतीय जन-संबंध
४. ग्रामसेवा
५. किसान
६. मजदूर
७. आदिनिवासी
८. गुनहगार (जरायम-पेशा कौमें)
९. रियासती प्रजा
१०. स्त्रीजाति
११. प्रौढ विद्यार्थी
१२. बाल-विद्यार्थी

साधन-विशिष्ट काम (तरीके-खास)

क. **अर्थवृद्धि**
१. चरखा
२. ग्रामोद्योग
३. गोसेवा

ख. **आरोग्यवृद्धि**
४. व्यायाम और कवायत
५. दवा और शुश्रूषा
६. सफाअी और बगीचा वगैरा (ग्राम-मण्डन)

ग. **ज्ञान और संस्कार-वृद्धि**
७. बुनियादी तालीम
८. प्रौढ-शिक्षा
९. राष्ट्रभाषा-प्रचार
१०. स्वभाषा-शिक्षा
११. सार्वजनिक सामान्य ज्ञान (धर्म, नीति, राजकारण अित्यादि)

घ. **समूह-जीवन-वृद्धि**
१२. व्रत-अुत्सव
१३. खेल
१४. नाटक वगैरा मनोरंजन
१५. सहजीवन (शिबिर, छावनी, वगैरा)

च. **समूह-सुख-वृद्धि**
१६. आम सुविधाअें (आम रास्ते, कुअें, आदि)
१७. सहकारी संस्थाअें
१८. संरक्षण (चौकी-पहरा वगैरा)
१९. व्यवस्था (सेवादल आदि)

छ. **संकट-निवारण**
२०. शान्तिस्थापना (दंगे आदि में)
२१. समाजसुधार (अस्पृश्यता आदि सामाजिक दोष-निवारण)

२२. शासन-सुधार (कानूनी और अधिकारी वर्ग के अन्याय-निवारण)

२३. आर्थिक सहायता (अकाल, बाढ़ आदि आपत्ति-निवारण)

२४. अुपचार, सहायता (हैजा वगैरा बीमारियों के वक्त)

अिस तरह तेरह प्रकार के कार्यक्रम के जन-दृष्टि से बारह और साधन-दृष्टि से चौबीस, अैसे कुल छत्तीस प्रकार गिनाये जा सकते हैं और कोअी पचास भी गिना दे तो आश्चर्य नहीं। यह तो सिर्फ काम और विचार की सुविधा का सवाल है।

अिनमें से किसी को कम और किसी को ज्यादा महत्त्व का बताने का आग्रह नहीं होना चाहिअे। सर्वोदय की दृष्टि जनता के छोटे से-छोटे व्यक्ति और आवश्यकता की अवगणना नहीं करेगी। अिसलिअे हरअेक काम अपने अपने स्थान में अुतना ही महत्त्व रखता है जितना कि किसी बड़े यंत्र में अुसके कलपुर्जे रखते हैं। अिसलिअे जो भाअी या बहन अिनमें से जिस काम के लिअे अपने को योग्य समझे, अुसे वह यदि अहिंसात्मक ढंग से और सारी जनता में ठोस अेकता कराने के अभिप्राय से करता हो, तो अुसे दूसरे काम में भाग न ले सकने का असन्तोष नहीं होना चाहिअे। यह कहने की आवश्यकता अिसलिअे है कि कअी बार जब किसी नये काम की हवा बहुत जोर से चलने लगती है, तब अपने चालू कामों को छोड़ कर नये काम में शरीक होने की ख्वाहिश कअी लोगों को हो जाती है। आम तौर पर यह अुचित नहीं है। अेकाध बार अैसा मौका आ सकता है जब कि सभी के लिअे दूसरे सारे काम छोड़ कर किसी खास काम में लग जाना जरूरी हो जाये। वैसे अपवाद-स्वरूप मौके की बात अलग है।

३

यह जरूरी नहीं है कि अूपर बतलाया हुआ हरअेक काम अेक अलग संस्था द्वारा हो। लेकिन जरूरत अिसकी है कि हर क्षेत्र में हरअेक काम के लिअे अिन्तजाम होना चाहिअे और अपने अूपर अुसकी जिम्मेवारी लेनेवाला कोअी व्यक्ति या समिति होनी चाहिअे। असावधानी से कोअी काम छूट न जाना चाहिअे। कुछ कामों के लिअे अेक अेक अलग संस्था का होना अनिवार्य है। लेकिन कुछ काम अेक-दूसरे से अैसे मिले हुअे होते हैं कि अुनका अेक ही संस्था द्वारा किया जाना जरूरी है। ये सब सुविधा और समझदारी के सवाल हैं। अिनमें सभी क्षेत्रों के लिअे कोअी अेक ही नियम नहीं बनाया जा सकता।

लेकिन संस्था अेक हो या अनेक, बहुत महत्त्व की बात यह है कि अिन संस्थाओं में और अुनके अलग अलग विभागों में पूरा पूरा मेल होना चाहिअे। अेक आदमी या गिरोह अपने ही काम में अपना सारा ध्यान लगा दे, यह बहुत अच्छा और आवश्यक गुण भी हो सकता है। लेकिन यदि वह अपने काम के सिवा और सब कामों को निकम्मे मानने लगे, तो मुमकिन है कि वह रचनात्मक काम करता हुआ भी परिणाम में तोड़ने का ही काम करे। हमें किसी अेक ही काम में रस होते हुअे भी दूसरे कामों की कद्र और जरूरत पहचानने की बुद्धि होनी चाहिअे और जब अुन्हें चलाने के सिद्धान्तों की चर्चा हो, तो अुसपर विचार करने की शक्ति भी होनी चाहिअे। जिस दर्जे तक हम रचनात्मक काम के आशय और अहिंसा की असल भूमिका को समझ सके होंगे, अुतने ही अंश में हम यह कर सकेंगे।

अिसलिअे अिसमें बड़े या बुद्धिमान् तथा छोटे या श्रद्धावान्, चारों प्रकार के कार्यकर्ताओं पर अेक जवाबदारी है। छोटे और श्रद्धावान् कार्यकर्ताओं का अगर यह खयाल हो कि अुनका काम सिर्फ सूचनाओं या हिदायतों का अमल करना है,अुनके औचित्य-अनौचित्य या सिद्धान्त को समझने के लिअे माथापच्ची करना अुनका काम नहीं है, तो वे भूल करते हैं। वह काम जड़ होगा और रचनात्मक होते हुअे भी रचनात्मक काम के आशय को सिद्ध नहीं कर सकेगा। लाखों कत्तिनों का सिर्फ रोजी के लिअे चरखा चलाना मूल अुद्देश्य की दृष्टि से जिस तरह अधूरा ही काम है, अुसी तरह यह भी है। दूसरी तरफ से यदि बडे कार्यकर्ताओं के दिल में भी यह भाव हो कि छोटे कार्यकर्ताओं को हरअेक काम का मूलभूत सिद्धान्त समझने की जरूरत नहीं है और अुन्हें अुसकी चर्चा करने की धृष्टता नहीं करनी चाहिअे; अुन्हें तो सिर्फ श्रद्धा और हुक्म-बरदारी की वृत्ति से हिदायतों पर अमल ही करते रहना चाहिअे, तो भी रचनात्मक काम में से हम जो शक्ति पैदा करने की अिच्छा रखते हैं, वह पैदा नहीं होगी।

अिसी तरह जिन कार्यकर्ताओं को बुद्धि की कुछ अधिक देन मिली है, अुन्हें भी बुद्धि की कीमत की मर्यादा समझनी चाहिअे। बुद्धिमान तरुणों में अकसर यह खयाल पाया जाता है कि चूंकि वे विचार करने की ताकत रखते हैं, अिसलिअे जो चीज विचार में नहीं बैठ सकती वह गलत ही होनी चाहिअे। अिसलिअे जब तक कोअी बात या नियम अुनकी बुद्धि को पूरी तरह जँच न जाय, तब तक अगर अुन्हें अुसका अमल करना पडे, तो अुसमें अुनका व्यक्तित्व दबाया जाता है। परन्तु समझने की शक्ति केवल विचार-शक्ति से बढ़ने वाली चीज नहीं है। अुसकी वृद्धि के लिअे विचार के साथ जीवन के अनुभव की भी जरूरत है और वह कुछ अंश में अुम्र के साथ ही होता है। अिसलिअे अपने से ज्यादा अनुभवी और बुद्धिमान मनुष्य के अनुशासन में निष्ठा से काम करने की हर अेक को जरूरत है ही। चूंकि हमारे रचनात्मक काम का तरीका अहिंसक ही है, अिसलिअे अुसका अनुशासन कार्यकर्ताओं की श्रद्धा पर ही निर्भर है। अैसी श्रद्धा के अभाव में बुद्धि कामों को अंजाम देनेवाली नहीं, बल्कि बिगाड़नेवाली होती है और बुद्धिमानों की संख्या जितनी बड़ी होती है, अुतनी ही अधिक दलबन्दियाँ होती हैं तथा लोगों में नाना तरह की शंका-कुशंकाअें, तर्क-कुतर्क और बुद्धिभेद करनेवाले मतमतांतर फैलते हैं। अेक सत्पुरुष ने कल्पना की विविधता को ही कलि का लक्षण बतलाया है।

अिसी दृष्टि से दूसरी भी अेक बात है। अेक ही काम के लिअ अेक ही क्षेत्र में दो प्रतिस्पर्धी मंडल नहीं होने चाहिअे। काका साहब की अेक अुक्ति बहुत प्रसिद्ध है—'दो घडियों की तरह दो नेताओं की राय कभी अेक नहीं होती।' घडियों के मामले में तो वैज्ञानिकों ने बिजली से चलनेवाली घड़ी का आविष्कार करके रास्ता निकाल लिया है। अेक ही प्रवाह द्वारा चलनेवाली सैंकड़ों घडियाँ अेक ही समय बताती हैं। लेकिन दो बुद्धिमान व्यक्तियों में अर्से तक अेक-सा ही प्रवाह चलाने की कोअी तरकीब अब तक नहीं निकली है।

परम्परागत रूढ़ियों में अेक हद तक वैसी अेकता पैदा करने का गुण होता है। और अिसलिअे बुद्धिमान लोग अपने प्रभाव में आनेवाले लोगों में अनुकूल रुढियों का निर्माण कर के अेकता पैदा करने की कोशिश करते हैं। लेकिन अुससे छोटे-छोटे सम्प्रदाय और दल बन जाते हैं

जिनका अुसी प्रकार का काम करनेवाले दूसरे लोगों के साथ कोअी मेल नहीं होता। यह बात अेकता बिगाड़नेवाली होती है; बढ़ानेवाली नहीं।

दो आदमी अेक-साही काम करना चाहते हैं। लेकिन दोनों के स्वभाव, काम करने के तरीके या विचारों में फर्क है। प्रयत्न करने पर भी वे अेक दूसरे के साथ काम करना असम्भव मानते हैं।—अैसी स्थिति में क्या किया जाय? मेरी राय में दोनों में से जो ज्यादा समझदार हो, अुसको, अगर दूसरे में कुचरित्र, बेअीमानी अथवा निजी स्वार्थ-सिद्धि जैसा कोअी दोष न पाया जाता हो तो, अुस काम या क्षेत्र से स्वयं हट जाना चाहिअे और दूसरे काम या क्षेत्र को अपनाना चाहिअे। अुस दूसरे व्यक्ति के स्वभाव, तरीके या विचार में अगर कोअी गलती होगी, तो अनुभव से वह स्वयं अुसे सुधार ही लेगा। हट जानेवाले कार्यकर्ता को हटने के साथ यह नीति भी बरतनी चाहिअे कि वह दूसरे व्यक्ति की नुक्ताचीनी कर के या अुसकी भूलों को बढ़ा बढ़ा कर बयान कर अुसकी संस्था की प्रतिष्टा कम करने का प्रयत्न न करे। अुलटे, चूंकि वह दूसरा सज्जन वही काम कर रहा है जो खुद छोड़नेवाले को भी प्रिय है, अिसलिअे अुसे बाहर रह कर भी जितनी मदद हो सके अुतनी करनी चाहिअे। अिस तरह कुछ समय के बाद यह अनुभव होगा कि अेक दिन दोनों यह महसूस करेंगे कि वे साथ काम कर सकते हैं और अपने विचार, तरीके तथा स्वभावों में अेकता ला सकते हैं। अहिंसक व्यवहार का यह आवश्यक परिणाम है।

जब दूसरे के साथ मिल न सकने का कारण अुसके चारित्र्य, अीमानदारी या निःस्वार्थता के ही बारे में शक हो, तब दो परिस्थितियाँ पैदा होती हैं:—अेक यह कि शक होते हुअे भी कोअी सबूत नहीं है। और दूसरी यह कि अुसके पास माकूल प्रमाण हैं। पहली परिस्थिति में अुसका वही कर्तव्य है जो कि स्वभाव वगैरा के भेद के विषय में अूपर बतलाया जा चुका है। जब तक पूरा पूरा और ठोस सबूत न मिले, तब तक खामोश रहना चाहिअे। दूसरी परिस्थिति में लोकहित की दृष्टि से अुसका कर्तव्य है कि वह निडरता से अुस व्यक्ति का दोष जाहिर कर दे।

अूपर लिखी बातें जीवन की अहिंसक नव-रचना और देश की आजादी के लिअे नीतिशिक्षा के तौर पर अनिवार्य हैं। अिनके अभाव में काम करने के सब प्रयत्न शकल में रचनात्मक और अूपर अूपर से परिणामकारक मालूम होते हुअे भी, परिणाम में विभाजक या फूट पैदा करनेवाले भी साबित हो सकते हैं।

राष्ट्रीय प्रगति की शर्त

भूतकाल के पाठों का अगर कोअी मूल्य है, तो अेक बात स्पष्ट है: वह यह कि जब तक हिन्दू और मुसलमान हाथ में हाथ मिला कर अकबर के जमाने के लोगों का, अुसके प्रमुख मन्त्रियों और सलाहकारों का, अनुसरण करने का निश्चय नहीं कर लेंगे और अुसके पोते औरंगजेब की गलतियों को प्रयत्न-पूर्वक नहीं टालेंगे, तब तक अिस विशाल देश में कोअी प्रगति संभव नहीं है।... हिन्दू या मुसलमान अपने हित भिन्न या अलग मानने की कोशिश करें और ये दोनों सम्प्रदाय आपस में अलग अलग फिरकों तथा स्वार्थों का निर्माण करने लगें और धर्मद्वेष तथा जातिद्वेष की जखमें न भरने की चेष्टा करें, तो अुनके अिस तरह के हरअेक प्रयत्न का धिक्कार ही होना चाहिअे।

—महादेव गोविन्द रानडे

सहज दर्शन

[मनोहर दिवाण]

(आजकल नीचे लिखे दो प्रश्न बार बार पूछे जाते हैं। श्री पी० स्प्रैट, आचार्य जावडेकर, आचार्य कृपालानी, डॉ० पट्टाभि, पं० रामदयाल तिवारी और दूसरे कअी विचारकों ने अुनके विषय में स्वतंत्र ग्रंथ ही लिखे हैं। वे मुख्यतः बाह्य प्रवृत्तियों का विवेचन-परीक्षण करते हैं। अुन्हें अिन प्रश्नों के अन्तरंग की कल्पना तो है; लेकिन अुसकी निश्चित और स्पष्ट व्याख्या अुनकी रचनाओं में नहीं पायी जाती। अुसीका विचार यहाँ संक्षेप में किया जाता है।

यह लेख पू० विनोबा ने देखा है। अुनकी सूचना के अनुसार अुसमें कुछ परिवर्तन भी किये हैं। अिस प्रतिपादन से वे सहमत हैं; लेकिन अुसकी भाषा और रचना की जिम्मेवारी मेरी है।)

गांधीजी की निष्ठा का यथार्थ स्वरूप

प्रश्न १ ला—गाँधीजी की बदौलत समाज में जो आचार-विचार-प्रणाली रूढ हो रही है, अुसे कोअी गांधी'वाद' कहते हैं कोअी 'गांधी-तत्त्वज्ञान', कोअी 'गांधी-दर्शन' और कोअी कोअी तो 'गांधी-सम्प्रदाय' कहते हैं। अुसका यथार्थ नाम क्या है ?

अुत्तर—स्वयं गांधीजी 'गांधीवाद' जैसी कोअी चीज नहीं मानते। 'वाद' की तार्किकता, 'तत्त्वज्ञान' की रूक्षता या 'सम्प्रदाय' की अेकांगिता अिस प्रणाली में नहीं है। वह जीवित श्रद्धा पर स्थित है। वह जीवन की अेक निष्ठा है और जीवन के प्रत्येक अंग का स्पर्श करती है। वह कुछ लोगों के जीवन का मिशन (जीवन-कार्य) होने जा रही है। वह धर्म के ढांचे में ढली नहीं है; लेकिन धर्म के बीज और वीर्य अुसमें मौजूद हैं। क्योंकि वह व्यक्ति और समाज के जीवन की नयी रचना स्वाभाविक धर्म-निष्ठा की नींव पर करना चाहती है। अुसमें सारे धर्मों का या सन्त-वचनों का सार भरा हुआ है। तो भी अुसकी अपनी भी अेक विशेषता है। वह कर्मयोग-प्रधान आत्मनिष्ठ तत्त्वज्ञान का नैसर्गिक शुद्ध रूप है। अेक तरफ से जहाँ वह धर्म के ढाँचे को स्वीकारने से अिनकार करती है, वहाँ दूसरी तरफ से दर्शन की अेकेडेमिक (केवल वैचारिक) पूर्णता भी टालती है। देखने में तो वह निष्ठा है, लेकिन वस्तुतः जीवन का दर्शन है। अुसके लिअे डॉग्मा (आग्रही मत) वर्ज्य है। अुसे अेक विशेष प्रकार की समाज-रचना अभीष्ट है। लेकिन वह अुसका चित्रण नहीं करती। जीवन की निष्ठा पर ही जोर देती है और विकास के अनुसार समाजरचना को लचीला रूप लेने देती है। यही लचीलापन अुसका गुण और विशेषता भी है। 'Ism' is a distinctive practice or theory ('वाद' अेक विशेष आचार या सिद्धान्त है), अितना ही अर्थ लिया जाय, तो अुसे 'वाद' कहने में हर्ज नहीं है। अुसे अगर 'वाद' ही कहना हो, तो 'नैष्ठिक सेवा-वाद' कह सकते हैं। परन्तु वस्तुतः वह जीवन की अेक 'निष्ठा' है। जिनकी यह निष्ठा है, वे अुसे कोअी नाम नहीं देते। कहते हैं कि मनुष्य की वह अेक स्वाभाविक या सहज निष्ठा है। जिनकी वैसी निष्ठा नहीं है, वे लोग अलबत्ते अुसे तरह तरह के नाम देना चाहते हैं। हम अुसे 'सहज-निष्ठा' या 'सहज-दर्शन' कह सकते हैं।

सहज-निष्ठ व्यक्ति के लक्षण

प्रश्न २ रा—अिस प्रणाली का स्वरूप कैसा है ? अिस प्रकार की निष्ठा वाला व्यक्ति किसे कह सकते हैं ?

हृदय-शुद्धि और सेवा-धर्म की अेकता

अुत्तर—(१) अैसे सहजनिष्ठों में अुनकी कर्मयोग प्रधान आत्मनिष्ठा में से पैदा होनेवाली- 'सर्वेषां च सुहृन्नित्यं, सर्वेषां च हितेरतः—कर्मणा, मनसा, वाचा', की वृत्ति पायी जाती है। 'मेरा हृदय सब के विषय में शुद्ध है, मैं सबको प्रेम करूँगा, सबकी सेवा करूँगा, किसी को और कभी भी अपनी सेवा के दायरे से बाहर नहीं समझूंगा'—यह अुसका सिद्धान्तवाक्य होता है। यही अुसकी शक्ति है और अिसी में अुसका आनन्द। यही अुसकी श्रद्धा है और यही अुसका जीवन। अिसलिअे हृदयशुद्धि और सेवा के अतिरिक्त अुसका दूसरा कोअी अुद्देश्य नहीं है। ये दोनों वस्तुतः अेक ही तत्त्व के सब्जेक्टिव और आब्जेक्टिव (कर्तृ-तन्त्र और वस्तु-तन्त्र) पहलू हैं। वह अेक को साध्य और दूसरे को साधन भले ही कहता हो, लेकिन अुनमें अभेद मानता है। 'मैं समाज की या दूसरों की सेवा के लिअे कुछ करता हूँ', अैसा कहने की अपेक्षा, 'यह सब आत्म-शुद्धि के लिअे है, अशुद्ध मनुष्य दूसरों की सेवा कैसे कर सकेगा?'—अिस प्रकार की नम्रता की भाषा अुसे भाती और सुहाती भी है। 'योगी भी सर्वसंग छोड़ कर आत्मशुद्धि के लिअे ही कर्म करते हैं। तो फिर, क्या हम जैसे साधकों को विशेषरूप से नही करना चाहिअे'?—कौन कह सकता है अुसका यह प्रश्न माकूल नहीं है? जहाँ वह जानता है कि आत्मशुद्धि के बिना सेवा नहीं हो सकती, वहाँ अुसकी यह भी श्रद्धा होती है कि आत्मशुद्धि का सेवा के बिना दूसरा साधन नहीं है। 'अपनी और दूसरों की आत्म-शुद्धि में मदद पहुँचाना'—यही अुसकी सेवा की परिभाषा होती है।

मनोयोग

(२) अुसमें दूसरी जो अितनी ही प्रबल वृत्ति पायी जाती है, वह यह कि जो-कुछ किया जाय वह मनसा-वाचा-कर्मणा, सच्चे हृदय से, सारी शक्ति अेकत्र करके, किया जाय। अिसीको 'सिन्सीयारिटी' या 'मनःपूर्वकता' कहते हैं। यही विचार-अुच्चार-आचार की अेकरूपता है। अिसे कोअी 'महात्मापन' या 'दीवानापन' भले ही कहे; लेकिन यह अुस व्यक्ति का स्वभाव ही बन जाता है।

अेकादश व्रतों की आवश्यकता

(३) अुसको यह अुत्कट अिच्छा होती है कि आत्मशुद्धि और सेवा सच्ची भावना से होनी चाहिअे। अिसीलिअे अुसकी यह श्रद्धा होती है कि सत्य, अहिंसा, आदि अेकादश व्रतों के पालन के बिना आत्मशुद्धि या सेवा नहीं हो सकती। 'सेवा को जीवन अर्पण करने' का अर्थ है 'अेकादश-व्रत-निष्ठ जीवन अर्पण करना।' यही अुसका निश्चित समीकरण है। आत्मशुद्धि और सेवा में से पैदा होनेवाली श्रद्धा ही अुसकी अपनी विशेषता है। संसार के दूसरे किसी भी धर्म या संघ में यह श्रद्धा नहीं पायी जाती। केवल आत्मवादी व्यक्ति सेवापराङ्मुख हो सकते हैं; अथवा कर्मरत व्यक्ति आत्मविमुख हो सकते हैं। लेकिन यह दोनों दोषों से बचता है। अितना ही नहीं, बल्कि, अुसके लिअे सेवा और आत्मशुद्धि अविभाज्य होती हैं। अिसलिअे अुसकी यह श्रद्धा होती है कि अेकादश व्रतों के पालन के बिना सेवा नहीं हो सकती। अिसी श्रद्धा के कारण, 'गीता का सांख्य श्रेष्ठ है या योग? सगुणोपासना अनुष्ठेय है, या निर्गुणोपासना?'—यह प्रश्न ही अुसके सामने नहीं आता। दोनों का सहज-सुन्दर समन्वय हो जाता है।

सापेक्ष सत्य का आचरण

(४) वह आत्मशुद्धि के अुद्देश्य से अपने आपको नम्रता पूर्वक सेवा को अर्पण कर देता है।

अुसी प्रकार सत्यान्वेषण भी अुसके जीवन का अेक नित्य कार्य होता है। वह जानता है कि वह सिर्फ सापेक्ष सत्य ही देख सका है; निरपेक्ष सत्य के दर्शन होना अभी बाकी हैं। लेकिन अुसकी यह श्रद्धा होती है कि सापेक्ष सत्य के निरलस आचरण से ही हम निरपेक्ष सत्य के दर्शन पा सकते हैं। वह यह भी मानता है कि किसी व्रत के पूर्णतः पालन के लिअे अुस व्रत का आज तक के ज्ञात अर्थ में पालन करना ही अेक मात्र मार्ग है।

निरपवाद व्रतनिष्ठा

(५) वह अिन व्रतों को निरपवाद मानता है। 'समाजहित के लिअे झूठ बोलने या हिंसा करने में क्या हर्ज है?' अिस तरह का भ्रम अुसे नहीं होता। कारण समाजहित किस बात में है, अिसके विषय में कितना भी विवाद क्यों न हो; लेकिन यह प्रत्यक्ष अनुभव से जाना जा सकता है कि अुसमें आत्मशुद्धि है या नहीं। वह मानता है कि आत्मवंचना में अुसका या दूसरों का हित नहीं है।

सत्याग्रह और विश्वबंधुत्व पर्यायवाची हैं

(६) पीडितों की या हमें पीड़ा पहुँचानेवालों की सेवा करने में अुसे अुत्साह होता है। अुपेक्षित या सहज-प्राप्त सेवा की तरफ अुसका नैसर्गिक झुकाव होता है। यों तो अुसकी निष्ठा अपनी सेवा से किसी को दूर रखने की नहीं होती। वह दुःखितों की अनुकम्पनीय दशा देख कर अुनकी सेवा के लिअे अुद्युक्त नहीं होता; बरन अिसलिअे कि अुसके मत से अुनकी यह हालत करने में जाने-अनजाने अुसका भी हाथ रहा है। अुसकी यह भावना होती है कि दुःखितों की सेवा करने में वह अुनका अुपकार नहीं करता, किन्तु अपने ही विहित-अविहित दोषों का क्षालन करता है। अुसे शत्रु द्वारा दी जानेवाली यन्त्रणाओं का अुतना दुःख नहीं होता, जितना कि अिस बात का होता है कि वह सबका भाअी और हितकर्ता होते हुअे भी कोअी अुसे अपना हितविरोधी क्यों मानता है? अिसलिअे वह अुसका बन्धुभाव जाग्रत करने के लिअे अपने बन्धुभाव को अधिक शुद्ध करने लगता है। सत्याग्रह विश्वबंधुत्व के विकास का ही दूसरा नाम है। अुसकी यह श्रद्धा होती है कि समाज से दुःख, दैन्य, वैर और कलह का अन्त और रामराज्य या स्वराज्य कायम करना हो, तो हमें सभी के साथ, सर्वदा और सर्वत्र अुसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिअे जैसा कि हम अपने कुटुम्ब में अेक-दूसरे से करते हैं। अुसमें देश या धर्म के भेद के कारण कोअी फर्क नहीं होना चाहिअे।

कर्तव्यों का सामंजस्य

(७) जीवन अविभाज्य है; अुसके किसी भी अंग की अुपेक्षा नहीं की जा सकती। कर्तव्यों में गौण और प्रधान का भेद नहीं है। जिस वक्त जिसे जो कर्तव्य प्राप्त हो, अुस वक्त अुसे पूरा करने में ही अुसका और दूसरों का हित है। अपने जीवन से शुरू करके ही व्यक्ति समाज का हित कर सकता है। लेकिन, 'अपने जीवन से शुरू करने' का मतलब 'अपने जीवन तक ही सीमित' नहीं होना चाहिअे।

अन्याय-असत्य से असहयोग

(८) जिन्होंने अपना जीवन आत्मशुद्धि को अर्पण कर दिया है, अुनका अन्याय या असत्य से असहयोग करना धर्म है। अुनकी अुपेक्षा करना या अन्याय्य अुपायों से अुनका प्रतीकार करना, दोनों अुसके लिअे असम्भव हैं। अुसे यही चिन्ता होती है कि वह अपनी शुद्ध भूमिका से न डिगे। अुसे दूसरा कोअी डर नहीं होता। क्योंकि अुसे दूसरी कोअी बात साधनी नहीं होती है। जो भूमिका और साधनों की फिक्र करता है, अुसे साध्य की

अलग फिक्र नहीं करनी पड़ती। वह नहीं मानता कि अशुद्ध साधनों से भी शुद्ध साध्य प्राप्त हो सकता है।

आत्मोन्नति और समाजक्रान्ति

(९) अिस प्रणाली में समाज-रचना या धर्म-संस्थापना का समावेश तो है, लेकिन, 'व्यक्ति अपने जीवन की बुनियाद किस निष्ठा को बनावे ?'—यही विचार मुख्य है। अुसीमें दोनों के बीज और स्वरूप-निश्चय अन्तर्हित हैं। अुनका बाह्य स्वरूप बद्ध न रख कर विकासानुरूप लचीला रखने में ही अुसकी विशेषता है। अुसे केवल समाज-रचना की योजना या धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत करने से सन्तोष नही होता। वह तो जीवन का विकास ही शुद्ध धर्मभावना के अनुसार करना चाहता है। वह मानता है कि अपना जीवन शुद्धातिशुद्ध करते हुअे दूसरों की शुद्धि में सहायक होना ही धर्म-संस्थापना है। जब तक शरीर है, तब तक मनुष्य को आत्म-शुद्धि के लिअे अविरत प्रयत्न करना चाहिअे। अुसमें शिथिलता कदापि नहीं आनी चाहिअे। क्योंकि वह मानता है कि जब तक मनुष्य देह-धारी है तब तक अुसे सम्पूर्ण शुद्धि प्राप्त नहीं हुअी है। आत्मशुद्धि जितनी बढ़ती है, अुतनी ही अशुद्ध-निवृत्ति की प्रवृत्ति भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है। पानी कितना भी गहरा अुतरे, तो भी ज्यादा गहराअी में अुतरते जाने की अुसकी प्रकृति में फर्क नहीं होता। वही हाल मनुष्य स्वभाव का भी है।

अिसीलिअे 'अिसे सहज दर्शन' या 'नैष्ठिक सेवावाद' कह सकते हैं। जिस व्यक्ति में ये नौ प्रकार की श्रद्धाअें नहीं हैं, अुसकी यह निष्ठा नहीं मानी जा सकती।

न्यायमूर्ति रानड़े का पुण्यस्मरण

अुन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में पूना शहर पर सभी बातों में प्रायः मुर्दनी छायी हुअी थी। ...गोरों की सुनियंत्रित राज्यप्रणाली, चारों तरफ कानूनी निर्बंधों का जारी होना, जमीन की पैमाअिश, रेलगाड़ियाँ, तार, स्कूल, डाकघर आदि राज्यव्यवस्था के अपूर्व ठाठबाट से लोग चौंधिया-से गये थे। और गदरवालों की हार होने पर तो अँग्रेजी राज की धाक और भी अधिक जम गयी थी।...जो पूना की हालत थी, वही सारे महाराष्ट्र की थी। किसी को यह नहीं सूझता था कि अब क्या किया जाय ? हमारी वर्तमान परिस्थिति अच्छी है या बुरी, अिसका भी होश नहीं था।...पुराने राज में जो गुण वांछनीय माने जाते थे, अुनकी अब नेटिवों (हिन्दुस्तानियों) में कोअी जरूरत न रहने के कारण सारे देश के लोक-नेताओं में अेक तरह की शिथिलता नजर आती थी। अुस वक्त महाराष्ट्र देश अेक ठंढे गोले के जैसा पड़ा हुआ था।...अिस ठंढे गोले को किस तरह आँच देने से वह फिर से सजीव हो अुठेगा और हाथ-पैर हिलाने लगेगा, अिसका रातदिन लगातार विचार करके, अनेक दिशाओं से, अनेक अुपायों से, अनेक रीतियों से, अुसे पुनर्जीवित करने के दुर्घट कार्य की जिम्मेवारी ले कर अुसको पूरा करने के लिअे कमरतोड़ मेहनत सबसे पहले माधवरावजी (न्यायमूर्ति रानडे) ने ही की और हमारी राय में यही अुनकी महत्ता और असामान्य श्रेष्ठता का मुख्य चिन्ह है।...अगर आज महाराष्ट्र में कुछ वीर्य पाया जाता है, अुसके वक्ता और लेखक निर्भय हो कर सार्वजनिक बातों की चर्चा करते हैं, तो यह सब निःसंदेह माधवरावजी के पच्चीस वर्षों के दीर्घोद्योग का ही फल है।

'केसरी,' २२-१-१९०१. —लो० बाल गंगाधर तिलक

क्या अब युद्ध साम्राज्यवादी नहीं रहा ?

[आचार्य नरेन्द्रदेव]

रूस पर जर्मनी के आक्रमण के बाद से कुछ क्षेत्रों म यह कहा जाने लगा है कि वर्तमान युद्ध का स्वरूप बदल गया है, अब वह साम्राज्यवादी युद्ध न रह कर फासिज्म के विरुद्ध जनता का युद्ध बन गया है। अब, जब कि कम्युनिस्ट पार्टी स्पष्टरूप से अैसी घोषणा कर रही है, यह आवश्यक जान पड़ता है कि हम परिस्थिति की फिर से जाँच करें।

युद्ध का अुद्देश्य

मेरी सम्मति में युद्ध के स्वरूप में परिवर्तन नहीं हुआ है। युद्ध का स्वरूप अुसमें भाग लेनेवाले प्रधान प्रतिद्वन्दियों की मूलभूत नीतियों और अुद्देश्यों पर निर्भर रहता है। वर्तमान संघर्ष में पक्ष और विपक्ष के प्रधान प्रतिद्वन्दी ब्रिटेन और अमेरिका तथा जर्मनी, अिटली और जापान हैं। पहले समूह में वे साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं, जिनकी साम्राज्यलिप्सा बहुत-कुछ सन्तुष्ट हो चुकी है। दूसरे पक्ष में वे राष्ट्र हैं, जो दुनिया के साम्राज्यवादी बन्दरबाँट की दौड़ में पीछे रह गये हैं और फलस्वरूप असन्तुष्ट हैं। पहला समूह अपने साम्राज्यों की रक्षा के लिअे और और दूसरा समूह अपने साम्राज्य-विस्तार के लिअे अिस युद्ध में संलग्न है। वर्तमान युद्ध साम्राज्यवादी शक्तियों के नये शक्तिसन्तुलन के अनुसार संसार के पुनर्विभाजन के अुद्देश्य से लड़ा जा रहा है। केवल अिसी बात से कि सोविअेट रूस जर्मन हमले का शिकार बन गया है, युद्ध का स्वरूप बदल नहीं जाता। रूस और ग्रेट-ब्रिटेन दोनों के अुद्देश्यों में समानता केवल अितनी ही है कि दोनों अेक समान-शत्रु के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं। बल्कि यह कहना अधिक अुपयुक्त होगा कि चूंकि रूस प्रधान प्रतिद्वन्दियों में नहीं है, अिसलिअे अुसका अुद्देश्य केवल नाजी जर्मनी के आक्रमण के विरुद्ध आत्मरक्षा के लिअे युद् करना ही है। यही कारण है कि रूस को अटलाण्टिक घोषणा (जिसमें न तो अुन सभी सिद्धान्तों का ही समावेश हुआ है जिनके आधार पर न्यायपूर्ण और स्थायी शान्ति की स्थापना हो सकती है और जिसको सीमित भूभाग में ही लागू किया जायगा।) पर हस्ताक्षर करना पड़ा है। स्टालिन को अपने भाषण में यह कहने को वाध्य होना पड़ा है कि "प्रत्येक अीमानदार व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अमेरिका और ब्रिटेन की सेना की सहायता करे; क्योंकि वे न केवल यूरोप की बल्कि अेशिया की स्वतन्त्रता के लिअे भी लड़ रहे हैं।"

जनता का युद्ध

अिंगलैण्ड के साथ रूस की मैत्री ने रूस की युद्ध और शान्ति-सम्बन्धी नीतियों में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं किया है। रूस ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वह अपने पितृदेश की रक्षा के लिअे राष्ट्रीय युद्ध में संलग्न है। स्पष्टरूप से रूस आज अैसे किन्हीं भी आदर्शों के लिअे नहीं लड़ रहा है, जिनके लिअे अेक समाजवादी राष्ट्र से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लड़ने की आशा की जाती है। सच तो यह है कि मित्रराष्ट्रों में से प्रत्येक अपने स्वार्थों की रक्षा के लिअे ही लड़ रहा है।

वर्तमान युद्ध को जनताका युद्ध (पीपिल्स वॉर) कहना भी निरा भ्रम होगा। वर्तमान युद्ध को जनता का युद्ध केवल अिस अर्थ में किसी अंश तक कहा जा सकता है कि जर्मनी

के विरुद्ध रूस और जापान के विरुद्ध चीन की जनता आत्मरक्षा के लिअे लड़ रही है। पर यह कहना कि समूचा युद्ध ही जनता का युद्ध बन गया है, सत्य के विरुद्ध होगा। जनता का युद्ध कोअी युद्ध तब कहलाता है जब कि या तो वह शासकवर्ग के विरुद्ध जनक्रान्ति का स्वरूप धारण करे या शोषितवर्ग साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में परिणत करने का प्रयत्न करे। किन्तु शासकवर्ग को युद्ध के संचालन मे जनता के बहुत बड़े अंश की सहायता प्राप्त हो जाने से ही कोअी युद्ध जनता का युद्ध नहीं बन जाता। जनता का अपनी गवर्नमेंट के पीछे चलना अेक बात है और गवर्नमेंट का जनता के पीछे चलना दूसरी बात है। अगर यह मान लिया जाय कि शासकवर्गों को जनता का समर्थन मिलने मात्र से ही कोअी युद्ध जनता का युद्ध हो जाता है, तब तो जर्मनों के खिलाफ ब्रिटेन का युद्ध तभी से जनता का युद्ध बन गया जब से श्री चर्चिल ने ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री का पद ग्रहण किया। परन्तु हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे कम्युनिस्ट मित्र कुछ दिनों पहले तक अिस युद्ध को साम्राज्यवादी बताते आये हैं और अुनका रुख कुछ अंशों में नाजी जर्मनी का समर्थक भी रहा है। अिस युद्ध में जर्मनी प्रधान आक्रमणकारी राष्ट्र रहा है और रूस पर आक्रमण होने के पहले दूसरे कितने ही राष्ट्र जर्मन आक्रमण के शिकार हो चुके हैं। परन्तु अिसलिअे कभी भी अिस युद्ध को जनता का युद्ध नहीं समझा गया है। फिर रूस पर आक्रमण होने से ही अिसे जनता का युद्ध क्यों समझा जाय?

हम सभी समझते हैं कि सुसंगठित मजदूर-दलों को भी "साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में परिणत करो", के नारे के अनुसार काम करना कितना कठिन है। पूँजीवादी देशों में राष्ट्रीयता की भावना काफी सुदृढ़ है और मजदूरवर्ग भी संकट के समय अिस भावना के भाव में बह जाता है। साधारणतया मजदूरों ने विगत और वर्तमान दोनों महायुद्धों में अपनी सरकारों का साथ दिया, अिससे हम अिस परिणाम पर पहुँचते हैं कि साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में परिणत करने का या तो सिद्धान्त ही गलत है या लेनिन जैसा कोअी प्रतिभासम्पन्न नेता ही अिसे कार्यान्वित कर सकता है। वर्तमान युद्ध के दौरान में कम्युनिस्ट लोग आरम्भ में ब्रिटिश और फ्रेंच मजदूरों में अिस नारे का प्रचार कर रहे थे; लेकिन वे जर्मनी में अिस सम्बन्ध में मौन थे। कम्युनिस्टों के विचारानुसार अिस युद्ध का दोष नाजी जर्मनी की अपेक्षा पार्लमेण्टरी प्रजातंत्रवादी ब्रिटेन और फ्रांस पर ही अधिक था। अुनकी अिस नीति का कारण वास्तव में जर्मनी और रूस के बीच होनेवाली अनाक्रमण-सन्धि थी। अवसरवादिता का अिससे बढ़कर और दूसरा अुदाहरण मुश्किल से मिलेगा। विभिन्न देशों की सरकारों को अपने देशों की जनता के बड़े अंश का समर्थन मिल रहा है। यह समझना गलत होगा कि जर्मन जनता हिटलर का समर्थन नहीं कर रही है। जनता शासकवर्गों द्वारा धोखे में डाली जा रही है और युद्ध के सम्बन्ध में शासकवर्गों द्वारा किअे गये प्रचार का अुस पर पूरा प्रभाव हुआ है।

अतअेव केवल अिसी कारण कि जनता का बड़ा भाग शासकवर्गों का समर्थन कर रहा है, युद्ध न्याय्य और औचित्यपूर्ण नहीं हो जाता, अगर वह वास्तव में वैसा नहीं है। जापान और चीन की लड़ाअी पिछले साढ़े चार साल से चल रही है, यद्यपि युद्ध की नियमितरूप से घोषणा अभी हाल में ही हुअी है। ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी अेक अरसे से जापान

के विरुद्ध बिना नियमितरूप से युद्ध की घोषणा किये हुअे,चीन की सहायता युद्धसम्बन्धी ॠणों और युद्ध-सामग्री के द्वारा करते रहे हैं। जो कार्रवाअी बिना घोषणा के जारी थी, अुसके अब जाब्ते के साथ होने से ही परिस्थिति में कोअी मौलिक अन्तर नहीं आता। जापान के विरुद्ध चीन का युद्ध जनता का युद्ध कहा जा सकता है। किन्तु ब्रिटेन ओर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के साथ बाकायदा अुसकी दोस्ती हो जाने से समूचे युद्ध का स्वरूप नहीं बदल जाता। अगर अैसा हो सकता तो वर्तमान युद्ध किसी भी अवस्था में साम्राज्यवादी नहीं समझा जा सकता था।

अगर रूस पर जर्मनी के आक्रमण से समूचे युद्ध का स्वरूप परिवर्तित हो गया है और अब वह साम्राज्यवादी नहीं रहा, तो यह जानना आवश्यक है कि अब युद्ध के नये अुद्देश्य क्या हैं? अिस प्रश्न का अुत्तर न तो अब तक दिया गया है और न दिया जा सकता है। क्योंकि उद्देश्यों में परिवर्तन हुआ ही नहीं है। यह कहा जा सकता है कि नया उद्देश्य हिटलरवादी जर्मनी को हराना है। परन्तु यह तो युद्ध के आरम्भ से ही ब्रिटेन का अुद्देश्य रहा है। अन्तर केवल अितना ही हुआ है कि अब यह अुद्देश्य दूसरे और भी कितने ही राष्ट्रों का अुद्देश्य बन गया है, जो आरम्भ में युद्ध में सक्रियरूप से सम्मिलित नहीं थे; पर अब लड़ाअी के मैदान में घसीट लिये गये हैं।

फासिज्म का खतरा

सच्चे अर्थ में छेड़े गये जनता के युद्ध का अुद्देश्य साम्राज्यवाद और फासिज्म दोनों का विनाश होना चाहिअे। यद्यपि साम्राज्यवाद और फासिज्म दोनों में गुणात्मक अन्तर है, पर पूंजीवाद की वर्तमान ह्रासावस्था में यह अन्तर बहुत थोड़ा ही रह जाता है। पार्लमेन्टरी प्रजातन्त्र पूंजीवाद की समृद्धि के युग की देन है। किन्तु अपनी ह्रासावस्था में पूंजीवाद प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप में ही जीवित रह सकता है। जिन देशों में अभी फासिज्म की स्थापना नहीं हुअी है, वहाँ भी अगर पूंजीवाद की रक्षा के लिअे अुसकी स्थापना की आवश्यकता का अनुभव शासक-वर्गों को हुआ, तो पार्लमेन्टरी प्रजातन्त्र के फासिज्म में परिवर्तित होने में देर न लगेगी। वर्तमान युद्ध के द्वारा ब्रिटिश और अमेरिकन साम्राज्यवाद का अन्त नहीं होनेवाला है। रूस और चीन का भी यह अुद्देश्य नहीं है। और न अिस अुद्देश्य के सिद्ध होने के ही लक्षण हैं। अिसके विपरीत मुझे तो यही आशंका है कि युद्ध की प्रगति के साथ प्रजातन्त्रवादी देश भी धीरे धीरे फासिज्म की ओर झुकते जायेंगे। युद्ध-सम्बन्धी आवश्यकताअें अुन्हें सैनिकवादी दृष्टिकोण को अपनाने को मजबूर करेंगी और अुनमें अेक विचार के लोगों का अधिनायकत्व (अथॉरिटेरियानिजम) बढ़ता चला जायगा।

भावी संसार-व्यवस्था का रूप

यह भी कहा जाता है कि वर्तमान युद्ध के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप न्याय, स्वतन्त्रता तथा सहकारिता पर आश्रित अेक नवीन विश्व-व्यवस्था स्थापित होगी। अैसी आशा का प्रधान आधार यह मिथ्या विश्वास है कि युद्धोपरान्त शान्तिसंस्थापन के समय रूस तथा चीन का मत प्रबल रहेगा। यह अेक सुखस्वप्न मात्र है, जिसे हमें परित्यक्त कर देना चाहिअे। अिस बार शान्ति स्थापित होते समय संयुक्तराष्ट्र अमेरिका का मत सबसे प्रबल रहेगा। जैसे विगत महायुद्ध के समय अिंग्लैण्ड पूंजीवाद का श्रेष्ठतम तथा वृहत्तम प्रतिनिधि था, जिसके कारण विगत युद्ध के अुपरान्त का शान्ति-

स्थापन प्रधानतया अिंग्लैण्ड की अिच्छानुकूल हुआ, अुसी प्रकार वर्तमान युग का श्रेष्ठतम तथा दृढ़तम प्रतिनिधि होने के कारण संयुक्त-राष्ट्र की अिच्छा के अनुकूल अिस बार शान्ति-स्थापन होगा। बहुत सम्भव है कि संयुक्तराष्ट्र प्रशान्त महासागर पर निरंकुश आधिपत्य का दावादार बनेगा तथा अन्य क्षेत्रों में अिंग्लैण्ड को स्वेच्छानुकूल प्राधान्य मिल जाय। अमेरिका को युरोप की राजनीति में विशेष दिलचस्पी नहीं है। निस्सन्देह रूस को अुसके विजित भूभाग लौटा दिये जायेंगे। चीन की राजनीतिक अक्षुण्णता भी बाह्यरूप से अविकल रखी जायगी; किन्तु संयुक्त राष्ट्र तथा ब्रिटेन के हित भी अुस भूभाग पर साथ ही साथ संरक्षित कर लिअे जायेंगे। क्योंकि ये ही दो देश अपने स्वार्थ के कारण चीन के युद्धोद्योग को आर्थिक सहायता पहुँचा रहे हैं। जापानी साम्राज्यवाद नष्ट हो जायगा, किन्तु ब्रिटिश तथा अमेरिकन साम्राज्यवाद के अवशेष स्थिर रहेंगे। रूस और चीन को अपने मित्रराष्ट्रों की घरेलू समस्याओं में हस्तक्षेप न करने दिया जायगा। अुदाहरणार्थ, रूस और चीन को यह अवसर न दिया जायगा कि वे अपने मित्रराष्ट्रों को भारत की स्वतन्त्रता स्वीकार करने पर विवश कर सकें। निकट भविष्य में संयुक्तराष्ट्र की आर्थिक आधीनता रूस को स्वतन्त्र कर्मरेखा न खींचने देगी। अत: रूस के अनुरोध का कुछ प्रभाव न रहेगा। यह सब मैं अिस सम्भावना को मान कर कह रहा हूँ कि विजय अन्ततोगत्वा मित्र-राष्ट्रों की होगी।

भ्रमात्मक तुलना

कुछ लोग यह तर्क पेश करेंगे कि यद्यपि युद्ध के स्वरूप में परिवर्तन नहीं हुआ है, फिर भी हमको मित्र-राष्ट्रों की सहायता अिसलिअे करनी चाहिअे कि पार्लमेण्टरी प्रजातन्त्रवाद फासिज्म से कहीं अधिक वांछनीय है। अिस युद्ध के आरम्भ होने के पहले कम्युनिस्ट लोग यही तर्क पेश करते थे और यदि रूस और जर्मनी में सन्धि न हो गयी होती तो, वे लोग अिसी के अनुसार कार्य करते। अैसे लोग यह भी कहेंगे कि मित्रराष्ट्रों की सहायता करके हमलोग रूस और चीन के जैसे देशों की सहायता करेंगे, जिनके साथ हमारी गहरी सहानुभूति है। अूपर यह कहा जा चुका है कि यद्यपि साम्राज्यवाद और फासिज्म मे गहरा अन्तर है; किन्तु लड़ाअी के दर्म्यान यह अन्तर बहुत कम हो जाता है और सम्भावना अिसी बात की है कि प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र युद्ध में विजय पाने के बाद पूरे फासिस्ट नहीं तो अर्ध-फासिस्ट अवश्यमेव बन जायेंगे।

वर्तमान युद्ध को लोकतंत्र, और फासिज्म के विचारों के संघर्ष के रूप में पेश करना गलत होगा। राज्य के रूप बदलते रहते हैं; किन्तु पूँजीवादी सत्ता की भूख नहीं मिटती। युद्धलिप्त राष्ट्रों में अिस प्रकार का भेद पिछले महायुद्ध के समय भी रहा है। प्रजातन्त्रवादी अिंग्लैण्ड अुस समय राजतन्त्रवादी जर्मनी के विरुद्ध जुटा हुआ था। किन्तु अिस कारण संसार के समाजवादियों को पिछले महायुद्ध को साम्राज्यवादी करार देने में कोअी हिचक नहीं हुअी। साम्राज्यवाद और फासिज्म के अन्तर को दिखलाने के लिअे जो अैतिहासिक समानताअें पेश की जाती हैं, अुनसे हमारा काम नहीं चल सकता। ब्रिटिश समाजवादी श्री विक्टर गोलैंक्ज, उदाहरण के लिअे, युद्ध के आरम्भ से ही साम्राज्यवाद और फासिज्म के अन्तर पर बहुत जोर देते रहे हैं और अुन्होंने दुनिया के मजदूरों से हिटलर का सक्रिय विरोध करने और ब्रिटेन की सहायता करने की अपील की है। अपने तर्क के समर्थन में अुन्होंने मार्क्स

के लेखों के अुद्धरण भी पेश किये हैं। अिन स्थानों में मार्क्स ने यह कहा है कि युरोप में प्रति-क्रियावाद का मुख्य गढ़ जारशाही रूस है, अुसका विरोध प्रत्येक अवसर पर करना चाहिअे और आवश्यकता पड़े तो अिस अुद्देश्य की सिद्धि के लिअे अुन साम्राज्यवादी राष्ट्रों की भी सहायता की जा सकती है, जो अपने किसी स्वार्थवश रूस के विरोधी हैं।

पिछले जमाने के अुदाहरणों पर आज के जमाने में चलना खतरनाक हो सकता है। देश और काल के भेद से पुराने सूत्रों का महत्त्व जाता रहता है। जिस समय मार्क्स ने अुपर्युक्त परामर्श दिया था, अुस जमाने में मार्क्सवादियों का विश्वास था कि पूँजीवादी प्रजातांत्रिक क्रान्ति (बूर्ज्वा डेमॉक्रॅटिक रिवोल्यूशन) का नेतृत्व पूँजीवादी वर्ग करेगा। अुस समय पूँजीवाद अपनी चढ़ती हुअी कला पर था और पूँजीवादी वर्ग की प्रगतिशीलता समाप्त नहीं हुअी थी। अिस प्रकार अुस जमाने में पूँजीवादी और सामन्तवादी देशों के बीच का अन्तर बहुत गहरा था। अिसके अतिरिक्त मजदूरों में चेतना बहुत कम आयी थी। मजदूर-वर्ग स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में सभी स्थानों में कार्यशील नहीं था और जहाँ वह कार्यशील था भी, वहाँ दूसरे शोषित वर्गों का नेतृत्व करने लायक वह नहीं बन पाया था।

साम्राज्यवाद और फासिज्म में जो गुणात्मक (क्वालिटेटिव्) अन्तर है, अुसकी सर्वथा अुपेक्षा नहीं की जा सकती। अिसी अन्तर को देखते हुअे प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रों को अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के परित्याग करने का अवसर दिया गया। कॉंग्रेस ने कोअी भी कार्रवाअी करने के पहले अेक वर्ष तक प्रतीक्षा की। कॉंग्रेस ब्रिटेन की सहायता करने के लिअे तैयार थी, बशर्ते कि ब्रिटेन अिसका प्रमाण देता कि वह अपनी आधारभूत साम्राज्यवादी नीतियों में परिवर्तन के लिअे तैयार है। किन्तु यह होना नहीं था। क्योंकि कोअी साम्राज्यवादी राष्ट्र अिस तरह अपनी आत्महत्या करने को तैयार नहीं होता। जो लोग लड़ाअी के दरमियान, जब कि वे चारों ओर शत्रुओं से घिर गये हैं, अपनी सत्ता को छोड़ने के लिअे तैयार नहीं, वे युद्ध में विजयी होने पर केवल अपने छोटे साझीदारों के कहने से अैसा करने के लिअे कैसे तैयार हो जायँगे ? हम लोगों ने प्रारम्भ से ही नाजी बर्बरता के विरुद्ध अपनी घृणा और रूस और चीन के प्रति अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन किया है। पर हम जिस स्थिति में हैं, अुसमें हम अुनकी सहायता नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान सरीखे देश में यह नीति और भी जरूरी हो जाती है। यहाँ पर ब्रिटेन-विरोधी भावना अितनी प्रबल है कि हिन्दुस्तानी जनता हिटलर की प्रशंसा करने लगती है, अिसलिअे कि वह ब्रिटेन से लड़ रहा है और अुसने अुनको अपनी महान शक्ति से प्रभावित किया है। फासिज्म के विष से जनता को बचाने के लिअे हमें विचारधारा-सम्बन्धी प्रचार जारी रखना है, पर अिससे अधिक कुछ करने की अवस्था में हम नहीं हैं।

प्रसंगोचित नीति

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अेक सन्मान्य मित्र लिखते हैं :—

"मेरा यह बौद्धिक विश्वास है कि मनुष्य-जाति की अुच्चतम अवस्था में अहिंसा ही अुसका साध्य और ध्येय हो सकता है। मैं यह भी जानता हूँ कि प्रसंग आनेपर अुचित कदम न अुठाया जाय, तो वह ध्येय सिद्ध भी नहीं हो सकता। लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में, अगर स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की देशरक्षा के लिअे जिम्मेवार अेक व्यक्ति की हैसियत से, हमसे पूछा जाय कि हम अुसकी रक्षा फौज के द्वारा करेंगे या नहीं, तो जब तक देश अहिंसक आत्मरक्षा के लिअे तैयार न हो जाय, मैं तो सेना रक्खूंगा। मैं जानता हूँ कि बाहरी मदद के बिना आजकल की स्थिति में यह बात निरर्थक है। लेकिन मैं यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि मैं लोगों से बिना प्रतीकार किये, निःशस्त्र हो कर आक्रमण-कारी फौजों की गोलियाँ झेलने को कहूँगा।"

मेरी नम्र सम्मति में काँग्रेस और गांधीजी का मतभेद जिस रूप में रक्खा गया है, अुससे यह प्रश्न नाहक अुलझ गया है। यह कहना सर्वथा सही नहीं है कि गांधीजी की भूमिका केवल अुच्च आध्यात्मिक आदर्श की दृष्टि से ही समर्थनीय है, या अुसीपर स्थित है और अेक राजनैतिक संस्था की हैसियत से काँग्रेस अहिंसा का विचार राजनैतिक परिभाषा में ही कर सकती है। मेरी दृष्टि में राजनैतिक दृष्टि से भी गांधीजी का वर्तमान रुख वर्किंग कमेटी या ऑल अिण्डिया काँग्रेस कमेटी जो रुख अखत्यार करना चाहती है, अुसकी अपेक्षा कम अुपयुक्त नहीं है। वह शान्तिवाद और युद्धमात्र के विरोध के अनुकूल है, यह बात, कम-से-कम हिन्दुस्तान के लिअे, अुसकी व्यावहारिकता और राजनैतिकता में कोअी फर्क नहीं करती। गांधीजी और काँग्रेस का मतभेद सिद्धान्त और तात्कालिक नीति का नहीं है; बरन प्रस्तुत प्रसंग में अुपयुक्त नीति के विषय में दो वैकल्पिक प्रस्तावों का है।

सच तो यह है कि यह लड़ाअी केवल सब से आसुरी कृत्य ही नहीं है; बल्कि हिन्दुस्तान की हैसियत से परे है। हमारी अितनी बुरी हालत कर दी गयी है कि चारों तरफ से अगर दुश्मन हम पर चढ़ाअी करे, तो भी अपनी सारी शक्ति खर्च कर के भी हम हिंसा से अुसका सफल प्रतीकार नहीं कर सकते। मुझे तो अिसमें भी शक है कि हम प्रतीकार का अुपयुक्त प्रदर्शन भी कहाँ तक कर सकेंगे। और असफल हिंसात्मक प्रतीकार के परिणाम जनता पर अहिंसात्मक या हिंसात्मक अप्रतीकार से भी बदतर होंगे। काँग्रेस की मदद के बिना भी आज तक जनता का काफी खून चूसा गया है और चूसा जा रहा है। काँग्रेस पुकार पुकार कर कह रही है, कि 'यह लड़ाअी हिन्दुस्तान की लड़ाअी नहीं है; अिग्लैण्ड की लड़ाअी है, और वह हिन्दुस्तान पर अुसकी सम्मति के बिना लादी गयी है'। अैसी हालत में अुसे लोगों का और अधिक खून चूसने में अपनी मर्जी से हाथ नहीं बटाना चाहिअे। लड़ाअी में हिस्से की माँग के यह माने हैं कि काँग्रेस को हिन्दुस्तान के जबरदस्ती लड़ाअी में घसीटे जाने पर अेतराज नहीं है; बरन अिसलिअे अेतराज है कि काँग्रेस को कौंसिलों में अुपयुक्त स्थान नहीं मिला।

स्वतन्त्र भारत की भूमिका आज से बिलकुल भिन्न होगी। अगर स्वतन्त्र भारत शस्त्री-

करण की नीति अखत्यार ही करे, तब भी जबतक वह राष्ट्र को पूरी तरह सशस्त्र, संगठित, शिक्षित और तत्पर नहीं बना सकेगा, तबतक अुसे चाहे जो कीमत दे कर समझौते की नीति का ही अनुसरण करना पडेगा। वह अेक रात में तो सैनिक राष्ट्र नहीं बन सकता। अिसके यह माने हैं कि अुसे अिंग्लैंड के दुश्मनों का अनुरञ्जन करना होगा; चाहे अुसमें अिंग्लैंड का फायदा हो या न हो। अिसके विपरीत अगर स्वतन्त्र भारत अहिंसा का स्वीकार करे, तो वह अहिंसात्मक प्रतीकार की प्रक्रिया का पूर्णरूप से विकास करेगा।

हमारी वर्तमान परिस्थिति में अगर अंग्रेज सरकार अपने स्वार्थ के लिअे भारत की रक्षा न कर सके, तो अिस देश में चार प्रकार के लोग पाये जायँगे:— (१) वे जो मौका पा कर शत्रु से सलाह कर लेंगे और अुसकी तरफ चले जायँगे। अिनमें सरकारी नौकर, देशी राजा, व्यापारी और सम्प्रदायवादी लोग होंगे। (२) वे जो कि हिंसात्मक या अहिंसात्मक किसी भी प्रकार का प्रतीकार नहीं करेंगे और हो सका तो भाग जायँगे और अगर न हो सका, तो जो कर्म में लिखा होगा अुसे चुपचाप तसलीम करेंगे। (३) वे जिनके पास हथियार होंगे और जिन्हें हिंसक प्रतीकार की शिक्षा मिली होगी। ये लोग, जबतक हो सकेगा, यथाशक्ति हिंसक प्रतीकार करेंगे और हार जाने पर या तो, अठारह-सौ सत्तावन की तरह, शत्रु की शरण जायँगे या गुप्तरूप से कार्य करने लगेंगे। और (४) वे जो कि हर किस्म के अहिंसात्मक प्रतीकार का यथासम्भव संगठन और प्रयोग करेंगे—अुदाहरण के लिअे, सविनय अवज्ञा, करबन्दी, विजेताओं से असहयोग, सामाजिक बहिष्कार आदि। वे अलग अलग तरह का साहस और विविध मात्रा में अहिंसा का परिचय देंगे। अुनमें से कुछ को शायद मरना पडे और दूसरे कुछ जनता में चुपचाप काम करते रहें। ये स्वतन्त्रता की अग्नि की रक्षा करेंगे और परिस्थिति के अनुसार लोगों में असे सुलगाते रहेंगे।

सवाल यह है कि अिन चार श्रेणियों में से कॉंग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करेगी?

यह सरकार कॉंग्रेस या दूसरे किसी भी पक्ष को नहीं चाहती, सिवा अिस शर्तपर कि वह अुसे अुत्तरोत्तर ज्यादा आदमी और पैसे अुगाहने में मदद करे। अिस काम के लिअे देश में काफी लोग पडे हैं। अुसमें हाथ बटाने के लिअे कॉंग्रेस क्यों अुत्सुक हो रही है? अगर वह अपने आदर्शों पर कायम रहना चाहती है, तो अुसे शोषण बन्द करके शान्ति स्थापित करने के लिअे ही अधिकार स्वीकारना चाहिअे; न कि अपव्यय और युद्ध को अुत्तेजन देने के लिअे।

यह दलील दी जाती है कि दुश्मन बिलकुल करीब आ पहुँचा है; अिसलिअे लोगों के संरक्षकों के नाते हमें परेशानी हो रही है। लेकिन 'किसका, दुश्मन'? 'हिन्दुस्तान का'? 'या अंग्रेज सरकार का'? फर्ज कीजिये कि हम अुन्नीस सौ अुनचालीस में अेक स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाते; या कल ही हो जायँ; तो? क्या यह जरूरी है कि जापान या जर्मनी हम पर धावा बोल ही दे? क्या आयर्लैंड और तुर्कस्तान अब तक तटस्थ नहीं हैं? युद्ध-वृत्ति के बावजूद भी क्या अमेरिका ने जब तक हो सका युद्ध के बाहर रहने की चेष्टा नहीं की? हिन्दुस्तान की किसी दूसरे देश से लड़ाओी होने का अब तक, ब्रिटिश साम्राज्य के सिवा, अन्य कोओी कारण नहीं है।

परन्तु शहर के लोग हमेशा अुत्तेजित वातावरण में रहते हैं। वे घबड़ाये हुअे होते हैं और चाहते हैं कि अुन्हें बचाने के लिअे कोओी बड़ी बहादुरी का काम किया जाय। अिसलिअे कॉंग्रेस के नेता भी समझते हैं कि अुन्हें सत्ता

अपने हाथ में ले कर कुछ-न-कुछ करना चाहिअे। लेकिन हमें जानना चाहिअे कि पैरिस की रक्षा नहीं हो सकी। लण्डन की भी पूरी तरह हिफाजत नहीं हो रही है। और अगर वह दुर्दिन आ ही पहुँचे तो, सारे साम्राज्य की सारी सैनिक शक्ति भी, कलकत्ता, मद्रास, रंगून या बम्बअी को नहीं बचा सकेगी। लड़नेवाले राष्ट्रों के बीच संधि ही अेक अैसी चीज है जो लण्डन, बर्लिन और टोकियो अथवा कलकत्ता, बम्बअी, मद्रास और रंगून को बचा सकती है। चाहे हमारी मनोवृत्ति हिंसक हो या अहिंसक, राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान को युद्ध-प्रयत्न में हाथ बटाने की माँग के बदले शान्ति का ही परामर्श देना चाहिअे। और अगर हम सिद्धान्त या नीति के रूप में अहिंसा को ही मानते हों, तो अैसा परामर्श देने के लिअे विशेष कारण है। हमें अपने परामर्श का यह भी कारण देना चाहिअे। हमारी आज की परिस्थिति में हमारा युद्ध-वृत्ति को अपनाना मेरी समझ में महान सम्मोह होगा।

स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार अिसके विपरीत नीति चाहती है। अुनके लिअे तो हिन्दुस्तान अुनकी सम्पत्ति है, ठीक वैसे ही जैसे कि अुनकी कोयले और लोहे की खदानें हैं। अपने स्वार्थ की दृष्टि से वे चाहते हैं कि वह दूसरों के हाथ में न जाय या अपने सच्चे मालिकों के कब्जे में भी न जाय। जहाँ तक हो सके, वे अुसे अपने आदमी और पैसों से नहीं बचाना चाहते। अुस सम्पत्ति को बचाने के लिअे भी वे अुसीका अुपयोग करना चाहते है। लेकिन हम तो हिन्दुस्तान को अपनी सम्पत्ति नहीं मानते; वह तो हमारी आत्मा का अंश है।

मुझे यहाँ वशिष्ठ और विश्वामित्र का किस्सा याद आता है। वशिष्ठ की गाय अुसकी बहुमूल्य सम्पत्ति थी। अिसलिअे वह न तो अुसे छोड़ना चाहता था और न विश्वामित्र को दान में ही देना चाहता था। परन्तु आखिर जब वह अुसे बचा ही न सका, तो अुसने अुसे स्वतन्त्र कर दिया और कहा, "तुझसे जैसे बने, अपनी रक्षा कर ले।" आगे किस्सा अैसा है कि अुस गाय ने विश्वामित्र से लड़ने के लिअे सेनाओं का निर्माण किया। लेकिन कोअी फायदा नहीं हुआ। आखिर अुसे स्वर्ग को लौटना पड़ा (याने मरना पड़ा)।

यह आख्यायिका आज हमारे सामने चरितार्थ हो रही है। जापान और दूसरे विश्वामित्र भारत को डरा रहे हैं। ब्रिटिश वशिष्ठ अुसे रखना चाहता है। वह अुसे छोड़ देने को तैयार नहीं है। लेकिन वह अुसे बचाने के अैसे ही प्रयत्न करेगा जिनमें अुसका फायदा हो। अन्त में वह कह देगा, 'अगर तू अपने आपको बचा सकती है, तो बचा ले। तू स्वतन्त्र है।' तब कुछ लोग अैसे निकलेंगे जो हथियार चलायेंगे और अिस जमीन का मालिक कोअी-न-कोअी अवश्य होगा। लेकिन वह गाय नन्दिनी (आनन्ददायिनी) स्वर्ग को सिधार गयी होगी।

मैं समझता हूँ कि काँग्रेस की नीति मूलतः गलत है और सिद्धान्त और नीति का विवाद व्यर्थ छेड़ दिया गया है। अुसने विचारों को सुलझाने के बदले और भी अुलझा दिया है। गाँधीजी के लिअे अहिंसा पर जोर देना आवश्यक है, क्योंकि वह प्रसंगोचित नीति को और भी मजबूत करती है और लोगों को अंग्रेज सरकार या दूसरे किसी आक्रमणकारी का मुकाबला करने के दूसरे तरीके के लिअे तैयार करती है। लेकिन जो लोग लड़ाअी में भाग लेना चाहते हैं, अुन्हें तो अितना ही कहना चाहिअे कि 'हम फलानी शर्तों पर आते हैं, नहीं तो बाहर हैं। हिंसा और अहिंसा का सवाल नहीं है। अगर तुम हमारी शर्तें मंजूर करते हो तो हम शामिल हैं; नहीं तो हम तुम्हें तंग करने के लिअे बाहर हैं'।

—('अिण्डिपेण्डेण्ट' से)

सर्वोदय की दृष्टि

कॉंग्रेस-महासमिति का प्रस्ताव

जनवरी पन्द्रह और सोलह को राष्ट्र-सभा की महासमिति की बैठक वर्धा में हुअी। महा-समिति की तीन बैठकें मेरी स्मृति पर सदा के लिअे अंकित हो गयी हैं। पहली बेज़वाड़ा की, जिसमें तिलक स्वराज फंड और खादी का महा-संकल्प किया गया। दूसरी अहमदाबाद की, जिसमें गांधीजी ने श्री दास और नेहरू के सामने सिर झुका कर राष्ट्र-सभा की प्रतिष्ठा बढ़ायी। और तीसरी यह वर्धावाली, जिसमें गांधीजी ने फिर अेक बार राष्ट्र-सभा के हित के लिअे, अपने तत्त्व को संभालते हुअे, अपनी नम्र अुदारता का परिचय दिया।

जब मुख्य प्रस्ताव पर मत लिये गये, तब स्पष्ट मालूम पड़ा कि महासमिति है तो गांधीजी के ही साथ; किन्तु अुन्हीं की आज्ञा मान कर वह बारडोली के प्रस्ताव को मान्य रखती है।

वर्धा का निर्णय श्री राजगोपालाचार्य की विजय नहीं कहा जा सकता। वह गांधीजी की राजनीतिकुशलता और अुच्च कोटि की देश-भक्ति का ही द्‍योतक है। गांधीजी के प्रति सारे राष्ट्र की जो अनन्य निष्ठा है, अुससे वे फायदा नहीं अुठाना चाहते। दुनिया में शान्ति-वादी और युद्‍धविरोधी असंख्य लोग हो गये हैं। श्रीकृष्ण भी युद्‍धविरोधी ही थे। लेकिन गांधीजी जितने दूर तक अेक बड़े राष्ट्र को ले जा सके हैं, अुतना आजतक किसीसे नहीं हो सका। वर्धा में गांधीजी ने व्यवहारवादियों को अुनकी अिच्छानुसार प्रस्ताव करने दिया। अिससे अहिंसा का अेक कदम आगे ही बढ़नेवाला है। प्रस्ताव में भले ही हिंसामार्ग के लिअे अेक छोटे-से छिद्र के बराबर अवकाश हो, किन्तु अुसका परिणाम श्री राजाजी को और जवाहरलालजी को अहिंसा की ओर अधिक खींचने में ही होने वाला है।

प्रशस्त मार्ग

हमारा दृढ़ विश्वास है कि अिस विश्वयुद्‍ध में शस्त्र ग्रहण करने में हिन्दुस्तान का नुकसान ही है और सबकुछ सहन करके भी युद्‍धविरोध करने में ही हिन्दुस्तान का राजनैतिक हित तथा मनुष्यजाति का कल्याण है। किन्तु सारे राष्ट्र की निष्ठा अिस कोटि को कैसे पहुँचायी जाय?

अिसमें तनिक भी शंका नही है कि अगर अिस युद्‍ध के प्रारंभ में हिन्दुस्तान अेक आजाद देश होता, तो वह अिस युद्‍ध में कभी भी शरीक नहीं होता; किन्तु युद्‍ध रोकने में अपनी पूरी शक्ति लगा देता। हिन्दुस्तान का हृदय और हिन्दुस्तान का आत्मा अहिंसा-परायण ही है। स्वतंत्र हिन्दुस्तान अपनी पूरी शक्ति और अपना पूरा प्रभाव न्याय, समता और शान्ति के पक्ष में ही लगा देता।

आज वह स्थिति नहीं है। आज अपनी आजादी हासिल करने के लिअे अुसे अिंग्लैण्ड को लालच दिखाना पड़ता है और स्वयं लालच में फँसना पड़ता है। अितने नरक में प्रवेश किये बिना हिन्दुस्तान को स्वर्ग का सुख नहीं मिल सकता, अैसी राजाजी की धारणा मालूम होती है। शायद नेहरूजी भी मानते होंगे कि युद्‍धमार्ग का अवलंबन करके ही हिन्दुस्तान राष्ट्रों के दरबार में बैठ कर मानव जाति का हित सोचने का अधिकार प्राप्त कर सकता है।

यह युद्‍ध शुरू कैसे भी हुआ हो, लेकिन आज की अिस धूर्तों की दुनिया में जिनकी कुछ भी प्रतिष्ठा है, अैसे तीन बड़े राष्ट्र—रूस, अमेरिका और

चीन—ब्रितानिया के मददगार हैं। और अगर स्वतंत्र हिन्दुस्तान भी अिसी पक्ष में मिल जाय तो ब्रिटन का पक्ष धर्मानुकूल पक्ष बन जायगा।

अेक दलील

अिसका अेक कारण :—

"अिस महायुद्ध में यह स्पष्ट दीख पड़ता है कि अिंग्लैण्ड की सामरिक शक्ति नहींके बराबर है। और अगर है तो आफिरका के रेगिस्तान में यत्र-तत्र विजय पाने के ही लायक है। अिंग्लैण्ड फरान्स को मदद नहीं कर सका। स्वीडन-नार्वे में अिंग्लैण्ड के पैर नहीं जम सके। अिंग्लैण्ड ग्रीस की मदद नहीं कर सका। पोलैण्ड को बचा न सका। मलाया में वही हाल है। जर्मनी के रूस जैसे बलाढ्य शत्रु से अुलझे होने पर भी, अिंग्लैंड जर्मनी पर धावा न बोल सका। आज अिंग्लैण्ड अगर अपनी हस्ती को कायम रख रहा है,तो वह अमेरिका के धन और युद्धसाधन तथा हिन्दुस्तान की और अुपनिवेशों की फौजों के ही भरोसे। अगर जापान को रोकने की अुसे कुछ आशा है, तो चीनी फौजों की मदद के भरोसे।

अैसी हालत में अगर अिंग्लैण्ड को विजय भी प्राप्त हुअी, तो वह अुसकी निजी सामर्थ्य के कारण नहीं, किन्तु अुसे मदद करनेवाले अमेरिका, रूस, चीन और हिन्दुस्तान जैसे महाराज्यों की शक्ति के कारण ही होगी। जापान, जर्मनी, अिंग्लैण्ड और अिटाली, ये चारों देश लोकसंख्या की दृष्टि से छोटे हैं; तथा चीन, हिन्दुस्तान, रूस और अमेरिका, ये चारों देश लोकसंख्या में, मनुष्य बल में, सबसे श्रेष्ठ हैं। अिन चारों का संघ जिस तरफ होगा, विजय अुसी तरफ होगी और मनुष्य-जाति का भविष्य भी। अिस युद्ध के अन्त में जो संधि होगी, जो नयी विश्व-व्यवस्था होगी अुसमें अिंग्लैंड की बात कोअी नहीं सुनेगा। युद्ध का प्रारम्भ भले ही अिंग्लैंड ने किया हो, लेकिन अुसका अन्त अुसके हाथ में नहीं है। किन्तु अुसकी मदद में जो चार महाप्रजाअें अेकत्रित होंगी, अुन्हींकी राय अन्तिम मानी जायगी। अैसी हालत में अिंग्लैंड के आजतक के सब पापों और सब गुनाहों को भुला कर हिन्दुस्तान को अिस युद्ध में शरीक होना चाहिअे और भावी विश्व-व्यवस्था में अपने मत को प्रभावशाली बनाना चाहिअे।"

यह दृष्टि ध्यान देने लायक तो जरूर है, और अगर मनुष्यजाति की परिस्थिति साधारण होती, तो यही विचार हिन्दुस्तान के लिअे निर्णायक हो सकता था। किन्तु परिस्थिति का तकाजा कुछ और है।

अलिप्त रहने की जरूरत

हम सोचते थे कि अिस युद्ध में अगर अमेरिका शरीक न हुअी, तो द्रव्यबल और शस्त्रबल का अेक बड़ा संघ अिस युद्ध से अस्पृष्ट रह कर अेक और नये शस्त्रयुद्ध को निमंत्रित करता। किन्तु अैसा मालूम होता है कि अिस विश्वयुद्ध को अीश्वर सचमुच अन्तिम शस्त्र-युद्ध ठहराना चाहता है। अिसलिअे अमेरिका को अिस युद्ध में शरीक होना ही पड़ा। हम दुनिया को चूस कर द्रव्य अिकट्ठा करें, युद्ध्यमान राष्ट्रों को युद्ध का साहित्य दोनों हाथों से तैयार करके देते रहें, अपनी निजी स्थल-सेना, जल-सेना और व्योम-सेना तैयार रखें और तिसपर भी हमारी बुद्धि शुद्ध रहे, विश्व कल्याणकारी रहे, यह नामुमकिन है। 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी'—'जैसी करनी, वैसी बुद्धि'। अमेरिका के कर्म ने ही अमेरिका को तटस्थ न्यायाधीश के स्थान से गिरा दिया है।

अब वह स्थान अगर कोअी मानव-संघ ले सकता है, तो हिन्दुस्तान ही। अिसलिअे यह

जरूरी है कि हिन्दुस्तान सब-कुछ सहन करके भी अिस युद्ध से अलिप्त ही रहे।

पिछले युद्ध ने बता दिया कि विजयी राष्ट्र की ओर से जो संधि की जाती है और जो विश्व-रचना कायम की जाती है, वह स्थायी शान्ति की ओर नहीं ले जाती। अिसलिअे अब की बार विजयी पक्ष में—फिर वह किसीका भी हो—शरीक होने का मोह हमें नहीं रखना चाहिअे। किन्तु अपना आदर्श और अपनी बुद्धि सम्हाल कर तटस्थ ही रहना चाहिअे।

महासमिति के प्रस्ताव का गुण

बारडोली में जो प्रस्ताव हुआ और वर्धा में जो दुहराया गया, अुस प्रस्ताव से अेक ही लाभ हमारी नजर में आता है। यह प्रस्ताव अिंग्लैंड की कसौटी के लिअे अच्छा है और भारतवर्ष की अेकता दृढ़ करने के लिअे भी अच्छा है।

हमें भूलना नहीं चाहिअे कि अिंग्लैण्ड आत्म-रक्षा के लिअे नहीं, किन्तु अपने साम्राज्य की रक्षा के लिअे लड़ रहा है। अगर अिंग्लैंड अपने साम्राज्य को छोड़ दे और केवल अपने टापू में ही रह जाय, तो हिटलर भी अिंग्लैंड को अभय-दान देगा और अुसकी मदद करेगा। किन्तु अिंग्लैंड को वह अलोना जीवन पसन्द नहीं है। अिंग्लैंड को साम्राज्य के बिना जीना ही पसन्द नहीं है। और हिन्दुस्तान के बिना साम्राज्य के कोअी मानी ही नहीं है। अिस युद्ध के पहले अिंग्लैंड शायद हिन्दुस्तान को कुछ हद तक स्वतन्त्र कर सकता; लेकिन क्षीण बने हुअे अिंग्लैंड के लिअे हिन्दुस्तान को अपने आधीन रक्खे बिना कोअी चारा ही नहीं है। अैसी हालत में हम आपस में लड़ते रहें, अिसका कोअी अर्थ ही नहीं है। हिन्दुस्तान की दृष्टि से राजाजी जैसों को यह विश्वास हो जाना अत्यन्त जरूरी है कि अिंग्लैंड मर भले ही मिटेगा, किन्तु हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र नहीं करेगा। तभी तो हिन्दुस्तान की शक्ति विश्वशान्ति की ओर मुड़ सकेगी।

अिसीलिअे हम बारडोली और वर्धा के प्रस्ताव का अभिनन्दन करते हैं। हिन्दू-मुस्लिम तनाजे के कारण देश की शक्ति छिन्न-भिन्न हो ही गयी है। अुसके अलावा और अगर काँग्रेस में दो दल हो जाते, तो देश के लिअे वह बड़ी खतरे की बात होती। वह खतरा अिस प्रस्ताव से टल गया है। अब देखना है कि आगे क्या होता है? विश्व का घटना-चक्र कैसा चक्कर लेता है?

लेकिन हम केवल बैठे रहने से आगे नहीं बढ़ सकेंगे। अिस युद्ध के साथ यन्त्रयुग का कृष्णपक्ष शुरू होनेवाला है और युद्ध में से जो लोग बच जायँगे अुनके सामने अन्न-वस्त्र का सवाल भीषणरूप से खड़ा होनेवाला है। अुसके लिअे अगर हम आज से ही तैयारी नहीं करेंगे, तो युद्ध से बचे हुअे भारत पर भूख और ठण्ढ से मरने की नौबत आयगी। अिसलिअे हमें आज ही पूरी शक्ति लगा कर जनता की सेवा करनी चाहिअे। सेवा ही सच्ची सात्त्विक शक्ति है। अुसका संगठन करने से ही हम बच सकेंगे और शायद दुनिया को भी बच जाने का रास्ता दिखा सकेंगे।

२७ : १ : '४२ का० का०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

राष्ट्रभाषा-प्रचार के बारे में मैं आजतक 'सर्वोदय' में थोड़ा-बहुत लिखता आया हूँ; हालांकि अिस विषय में 'सर्वोदय' की जगह रोकने में मुझे हमेशा संकोच रहा है। अब अबोहर का अैतिहासिक सम्मेलन हो चुका है। अुसके बारे में कुछ लिखना आवश्यक था। लेकिन गांधीजी ने अिस सवाल को अपने हाथ में लिया है और अुन्होंने अपने तीनों साप्ताहिक फिर से चालू

कर दिये हैं; अिसलिअे पाठकों से प्रार्थना है कि वे अिस विषय का अध्ययन वहीं से करें।

आजतक हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने समझौते की नीति बरती थी। अबोहर में श्री टण्डनजी ने अपनी पूरी ताकत लगा कर अेक निश्चित नीति को अख्तियार कर लिया है। अब सम्मेलन की स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गयी है और अिसलिअे देश का वायुमण्डल भी कुछ हद तक साफ हो गया है। किसी-न-किसी दिन यह होना आवश्यक था ही। अबोहर में यह बात हो गयी, सो अच्छा ही हुआ।

२७:१:'४२ का० का०

'हिन्दू' शब्द से तुलना

हम अेक मिसाल लें:—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों मिल कर हिन्दू जाति बनती है। अकेले ब्राह्मण 'हिन्दू' नहीं हैं। अकेले क्षत्रिय 'हिन्दू' नहीं हैं। केवल ब्राह्मण अेक सम्पूर्ण समाज नहीं हैं। केवल क्षत्रिय भी भी सम्पूर्ण समाज नहीं। किन्तु ब्राह्मण को 'हिन्दू' कहा जाता है और क्षत्रिय को भी 'हिन्दू' कहा जाता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय के बीच भेद भी है और अभेद भी। अभेद के तत्वों के लिहाज से ही हम दोनों को 'हिन्दू' कहते हैं।

अब अगर ब्राह्मण और क्षत्रिय के बीच शादियाँ होने लगें, तो रूढ़िवादी ब्राह्मण अैसे मिश्र विवाहों की सन्तान को ब्राह्मण नहीं कहेंगे और जाति-कुलाभिमान से भरे हुअे क्षत्रिय भी अैसी सन्तान को क्षत्रिय नहीं कहेंगे। लेकिन फिर भी वह 'हिन्दू' तो है ही।

अबोहर के सम्मेलन ने यह स्वीकार किया है कि हिन्दी और अुर्दू मिल कर 'हिन्दुस्तानी' होती है। हिन्दी और अुर्दू के मिश्रण को भी हिन्दुस्तानी कहा जाता है। कॉंग्रेस कहती है कि 'हिन्दुस्तानी' ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा है।

अब अूपर की मिसाल के अनुसार 'हिन्दी' भी 'हिन्दुस्तानी' है और 'अुर्दू' भी 'हिन्दुस्तानी' है। लेकिन हिन्दी-ही-हिन्दी या अुर्दू-ही-अुर्दू का राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रचार नहीं किया जा सकता। पण्डिताअू साहित्यिक हिन्दी राष्ट्रव्यापी नहीं हो सकती, और कड़ी अुर्दू की तो राष्ट्रीयता ही खतरे में है। अैसी हालत में आमफहम हिन्दी और सर्वसुलभ अुर्दू ही हिन्दुस्तानी है। दोनों का अगर मिश्रण नहीं करना है; तो दोनों का अध्ययन साथ साथ अथवा अेक के बाद अेक करना ही होगा।

केवल हिन्दी अपंग राष्ट्रभाषा है। केवल अुर्दू पंगु राष्ट्रभाषा है। दोनों का कामचलाअू ज्ञान जब हम हासिल करेंगे, तभी हम कह सकेंगे कि राष्ट्रभाषा द्वारा राष्ट्र की सेवा करने की योग्यता हमने हासिल की है।

खिचड़ी का प्रचलन

खिचड़ी भाषा की हमेशा निन्दा ही होती है। हमारे आहार में भी खिचड़ी की प्रतिष्ठा कहाँ है? तो भी खिचड़ी की जितनी निन्दा होती है, अुससे अधिक अुसका सेवन होता है। अगर चावल और दाल का अनुपात ठीक न रहा, तो खिचड़ी स्वादिष्ट नहीं होती। लेकिन अनेक बार विफल और सफल प्रयत्न करने से ही दाल और चावल का अुचित अनुपात समझ में आता है। अगर खिचड़ी बिगड़ गयी, तो हमें यह नहीं कहना चाहिअे कि खिचड़ी बनाने का प्रयत्न ही छोड़ दो। हम यह कहते हैं कि दिल्ली की खिचड़ी अच्छी नहीं होती; बिहार की खिचड़ी भी अच्छी नहीं लगती; लेकिन जब कि पंजाब और युक्तप्रान्त के लोग खिचड़ी ही खाते आये हैं, तब स्वादिष्ट खिचड़ी का नुसखा किसी प्रेमचन्द से पूछना ही होगा।

दक्षिण, पश्चिम और पूर्व के भारतवासी अपने अपने घर भात, दाल, 'सांभारम्', 'आमटी' या 'रसम्' खाने के चाहे जितने आदी हों, जब वे अुत्तर भारत में आते हैं, तब कहते हैं कि हमें यहाँ की खिचड़ी ही चखनी है।

अब अुत्तर भारत कहता है कि "अिस वक्त हमारे घर में खिचड़ी नहीं पकेगी। घर में पुरानी अनबन चालू है। आपको अेक जगह भात मिलेगा; दूसरी जगह दाल मिलेगी। जिस तरह निबाहना चाहें, निबाह लें"।

हम कहेंगे, "अच्छा यही सही। पहले भात खा लेंगे, बाद में दाल चख लेंगे। अथवा दोनों ले कर अपने घर में मिला कर खायेंगे। लेकिन अेक से हमारा काम नहीं चलेगा"।

अुत्तर भारत के अुर्दूभाषी कहते हैं "हमारे घर पर हमेशा खिचड़ी ही पकती है। आप को और कहीं नहीं जाना पड़ेगा"। हम कहते हैं कि "आपकी खिचड़ी में दाल-ही-दाल मालूम पड़ती है। अुसमें चावल का पानी होगा, लेकिन दाने खोजे भी मुश्किल से मिलते हैं"।

हिन्दी-वादी भी कहते हैं कि "हमारे भात में दाल काफी मात्रा में है; लेकिन अुसे हम खिचड़ी नहीं कहेंगे। हमारी कोशिश तो दाल को छांट छांट कर निकाल देने की है। फिर भी दाल की मात्रा बढ़ जाय, तो हम अुसे सहन करेंगे; लेकिन अुसे खिचड़ी हरगिज नहीं कहने देंगे। यह तो भात है और भात ही रहेगा"।

अुत्तर भारत में खिचड़ी का मामला बड़ा ही टेढ़ा हो गया है।

२७ : १ : '४२ का० का०

दूसरी मिसाल

सुबह से शाम तक जो बारह घण्टे का समय होता है, अुसे 'दिन' कहते हैं और शाम से सुबह तक का जो समय है, अुसे 'रात्रि' कहते हैं। दिन में अुजियाला होता है; रात म अन्धेरे का प्राधान्य होता है।

अब दिन और रात मिला कर जो चौबीस घण्टों का समय होता है, अुसे क्या नाम दिया जाय? अुसे तो 'दिन' ही कहा जाता है।

अिस तरह 'दिन' के दो अर्थ हुअे: अेक संकुचित और दूसरा व्यापक। संकुचित अर्थ में प्रकाश के बारह घण्टे ही 'दिन' हैं। व्यापक अर्थ में दिन-रात मिला कर जो चौबीस घण्टे होते हैं, वही 'दिन' है।

'हिन्दी' शब्द में यही शक्ति हमने देखी थी। नागरी में लिखी जानेवाली और तद्भव और तत्सम शब्दों से भरी हुअी अुत्तरी भाषा को 'हिन्दी' कहते हैं और जिसमें देशी शब्द कम हैं, अरबी-फारसी के शब्द कुछ ज्यादह हैं और जो विदेश से आ कर यहाँ पर बसी हुअी, फारसी लिपि में लिखी जाती है, वह अुर्दू है—यह हुआ दोनों का संकुचित अर्थ। कहा जाता था कि व्यापक अर्थ में हिन्दी और अुर्दू मिला कर जो भाषा होती है, अुसे भी 'हिन्दी' ही कहा जाय। अिस तरह 'हिन्दी' के दो अर्थ हुअे। शिमले में यह बात स्पष्ट हुअी और दोनों की अलग अलग व्याख्याअें भी बनीं।

लेकिन अेक शब्द के दो अर्थ हों, यह बात कअी लोगों को अच्छी नहीं लगी। अुन्होंने कहा कि दिन और रात मिला कर जो समय-विभाग बनता है, अुसे 'वासर' कहिये; 'अहोरात्र' कहिये; अुसे 'दिन' न कहिये। दिन और रात मिला कर 'वासर' याने 'अहोरात्र' होता है।

ये दो शब्द मिलते ही सवाल यह अुठा कि हम 'वासर' को अपनायें या 'दिन' को? और अुसीको ले कर विवाद छिड़ गया?

गरमी के दिनों में दिन बड़ा और रात छोटी होती है। शीतकाल के दिनों में दिन छोटा होता है, रात बड़ी होती है। अुसके अनुसार अिस अनुपात को सम्हाल लेना मुश्किल नहीं है। लेकिन अहोरात्र के बिना हमारा चलेगा तो नहीं, अितना स्पष्ट है। कोअी पहले दिन में प्रवेश करके बाद में रात का स्वागत करेगा; दूसरा कोअी रात से प्रारंभ कर के दिन में अुसे पूरा करेगा।

'दिन' शब्द के संकुचित और व्यापक दो अर्थ होते हैं, अिसीलिअे हमें दिनरात की अुपमा ले ली। हिन्दी-अुर्दू के सवाल को समझने के लिअे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मिल कर जो महीना होता है, अुसकी मिसाल देनी चाहिअे। चन्द्रमा का नाम-निशान भी नहीं है, अैसी अमावास्या अेक ही दिन होती है और सारी रात चंद्रिका ही बरसती है, अैसी पूर्णिमा भी अेक ही दिन आती है। बाकी के दिनों को चाहे शुक्लपक्ष कहिये या कृष्णपक्ष कहिये। सुदी कहिये या बदी। अुनमें कम या बेशी मात्रा में अुजेला और अन्धेरा होता है। अुनका परिमाण स्थल और काल से निश्चित हो सकता है। लेकिन दोनों हमारे साथ बराबर हैं ही।

२७ : १ : '४२ का० का०

मंत्रियों के दर्जे में तफावत

बादशाह आठवें अेडवर्ड ने अेक अैसी स्त्री से शादी करने का निश्चय किया जो अिंग्लैंड के प्रधान-मंत्री की राय में अेक बादशाह की बेगम होने योग्य नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि बादशाह को अपनी गद्दी से अिस्तीफा दे देना पड़ा।

अुसी साम्राज्य में बंगाल के अेक मंत्री श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी हिन्दू महासभा के सरकार द्वारा रोके गये अधिवेशन में शरीक होने के लिअे बिहार गये। बिहार के गवर्नर ने बिला तकल्लुफ अुन्हें गिरफ्तार कर लिया और जबतक जरूरत मालूम हुअी, कैद में रक्खा।

अुसी साम्राज्य में ब्रह्मदेश के प्रधानमंत्री श्री यू सॉ अिंग्लैंड गये। वहाँ शायद अुन्होंने कुछ अैसी खरी खरी बातें सुनायीं, जो अिंग्लैंड के मंत्रि-मंडल को अखरीं और अुनके बारे में यह शक हुआ कि वे जापान के साथ मिलने की कोशिश कर रहे हैं। वे अपने देश को लौट रहे थे, जब कि बिना आरोप लगाये ही अुन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

हिन्दुस्तान और ब्रह्मदेश तथा अिंग्लैंड के मन्त्रियों के दर्जे में जो विषम भेद है, अुसका यह नमूना है।

कि० घ० म०

स्व० जकातदारजी

रवि ठाकुर ने अपने अेक गीत में प्रश्न के रूप में अपनी आकांक्षा व्यक्त करते हुअे कहा है :

'जब सभा भंग होगी, क्या मैं अन्तिम गीत गा कर जाअूंगा ?'

नागपुर प्रान्त के अेक वयोवृद्ध नागरिक, कुशल वकील और मँजे हुअे सभापण्डित श्री विष्णुपन्त जकातदार ने भी अपने अन्तिम दिनों में जो कुछ किया अुसकी मधुरता ने अुनके जीवन को मधुर बना दिया। सभा विसर्जित होने से पहले वे अपने जीवन का भरतवाक्य गा कर गये।

हमारे देश में द्रव्यदान और साम्पत्तिक त्याग के अनेक अुज्ज्वल अुदाहरण हैं। रासबिहारी घोष की दानवीरता और दास-नेहरू आदि की त्यागवीरता मशहूर है। नागपुर प्रान्त भी अपने नरकेसरी अभ्यंकर के त्याग पर क्षम्य अभिमान कर सकता है।

परन्तु गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में प्रतीकार के रूप में दान-नीति या त्याग-नीति का अनोखा प्रयोग किया। 'जो तुझसे तेरा अंगरखा माँगे, अुसे अपना चोगा भी दे दे' — अीसा ने कहा था। जब सरकार ने जुर्माना करने की नीति अख्त्यार की, तो गांधीजी ने अपने सत्याग्रहियों से अिसी सूत्र का प्रयोग करने को कहा। गांधीजी के आदेश को जिन्होंने पूरे और सच्चे हृदय से कार्यान्वित किया, अुनमें श्री जकातदार की गिनती होनी चाहिअे। पुरस्कार के रूप में अुन्हें छह महीनों के लिअे सरकार का आतिथ्य मिला। लेकिन चौहत्तर साल की अुम्र में सरकारी आतिथ्य भी अुनके स्वास्थ्य की रक्षा न कर सका। गांधीजी ने अुन्हें दुबारा जेल जाने से मना कर दिया।

यह अुनके अन्तिम दिनों का किस्सा है। द्रव्य-दण्ड के प्रतीकार के लिअे गांधीजी ने जिस नये तरीके को अपनाया था, अुसके अेक सफल और अुज्ज्वल अुदाहरण के तौर पर स्व० विष्णुपन्त जकातदार की याद देश को हमेशा रहेगी।

स्व० जकातदारजी ने जब अपनी 'रावबहादुरी' छोड़ कर कॉंग्रेस में प्रवेश किया, तो लोगों ने सहज ही यह मान लिया था कि वे कौन्सिल में चुने जाने के मोह से कॉंग्रेसी बने हैं। खरे-प्रकरण के बाद जब अुन्होंने कॉंग्रेस के अनुशासन को न मानना ही अुचित समझा, तब तो यह धारणा और भी दृढ़ हो गयी थी। लेकिन जब अुन्होंने अपनी गलती महसूस की और सत्याग्रह शुरू होते ही खेद-प्रदर्शन करके कॉंग्रेस में फिर-से प्रवेश किया, तब अुनकी अनुशासन-प्रियता और कॉंग्रेसनिष्ठा का सबको विश्वास हो गया। अुनके देशप्रेम और सचाअी का अिससे बड़ा सबूत क्या हो सकता है?

हम अिस वयोवृद्ध और मँजे हुअे देशभक्त तथा अनुशासननिष्ठ सैनिक को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

२९:१:'४२ दा० ध०

'गांधीत्व' क्या है?

अुस दिन गांधी-विचार के अेक नैष्ठिक साधक गांधीजी की विशेषता के विषय में चर्चा कर रहे थे। अुनका यह आशय था कि गांधीजी की विशेषता यह नहीं है कि अुन्होंने संसार को प्रतीकार का अेक अनोखा तरीका बतलाया; बल्कि यह है कि वे मनुष्य की आत्मोन्नति के लिअे सेवा को आवश्यक मानते हैं— या यों कह लीजिये कि सेवा को ही आत्मोन्नति का साक्षात् साधन मानते हैं और सेवा की योग्यता प्राप्त करने के लिअे द्वादश व्रतों का अनुशीलन अनिवार्य मानते हैं।

गांधीजी के तत्वज्ञान की यह व्याख्या स्वीकारने में किसी को कोअी आपत्ति नहीं होनी चाहिअे। परन्तु यह व्याख्या स्वीकार करने पर भी यह कहा जा सकता है कि सत्याग्रह या प्रतीकार का अेक अभूतपूर्व तरीका गांधीजी ने दुनिया को दिखा दिया, यही अुनकी विशेषता है। क्योंकि यह प्रतीकार का तरीका सेवावृत्ति में से ही निकला है। हिंसक प्रतीकार के अलावा संसार में साधारण रीति से प्रतीकार की तीन विधियाँ पायी जाती हैं:

(१) सहनशीलता या अप्रतीकार। कोअी हम पर अन्याय या अत्याचार करे, तो भी हम शांतिपूर्वक और प्रसन्नचित्त से सहते चले जायँ और अपनी सहनशीलता से अुसका दिल पिघला दें। (२) क्षमा। दूसरा हमारा कोअी अपराध करे या हमारे साथ अन्याय करे, तो हम केवल अुसे बरदाश्त ही नहीं करें, बरन सच्चे हृदय से

और अुदारता पूर्वक अुसे क्षमा कर दें। और (३) अपकार के बदले अुपकार। अिसमें अपने साथ बुराअी करनेवाले को हम केवल माफ ही नहीं करते, बल्कि बुराअी का बदला भलाअी से चुका कर अुसका हृदय-परिवर्तन करने की चेष्टा करते हैं।

गांधीजी ने जो तरीका अीजाद किया है वह अिन सबका पूरक होते हुअे भी अपनी विशेषता रखता है। अन्याय या अत्याचार सह लेना, गुनाह माफ कर देना, हमेशा और हर हालत में अुचित नहीं होता। कभी कभी अन्यायी या अपराधी व्यक्ति के हित के लिअे अुसे अन्याय या अपराध से बचाना भी जरूरी हो जाता है। अैसे मौके पर भावरूप या विधायक प्रतीकार की आवश्यकता होती है। रोगी की सेवा-शुश्रूषा के लिअे रोगनिवारण का यत्न जितना आवश्यक है, अुतना ही आवश्यक अिस प्रकार का प्रतीकार है। रोग-निवारण के अुपचारों से रोगी की जितनी सेवा होती है, अुससे कहीं अधिक सेवा अपराधी व्यक्ति की अिस प्रतीकार से होती है। यह प्रतीकार केवल तितिक्षात्मक या केवल क्षमात्मक नहीं है। अिसमें केवल अपकार के बदले अुपकार की अुदारता ही नहीं है। अहिंसक प्रतीकार के ये तीनों गुण सत्याग्रही प्रतीकार में अन्तर्हित हैं। लेकिन अुसका विशेष गुण सेवा है। सत्याग्रही केवल क्षमा या तपस्या की वृत्ति से अन्याय और अत्याचारों को सहन नहीं करता, अपितु अन्यायी और अत्याचारी व्यक्ति की आत्मोन्नति में सहायता देने के लिअे, अुसकी मनुष्यता के विकास में मदद पहुँचाने के लिअे, याने, दूसरे शब्दों में, अुसकी सेवा करने के लिअे, प्रतीकार करता है।

गांधीजी के तत्त्वज्ञान का मूल स्रोत सेवावृत्ति अवश्य है। लेकिन अन्याय के प्रतीकार में भी सेवावृत्ति का विनियोग अुनकी अपूर्व विशेषता है। अब तक तो अन्याय के प्रतीकार के दो ही शिष्ट-संमत हेतु माने जाते थे : अेक शासन और दूसरा, सामाजिक शुद्धि। शासन में सामाजिक प्रतिशोध और आतंक की भावनाअें मिली हुअी होती थीं और जब कोअी व्यक्ति या समूह शासन से भी दुरुस्त नहीं होता था तो अुसे सामाजिक स्वच्छता के लिअे नष्ट कर दिया जाता था। आजकल गुनहगार और अपराधियों के विषय में भी शुचिता और शासन का स्थान सुधार और शिक्षण को मिल रहा है। यह सेवाधर्म का ही अेक स्वरूप है। अुसी सेवाधर्म का सामुदायिक प्रयोग गांधीजी सामाजिक और राजनैतिक प्रतीकार के क्षेत्र में कर रहे हैं। आत्मोन्नति और समाज-सेवा या यज्ञ और मोक्ष के समन्वय का अुनका सिद्धान्त अपने सम्पूर्ण वैभव और अुत्कर्ष में अुनकी प्रतीकार-नीति में ही प्रकट होता है।

२९ : १ : '४२ दा० ध०

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादकः—काका कालेलकर मार्च, १९४२
दादा धर्माधिकारी वर्धा

सर्व-स्वजन जमनालालजी

[काका कालेलकर]

अेक दिन श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने पूछा 'पुराणों में ब्रह्मर्षि का जिक्र आता है, विश्वामित्र जैसे क्षत्रर्षि भी हुअे, अुसी तरह क्या वैश्यर्षि नहीं हो सकते हैं? मैंने कहा कि बापूजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अगर स्वीकार किया गया, तो अैसे वैश्य, अगर वे ओश्वरनिष्ठ भी रहे, तो वैश्यर्षि ही बन जाते हैं।

श्री जमनालालजी अैसे अेक 'वैश्यर्षि' थे। प्रामाणिकता से धन कमाना और अुदारता से अुसका वितरण करना, यह तो अुनका स्वभाव ही था। 'ट्रस्टीशिप' की बात सुनने के पहले भी वह सिद्धान्त अज्ञातरूप से अुनके खून में भरा हुआ था। मैंने शुरू से देखा है कि जब कभी वे किसी देशसेवक का दुःख सुनते या देखते थे, तब फौरन अपने आप को अुसकी स्थिति में अनुमान कर लेते थे। जब अुन्होंने गान्धीजी से प्रार्थना की कि मुझे अपना पुत्र मान लीजिये, तब अुसी भाव से अुन्होंने देशभर के समाज-सेवकों को अपने परिवार के 'स्वजन' मान लिया। किसी पारिवारिक या कौटुंबिक वृत्ति से अुनके मन में यह निश्चय हुआ कि जो कुछ मेरा है वह सारा देश का ही है। यह भाव केवल संपत्ति तक ही सीमित नहीं था। अुन्होंने अपने परिवार के छोटे-बड़े सभी को सेवा की ही दीक्षा दी। फलतः अुनका घर सारे देश का घर बन जाता था और सच्चे अर्थ में वह 'धर्मशाला' कहा जा सकता था। अपनी कोठी छोड़ कर वह बंगले में रहने आये और देखते देखते अुनका बंगला और अुनका 'अतिथि-गृह' 'कॉंग्रेस-भवन' या 'स्वराज्य-भवन' बन गया।

अिस साल जब अुन्होंने गो-सेवा का यज्ञकंकण अपने हाथ में बांध लिया, तब बजाजवाड़ी का बंगला भी छोड़ कर वह गोपुरी में अेक झोपड़ी में रहने आये। यह झोपड़ी सचमुच घासफूस की झोपड़ी ही है; संगमर्मर की 'पर्णकुटि' नहीं है। यहाँ पर भी प्रान्त-प्रान्त के लोग आने लगे और आज तो श्रीमती जानकीदेवी ने अुसे 'सेवा-मन्दिर' ही बना दिया है और जब मैं यह श्रद्धांजलि लिख रहा हूँ, 'सेवामन्दिर' तीर्थयात्रा का धाम बन गया है। वहाँ दिनरात लोग आते जाते हैं, रामायण और गीता का पाठ करते हैं और श्री जमनालालजी के पुण्य नाम के साथ सेवा की दीक्षा ले कर अपने जीवन को कृतार्थ करने की कोशिश करते हैं।

श्री जमनालालजी ने हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन का सारा सप्तक पूरा किया। सज्ञान होने के पहले ही अपने अुत्साह का सबूत दे कर वह रायबहादुर हुअे और ऑनररी मैजिस्ट्रेट भी हुअे। अुस समय भी अुनकी धार्मिकता का तेज प्रकट हुअे बिना नहीं रहा था। सरकारी कर्मचारियों को वह दावत अवश्य देते थे, लेकिन अुन्होंने आग्रह-पूर्वक यह मर्यादा रक्खी थी कि राजकर्मचारी कितने भी बड़े हों, दावत में मद्य या मांस का व्यवहार हरगिज नहीं होगा।

जमनलालजी के सेवाभाव ने अुन्हें हरअेक देश-भक्त का भक्त बनाया। गोखले हों या तिलक हों, मालवीयजी हों या सर जगदीशचन्द्र बसु हों, जमनलालजी भक्ति से अुनके पास जाते थे और यथाशक्ति सेवा में हाथ बँटा थे। अुनके सौभाग्य से यह भक्ति स्थिर करने का आधार अुन्हें जलदी ही मिल गया। असहयोग के दिन आये। गाँधीजी की धर्मप्रधान देशभक्ति अुन्हें जँची और जमनालालजी ने तुरन्त गान्धीजी के द्वारा अपना जीवन-सर्वस्व देशसेवा को अर्पण किया। असहयोग का अर्थ ही था त्याग और बलिदान। जब बड़े बडे वकील अदालतों का बहिष्कार कर के देशसेवा के लिअे अुद्यत हुअे, तब जमनालालजी ने सोचा कि देशसेवक पैसे की तंगी में रहें और मैं धन का संग्रह करता बैठूं, यह कैसे चलेगा? अुनका आत्मौपम्य जाग्रत हुआ और अुन्होंने लाख दो लाख रुपये अिस काम के लिअे दे दिये।

अिस कार्य के अनुभव में से ही गान्धी-सेवा-संघ की अुत्पत्ति हुअी।

जमनालालजी ने धन-दान बहुत किया; अनेक धनिकों को दान की दीक्षा दी। लेकिन धन-शक्ति अुनकी प्रधान शक्ति नहीं थी। वह जितने भावुक थे और दानशूर थे, अुससे अधिक वह बुद्धिशाली, व्यवहार-चतुर और कार्य-कुशल थे। हरअेक संस्था को और अुनके संपर्क में आनेवाले हरअेक सेवक को अुनकी कार्य-कुशलता का सहारा मिला है। अपनी स्वाभाविक कुशाग्र बुद्धि को देश के सर्वोच्च नेताओं की बुद्धि के साथ कस कर अुसे अधिक तेज बनाने का मौका अुन्हें दिनरात मिला और अुससे अुन्होंने पूरा फायदा भी अुठाया। जब महात्माजी हिन्दुस्तान में पहली बार जेल में थे, तब जमनालालजी के श्री विट्ठलभाअी पटेल के साथ जो संवाद होते थे, वे सुनने लायक थे। कॉंग्रेस की कार्यकारिणी में जमनालालजी का जो स्थान था, वह केवल खजानची की हैसियत से न था। राष्ट्र की मन्त्रणा में अुनकी ध्येय-निष्ठ व्यवहार-बुद्धि का काफी हिस्सा रहता था।

प्राचीनकाल से हिन्दुस्तान की जनता कहती आयी है कि हिन्दुस्तान का राजनैतिक मसला अगर वैश्यों के हाथ में रहता, तो हिन्दुस्तान का अुतना नुकसान नहीं होता जितना कि ब्राह्मण और क्षत्रियों की बुद्धि से हुआ है। सच तो यह है कि जब ब्राह्मण की अनासक्ति, क्षत्रिय की वीरवृत्ति, वैश्यों की दीर्घदर्शिता और शूद्रों की सेवापरायणता का अीश्वरनिष्ठा के साथ अेक रसायन बन जाता है, तभी समाज की अुन्नति होती है और स्वतन्त्रतादेवी का प्रसाद प्राप्त होता है। गांधीजी ने यह आदर्श देश के और दुनिया के सामने रक्खा है और अिसीकी साधना आज के समाज-सेवक कर रहे हैं। चार वर्ण मानवीय अुन्नतिरूपी रत्न के चार पहलू हैं। अिन्हें अलग अलग नहीं किया जा सकता। जब जब भारत ने अिन्हें अलग अलग रखने का प्रयत्न किया है, तब तब अुसे पक्षाघात हुआ है और भारतीय समाज का अधःपात हुआ है। श्री जमनालालजी ने अिन

चारों पहलुओं का अपने जीवन में समन्वय करने की साधना चलायी, यही अुनके सामर्थ्य और सफलता का असली रहस्य है।

'कौटुम्बिक सद्गुणों का व्यापक पैमाने पर विकास करो और सारी वसुधा को अेक संयुक्त कुटुंब समझो', यह गाँधीजी का आदेश श्री जमनालालजी ने अपनाया। अुनके लिअे यह स्वाभाविक भी था। और यही कारण है कि देश के अधिक-से-अधिक लोग, हिन्दू और मुसलमान, अीसाअी और पारसी, जमनलालजी को 'स्वजन' मानते आये हैं।

अैसे सर्व-स्वजन कभी मर नहीं सकते हैं। पुनर्जन्म का सवाल यहाँ नहीं है। जितने लोगों से श्री जमनालालजी का सम्बन्ध आया, अुन सबके हृदय में वह जन्म ले चुके हैं और वहीं पर अुनकी आयु और कार्यशक्ति बढ़ती जा रही है। द्विजगण जिस तरह अपने अण्डे का कवच छोड़ देते हैं और विशाल विश्व में प्रवेश करते हैं, अुसी तरह श्री. जमनालालजी ने अपना चोला छोड़ दिया है। अुससे अुन्होंने कम काम नहीं लिया था। अब यह चतुर बनिया अपने सब मित्रों और सहयोगियों के जीवन में घुस कर अुनसे कस कर काम लेना चाहता है।

जिसने अुनके प्रेम का जितना अनुभव किया हो, अुतनी सेवा अुसे अब तन-मन-धन से करनी होगी।

१९:२:'४२

पूजा-गीत

यह हठ मत ठानो!
मंदिर क्या हैं नहीं तुम्हारे?
मसजिद जिनकी, क्या वे न्यारे?
मठ, विहार किसके हैं सारे?
सभी तुम्हारी गौरव गरिमा,
निज को पहचानो!
फिर, लड़ते हो क्यों आपस में?
तुम हो किस दानव के वश में?
बैर भरा कैसा नसनस में,
यह षडयंत्र सिखाया किसने,
तुम अुसको जानो!
हिन्दू मुसलिम, सिक्ख, अिसाअी,
क्या न सभी हैं भाअी भाअी?
जन्मभूमि है सब की माअी,
क्यों न कंठ से मिलकर सब फिर!
जय-वितान तानो।

['पूजा-गीत' से] —सोहनलाल द्विवेदी

जीवित मृत्यु

[विनोबा]

(श्री जमनालालजी के निधन के अुपलक्ष में ता० १२ फरवरी १९४२, को वर्धा की शोक-सभा में दिया हुआ भाषण)

मेरे प्रियतम भाअियो और बहनो,

कल तीसरे पहर चार बजे महिलाश्रम में मेरा व्याख्यान होनेवाला था । अुसके लिअे मैं वहाँ जा कर पहुँचा । लड़कियाँ आ कर बैठीं और मैं अपना व्याख्यान शुरू करने ही वाला था कि अितने में मोटर आयी । अेक आदमी सन्देशा ले कर आया, "जमनालालजी बीमार हैं, आपको याद किया है ।" यों जमनालालजी विशेष बीमार नहीं थे । दोपहर तक नित्य की तरह वह अपना काम कर रहे थे । यह सब मुझे मालूम था । अिसलिअे जब मैंने अुनके बीमार हो जाने की खबर सुनी, तब भी मैं अुसका विशेष गहरा अर्थ नहीं समझ सका ।

फिर भी, व्याख्यान छोड़ कर मैं गांधीचौक* में पहुँचा । गाडी से अुतरते ही दिलीप को अटारी पर से अुतरते हुअे देखा । अुसके चेहरे पर शोक छा रहा था । तो भी मुझे पूरी तरह कल्पना नहीं हुअी और मैंने अुससे पूछा, "जमनालालजी की तबियत कैसी है ?" वह बोला, "वह तो जाते रहे ।"

अितनी अचानक, अनपेक्षित और चित्त को क्लेश देनेवाली खबर सुन कर मुझे क्या मालूम होना चाहिअे था, यह आप समझ सकते हैं । लेकिन मुझे बिलकुल अनोखा और विलक्षण अनुभव हुआ । यह समाचार क्लेशदायी तो था ही, लेकिन अुसे पा कर मुझे अपने अन्तर्याम में अेक विशेष प्रकार के आनन्द का आभास हुआ और अुस आनन्द की अवस्था में ही मैं अूपर जिस कमरे में अुनका शव पड़ा हुआ था, वहाँ गया । वहाँ जो लोग बैठे थे अुनकी चर्या पर जब मैंने स्पष्टरूप से दुःख की छाया देखी, अुस वक्त मुझे मालूम हुआ कि कोअी अैसी घटना घटी है जिससे कि बहुतों को दुःख हो सकता है । तिसपर भी मुझे स्वीकार करना चाहिअे कि भीतर से मुझे जिस आनन्द का अनुभव हो रहा था, अुसमें कोअी फर्क नहीं पड़ा । अन्त में संध्यासमय, शव का अग्निसंस्कार करने के बाद जब ओशोपनिषद् और गीताअी (गीतामाअी) के श्लोकों का पाठ करने लगा, तो अुस आनन्द का पारावार नहीं रह गया । रात को सोने के समय तक मेरी यही स्थिति रही । सबेरे अुठने के बाद जमनालालजी की मृत्यु से कितनी क्षति हुअी है और हमारी जवाबदारी कितनी बढ़ी है, अिसका धीरे-धीरे भान होने लगा । बाद में मेरी क्या स्थिति हुअी होगी, सो आप समझ सकते हैं । लेकिन मुझे जो आनन्द का अनुभव हुआ, अुसका कारण मुझे आप पर प्रकट करना चाहिअे ।

जमनालालजी ने गो-सेवा का कार्य अपने हाथ में लिया है, यह खबर मैंने जेल में सुनी । सुन कर मुझे सन्तोष हुआ । मैंने सोचा कि

---

* गांधीचौक जमनालालजी की शहरवाली कोठी का विस्तीर्ण आंगन है । यही अिमारत बजाज-परिवार का पैतृक मकान है । संयोग से महीनों बाद जमनालालजी अपनी मृत्यु के दो तीन घण्टे पहले वहाँ आये थे और वहीं पर अुनके पुराने कमरे में अुनका देहान्त हुआ ।

जमनालालजी ने यह अुपयोगी काम अपने हाथ में लिया, अिससे देश का अुपकार तो अवश्य होगा ही; परन्तु अुनके अपने चित्त को भी अुससे शान्ति मिलेगी। लेकिन साथ साथ में यह भी देख रहा था कि अुनके थके हुअे शरीर के लिअे यह काम असहनीय साबित होगा। जब मैं जेल से बाहर आया, तो मिलते ही अुन्होंने पूछा, "मैंने गोसेवा का काम लिया यह बात आपको कैसी लगी? आपकी क्या राय है?" मैंने अुनसे कहा, "यह सुन कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ।" मेरे मुँह से ये शब्द निकलते ही अुनकी आँखें भर आयीं। अिधर दो-तीन महीनों से गोसेवा के जैसा पवित्र, प्रेमभाव उत्पन्न करनेवाला और आत्मा की अुन्नति का साधन-स्वरूप सुन्दर काम मिल जाने से अुनके चित्त को बहुत ही सन्तोष हुआ दिखायी देता था और अुन्होंने सदा की अपेक्षा अधिक अेकाग्रता और लगन से अुसे शुरू किया था। मरते समय अुनके चित्त की जितनी अुन्नत अवस्था थी अुतनी अुन्नत अवस्था अिन बीस वर्षों के अुनके सारे प्रयत्नों में कभी नहीं थी। चित्त के सूक्ष्म परीक्षण का अभ्यास होते हुअे भी पिछले बीस वर्षों में वह चित्त की जिस अुन्नत अवस्था को नहीं पहुँच पाये थे, वह अुन्होंने अिन दो या तीन महीनों में बडी जल्दी प्राप्त कर ली। शुरू से ही अुनके साथ निकट परिचय होने के कारण मैं यह देख सकता था। अैसी अुन्नत अवस्था में मृत्यु होना बडे आनन्द का विषय है। मृत्यु तो हरअेक की होनेवाली है। लेकिन मृत्यु और मृत्यु में भेद है। अन्तिम घडी तक सेवा करते करते, दूसरे की सेवा लेने की नौबत न आते हुअे, चित्त की अुन्नत अवस्था में देह छोड़ कर जाने का सद्भाग्य प्राप्त होने से बढ़कर जीवन का श्रेयस्कर अन्त भला कौनसा हो सकता है? यह सोच कर ही मैं खुशी में था। प्रस्तुत प्रसंग शोक का होते हुअे भी अुसके अेक आनन्द का पहलू है। अुस पहलू को मैंने आपको दिखा दिया। मैं समझता हूँ हम सबको अीश्वर से अैसी ही मृत्यु मांगनी चाहिअे और हमारे सारे प्रयत्न अिसी अुद्देश्य से तथा अिसी दिशा में होने चाहिअें।

रामायण में तुलसीदासजी ने अेक प्रसंग का वर्णन किया है: सुग्रीव और वाली का युद्ध हो रहा था। राम ने वाली को अेक तीर मारा। अुस बाण से विद्ध और व्याकुल हो कर वाली जब धरती पर गिर पड़ा, अुस समय अुसके और राम के बीच जो संवाद हुआ, अुसका वर्णन दिया है। राम ने वाली को तीर मारा, अिसके लिअे वाली ने राम को दोष दिया। तब राम वाली से कहता है, "हे मेरे प्यारे पुत्र, मैंने यह तुझे बाण नहीं मारा है; बल्कि तेरे प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है। अगर तेरी अिच्छा हो तो मैं तुझे जिन्दा रख सकता हूँ। जैसी तेरी मर्जी हो, वैसा ही करूंगा।" अिसपर वाली ने कहा, "हे राम, आज मैंने तेरे प्रत्यक्ष दर्शन पाये हैं। अैसे दर्शन पा कर मरने का सुयोग प्राप्त होने पर मैं अुसे गवाँ दूं और तुझसे आयु माँगू; तो जब मृत्यु की घडी आयेगी, तब अिन नेत्रों को ये दर्शन प्राप्त होंगे या नहीं, अिसका कोअी ठिकाना नहीं है। अिसलिअे मैं यही स्थिति पसन्द करता हूँ। मुझे जीवित रहने की चाह नहीं है। अिस वक्त मरना ही मेरे लिअे श्रेयस्कर है।" अितना कह कर वाली मुक्त हो गया और राम की ज्योति में जा मिला। अिस तरह का चित्र और चरित्र रामायण में वर्णित है। अुसका आशय यह है कि चित्त का शोधन करते करते अुन्नतावस्था को पहुंच कर अुसी अवस्था में मरना अुचित है। मैं जानता हूँ कि जमनालालजी ने अैसी ही मृत्यु पायी। अिसलिअे अुनकी मृत्यु

दुःख का विषय नहीं है; किन्तु आनन्द का विषय है। हमें अिस प्रकार की मृत्यु पर अीर्षा होनी चाहिअे।

हम अुनके अनेक गुणों का वर्णन कर सकते हैं। लेकिन अुन सब में सब से बड़ा गुण यह था कि सेवा के अनेक कार्य करते हुअे कितनी सेवा हुअी अिसका अेक हिसाबी व्यक्ति के नाते वह बाह्य माप करते थे, तो भी अुस सेवा का अुनका मुख्य माप दूसरा ही था। वह यह देखते थे कि क्या अिस सेवा से मेरे अन्तःकरण का मैल या अशुद्धि कम हो रही है? जिस सेवा-कार्य का परिणाम चित्त-शुद्धि के रूप में दिखायी देता है, वह सेवा यथार्थ है। चित्त-शुद्धि का परिणाम अगर कम मात्रा में दिखायी दे, तो वह सेवा अुतने अंश में अपूर्ण है, और जिस सेवा से यह परिणाम ही नहीं होता दिखायी देता, वह सेवा अुनकी दृष्टि में झूठी थी। प्रत्येक सेवा को वे चित्त-शुद्धि की कसौटी पर कसते थे। चित्त-शुद्धि की और सेवा की कसौटी अुनके लिअे अेक ही थी। अैसी चित्त-शुद्धि की वृत्ति में जो शरीर छोड़ कर गया, वह गया ही नहीं। वह छोटे-से शरीर में से गया; परन्तु समाज के व्यापक शरीर में प्रविष्ट हो गया।

अैसा कअी बार होता है। देह आत्मा के विकास के ही लिअे है। परन्तु जिनका आत्मा विशेष अुन्नत हो जाता है, अुनके विकास के लिअे देह मे पर्याप्त गुंजाअिश नहीं होती। अुनका वह विशाल आत्मा देह के माप में अमाता ही नहीं। तब देह को फेंक कर देह-रहित अवस्था में अैसे आत्मा अधिक सेवा करते हैं। और अैसी स्थिति जमनालालजी की हुअी है। कम-से-कम मैं तो देख रहा हूँ कि अुन्होंने आपकी और मेरी देह में प्रवेश किया है। अैसी मृत्यु जीवित मृत्यु है। मृत्यु भी जीवित हो सकती है और जीवन भी मृत हो सकता है। जीवित मृत्यु बहुत थोडों की ही होती है। वैसी यह जमनालालजी की मृत्यु है।

अिसका परिणाम मुझपर और आपपर अवश्य होगा। लेकिन अुस परिणाम के लिअे हमें अपना चित्त खुला रखना चाहिअे। अैसे परिणाम का अेक छोटा-सा अुदाहरण देता हूँ। जमनालालजी की मृत्यु के बाद अुनकी पत्नी को यह संकल्प करने की प्रेरणा हुअी कि मेरा शरीर राष्ट्र-कार्य मे समर्पित हो। अुन्होंने अपनी निजी सम्पत्ति राष्ट्र को अर्पण करने का संकल्प किया। जानकीबाअी कोअी बहुत पढी-लिखी स्त्री नहीं हैं। या यह भी नहीं कह सकते कि अुन्हें विकास का कोअी स्वतन्त्र साधन अुपलब्ध है। परन्तु यह परिणाम जमनालालजी की मृत्यु का है, यह अुसका तात्पर्य है। देह के रहते हुअे आत्मा जो परिणाम नहीं कर सकता या जितना परिणाम कर सकता है, वह परिणाम या अुससे अधिक परिणाम देह के न रहने पर वह कर सकता है, अिसका यह अेक अुदाहरण है। अैसे और भी अुदाहरण होंगे। क्योंकि बडे आत्मा देह छोड़ने पर ही अधिक बलवान बनते हैं।

सन्तों के अुदाहरण हम देखते ही हैं। जब-तक वे जीवित थे, समाज अुनकी कद्र नहीं करता था; अुलटे अुनको सताता था। परन्तु देह जाने के बाद देह के बाहर से वे समाज के चित्तपर बहुत ही शक्तिशाली परिणाम कर सके। अिन्हीं की श्रेणी में जमनालालजी का भी—छोटा-सा ही क्यों न हो—स्थान है। अिस लिअे अुन्होंने जितनी अुत्कटता से कार्य किया, अुससे भी अधिक अुत्कटता से अुस कार्य को चलाने की प्रेरणा अीश्वर की कृपा से हम पा सकते हैं। अुस प्रेरणा को ग्रहण करने के लिअे हमारा चित्त खुला रहे, अैसी प्रार्थना कर के यह श्रद्धांजलि का भाषण समाप्त करता हूँ।

तत्वनिष्ठ व्यवहारकुशलता की मूर्ति

[दादा धर्माधिकारी]

'**जमनालालजी** नहीं रहे। मैंने अुनके पार्थिव अंश को भस्मसात् होते हुअे अपनी आंखों से देखा। लेकिन फिर भी मैं अबतक यह महसूस नहीं कर सकता कि जमनालालजी दर असल नहीं रहे हैं। वर्धा के आसपास का सारा वायुमण्डल अुनके व्यक्तित्व के प्रभाव से छलक रहा है, अुनके सुकृतों की सुगंध से महक रहा है। जिन थोड़े-से व्यक्तियों ने मेरे जीवन को प्रभावित किया है, अुनमें से जमनालालजी का अेक विशेष स्थान है। लेकिन फिर भी मैं अुनसे बहुत कम मिलता था। मेरा कार्यक्षेत्र ही अैसा है कि शिक्षामण्डल या महिला-सेवा-मण्डल की बैठकों के सिवा, साल भर में मुश्किल से आठ या दस बार अुनसे मुलाकात के मौके आते थे। अिसलिअे अुनके शरीर के भस्म हो जाने पर भी मुझे यह अनुभव नहीं होता कि अब जमनालालजी नहीं रहे। सारा वातावरण अुनके समृद्ध और पवित्र जीवन के प्रभाव से शराबोर है।

* * *

ग्यारह तारीख को जमनालालजी का कनिष्ठ पुत्र रामकृष्ण लगभग तीन बजे अपने 'घनचक्कर' मित्रों के साथ गपशप कर रहा था। अितने में अेक नोकर से अुसे खबर मिली कि 'काकाजी' अेकाअेक सख्त बीमार हो गये। मुझे यह खबर करीब सव्वातीन बजे मिली। हम लोग तुरन्त ही चल पड़े। लेकिन अुन की कोठी के फाटक पर ही मालूम हुआ कि वह नहीं रहे। करीब पौन घण्टे में सारा खेल खतम हो गया।

जिस कमरे में अुनका शव पड़ा था, वहाँ पहुँचने पर हमने जो अद्भुत दृश्य देखा, अुसका वर्णन करना असंभव है। वह दृश्य जितना करुण था, अुतना ही अुदात्त था; जितना गंभीर था, अुतना ही प्रेरणाप्रद था। जमनालालजी के शव के पास गांधीजी और जानकीदेवी बैठे थे और चर्चा कर रहे थे। शोक के अुद्रेक से दोनों का हृदय विदीर्ण हो रहा था; लेकिन दोनों को यह चिन्ता थी कि अुनका क्या कर्तव्य है। जानकीदेवी अपने श्वशुर-तुल्य और गुरुस्वरूप बापूजी से पूछ रही थी, 'अब मेरा क्या कर्तव्य है? सती-धर्म का आचरण करने के लिअे मुझे क्या करना चाहिअे?' अुस गंभीर अवसर पर बापू जमनालालजी के शव के समीप बैठ कर सती-धर्म की व्याख्या अपनी अनुपम, सीधी-सादी और घरेलू भाषा में कर रहे थे। अुन्होंने कहा, 'जिस कार्य के लिअे जमनालालजी जीये, जिसका अनुशीलन और चिन्तन करते हुअे वह यहाँ से चले गये, अुस काम को अपना सारा जीवन और सम्पत्ति समर्पण करना ही सच्चा सहगमन है, यही यथार्थ सतीधर्म है, यही सहधर्माचरण है।'

अुस शोकाकुल स्थिति में भी जानकीदेवी ने अपने पतिदेव के नश्वर शरीर को साक्षी रख कर नम्रतापूर्वक, सँकुचाते हुअे, यह पवित्र और गंभीर संकल्प किया। बापू और विनोबा से अुन्होंने विनय की 'भगवान् से प्रार्थना कीजिये कि वे मुझमें अुनकी शक्ति, बुद्धि और गुण भर दें जिससे मैं अुनका कार्य आगे चला सकूँ।'

यह सारा संवाद मेरे समाजवादी मित्र डॉ० लोहिया सुन रहे थे। वह कहने लगे, 'भअी, गान्धीजी गजब के आदमी हैं।' गांधीजी ने कहा है, 'जमनालालजी बड़े तगड़े आदमी थे।' जब जब यह दृश्य याद आता है, मैं सोचता हूँ

'जानकीदेवी दबंग स्त्री हैं !' अपने अनुरूप साहस, निष्ठा और त्याग देख कर जमनालालजी की आत्मा कृतकृत्य हुआी होगी !

यह दृश्य पुराणकाल की याद दिलानेवाला था। अिसके बाद विनोबा की मधुर-गंभीर ध्वनि में श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय के पाठ ने अुस अवसर को अेक पुण्यपर्व का रूप दे दिया ! पुण्यात्मा का प्रयाणकाल भी अेक शुभ मुहूर्त ही होता है। अिसीलिअे वह पुण्यतिथि के रूप में मनाया जाता है।

* * *

गांधीजी ने कहा है कि जमनालालजी अेक दिग्गज पुरुष थे। कहीं भी भीड़ में खड़े होते थे, तो दूर ही से अुनकी गर्दन और सिर दिखायी देता था। अनका डीलडौल लम्बा-चौड़ा और भारी-भरकम था। अेक कहावत है कि चंगे शरीर में चंगा मन रहता है। जमनालालजी के अूँचे-पूरे और विशाल शरीर में अुतनी ही विशाल आत्मा और अुन्नत हृदय था। अुनकी विशालता में स्वाभाविकता थी। अुनका शरीर कसरत या व्यायाम से कमाया हुआ नहीं था। अुसी तरह अुनकी बुद्धि में भी आधुनिक शिक्षा की चमकदमक नहीं थी। फिर भी अुसमें स्वाभाविक संस्कारिता, कुशाग्रता तथा मूलगामिता की कमी नहीं थी। अुनकी बुद्धि की अुदारता और शक्ति अुनके साथ अनेक संस्थाओं में काम करने वाले अुनके सहकारी भली भाँति जानते हैं, अुनके हृदय की विशालता का अनुभव तो सभी को है। अुनके शरीर की अूंचाअी मानों अुनके विचारों की अुच्चता की द्योतक थी ?

* * *

यों तो संसार में पैदा होनेवाला हरअेक व्यक्ति अपूर्व और अद्वितीय ही होता है। अेक के जैसा दूसरा नहीं होता। अिसीलिअे हरअेक को पहचान सकते हैं। जिस प्रकार हरअेक की शक्ल-सूरत अेक-सी नहीं होती, अुसी तरह प्रत्येक के दिल की बनावट और स्वभाव की रचना भी अेक-सी नहीं होती। परन्तु जमनालालजी अेक विशेष अर्थ में अपने ढंग के अेक ही आदमी थे। वह केवल दानवीर ही नहीं थे, तपोवीर और सेवावीर भी थे। सत्कार्यों में आर्थिक मदद देने तक ही अुनकी सत्कार्य-निष्ठा सीमित नहीं थी। वह अुन कार्यों में अेक सच्चे साधक की तरह अद्भुत लगन और तत्परता के साथ जुट जाते थे और सेवा तथा सदाचार के व्रतों को अपने जीवन में चरितार्थ करने की निरन्तर और अविरत चेष्टा करते थे। अुन्होंने केवल सत्याग्रहाश्रम को द्रव्यदान दे कर वर्धा में अुसकी नींव ही नहीं डाली, अपितु सत्याग्रह के लिअे आवश्यक व्रतों का अनुशीलन अपने जीवन में सचाअी के साथ करने का यत्न किया। गृहस्थ होते हुअे भी वह कअी वर्षों से ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और अपने जीवन की सादगी तथा कष्ट-सहन की शक्ति से विरक्त कार्यकर्ताओं को भी चकित कर देते थे। अिसीलिअे यह कहने में अत्युक्ति नहीं है कि वह जनकादि राजर्षियों के अेक प्रामाणिक अनुयायी और वंशधर थे।

* * *

जमनालालजी में व्यवहारज्ञान, और तत्त्वनिष्ठा, दातृत्व और हिसाबीपन, सज्जनता और विवेकशीलता का बड़ा मनोरम संगम था। संसार में सम्पन्नता और शुचिता, वैभव और पावित्र्य, कांचन और चारित्र्य अेकसाथ बिरले ही पाये जाते हैं। जमनालालजी में अिन परस्पर-विरोधी गुणों का मधुर मिलाप था। वह जब कोअी रकम या सम्पत्ति किसी पुण्य-कार्य के लिअे देते थे, तो अुसे 'दान' नहीं समझते थे। अुपनिषद

की आज्ञानुसार वह बड़े संकुचाते हुअे, विनयपूर्वक, देते थे–'ह्रिया देयम्'। अिसीलिअे अुनका दान निरपेक्ष और करीब करीब निर्दोष होता था। वह कहा करते थे कि जिस सम्पत्ति की व्यवस्था का भार मुझे सौंपा गया है, अुसके सदुपयोग का सुयोग मुझे जिन संस्थाओं, व्यक्तियों या कार्यों की बदौलत प्राप्त होता है, अुनकी बड़ी कृपा है। अिसीलिअे जब वह किसी कार्य में श्रद्धा से आर्थिक सहायता देते थे, तो सत्ता या यश की अभिलाषा तनिक भी नहीं करते थे। अुलटे अुनका यह प्रयत्न रहता था कि हरअेक संस्था या कार्य किसी जिम्मेवार और योग्य व्यक्ति को सौंप कर खुद दूसरा काम शुरू कर दें। अिसीलिअे अुनके धन से कोअी व्यक्ति आश्रित या पंगु नहीं बनती थी। संस्था के संचालकों की आत्म-मर्यादा और आत्मनिष्ठा ही अुसकी असली आत्मा है, यह वह भली प्रकार जानते थे।

मैं कह चुका हूं कि जमनालालजी बड़े हिसाबी और व्यवहारचतुर थे। विनोबा अक्सर कहा करते हैं कि परमार्थ अुत्कृष्ट हिसाब है। केवल आर्थिक दृष्टि में अधकचरा और अपूर्ण हिसाब होता है। पारमार्थिकता में ही सच्ची आर्थिक वृत्ति है। जमनालालजी अपने को अेक कुशल बनिया कहते थे। अिसलिअे वह कहा करते थे कि "मैं अगर पैसे से प्रतिष्ठा, प्रशंसा और सत्ता खरीदूं, तो अुससे मेरा पतन होगा, देश की हानि होगी और जनता के साथ प्रतारणा होगी। अगर मैं अपने आसपास चापलूस और मतलबी लोगों को अिकट्ठा करूंगा, तो मेरी आत्मा का विकास नहीं हो सकता।" अिसलिअे अेक दूरदर्शी और अग्रसोची व्यापारी की तरह वह अपने द्रव्य का विनियोग अैसी संस्थाओं और कार्यों में करना चाहते थे जो अुनकी आत्मोन्नति में सहायक हों।

यही कारण है कि वह अितने त्यागी और तपस्वी समाज-सेवकों का संग्रह कर सके। अुनकी लोकसंग्रह की अपूर्व शक्ति का यही रहस्य है। जिन सन्तों और कर्मयोगियों को जमनालालजी की निष्ठा और निर्व्याज प्रेम बरबस वर्धा खींच लाया, अुन्हें केवल धन के जोर पर कुबेर भी नहीं खरीद सकता। अिस दृष्टि से जमनालालजी केवल आदर्श अतिथिसेवी ही नहीं, आदर्श 'यजमान'–'यजन करनेवाले'–भी थे। अुन्होंने अीश्वर और मनुष्यता की अुपासना तथा आराधना सन्तों, सेवकों और सत्प्रवृत्त सज्जनों के रूप में की। क्या यह अुत्कृष्ट हिसाबी वृत्ति और सच्चा व्यवहार-कौशल्य नहीं है?

* * *

अुनकी दानशीलता अुनकी जीवनव्यापी निष्ठा का केवल अेक अंश थी। अुनके चारित्र्य ने अुनके सारे परिवार में क्रान्ति अुपस्थित कर दी है। अुनकी पत्नी, अुनके पुत्र, अुनकी लड़कियाँ–सभी अुनकी जीवननिष्ठा के कायल हैं। अुनके दोनों पुत्रों ने जेलखाने की सजाअें ही नहीं भुगती हैं, बल्कि विनोबा के आश्रम में पाखाने साफ करने में अपने को गौरवान्वित माना है। अुनकी लड़कियों ने भी विनोबा के चरणों में बैठ कर रामायण और ज्ञानेश्वरी का अध्ययन किया है और सफाअी तथा शरीरश्रम की प्रतिष्ठा के पाठ सीखे हैं। बापू और विनोबा जब कोअी नया प्रयोग करना चाहते थे, तब जमनालालजी और अुनके कुटुम्बीय अुनकी सेवा में हाजिर थे। राधाकृष्ण बजाज जैसा चारित्र्यवान्, अध्यवसायी और कुशल सेवक अुन्हीं की तो देन है। अिस प्रकार जमनालालजी के कुटुम्बीय अुनके अनुयायी भी हो गये हैं। यह कमाअी कुछ कम नहीं है। देश में अिस तरह के परिवार कितने हैं?

* * *

जमनालालजी की अेक और विशेषता का अुल्लेख करना जरूरी है। अुन्होंने अपनी कर्मभूमि और सेवाभूमि को अपनी जन्मभूमि से अधिक प्रिय और सेव्य माना। वर्धा से अुन्हें जो प्रेम था और अुस नगरी की शोभा और महिमा बढ़ाने के लिअे अुन्होंने जो प्रयत्न किया, वह अुनकी अिस वृत्ति का परिचायक था। नागपुर प्रान्त की जनता और भाषा से भी अुन्हें विशेष अनुराग था। विनोबा को वह अपना गुरु मानते थे और अुनके सभी बच्चों ने विनोबा के पास बैठ कर मराठी के अनुपम काव्य ज्ञानेश्वरी का अध्ययन किया है। लेकिन वह अपनी जन्मभूमि को भी बिलकुल नहीं भूले। जयपुर राज्य प्रजामण्डल का कार्य अुनके जन्मभूमि-प्रेम का साक्षी है।

* * *

जमनालालजी संस्थाओं की संस्था थे। सत्याग्रहाश्रम, महिला सेवा मण्डल, मारवाडी शिक्षा मण्डल, कॉमर्स कॉलेज, गो-सेवा-चर्मालय, गो-सेवा-संघ, ग्राम अुद्योग संघ, चरखा संघ, गांधी सेवा संघ, आदि कितनी ही संस्थाओं की नींव अुन्होंने डाली। प्रेरक और आद्य प्रवर्तक अलबत्ते गांधीजी ही रहे। लेकिन जमनालालजी केवल अिन संस्थाओं के प्रतिष्ठाता और आश्रयदाता ही नहीं थे; अुनके साथ अुनका जीवित संपर्क था। महिलाश्रम की महिलाअें और लड़कियाँ तो 'काकाजी' को हरमाने में अपने पिता और पालक मानती थीं। अुनके लिअे तो जमनालालजी के रिक्त स्थान की पूर्ति होना असम्भव ही है।

* * *

जिसका जीवन अितना समृद्ध और अुपयोगी था, अुसकी मृत्यु भी अुतनी ही वैभवसम्पन्न और ओर्षास्पद हुअी। मरने में भी जमनालालजी ने अपनी बनियावृत्ति से काम लिया। न बीमार हुअे, न लाचार हुअे और न किसी की सेवा ही ली।

* * *

वह अपने जीवन द्वारा तत्वनिष्ठ व्यवहार कुशलता का जीवित और असाधारण अुदाहरण अुपस्थित करके गये।

* * *

जमनालालजी की लीनता

अपनी कमजोरियों को हटाने के लिअे मैं अिस आन्दोलन में शरीक हुआ हूँ। गांधी-सेवा-संघ अेक पवित्र संस्था है। अुसका अध्यक्ष बनना कॉंग्रेस का अध्यक्ष बनने से भी अधिक कठिन है। गाँधी-सेवा-संघ से मैं अुदासीन नहीं हूँ। अैसे सम्मेलन को मै अुपयोगी समझता हूँ। आप सब के लिअे मेरे दिल में अधिक-से-अधिक प्रेम और आदर है। मेरी भाषा से कभी भाअियों को चोट पहुँचती है। मैं तो बेपढ़ा-लिखा अेक सीधा-सादा 'जट्ट' हूँ। अिसलिअे मेरी भाषा में शब्दों का योग्य प्रयोग नहीं होता। आप क्षमा करें। मैं नम्र बनने की कोशिश करूँगा। मेरे चित्त में संघ और आप सबके प्रति पूरा पूरा सद्भाव है।

६:३:'३९ —जमनालाल बजाज

जमनालालजी के कुछ संस्मरण

[सीताराम सेकसरिया]

शायद सन् अुन्नीस सौ सत्रह की बात है। जमनालालजी कुछ मित्रों के साथ कलकत्ते के बोटानिकलबाग में घूमने गये थे। वहाँ साअिकिल की दौड़ लगाने की बात चली; तो जमनालालजी सबसे पहले तैयार। लोगों ने कहा, "आप अितने मोटे आदमी हैं; साअिकिल पर से गिर पड़ेंगे।" वह बोले, "मैं तो देहाती आदमी ठहरा। वहाँ तुम्हारे कलकत्ते जैसी मोटरें थोड़े ही हैं? जल्दी का काम होता है, तो साअिकिल ही काम आती है।" खैर साहब; जमनालालजी साअिकिल पर चढ़े। देर तक घूमते रहे। कभी लोग जो अपने को साअिकिल चलाने में बड़े तेज मानते थे, अुनसे भी जमनालालजी मीर निकले। परन्तु अन्त में सामने से अेक मोटर गाड़ी आयी और वह अपना तौल नहीं सम्हाल सके। गिर ही पड़े। लोग सहम गये। दूरवालों के तो छक्के छूट गये। अुन्होंने समझा मोटर का धक्का लग गया। मगर जमनालालजी तुरन्त खड़े हो गये और बोले, "कुछ नहीं हुआ।" लेकिन दाहिने घुटने से बराबर खून बह रहा था। यों ही पोंछपाछ कर घर आये।

दर्द सख्त था, लेकिन मुंह से कहते नहीं थे। डॉक्टर को बुलाया गया। अुसने कहा, "चोट मामूली नहीं है।" तब अुस समय के सबसे बड़े सर्जन डॉ॰ सुरेश सर्वाधिकारी को बुलाया गया। अुन्होंने कहा, "मांस के भीतर कंकर घुस गये हैं। ऑपरेशन करना होगा। ऑपरेशन के लिअे क्लोरोफॉर्म भी देना पड़ेगा।" जमनालालजी ने कहा, "अिसकी क्या जरूरत है?" डॉक्टर बोला, "बिना क्लोरोफॉर्म के आपरेशन नहीं हो सकेगा।" जमनालालजी ने कहा, "अच्छी बात है, आप क्लोरोफॉर्म का अिन्तजाम रखिये और ऑपरेशन बगैर क्लोरोफॉर्म के शुरू कर दीजिये। अगर मैं न सह सका, तो आप बेशक क्लोरोफॉर्म दे दीजिये।" डॉक्टर को यह बात पसन्द तो नहीं थी। लेकिन अुसने सोचा कि यह अपने आप ही क्लोरोफॉर्म मांगने लगेंगे। अितना दर्द सहना कोअी खेल थोड़े ही है।

बिना क्लोरोफार्म के आपरेशन शुरू हुआ। ऑपरेशन के वक्त जो लोग मौजूद थे, वे कहते थे कि मांस के अन्दर से डॉक्टर जब कंकर चिमटे से खींच खींच कर बाहर निकालता था, अुस दृश्य को देखना भी मुश्किल था। लेकिन जमनालालजी ने चूं भी नहीं किया। डॉक्टर दंग रह गया। बोला, "अैसा सहनेवाला आदमी आज तक नहीं देखा। मुझे तो विश्वास नहीं था कि यह ऑपरेशन क्लोरोफार्म के बिना हो सकता है।" अैसी थी जमनालालजी की सहनशक्ति और धीरज।

* * *

अिसी तरह का दूसरा प्रसंग दो-अेक साल पहले का है। जयपुर में जब वह नजरकैद में थे, तो अुनके पैर में दर्द हुआ। अुसपर बिजली का अिलाज किया गया। डॉक्टर ने कहा, "मैं बिजली का प्रवाह तेज करता जाअूंगा। यदि आप थोड़ा ज्यादा बरदाश्त कर सकें, तो असर अच्छा होगा।" डॉक्टर प्रवाह बढ़ाता ही गया; मगर जमनालालजी कुछ भी नहीं बोले। पैर जलता रहा, यहाँ तक कि घाव हो गया। तब डॉक्टर को पता चला कि अिनका तो पैर ही जल गया है। मगर जमनालालजी तो बरदाश्त ही करते रहे।

* * *

जमनालालजी से पहले पहल में अुस ऑपरेशन के वक्त ही मिला। अुस समय अुनकी अुम्र कुल सत्ताअीस साल की थी। पर अुसके पहले ही वह कअी सार्वजनिक कार्य शुरू कर चुके थे और देश के अच्छे-से-अच्छे लोगों के सम्पर्क में आ चुके थे। जहाँ-कहीं जाते या किसी से मिलते, तो बराबर यह कोशिश करते रहते थे कि किसी कार्यकर्ता से परिचय हो जाय। कोअी नया कार्यकर्ता तैयार हो जाय, अिसी की तलाश में रहते थे। अिस ऑपरेशन के वक्त अुन्हें कअी दिन कलकत्ते में रहना पड़ा। शाम को अुनके पास कलकत्ते के मारवाड़ी नवयुवकों का जमघट लगता और अन्य लोग भी आते जिनमें श्री अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी, स्व० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी आदि प्रमुख थे। समाज-सुधार और राजनैतिक विषयों पर बातें होती रहतीं। बीच-बीच में चतुर्वेदीजी के हास्यविनोद के फवारे सबकी तबीयत को तर कर देते और कलकत्ते के बागबाजारवाले नामी रसगुल्लों का आस्वाद भी मिल जाता।

थोडे ही दिनों के बाद, अुन्नीस सौ सत्रह के बड़े दिनों की छुट्टियों में, अैनी बेजण्ट की अध्यक्षता में कॉंग्रेस का अट्ठाअीसवाँ अधिवेशन हुआ। अुस समय के 'कर्मवीर गांधी' भी आनेवाले थे। लोकमान्य के नाम की धूम थी। गांधीजी तो जमनालालजी के ही अतिथि थे। अुन दिनों वह काठियावाड़ी वेशभूषा में रहते थे। वही बलदार पगड़ी और लम्बा अंगरखा; लेकिन जूते नदारद। हम लोगों को जमनालालजी ने गांधीजी से मिलाया। वैसे तो वहाँ का सारा काम हमी लोगों के जिम्मे था। अुस समय जिन्होंने जमनालालजी को गांधीजी का आतिथ्य करते देखा है, अुन्हें याद है कि अुस समय भी गांधीजी के साथ अुनका सम्बन्ध कितना गहरा था और अुन्हें गांधीजी के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा थी। बाद में तो गांधीजी 'महात्मा' हो गये और सारे देश के 'बापू' बन गये। जमनालालजी की विशेषता यह थी कि अुन्होंने गांधीजी को पहले ही पहचान लिया था और वह अपने को अुन्हें सौंप चुके थे।

* * *

सन् अुन्नीस सौ बीस में लाला लाजपतरायजी के सभापतित्व में कॉंग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें गांधीजी ने असहयोग का प्रस्ताव पेश किया। कॉंग्रेस के सभी पुराने महारथियों ने अुस प्रस्ताव का जम कर विरोध किया। तो भी जमनालालजी गांधीजी के साथ थे। अुनके कारण बड़े बाजार की सभी वोटें गांधीजी के पक्ष में रहीं। अुन दिनों आजकल की तरह प्रतिनिधियों का चुनाव-अुनाव तो होता ही नहीं था। अिसलिअे हमलोग बहुत बड़ी संख्या में प्रतिनिधि बन गये थे। हम लोग तो यही मानते रहे कि हमारी वोटों की बदौलत ही महात्माजी की जीत हुअी। बंगाल के मुख्य नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास, बिपिनचन्द्र पाल, व्योमकेश चक्रवर्ती तथा महामना मालवीयजीमहाराज और अन्य सभी धुरंधुर नेताओं ने गांधीजी के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। प्रस्ताव की अेक कलम यह भी थी कि सरकारी अुपाधियाँ लौटा दी जायँ। जमनालालजी ने तुरन्त अपनी 'रायबहादुर' की अुपाधि छोड़ दी।

* * *

अुन्नीस सौ बीस की नागपुर कॉंग्रेस के बाद आन्दोलन का जोर बढ़ा। कअी कार्यकर्ता, कॉलेजों के प्रोफेसर, वकील-बैरिस्टर और बडे बडे लोग आन्दोलन में योग देने लगे। देशबन्धु दास, पण्डित मोतीलालजी, अपनी बड़ी बड़ी वकालतें छोड़ कर मैदान में कूद पड़े। राजेन्द्र

बाबू भी अपनी वकालत छोड़ कर देशकार्य में जुट गये। अिसका परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों और हज़ारों की तादाद में लोग अच्छी कमाअी का धन्धा छोड़ कर आन्दोलन में शामिल हुअे। जमनालालजी ने सोचा कि "अितने लोग जो देश के काम के लिअे आगे आये हैं, अुनके पास कमाअी का कोअी जरिया नहीं। न जाने अिनके परिवार के लोगों पर क्या क्या बीत रही होगी। अिनके सिवा और भी कितने ही अैसे लोग होंगे जो अपनी कमाअी छोड़ कर आन्दोलन में शरीक होना चाहते होंगे। लेकिन अुनके सामने अुनकी स्त्री-बच्चों का सवाल होगा"। अुन्होंने झट अेक निधि खोली। दो लाख रुपये अपने पास से दिये और जो लोग अपना धन्धा छोड़ कर आन्दोलन में पड़े थे और जिनके परिवार के लोगों के लिअे दूसरा कोअी अिन्तजाम नहीं था, अुनकी सहायता की। अुनको बराबर यह चिन्ता रहती थी कि देश और समाज के सेवकों की तकलीफें किस तरह दूर हो सकती हैं और अुनके कार्य के लिअे सुविधाअें किस तरह प्रस्तुत की जा सकती हैं। अिसी विचार में से बाद में गांधी सेवा संघ की स्थापना हुअी।

* * *

वैसे तो अुनके मुख्य मुख्य संस्मरण लिखे जायँ तो भी अेक खासी बड़ी पोथी तैयार हो सकती है। अिन पच्चीस वर्षों में न मालूम कितनी बार मैं अुनके साथ दौरे पर रहा और महीनों अुनके पास रहा। अिसीलिअे सारे संस्मरण लिखना सम्भव नहीं है। अुनके जिस विशेष गुण का मेरे चित्त पर गहरा असर पड़ा, वह है कार्यकर्ताओं के प्रति अुनकी आस्था। अुन्नीस सौ अिकतीस के गांधी-अिर्विन-समझौते के बाद की बात है। देश में चारों तरफ अेक तरह से अुल्लास, अुत्साह और जोश की लहर-सी अुठ रही थी। "काँग्रेस की जीत हुअी। हमारा आन्दोलन सफल हो गया", अिसी खुशी में लोग चूर थे। लेकिन जमनालालजी को यह फिक्र थी कि 'आन्दोलन की वजह से कितने कार्यकर्ता बीमार हो गये हैं? सरकार की दमननीति के प्रहार से कितनी संस्थाअें नष्ट हो गयी हैं? मारपीट और गोलाबारी की बदौलत कितने आदमी अपंग और अपाहिज हो गये हैं?—अुन सबसे मिलना चाहिअे। अुन्हें दिलासा दे कर अुनकी मदद करनी चाहिअे'। गुजरात, बम्बअी और वर्धा के आसपास के कार्यकर्ताओं से मिलने के बाद अुन्होंने बंगाल आने का विचार किया। मुझे पत्र लिखा कि "फलानी तारीख को पहुँच रहा हूँ। डॉक्टर सुरेश बैनर्जी और प्रफुल्लचन्द्र घोष, जो अभय आश्रम के सभापति और मंत्री हैं—सुरेश बाबू को जेल में क्षयरोग लग गया है—अुनसे मिलने कुमिल्ला चलना है। दूसरे कार्यकर्ताओं से भी मिलना है। तुम्हें साथ चलना होगा"।

वह कलकत्ते आये। वहाँ के लोगों से मिले। जिन मारवाड़ी युवकों ने आन्दोलन में भाग लिया था, अुनसे वह बहुत प्रेम से मिले। अुन्हें अिस बात की विशेष खुशी थी कि मारवाड़ी समाज के युवक राजनैतिक आन्दोलन में ज्यादा हिस्सा लेने लगे हैं। वह चाहते थे कि हमारे समाज के लोग देश-सेवा में ज्यादा से ज्यादा हिस्सा लें। वे कोरे व्यापारी ही न बने रहें। जमनालालजी युवकों को बराबर यह प्रेरणा देते रहे।

हाँ, तो हम डॉ० सुरेश बैनर्जी से मिलने कुमिल्ला गये। सुरेश बाबू को तो प्लैस्टर आव् पैरिस में सुला रक्खा था। अुठना-बैठना तो दूर, वह करवट भी नहीं बदल सकते थे। जमनालालजी सीधे अुनके पास गये और अुसी

कुमिल्ला में ही मैंने जमनालालजी से पूछा कि आप डॉक्टर सुरेश बैनर्जी से मिलने अितनी दूर से क्यों आये ? यद्यपि मैं सुरेशबाबू और प्रफुल्ल बाबू का परिचय १९३० की जेल में ही प्राप्त कर चुका था, तो भी अिनकी संस्थाओं से मेरा सम्बन्ध नहीं था। जमनालालजी ने वहाँ के कार्यकर्ताओं तथा अभय आश्रम के आजीवन सदस्यों की अेक छोटी-सी बैठक की। संस्था का परिचय कराया गया। सदस्यों के बारे में जो कुछ वहाँ बताया गया, वह अद्भुत था। अुनका चरित्र अितना अुज्ज्वल था, अितना त्यागमय था कि आज ग्यारह वर्षों के बाद भी वह दृश्य मेरी आँखों के सामने से नहीं हटता।

थोड़े में अुनके कहने का आशय यह था कि यह संस्था अुन्नीस सौ अिक्कीस के आन्दोलन के बाद स्थापित हुअी। डॉ० सुरेश बैनर्जी और प्रफुल्ल घोष ने अुसकी स्थापना की। अिसके अुनतीस आजीवन सदस्य हैं, जिनमें से अट्ठाअीस अविवाहित हैं। देश के आजाद होने के पहले विवाह न करने का अुनका प्रण है। जो कुँआरे हैं, वे केवल अपने व्यक्तिगत खर्च के लिअे पन्द्रह रुपये मासिक लेते हैं। अिसमें भोजन, वस्त्र, डाक तथा अन्य खर्च, जो अुनका अपना खर्च कहा जा सकता है, शामिल है। अेक सदस्य जो विवाहित हैं, वह पचास रुपया लेते हैं। वह अेक कॉलेज में अेक अच्छे प्रोफेसर थे। वेतन भी अच्छा पाते थे। सुरेश बाबू और प्रफुल्ल बाबू तो हजार-हजार, आठ-आठ सौ की सरकारी नौकरियाँ छोड़ कर संस्था में आये हैं। अन्य सभी सदस्य डॉक्टर, वकील या वैज्ञानिक हैं और विश्वविद्यालयों की अुच्च परीक्षाअें पास हैं। डॉ० नृपेन बोस, जो अेक अच्छे डॉक्टर हैं, आश्रम के दवाखाने, अस्पताल में और वहाँ के अेक सौ दस कार्यकर्ताओं की सेवा करते हैं। अुसके बाद डॉक्टरी का पेशा करते हैं, जिस में करीब बारह सौ रुपया मासिक की आमदनी

हालत में अुनके गले से लिपट गये। सुरेश बाबू बोले, "जमनालालजी, मैं क्या कहूँ ? आप अितनी दूर से खास मुझसे मिलने आये और जिस प्रेम से मुझे गले लगाया अुससे तो मेरी बीमारी दूर हुअी-सी मालूम होती है। मैं अपने में अेक नया बल और स्फूर्ति अनुभव करता हूँ।"

जमनालालजी कार्यकर्ताओं की तकलीफ समझ सकते थे। अुनके त्याग और देश-प्रेम की कद्र करते थे। वह कार्यकर्ताओं के प्रशंसक ही नहीं, बल्कि अुनके भक्त थे। वह जब अुनकी सहायता करते थे, तो यह नहीं मानते थे कि मैंने कोअी अहसान किया है, बल्कि यह मानते थे कि अैसे पुण्यवान व्यक्तियों की सेवा का सुअवसर मुझे मिला, यह मेरे अहोभाग्य हैं। अुनकी निगाह में कार्यकर्ताओं का स्थान बहुत अूँचा था। वह अुनको अपने घर के लोगों से ज्यादा प्रेम करते थे। अपने साथ काम करनेवाले या अपने सम्पर्क में आने वाले देशसेवकों के दिल में अपने बर्ताव से, अपनी भावना से और अपनी कृतियों से अुन्होंने यह विश्वास पैदा कर दिया था कि यदि किसी कार्यकर्ता को कोअी शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या सामाजिक तकलीफ हो, तो जमनालालजी अुसकी हर तरह से मदद करेंगे। और यही कारण है कि जमनालालजी के चले जाने से आज हजारों लोग यह अनुभव करते हैं कि अुनका अेक जबरदस्त सहारा जाता रहा। कोअी यह अनुभव करते हैं कि हमारा पिता चला गया, किसी को अैसा लगता है कि हमारा सगा भाअी जाता रहा, कोअी कहते हैं हमारा अेक अद्वितीय मित्र, मार्गदर्शक, परामर्शदाता, हमारी व्यक्तिगत तकलीफ और आराम की खोज-खबर रखनेवाला नहीं रहा।

होती है। वह सब आश्रम को ही जाती है। वह आश्रम के सदस्यों का नियत वेतन, केवल पंद्रह रुपया, ही लेते हैं।

जमनालालजी बोले, "बतलाओ, अगर अैसे लोगों से मिलने या अुनके दर्शन करने न आअूं, तो किससे मिलने जाअूं ? यही लोग तो आज गांधीजी की भावना और विचारों के अनुसार अुनके कामों को चला रहे हैं। तुम्हारे बंगाल में आज जो खादी का काम हो रहा है, अिस आन्दोलन में जितना कुछ काम हो सका है, वह अिन सब की या अैसे ही दूसरे लोगों की मेहनत का फल है"।

अिसी तरह वह दूसरी जगह के कार्यकर्ताओं से, जिन्हें अुस आन्दोलन में तकलीफ हुअी थी, अुन सबसे, मिलने गये। श्रीहट्ट के श्री धीरेन्द्रनाथ दास तथा ढाका की श्री आशालता सेन के बारे म सुना था कि अुन्हें बडी तकलीफ सहनी पड़ी। आशालता का आश्रम जला दिया गया था। धीरेन बाबू को पुलीस की लाठियों की बहुत मार पड़ी थी। अुन्हें तुरन्त तार देकर बुलाया। अुनसे बड़े प्रेम और आदर से मिले और अुनके आश्रम के लिअे रुपयों का अिन्तजाम करने का भार मुझपर सौंपा।

* * *

अैसे अैसे न मालूम कितने अुदाहरण आज मेरी आँखों के सामने नाच रहे हैं। कितना लिखा जाय, किस विषय में लिखा जाय?— अुनके परिवार की बातें, अुनकी व्यक्तिगत बातें, अुनका रहन-सहन, तौर-तरीका, कार्यनिष्ठा, त्याग, जानकीबहन के साथ अुनका सम्बन्ध, वर्धा में आनेवाले हजारों महमानों की आवभगत, आत्मीयता, आदि, अुनके जीवन के सभी पहलुओं पर अेक अेक अलग लेख लिखा जा सकता है।

* * *

अिस बार नागपुर जेल में वह बीमार हुअे और अवधि से पहले छोड़ दिये गये, तो स्वभावतः अुनसे मिलने की अिच्छा हुअी। पर मैं कभी अुनसे बिना पूछे या बिना बुलाये अुनके पास नहीं गया। क्योंकि वह बराबर हरबार याद कर लिया करते थे। तो भी अिस बार ऑल अिण्डिया कॉंग्रेस कमेटी की बैठक के पहले मैं अुनके दर्शन नहीं कर सका। ता० चौदह जनवरी को जब मैं वर्धा पहुँचा, तो वह सामने ही मिले। मैंने अुन्हें अितना दुबला-पतला पहले कभी नहीं देखा था। अुनके शरीर की हालत देख कर मैं सहम गया। मैंने कहा, "आप तो बेजा कमजोर हो गये हैं।" अुन्होंने कहा, "कमजोर नहीं, दुबला-पतला हो गया हूँ। कमजोर तो दूर, मैं तो पहले से भी ज्यादा शक्ति महसूस करता हूँ"।

* * *

आल अिण्डिया कॉंग्रेस कमेटी की बैठक के बाद पूरे बीस दिन मैं अुनके पास रहा। गांधीजी की आज्ञा से जमनालालजी ने गोसेवा संघ का काम अपने अूपर लिया। अुसी समय 'गोपुरी' का नामकरण हुआ और वहीं अेक टीले पर अेक सुन्दर घास-फूस की झोपड़ी में वह रहने लगे। मेरा अधिक समय अुनके साथ ही बीतता था। मित्रवर महावीरप्रसादजी पोद्दार भी हमलोगों के साथ वहीं रात को सोते थे। कअी तरह की बातें होती रहतीं।

* * *

अेक दिन कुछ जोर की वर्षा होने लगी। मैंने कहा कि झोंपडी में तो बौछार आयेगी; शायद पानी चूने भी लगेगा। अुन्होंने मारवाडी बोली में कहा, "मैं तो जाट जन्मा था और जाट ही मरना चाहता हूँ। मुझे वर्षा का क्या डर है? यहाँ तो तुम जैसे नवाबों को तकलीफ हो सकती है"। (मुझे वे मजाक में नवाब कहा करते थे।)

मुझे क्या पता था कि पाँच-दस दिन में ही यह निधि यों लुट जायगी। अिन बीस दिनों में कितनी ही बातें हुअीं। हम लोग चार बजे से पहले अुठ जाते थे। प्रार्थना के बाद आपस की चर्चा होती थी, जिसमें अपनी अपनी गलतियाँ सोची जाती थीं। अुन्होंने कअी बातें बतायीं जिनका वर्णन अिस समय नहीं किया जा सकता। मैंने महावीर प्रसादजी से कहा, "पोद्दारजी, जमनालालजी में परिवर्तन मालूम पड़ता है। वह पहले से भी अधिक पवित्र मालूम होते हैं। अब वह निरन्तर अन्तर्मुख हो कर आत्मपरीक्षण में रत रहते हैं।" महावीर प्रसादजी बोले "सीताराम, क्या कहूँ, अिनके प्रति मेरी श्रद्धा, तो वेग से बढ़ रही है"। हमें क्या मालूम था कि वह अितनी जल्दी अिस तरह अचानक हम लोगों से बिदा हो जायँगे। मैं और पोद्दारजी तारीख पाँच फरवरी को ही तो वर्धा से गये थे। यदि अुनके कुछ भी तकलीफ होती, हमें जरा-सा भी अन्देशा होता, तो हम क्यों अिस तरह अलग रह जाते?

पर जमनालालजी का तो कहना था कि मैं किसी की भी सेवा लिये बिना मरना चाहता हूँ। मेरे अेक घनिष्ठ मित्र की जब हार्टफेल से मृत्यु हो गयी थी, अुस वक्त जमनालालजी ने मुझे लिखा था कि "अैसी मृत्यु तो भाग्यशाली व्यक्तियों की होती है। वह अीश्वर की कृपा का लक्षण है। आदमी अिस कमरे में मरे तो बगल के कमरेवाले को बाद में पता चले, अैसी मृत्यु होनी चाहिअे"।

जमनालालजी की मुराद पूरी हुअी, अुनके जैसी मृत्यु तो सचमुच अीश्वर की कृपा का ही लक्षण है। वह तो अमर हो गये। हजारों हृदयों में अुनकी स्मृतियाँ सदा हरीभरी रहेंगी।

बापू से जमनालालजी का रिश्ता

कहा गया है कि गांधी-सेवा-संघ का मैं जनक या अुत्पादक हूँ। अिसका मतलब सिर्फ यही समझना चाहिअे कि अैसी कल्पना मेरे मन में आयी। परन्तु मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि मैं अिसका चालक बनूं या बन सकता हूँ। परिस्थितिवश, मुझे लाचार हो कर बनना पड़ा था। मैंने अपने आपको अिस संघ के लायक कभी नहीं समझा। नागपुर की कॉंग्रेस के बाद से लोग मुझे कहने लग गये थे कि तुम तो बापू के पाँचवें बेटे हो। अिसका कारण यह था कि अुस कॉंग्रेस के बाद स्वयं मैंने अुन्हें लिखा था कि आपके शिष्यत्व के लायक मैं नहीं हूँ। लेकिन आपको अपना बाप जरूर बनाना चाहता हूँ। बाप और गुरु में भेद है। बाप बच्चे की सब कमजोरियाँ जानते हुअे भी अुसकी अुन्नति की कोशिश करता है, अुसकी कमजोरियों को हटाता है। अिसलिअे मैंने अपने आपको पू. बापूजी का शिष्य मानने के बजाय बेटा माना। यह कह कर मैं आपलोगों से अलग नहीं हट रहा हूँ। पर मैं अूपर से आपके नजदीक नहीं आना चाहता, हृदय से आना चाहता हूँ। परसों मुझे जो क्रोध आ गया, अुससे मेरी अयोग्यता प्रगट है। बाप से आदमी लड़ सकता है, पर गुरु के सामने तो आँख अुठा कर देखना भी कठिन है।

६ : ३ : '३६

—जमनालाल बजाज

निर्भयता

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

"अब भी मनुष्य का पहला कर्तव्य भय को नाबूद करना है। हमें डर से बरी होना चाहिये। तबतक हम पुरुषार्थ कर ही नहीं सकते। आदमी जबतक डर को अपने पैरों तले कुचल नहीं सकता, तबतक अुसके सारे काम गुलाम-वृत्ति से सने हुअे और वास्तविक के बदले दिखाअू होते हैं तथा अुसके विचार भी गुलाम और कायर के जैसे होते हैं।

—टॉमस कार्लाअिल ('हीरो-वर्शिप')

प्रश्न

'हम निर्भय कैसे बनें?' अिस सवाल का ठीक ठीक जवाब तो वही दे सकता है जिसने डर को पूरी तरह जीत लिया है। मेरी वह स्थिति नहीं है। फिर भी साथियों के साथ विचार करने की कोशिश करता हूँ।

१

संस्कार और परिचय

अेक छोटी-सी कहानी सुनी है। अेक खेवैये (मल्लाह) से किसी पण्डित ने पूछा, "तुम्हारे पिता कैसे मरे?" मल्लाह ने कहा, "अेक बार जब वे जहाज में बैठ कर यात्रा कर रहे थे, तो बड़ा भारी तूफान अुमड़ा; अुनका जहाज डूब गया और साथ साथ वह भी।" पण्डित ने पूछा, "और तुम्हारे दादा?" केवट बोला, "जी? सुना है कि वह भी डूब कर मरे थे; और अुनके साथ मेरे दो चाचा भी।"

पण्डित सन्न रह गया और कहने लगा, "और फिर भी तुम पानी में जाते हो? तुम्हें डर नहीं लगता?" केवट ने पूछा, "महाराज, आपके पिताजी का देहान्त कैसे हुआ?" पण्डित बोला, "अुनका तो बुढ़ापा हो गया था। कअी दिनों तक बीमार रहे और अपने बिस्तर पर ही मर गये।" केवट—"और अुनके पिता?" पण्डित—"वह भी अुसी तरह बिछौने पर मरे।" केवट—"और फिर भी आपको बिस्तर पर सोने में डर नहीं लगता?"

अिन्हीं लोगों की विवाह-प्रथा के बारे में अेक बात सुनी है: विवाह के वक्त पुरोहित दुलहिन से पूछता है, "देख तेरा पति समुद्र में जायगा। मस्तूल पर चढेगा। वहाँ से गिरने का डर हमेशा रहेगा। तूफान आने पर डूबने का डर भी रहेगा। क्या अैसा पति तुझे पसन्द है?" वधू कहती है, "पसन्द है।" पुरोहित—"अच्छा तो तुम्हारा विवाह हो गया।"

अेक बनिये के लड़के से अेक बार कहा गया, "तुम्हारे सामने दो बातें रक्खी जाती हैं; अुनमें से अेक पसन्द कर लो:—या तो दस हजार रूपये की थैली ले कर बीहड़ और डरावने जंगल को अकेले पार कर जाओ और वह रकम ले लो; अथवा तुम्हें पूर्व आफ्रिका अथवा अुसी तरह के किसी कमाअी-वाले देश मे भेज दिया जायगा और वहाँ तुम्हें अेक हजार रुपया दे कर छोड़ दिया जायगा; तुम अपनी तकदीर आजमा लो। बतलाओ अिन दोनों में से तुम क्या पसन्द करोगे?"

लड़के ने बिना विलम्ब के अुत्तर दिया, "दूसरी बात।" अन्धेरी रात में बडी रकम अपने साथ ले कर जंगल पार करने में अुसे ज्यादा डर लगता था। यही सवाल अगर किसी राजपूत के लड़के से पूछा जाता, तो वह पहली बात पसन्द

करता। लेकिन अगर अुससे अेक हजार रुपयों की पूंजी के बल पर रोजगार करने के लिअे कहा जाय, तो मुमकिन है कि वह झिझकेगा।

देहातियों को अन्धेरी रात में बिना चिराग के चाहे जहाँ चले जाने में कुछ सोच-विचार करने की जरूरत नहीं मालूम होती। शहर के लोगों की अपने मकान के अहाते में भी बगैर चिराग के जाने की हिम्मत नहीं होती।

जंगल और पर्वतों की जनता शेर, सिंह, वगैरा जंगली जानवरों से अुतना नहीं डरती, जितना कि गाँव और शहर के लोग डरते हैं। लेकिन दूसरी तरफ से यदि किसी देहाती को कलकत्ता या बम्बअी जैसे शहर में पहले पहल ले जा कर अकेला छोड़ दिया जाय, तो वह अितना घबड़ाता है कि मानों अुसे जंगली जानवरों के झुंड में ला कर छोड़ दिया हो।

अिन सब अुदाहरणों से मालूम होता है कि हम वंश-परम्परागत संस्कार या मुहावरे के कारण जिस प्रकार के जीवन और परिस्थिति के आदी हो जाते हैं, अुस जीवन और परिस्थितियों के खतरों से हमें डर नहीं लगता। अुससे अलग प्रकार के जीवन और परिस्थिति में डर लगता है, चाहे अुस दूसरे जीवन और परिस्थिति में दर असल डरने लायक कोअी बात भले ही न हो।

अिसपर से अेक नतीजा यह निकाला जा सकता है कि जिस तरह के जीवन और परिस्थिति का हमारे दिल में डर रह गया हो, अुसका हमें कुछ अनुभव कर लेना चाहिअे। अेक बार, दो बार, पाँच बार, अनुभव करते करते डर कम होता जाता है।

और कुछ अुदाहरण

अिस नियम के और भी कअी अुदाहरण दिये जा सकते हैं। तैरना जाननेवाले छोटे-छोटे बच्चे भी कितनी अूंचाअी पर से पानी में कूद पडते हैं, यह हर-किसी ने देखा होगा। लेकिन जो कभी पानी में अूपर से कूदा ही न हो, अैसा बड़ा आदमी भी घबड़ाता है और कूदने की हिम्मत नहीं करता। लेकिन अगर अुसे तैरना आता हो और कोअी अुसे अूपर से जबरदस्ती पानी में ढकेल ही दे, तो अुसे अनुभव हो जाता है और डर निकल जाता है। गुबारों (पैरेशूट) के साथ कूदनेवालों को अिसी तरह अभ्यास कराया जाता है और अुनका डर निकल जाता है। कुछ डर अनुभव के अभाव का ही परिणाम होता है। अिस तरह का डर मिटाने का साधन अनुभव और अभ्यास ही है।

२

अभ्यास की जरूरत

अेक छोटे सिपाही या देहाती ने कोअी बड़ा बहादुरी का काम किया है और शहर में रहनेवाले किसी धनिक लेकिन अविद्वान व्यापारी ने बड़ा भारी दान दिया है। राजा की ओर से अुन्हें दरबार या दावत का न्यौता मिलता है। अुन्हें कुछ अिनाम और अलकाब भी दिये जानेवाले हैं। मौका बडी खुशी का है। लेकिन फिर भी अुनके दिल में बड़ी खलबली मच जाती है। खडे होते हैं तो पैर लड़खड़ाने लगते हैं। बोलने का मौका आता है, तो मुँह से शब्द नहीं निकल सकते। दिल में तो आनन्द अुमड़ रहा है, लेकिन बाहरी लक्षण सारे डर के होते हैं।

अुस वक्त अगर वह सिपाही यह देखे कि राजा पर कोअी हमला होने जा रहा है, तो अुसका डर गायब हो जायगा और हमला करनेवाले बहुत-से हों, तो भी वह अुनपर टूट पडेगा। अगर देहाती देखे कि मकान की छत राजा के सिर पर गिरना चाहती है, तो वह झट-से अुसे थामने के लिअे दौडेगा। अिसी तरह राजा को पैसे की कोअी अड़चन हो, तो व्यापारी की

घबड़ाहट गायब हो जायगी। लेकिन जोखिम के न रहते हुअे भी, खुशी के मौके पर वे डर जाते हैं।

अिन मिसालों से मालूम होता है कि किस तरह जहाँ कोअी खतरा नहीं है, बल्कि आनन्द का प्रसंग है, वहाँ पर भी अभ्यास के अभाव में डर पैदा होता है और किस तरह खतरे के होते हुअे भी पूर्व अभ्यास के कारण डर का निवारण हो जाता है।

अिसपर से यह अनुमान होता है कि भय-वृत्ति का सम्बन्ध वास्तविक खतरे से अुतना नहीं है जितना कि अनुभव की नवीनता या परिस्थिति का सामना करने की अकुशलता से है। हकीकत में खतरनाक स्थिति हो, तो भी निर्भयता हो सकती है और बिलकुल बे-खतरे की हालत में भी डर लग सकता है।

अिसपर से, कम से-कम, कुछ प्रकार के डर के विषय में यह कहा जा सकता है कि नये अनुभव के दिल पर पड़नेवाले पहले नैसर्गिक आघात का नाम ही डर है। नैसर्गिक आघात से मतलब मनुष्य की अिच्छा-शक्ति या विवेक-बुद्धि के सावधान होने से पहले अुसके चित्त पर पड़ने-वाले असर से है।

जब अुसी तरह का अनुभव दुबारा होता है या होने की सम्भावना अुपस्थित होती है, तब मनुष्य की अिच्छाशक्ति या तो अुस आघात को झेल कर रोकने का प्रयत्न करती है अथवा अुसके अनुकूल हो कर अुसे बढ़ाने का प्रयत्न करती है। पहली परिस्थिति में बाद का हरअेक अनुभव पहले के अनुभव से कम आघात पहुँचाता है, याने डर की वृत्ति घटाते जाता है। दूसरी परिस्थिति में हरअेक अनुभव डर को तो कम नहीं करता, लेकिन अुस तरह का आघात पहुँचानेवाले अनुभव या परिस्थिति से नफरत करने लगता है और अुसे टालने का प्रयत्न करता है।

अुदाहरणार्थ, फर्ज कीजिये कि अेक लड़का तैर तो सकता है लेकिन अुसमें पानी में कूदने की हिम्मत नहीं है। दूसरा कोअी अुसे ढकेल देता है। तब पहली बार अुसे डर तो लगता है और शायद वह घबड़ा भी जाता है; लेकिन यदि अुसकी अिच्छाशक्ति अिस दिशा में काम करती हो कि अुसमें कूदने की शक्ति आनी ही चाहिअे और कूद न सकना शर्म की बात है और साथ ही यदि अुसे यह अनुभव भी हो जाय कि दर असल अुसे जितना डर था अुतने डर की कोअी बात नहीं है, अुलटे कुछ मजा ही आता है, तो दो-चार प्रयोगों के बाद वह डर को बिलकुल भूल जाता है। लेकिन अगर अुसकी अिच्छा-शक्ति कूदने के अनुकूल ही न हो, अुस तरह के साहस को वह नादानी समझता हो और अित्तिफाक से यदि अुसे चोट-ओट लग जाय, या नाक, कान और पेट में थोड़ा-सा पानी भर जाय, तो सम्भव है कि हर प्रयोग के साथ, डर का कारण न रहने पर भी, अुसके दिल पर नफरत का संस्कार गहरा होता जायगा।

२

निर्भयता के साधन

यह दूसरी बात बहुत सोचनेलायक है। हमारा बच्चों की परवरिश का तरीका ही कअी बार अुन्हें कायरता का अभ्यास कराता है।

गांधीजी ने अपनी भयवृत्ति का जिक्र कअी बार किया है। अुन्होंने कहा है कि बचपन से ही वह अन्धेरे में जाने से डरते थे। साँप, बिच्छू का डर अुन्हें सदा से रहा है। अुस डर को हटाने के लिअे अनकी धात्री (धाय) ने अुन्हें राम-रक्षा का पाठ करना सिखाया था। रामरक्षा में अुनकी श्रद्धा थी। अिसलिअे अुसके पाठ से

अुन्हें कुछ आश्वासन भले ही मिला हो, लेकिन वह पाठ अुनके दिल से अन्धेरे और साँप-बिच्छू की नफरत नहीं हटा सका।

यही हाल मेरा था। फर्क अितना ही था कि मुझे साँप-बिच्छुओं की अपेक्षा चोर-डाकू, बल्कि बाबा * और पुलीस का डर ज्यादा लगता था। अुसके निवारणार्थ में हनूमानस्तोत्र का पाठ करता था और कल्पना किया करता था कि रात को हनूमानजी मेरे मकान के चारों तरफ गश्त लगाते हैं और अिस श्रद्धा से निर्भयता अनुभव करने की कोशिश करता था। अब तो पुलीस और बाबा के डर का कोअी सबब नहीं रहा; तो भी जब अपने अन्दर गहरा अुतर कर टटोलता हूँ, तो आज भी अुनकी वेशभूषा के प्रति घृणा पाता हूँ। और यद्यपि प्रत्यक्ष जीवन में जेल के बाहर चोर से अेक ही बार मौका पड़ा, तो भी स्वप्न में जब चोर से मुठभेड़ हो जाती है, तब डर जाता हूँ।

रामरक्षा, हनूमानस्तोत्र या नारायणकवच के पाठ से भय को हटाने की शिक्षा देनेवाले गुरुजनों की श्रद्धा तो अच्छी होगी; लेकिन वह शिक्षा मनुष्य की अपनी अिच्छाशक्ति बढ़ाने की दृष्टि से अच्छी नहीं मानी जा सकती। अिन गुरुजनों ने यह संस्कार पैदा नहीं किया कि साँप, बिच्छू, बाबा, पुलीस या अन्धेरे से डरने की कोअी वजह नहीं है। अुलटे, अुनके नाम से वे स्वयं भी हमें कभी कभी डराते रहे हैं और अिस प्रकार अुन्होंने यह संस्कार पक्का कर दिया है कि ये सब चीजें जरूर भयंकर हैं और सिवा भगवान के दूसरा कोअी हमें अुनसे बचा नहीं सकता।

सूक्ष्म संस्कार का परिणाम

भय का संस्कार कैसे कायम होता है, अिसका अेक दूसरा अुदाहरण श्री जाजूजी के स्वानुभव में से देता हूँ। वह कहते हैं कि अुन्हें बाज दफा अेक अैसा सपना पड़ता है कि वह कहीं सफर कर रहे हैं और रास्ता भूल कर परेशान हो रहे हैं। अिसे समझाते हुअे वह अपने बचपन का अेक प्रत्यक्ष अनुभव बतलाते हैं: बचपन में वह अपने परिवार के लोगों के साथ रामेश्वरजी की यात्रा करने गये थे। वहाँ सबेरे शौच के लिअे समुद्र की तरफ गये। लौटते समय अुन्हें दिशा-भ्रम हो गया और वह अुलटी ही दिशा में भटकते रहे। बहुत देर तक चलते रहने पर भी जब अुन्हें परिवार के लोगों की कोअी आहट नहीं मिली, तो वह बड़े घबड़ाये। अन्त में बड़ी परेशानी के बाद अपने परिवारवालों के पास पहुँच पाये। वह मानते हैं कि अिस अनुभव की अितनी गहरी चोट अुनके दिल पर रह गयी है कि अुसीके कारण अुन्हें अिस तरह के सपने पड़ते हैं। बाद में अुस तरह की यात्रा का फिर मौका ही नहीं आया। सम्भव है कि अुस अनुभव के कारण अुस तरह की यात्रा में अुन्हें दिलचस्पी ही नहीं रह गयी हो। अगर फिर कोअी मौका आता, या वह कोशिश करके अुस तरह का मौका खोजते, तो अिस डर के निकल जाने की सम्भावना थी।

अिन अुदाहरणों से हम जान सकते हैं कि खतरे के प्रत्यक्ष मौकों और खतरों की कल्पना का भय से क्या सम्बन्ध है। खतरे के प्रत्यक्ष मौके पहले ही अनुभव में जितना डर पैदा करते हैं, अुतना दूसरे अनुभव में नहीं करते। बल्कि

* लम्बी-लम्बी डाढ़ीवाले बैरागी जिनके बारे में हमें यह बतलाया जाता था कि वे छोटे बच्चों को पकड़ कर ले जाते हैं या बच्चों पर भभूत डालते हैं, जिससे बच्चे अपने आप अुनके पीछे पीछे चले आते हैं।

खतरे से जितना ज्यादा परिचय हो जाता है, अुतने ही हम ढीठ बनते चले जाते हैं। लेकिन पहले ही कटु अनुभव के बाद या बिना अनुभव के ही, अगर हम भय की अेक कल्पना कर लेते हैं और अुस कल्पना को अर्से तक मजबूत करते जाते हैं, तो हमारी साहसवृत्ति तथा भय को जीतने की अिच्छाशक्ति कमजोर होती जाती है।

निराधार डर

विचार किया जाय,तो हर कोअी समझ सकता, है कि अन्धेरा, साँप, बिच्छू, चोर, डाकू आदि का जो डर माना जाता है, अुसे अनुभव का कितना आधार है। लाखों और करोड़ों लोग रोजमर्रा अन्धेरे में रहते हैं और घूमते-फिरते हैं। सैकडों घरों में चिराग जैसी कोअी चीज करीब करीब होती ही नहीं है। देहातों में रास्ते पर अुजाला नहीं होता। खेतों में लालटेनें नहीं होतीं। लोग नंगी जमीन पर लेटते हैं। फिर भी कितने लोगों को और जीवन में कितनी बार अन्धेरे में दुर्घटनाओं का शिकार होना पड़ा है, साँप-बिच्छुओं ने काटा है या चोर डाकुओं ने लूटा है? मोटर की जितनी दुर्घटनाअें रोज सुनने में आती हैं, अुनके मुकाबिले में साँप-बिच्छुओं के द्वारा काटे जाने या चोर डाकुओं द्वारा लूटे जाने की दुर्घटनाओं की संख्या कितनी कम है? मोटरों की दुर्घटनाओं के डर से कितने लोग अुनमें बैठना या सडकों पर चलना छोड़ देते हैं? अिन चीजों का डर जितना माना जाता है, अुतने के लिअे सचमुच अनुभव का आधार नहीं है।

४

अूपर के विवेचन से भयवृत्ति और अिच्छाशक्ति के भौतिक स्वरूप की कुछ कल्पना हम कर सकते हैं।

आत्मविश्वास का अभाव

टेलिफोन का अुपयोग करनेवालों को बाज दफा यह अनुभव हुआ होगा कि हम जो नंबर चाहते हैं अुस नंबर के बदले कोअी दूसरा ही नंबर बार बार जुड़ जाता है। अुदाहरणार्थ, हम चार का अंक घुमावें तो भी चार के बदले छह का अंक लग जाता है। तारों की रचना में कुछ गड़बड़ हो जाने से अैसा होता है। कअी बार यह भी अनुभव होता है कि टेलिफोन के कानसींग (रिसीवर) में हमें दूसरे दो नंबरों के बीच चलनेवाली बातचीत बराबर सुनायी देती है और कभी कभी तो अुनके शब्दों को अपने ही संवाददाता का शब्द समझ कर जवाब देने की भूल भी हम कर डालते हैं। हमारी अिच्छा के विरुद्ध जो दूसरा नंबर मिल जाता है, या हमारी बातचीत के बीच में दूसरों के शब्द आ जाते हैं, यह सब बीच के तारों में कुछ अव्यवस्था हो जाने से होता है। फोन-कार्यालय में खबर देने से वहाँका कर्मचारी तारों को देख कर ठीक कर लेता है।

हमारा शरीर भी कुछ अिसी तरह का यंत्र है। बाहर जो घटनाअें होती हैं, अुनके प्रथम आघात से जो वृत्तियाँ अुठती हैं, वे हमारी अिच्छा-शक्ति के अधीन नहीं होतीं। वह अनुभव अगर बिलकुल नयी किस्म का हो, तो वह हमारे सुख के लिअे होनेवाला होने पर भी अुसका मुकाबिला करने में हमें कुछ घबड़ाहट, आत्मविश्वास की कुछ कमी, महसूस होती है। अिस प्रकार की परिस्थिति का मुकाबिला करने में आत्मविश्वास की कमी ही भयवृत्ति है।

यह केवल यांत्रिक परिणाम है। याने जिस तरह फोन के तारों में अव्यवस्था होने से नंबरों की गड़बडी हो जाती है, अुसी तरह यह हमारे ज्ञान-तन्तुओं में होनेवाली गडबडी है।

फिर प्रश्न आता है अुस अव्यवस्था को सुधारने का अथवा अुसी तरह निबाहते रहने का। ये दोनों बातें हमारी अिच्छाशक्ति पर निर्भर हैं। अपनी अिच्छाशक्ति के अनुसार या तो हम अुस भय को जीतने का और आत्मविश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं अथवा अुसे पोसते रहने का और आत्मविश्वास खोने का।

जब हम पहली तरह की कोशिश करते हैं, तो कांपते कांपते भी अपनी साहसवृत्ति को जगाते हैं, जोर बटोरते हैं और भय का मुकाबिला करते हैं। यह अलग बात है कि हम अहिंसक साधनों से मुकाबिला करते हैं या हिंसक साधनों से। फिर दुबारा, तिबारा, हम मुकाबिले के मौके की तलाश में रहते हैं।

काल्पनिक भय

यदि हम किसी संस्कारवश आत्मविश्वास गँवा देने की कोशिश करते रहते हैं, तो अपनी कल्पना-शक्ति पैनी करते हैं और वास्तविक जरूरत से भी ज्यादा भय की कल्पना कर लेते हैं और जिससे अुस परिस्थिति का सामना ही न करना पड़े, अैसे तरीके से हटने की कोशिश करते हैं।

साधुलोग अेक कहानी सुनाया करते हैं: किसी शहर के बाहर अेक सन्त रहते थे। अेक दिन अुन्होंने हैजे की राक्षसी को शहर की तरफ जाते हुअे देखा। अुन्होंने पूछा, "तूं क्यों जा रही है और कितना संहार करेगी?" राक्षसी बोली, "मुझे भूख सता रही है, मैं दो सौ आदमियों को खाअूँगी।" शहर में तुरन्त हैजे का दौरा हुआ और करीब दो हजार आदमियों के मरने या बीमार होने के बाद राक्षसी लौटती हुअी मालूम पड़ी। सन्त ने कहा, "तूने दो सौ के बदले दो हजार आदमियों को कैसे मारा?" राक्षसी बोली, "नहीं महाराज, मैंने तो सिर्फ दो सौ को ही खाया। बाकी के तो केवल डर से ही मर गये। मैं अुनकी मौत के लिअे कतअी जिम्मेवार नहीं हूँ।"

यह अेक काल्पनिक किस्सा है; लेकिन अुसका तात्पर्य वास्तविक है। प्रत्यक्ष खतरा वास्तव में जितना नुकसान पहुँचा सकता है, अुसकी अपेक्षा खतरे की कल्पना से कितना अधिक नुकसान हो सकता है, यह दिखाने की यहाँ कोशिश है। और यह अेक सत्य है।

डर को जीतने के साधन

यह सच है कि कभी कभी कल्पना का प्रयोग हिम्मत कायम रखने याने डर हटाने के लिअे भी होता है। मसलन, डर मालूम होते हुअे भी प्रतिष्ठा या अिज्जत सम्हालने या फर्ज अदा करने का खयाल हमें भयवश न होने की शक्ति देता है। अिस अवस्था में मनुष्य की अपनी प्रतिष्ठा या कर्तव्य-बुद्धि की कल्पना जितनी तीव्र होगी, अुतने ही अंश में वह भय को जीत सकता है। जिस क्षण जोखिम या खतरे की अपेक्षा अिज्जत या फर्ज की कीमत कम महसूस होने लगती है, अुसी क्षण अुसकी हिम्मत जवाब दे देती है। अिसलिअे स्वाभिमान, प्रतिष्ठा की रक्षा और कर्तव्य-निष्ठा की भावना की अुचित रीति से दी हुअी तालीम भी भय को जीतने का अुपयुक्त साधन है।

अिसी तरह योग्य सोहबत भी निर्भयता प्राप्त करने का साधन है। अकेले ही कोअी जोखिम अुठाने की हिम्मत न 'बे' में हो न 'पे' में। लेकिन अगर जोखिम अुठाने की अिच्छा से दोनों कंधे से कंधा लगा कर खड़े हो जायँ, तो दोनों की हिम्मत बढ़ सकती है। फिर स्वतंत्ररूप से काम करने की हिम्मत भी आ सकती है। मगर यदि वे दोनों जोखिम से बचने की ही फिक्र में रहनेवाले हों, तो दोनों अेक-दूसरे के साथ होने पर ज्यादा कायर भी बन सकते हैं।

५

भय को कोअी नहीं चाहता

पुराने मानस-शास्त्रियों ने आहार, निद्रा, भय और काम, अिन चार भावों को प्राणिमात्र के कुदरती धर्म माना है। अर्वाचीन मानस-शास्त्रियों ने छह या ज्यादा भाव माने हैं। अूपर के परिच्छेदों में हमने भय के मनुष्यगत स्वरूप को खोजने का प्रयत्न किया। सम्भव है कि अिस शोध में कुछ विचार करने लायक बातें छूट गयी हों। लेकिन जितना विचार किया, अुसपर से जान पडता है कि भय मनुष्य का अैच्छिक स्वभाव नहीं है; याने कोअी मनुष्य भय के अधीन रहना नहीं चाहता; बल्कि जहाँ तक अुसका वश चले अुसे हटाना चाहता है। अुसकी भीतरी वृत्ति निर्भयता प्राप्त करने की ही होती है। अुसकी अिच्छा के विरुद्ध भय अुसपर हमला करता है और अगर भय को हटाने की तरकीब अुसे मालूम न हो, तो अुसकी अिच्छाशक्ति को कमजोर करके अुसे भय में रखने का रफ्त भी करा सकता है। लेकिन चाहे कितना भी अभ्यास क्यों न हुआ हो, भय को वह कभी अच्छी चीज नहीं मान सकता। किसी आदमी को कोअी जीर्ण रोग हो जाय और वह अुसे बरदाश्त कर लेने की आदत कर ले, अुसी तरह की यह भी बात है। वह रोग को बरदाश्त कर लेता है अुसके अनुरूप अपना जीवन भी बना लेता है, अुसे हटाने का प्रयत्न छोड़ देता है और अुस परिस्थिति में भी हँसता-खेलता और आनन्द प्रकट करता है और बूढा भी होता है। मगर फिर भी वह यह कभी नही कहेगा कि वह रोग अच्छी चीज है। अुसे यह पूरा पूरा यकीन है कि रोग अेक विकार है, वह सिर्फ शरीर को ही लग सकता है, वह आत्मधर्म नहीं है। अिसी तरह भय भी शरीर के ज्ञान-तंतुओं में होनेवाली बाहरी अव्यवस्था या गड़बड़ी है, अुसी तरह की जैसी कि टेलिफोनों के मेल (कनेक्शन) में कभी कभी हो जाती है। वह आत्मगत नहीं है। मनुष्य आहार, काम और निद्रा में सुख मानता हुआ अिच्छापूर्वक अुन्हें बढ़ाने की कोशिश कर सकता है। अुनके कम होने से या न मिलने से व्याकुल भी हो सकता है। पर अैसा आदमी कभी नहीं पाया जायगा जो अपनी भयवृत्ति को दिलचस्पी से बढ़ाने की कोशिश करता हो। वह किसी मतलब से दूसरे की भयवृत्ति जानबूझ कर बढ़ाने की कोशिश कर सकता है; पर अपने भय को तो बीमारी की तरह हटाने की ही अिच्छा करेगा।

भय का ज्ञान और भय-वृत्ति

खतरे के सम्भव का भान और भयवृत्ति में भेद है। 'अिस रास्ते पर चोर-डाकुओं से मुठभेड़ होना मुमकिन है, अुस जंगल में बाघ-शेर होने की सम्भावना है, बरसात में धान के खेत में साँपों का डर है, अूंचे झरोखे में से झांकने में गिरने की सम्भावना है, अिस शहर पर दुश्मन की चढ़ाअी का अन्देशा है'—आदि विचार पिछले अनुभवों की शिक्षा के परिणाम हैं। अुनमें हानि पहुँचानेवाली परिस्थितियों की जानकारी है। यह अेक जरूरी चीज है। वह न हो तो मनुष्य सावधान नहीं रहेगा और सदा दुर्घटनाओं का शिकार बनेगा। अक्सर परिस्थिति के ज्ञान को ही भय का नाम दे दिया जाता है और कहा जाता है कि भय भी प्राणी की आत्मरक्षा के लिअे अुसे प्रकृति से मिली हुअी अेक हितकर और जरूरी वृत्ति है।

लेकिन भयवृत्ति और हानिकर परिस्थिति के ज्ञान में फर्क है। यदि हमें हानिकर परिस्थिति का सिर्फ ज्ञान हो, पर भयवृत्ति न हो, तो हम

अुस परिस्थिति का सामना करने का अिलाज खोजेंगे, सचेत रहेंगे, किसी साधन की जरूरत हो तो अुसे रक्खेंगे; पर अुससे काँपेंगे नहीं; घबड़ा कर खतरे की जगह न जाने की अथवा अुससे पहले ही वहाँ से भागने की नहीं सोचेंगे। ये सब भय के लक्षण हैं। अिस वृत्ति को कभी हितकर और जरूरी नहीं माना जा सकता। यदि मनुष्य में यही वृत्ति बलवान होती, तो मनुष्यजाति जगत में शायद ही जिन्दा रह सकती और प्राणिमात्र पर प्रभुत्व तो हरगिज नहीं पा सकती। खतरे का ज्ञान होते हुअे भी अुसका सामना करने के निश्चय से ही मनुष्य-जाति का विकास और वृद्धि हुअी है और मनुष्य अेक तरह का छोटा-सा परमेश्वर ही बन गया है।

तब अितना साफ है कि खतरे की परिस्थिति का ज्ञान चाहे जितना हितकर और जरूरी क्यों न हो, अुसका डर न तो हितकर है और न जरूरी; बल्कि भय के वश होना रोग के वश होने के ही बराबर है। आहार, निद्रा और काम की वृत्तियों से भय की बराबरी करना ठीक नहीं है। मनुष्य के लिअे जो चीज जरूरी है, वह तो है खतरे की परिस्थिति की जानकारी और अुसका साध्य है अुस परिस्थिति का मुकाबिला करने के अुपाय की खोज।

६

तीन किस्म के खतरे

जब हम खतरों का विचार करते हैं, तो अुनके तीन बड़े विभाग हो जाते हैं—मनुष्य को मनुष्य से पैदा होनेवाले खतरे, दूसरे प्राणियों से होनेवाले खतरे और कुदरती घटनाओं से पैदा होनेवाले खतरे।

भूकम्प, बाढ़, आग आदि कुदरती खतरों के बारे में प्रायः डरनेवाले और न डरनेवाले स्वभाव के मनुष्यों की स्थिति अेक-सी ही होती है। डरनेवाला अुनसे भाग नहीं सकता। जहाँ ये खतरे बारबार आते हैं, वहाँ हम पहले ही से कुछ तैयारी कर सकते हैं। लेकिन जब वे अकस्मात् आ पड़ते हैं, तब समय पर ही अुनका मुकाबिला करना पड़ता है।

दूसरे प्राणियों से प्राप्त होनेवाले खतरों के विषय में मनुष्य विशेष स्वाधीन है। दूसरे जानवरों की बनिस्बत अुसे ज्यादा सहूलियत है। दूसरे प्राणियों को कुदरत ने जितने साधन दिये हैं और जो तरकीबें सिखायी हैं, केवल अुतनी ही हासिल हैं; अुनमें वे तरक्की नहीं कर सकते। अुनका सामना करने के लिअे मनुष्य ने हजार तरह के साधन खोजे हैं और अधिक खोजने की शक्ति रखता है।

लेकिन मनुष्य को मनुष्य से होनेवाले खतरों की समस्या जटिल है। यहाँ खतरा अुपस्थित करनेवाला पक्ष और अुससे बचने की कोशिश करनेवाला पक्ष, दोनों प्रगतिशील प्राणी हैं। याने अगर अेक पक्ष अेक साधन तैयार करे, तो दूसरा अुससे बढ़िया साधन खोज सकता है। और जो नहीं खोज सकता वह भयत्रस्त * हो जाता है। जब तक भय का सिर्फ ज्ञान है लेकिन अुसके सामने मजबूरी या विवशता महसूस नहीं होती, तबतक आदमी अुससे त्रास नहीं पाता और पुरुषार्थ-हीन नहीं बनता। लेकिन जब वह त्रास

* यह लेख लिखते हुअे मैं विचार कह रहा था कि खतरे (डेंजर) के लिअे अकसर 'भय' शब्द काम में लाया जाता है; तब 'भय' और 'भयवृत्ति' के लिअे दो अलग और स्पष्ट शब्द क्या हो सकते हैं? 'भयत्रस्त' शब्द से यह विचार सूझता है कि यदि खतरे को 'भय' कहा जाय, तो अुसकी आशंका को 'त्रास' कह सकते हैं। अर्थात् 'फीयर' माने त्रासवृत्ति।

पाता है, तब वह निर्बल हो जाता है। फिर वह य पहुँचानेवाले की शरण लेता है और अुसकी आज्ञा शिरोधार्य मानता है; अपमान सह लेता है और जो कष्ट दिये जायँ, अुन्हें बरदाश्त कर लेता है।

मानवता का रोग

अिस तरह अेक दूसरे को डराना और डरना, और नुकसान पहुँचाने तथा नुकसान से बचने के अुपायों की निरन्तर खोज करते रहना मानव-जीवन का रोग हो गया है। यह रोग अितना व्यापक हुआ है कि जिस तरह अस्पतालों और औषधालयों की संख्या तथा मरीजों की संख्या और दवाअियों के प्रकार की वृद्धि अकसर गौरव और सभ्यता की प्रगति का लक्षण माना जाता है, अुसी तरह मारने और डराने तथा बचने के साधनों की वृद्धि भी प्रगति का लक्षण मानी गयी है।

लेकिन आखिर नतीजा क्या होता है? गुजराती में अेक कहावत है, 'कोतवाल की दो आँखें, चोर की चार आँखें'। अर्थात् आक्रमण के साधन बचाव के अिलाजों को हमेशा मात कर सकते हैं। अिसलिअे जहाँ तक मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध है, बाह्य साधन अंजाम में भय का निवारण करने में असमर्थ ही ठहरते हैं और अपनी रक्षा के लिअे अुनपर भरोसा रखना आखिर कच्चा बन्दोबस्त साबित होता है।

अेक तरह से मनुष्य दूसरे जानवरों की अपेक्षा होशयार है। लेकिन अुसकी होशयारी ने अुसे प्रकृति से दो तरह से जुदा कर दिया है—याने ज्यादा संस्कृत और ज्यादा विकृत भी। ये संस्कृति और विकृति दोनों अेक-दूसरे में अैसी ओतप्रोत हैं कि अकसर दोनों अेक ही जगह पायी जाती हैं। शायद संस्कृति का सच्चा स्वरूप हमें अबतक नहीं मिल सका है और संस्कृति के नाम से हम बहुत-सी विकृतियों को ही बढ़ाते हैं।

जो हो; अितना निश्चित है कि प्राकृत या असभ्य मानवजातियों में जो अपूर्णता पायी जाती है, अुसकी अपेक्षा अपने को संस्कृत या सभ्य माननेवाले मनुष्यों की असभ्यता कम नहीं होती। बल्कि, संस्कृति का टीला जितना अूँचा होता है, अुतना ही विकृति का गड्ढा भी गहरा होता जाता है और अिसीलिअे सभ्य जातियाँ सब प्रकार के दुर्गुणों में भी प्राकृत जातियों की अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी होती हैं।

अिसीलिअे मनुष्य को मनुष्य की तरफ से खतरा अुपस्थित होता है और अुसकी बहुत-सी शक्ति दूसरे मनुष्यों से बचने तथा जरूरत के वक्त अुन्हें परेशान करने के साधन खोजने में ही खर्च हो जाती है। अेक दूसरे का नाश मनुष्यों के संकल्पों में से अेक महत्त्व का संकल्प बन बैठा है और सांसर्गिक बीमारी की तरह बीच-बीच में जोर पकड़ता है।

बाह्य साधनों की व्यर्थता

जबतक आत्मरक्षा के लिअे हमारा भरोसा मारने और बचने के बाह्य साधनों पर है, तबतक यह अनर्थपरम्परा मिट ही नहीं सकती और हम निर्भयता हासिल ही नहीं कर सकते। भयवृत्ति या त्रासवृत्ति को कुछ समय और कुछ हद तक छिपा या दबा सकते हैं, पर जिस क्षण यह साबित हो जायगा कि हमारा मारने और बचने का साजसमान बेकार है, अुस क्षण बहादुर से बहादुर सेनापति और सिपाहियों को शरण जाने का रास्ता ही लेना पड़ता है और अपने भविष्य के लिअे शत्रु की कुलीनता, अुसकी असली संस्कृति तथा स्वयं अपने पुराने व्यवहारों द्वारा बतायी हुअी सभ्यता पर ही भरोसा करना पड़ता है। अनुभव यह है कि अैसी परिस्थिति आने पर शत्रु की शराफत और अुसकी असली संस्कृति का जाग्रत होना अिस बात पर

निर्भर नहीं है कि हमारे पास कितने अंश में अच्छे अच्छे साधन थे और अुनका हमने किस दर्जे तक अुपयोग किया; बल्कि अिस बात पर कि हमारे पास भरपूर साधन न होते हुअे भी हमने कितनी निर्भयता याने त्रस्त न होने की वृत्ति से खतरे का सामना किया।

अुपसंहार

अिस सारी विचारधारा से नीचे लिखे नतीजे निकलते हैं—

१. कुदरत और दूसरे जानवरों से पैदा होनेवाले खतरों से मनुष्य अेक हद तक बाह्य साधनों द्वारा अपनी रक्षा कर सकता है। लेकिन वहाँ भी अिन खतरों की आदत डालनी ही पड़ती है। प्राणियों से पैदा होनेवाले खतरे के लिअे अुसका अपना सद्व्यवहार भी काम आता है।

२. मनुष्य की तरफ से पैदा होनेवाले खतरों के लिअे बाह्य साधनों की मदद करीब करीब बेकार है और वह शक्ति का अपव्यय है। परस्पर अविश्वास रहते हुअे निर्भयता हासिल हो ही नहीं सकती और न वह खतरे से भाग जाने की वृत्ति से ही हासिल हो सकती है। निर्भयता तो अविश्वास का कारण होते हुअे भी विश्वास रखने से, खतरों का मुहावरा कर लेने से तथा अपने सद्व्यवहारों से ही बढ़ती है। यह केवल निर्भयता और शूरता बढ़ाने का ही तरीका नहीं है, बल्कि स्व-रक्षा और मानवजाति की संस्कृति के विकास का भी यही साधन है।

चोरी, सेंध लगाना, लूटपाट, अत्याचार, लाठी-बल्लम, तलवार, बन्दूक, तोप, बम, हवाअी-जहाज वगैरा वगैरा स्वजाति का नाश करने के हजारों प्रकार के अेक-से-अेक बढ़िया साधन, और ताला, दरबान, पुलीस, जेल, फाँसी, ढाल, किले, खाअियाँ (ट्रेंच), हवाअी जहाज तोड़नेवाली तोपें, बुरके (मास्क्स) वगैरा अुतने ही प्रकार के बचने के साधन, तैयार करने में मनुष्यजाति अपने आदि काल से आज तक अपनी बुद्धि-शक्ति और धन लगाती आयी है। अिसमें शक नहीं कि अिनमें से कुछ साधनों की बदौलत कुदरत और दूसरे प्राणियों से पहले की अपेक्षा अब वह ज्यादा सुरक्षित हो गयी है। परन्तु मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध में वह और भी ज्यादा कीचड़ में फंसती गयी है और बे-खतरे की हालत प्राप्त नहीं कर सकी है। और न कभी कर सकती है। क्योंकि अुलटे रास्ते से कितने ही दूर चलने पर भी मुकाम पर नहीं पहुंचा जा सकता। मानव-जाति के लिअे परस्पर अविश्वास, अुसके कारण प्रस्तुत किये हुअे साधन, असद्व्यवहार और खतरे की कल्पना ही भय हैं। अविश्वास का कारण होते हुअे भी विश्वास का संकल्प, खतरे का सामना करने का अभ्यास और अपने सद्व्यवहार से पैदा होनेवाला आत्म-विश्वास—यही निर्भयता प्राप्त करने का अुपाय है। अिसमें स्वाभिमान, अिज्जत और कर्तव्य की भावना तथा अुचित संगति से सहायता मिलती है।

'आपकी याद'

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

मुरब्बी भाअी श्री जमनालालजी के विषय में कुछ लिखना बहुत ही मुश्किल मालूम होता है। वर्धा की शोकसभा में अुनके कुटुम्बियों और आत्मीयों के प्रति समभाव प्रकट किया गया। अुस वक्त मुझे अैसा मालूम हो रहा था कि अुस प्रस्ताव द्वारा श्री जानकीदेवी आदि के साथ साथ मेरे प्रति भी समभाव प्रकट किया जा रहा है। अुस सभा में अगर मुझे बोलना ही पड़ता, तो मेरा भाषण सभाजनों के सद्भाव के लिअे अुनके आभार मानने के कर्तव्य के रूप में होता।

पू० बापूजी से मेरा परिचय होने के पहले ही में जमनालालजी के परिवार में दाखिल हो चुका था। रुअी के धन्धे में मेरे ज्येष्ठ बन्धु से अुनका सम्बन्ध आया और दोनों के बीच मित्रता कायम हो गयी। अिसके परिणामस्वरूप दोनों परिवारों में भी 'घरोबा' (कौटुम्बिक घनिष्ठता) हो गया। पू० बापूजी में जब दोनों परिवारों का मिलाप हुआ, तब से तो यह घनिष्ठता दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही गयी। पूज्य बापूजी ने मुझे अपना लिया और जमनालालजी ने बापूजी को पा लिया। अिस तरह जो आधी पकड़ थी, वह पूरी पकड़ हो गयी।

सम्बन्ध जोड़ना अुतना मुश्किल नहीं है, जितना कि अुसे अन्त तक निबाहना है। स्नेहियों में जब बुद्धि, शिक्षा, स्वभाव, भाषा, सम्पत्ति वगैरा की बहुत विषमता हो, तब तो अैसे सम्बन्ध निबाहना और भी मुश्किल हो जाता है। अेक बात हो तभी अन्त तक मीठा सम्बन्ध बना रहता है। वह बात है परस्पर निष्कपटता और समान आदर। निष्कपटता, बल्कि बालवत् सरलता और आदरवृत्ति श्री जमनालालजी में अितनी स्वाभाविक थी कि अेक बार सम्बन्ध कायम होने के बाद अुनके लिअे अुसे निबाहने की अपेक्षा तोड़ना ही ज्यादा मुश्किल होता था।

अपनी योजनाओं और कामों की जिम्मेवारी लेनेवाले व्यक्तियों का ही संग्रह करने की वृत्ति अगर श्री जमनालालजी में होती, तो मुझे अपने कामों के लिअे निकम्मा समझ कर वर्षों पहले वह मुझसे अपना सम्बन्ध तोड़ देते। क्योंकि सार्वजनिक कामों में वह नित्य मुझसे अेक के बाद अेक आशा करते जाते थे और मैं बराबर अिनकार ही करता रहता था। लेकिन यह होते हुअे भी अुन्होंने बड़े आग्रहपूर्वक मुझे गांधी सेवा संघ का सदस्य बनाया। बाद में अुस संघ का भार मुझे सौंपा गया, यह तो अेक अित्तिफाक की बात थी। मेरी नियुक्ति और अुसके बाद का संघ का रूपान्तर, ये दोनों बातें अुनकी कल्पना के बाहर की थीं। स्वयं अुन्होंने जिन जिन कामों में मेरा सहयोग चाहा, अुनमें मैं अुनकी ज्यादा मदद नहीं कर सका। मुझसे भी अधिक मेरी पत्नी अुन्हें निराश करती रही। लेकिन हमारे बीच जो व्यक्तिगत नाता कायम हो गया था, अुसमें अिस कारण से अुन्होंने कोअी फर्क नहीं पड़ने दिया। अुनके जीवन में यह कोअी अपवादरूप बात नहीं थी। पचासों व्यक्ति यही बात दुहरायेंगे। अर्थात्—'अेतावान् अस्य महिमा'—यह अुनका बड़प्पन था।

आम तौर पर दोस्त-बिरादरों की मृत्यु से मैं बहुत अधिक क्षुब्ध नहीं होता। प्रेम के कारण प्रियजनों के वियोग से कुछ क्लेष अवश्य होता है। लेकिन, यद्यपि प्रेम के आँसू ढालने में मैं

कोअी दोष या शर्म की बात नहीं समझता, तो भी मेरी आँखों से आँसू नहीं टपकते। मैंने यह बहुत बार महसूस नहीं किया है कि मानों शरीर पर अेकाअेक प्रहार हो गया हो और अपने को सम्हालने के लिअे मुझे बहुत प्रयत्न करना पड़ा हो। तीस साल पहले मेरी छोटी बहन के वैधव्य का प्रसंग अेक अपवाद-स्वरूप प्रसंग था। अुसे छोड़ कर दूसरे किसी प्रसंग में मैं अितना नरम कभी नहीं पड़ा कि मुझे सान्त्वना देने के लिअे दूसरों को तकलीफ करनी पड़ी हो। अुस वक्त सचमुच मुझे अैसा मालूम हुआ कि मानों मेरे शरीर पर घाव हो गया हो और दूसरों से सान्त्वना की अिच्छा भी करता रहा। लेकिन सान्त्वना कौन देता? जिसकी तरफ नजर डालता, वही मानों खुद सान्त्वन का प्यासा मालूम होता।

"ज्यां ज्यां नजर मारी ठरे, यादी भरी त्यां आपनी!" ('जहाँ जहाँ मेरी नजर ठहरती है, वहाँ आप ही की याद भरी है।')

अलौकिक दानशौर्य

[हरि कृष्ण मोहनी]

श्री जमनालालजी को सच्चे अर्थ में 'वैश्य कुलावतंस' कह सकते हैं—या अुन्हें 'वैश्यराज' कह लीजिये। क्योंकि हिन्दुस्तान में अुनसे अधिक श्रीमान् और धनाढ्य लोग बहुत-से हैं, तो भी 'दानशौर्य' में अुनकी टक्कर का अेक भी वैश्य आज तक नहीं हुआ, यह कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है।

नागपुर प्रान्त में स्व० डी० लक्ष्मीनारायण ने नागपुर विश्वविद्यालय को तीस लाख का चिरंजीवी दान दिया है। दान की दृष्टि से सारे हिन्दुस्तान में सर रतन टाटा का नाम भी अिधर काफी मशहूर हो चुका है। रासबिहारी घोष, पालित, ठाकरसी प्रभृति अनेक अुदारमना महान् व्यक्तियों के नाम जमनालालजी का नाम लेते ही हमें याद आते हैं। लेकिन अिन बाअीस वर्षों में देश में जिस विशेष राजनीति का प्रवर्तन हुआ अुसकी सफलता के लिअे जिसने अपनी सम्पत्ति का अुपयोग किया, आक्रमणशील राजनीति और सम्पत्ति का अनन्य-साधारण समुच्चय किया, अैसा यह अेक ही व्यक्ति हुआ। प्राचीन और अर्वाचीन दानवीरता के अितिहास में अिसकी मिसाल नहीं है।

संसार में सम्पत्ति अेक जबरदस्त शक्ति है। ज्ञान, शील और राज्य-सत्ता भी दूसरी अत्यन्त प्रभावशाली शक्तियाँ हैं। जमनालालजी के व्यक्तित्व में अिन चारों शक्तियों का आकर्षक संमिश्रण पाया जाता है। परोपकार और दया के लिअे अपनी सम्पत्ति का विनियोग करनेवाले अनेक हुअे हैं और होंगे। दया और सम्पत्ति के साहचर्य के लिअे हिम्मत की जरूरत नहीं होती। लेकिन प्रचलित राज्यसत्ता के खिलाफ बगावत करनेवाली राजनीति की सफलता के लिअे

सम्पत्ति का विनियोग बिना शौर्य के हो ही नहीं सकता। यह कहना गलत है कि गांधीजी ने अिन बाअीस वर्षों में जिस राजनीति का प्रवर्तन किया है, अुसके लिअे साहस और शूरता की जरूरत नहीं है। जिसे राजनीति का जरा भी ज्ञान है, वह अैसा कभी नहीं कहेगा। सत्याग्रह अिस युग के लिअे और मानवता के लिअे गांधीजी की सब से बड़ी देन है। सत्याग्रह और सविनय कानूनभंग में ही गांधीजी के अवतार का रहस्य निहित है। यह सत्याग्रह सुर और असुरों का या देव और दानवों का सनातन संग्राम है। वह असत्य और अन्याय से निरन्तर संघर्ष है। अगर असत्य और अन्याय को संसार के पुराने विकार मानें, तो सत्याग्रह को मानवता का आवश्यक और अविनाशी धर्म मानना पड़ेगा।

अिस सत्याग्रही राजनीति के अुत्कर्ष के लिअे जिन अुदारधी लक्ष्मीपुत्रों ने शूरता, साहस और निडरता से अपनी सम्पत्ति का अुपयोग किया, अुन सबके जमनालालजी अग्रणी, सेनानी और सिरताज थे। यही अुनकी विशेषता थी। वैश्यवृत्ति का यह सैनिकीकरण ही अुनके जीवन का सबसे अुज्ज्वल कार्य है।

गांधीजी का सत्याग्रह अेक पवित्र यज्ञ है, जो हिन्दुस्तान की वर्तमान अन्यायी और स्थिर सत्ता को नष्ट करने के लिअे शुरू किया गया है। स्थिर राज्यसत्ता के गढ़ की रक्षा के लिअे अपनी सोने-चांदी की अींटों का अुपयोग करने के विषय में सम्पत्तिमान लोगों में हमेशा होड़ जारी रहती है। बैंक लबालब भरे हैं, अुनके दरवाजों पर ठठ लगे हैं। लेकिन प्रस्थापित राज्यसत्ता के विरुद्ध सम्पत्ति का अुपयोग करने में सम्पत्ति प्राप्त करने के साधन ही गँवा देने का डर रहता है और अपरिग्रह का व्रत स्वीकारने के लिअे प्रस्तुत रहना पड़ता है।

कपड़े की मिल खोलने के लिअे दानवीरता की जरूरत नहीं है। लेकिन खादी के अुद्योग में अपनी सम्पत्ति लगाने के लिअे साहस की आवश्यकता होती है। यह सर्व-विदित है कि जमनालालजी अिस प्रकार के साहसपूर्ण अुद्योगों के संयोजक थे। धारा के विरुद्ध तैरने के लिअे कितनी दृढ़ता और पराक्रम की जरूरत होती है?

सत्याग्रह युद्ध के अेक नवीन अंग के रूप में अुन्होंने गोसेवा के कार्य का हाल ही में अुपक्रम किया था। अिस कार्य में साहस और शौर्य की पराकाष्ठा हो गयी थी। सत्याग्रह की पवित्र रणभूमि में, गोसेवा के पवित्र क्षेत्र में, अुनकी मृत्यु हुअी। सत्याग्रह की दृष्टि से अुन्हें वीरगति प्राप्त हुअी। यह राजस्थान की पूर्व परंपरा के अनुरूप ही हुआ। अिस महाभाग का यह वैभवशाली भाग्य अितना अुज्ज्वल है कि हरअेक को अुसपर अीर्ष्या होगी।

२१:२:'४२

गो-सेवा का रहस्य

[विनोबा]

(ता० अेक फरवरी अुन्नीस सौ बियांलीस को गोसेवा संघ के सम्मेलन के अवसर पर दिया हुआ अध्यक्षीय भाषण)

मेरे प्यारे भाअियो और बहनो,

मैं अेक जंगली जानवर हूँ

आज आपके सामने जो थोड़ासा जिक्र मैं करना चाहता हूँ, अुसकी प्रस्तावना में कुछ कहने की जरूरत मानता हूँ। कल हमलोगों की जो सभा हुअी थी, अुसमें मैंने कहा था, कि आपलोग मुझे अध्यक्ष बना रहे हैं, लेकिन मैं कुछ जंगली जानवर हूँ। अिसलिअे अगर आपको कुछ असभ्यता मेरे बर्ताव में दिखायी पडे, तो अुसे बरदाश्त करना होगा। वैसे भी मेरा जन्म जंगल में हुआ, और जिसे आधुनिक शिक्षण कहते हैं, वह मुझे मिला न मिला, अितने में मुझे अुपनिषद पढ़ने की अिच्छा हुअी। आपमें से कुछ लोग जानते ही होंगे कि अुपनिषद् अेक जंगली साहित्य है। अुसको संस्कृत भाषा में 'आरण्यक' कहते हैं। अुसका सीधा तर्जुमा हिन्दी में 'जंगली साहित्य'ही होगा। अुसमें अीश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुअे दो लक्षण बतलायें हैं—'वाकी अनादरः'। यानी वह न बोलता है,और न किसी चीज की पर्वाह करता है। मेरे स्वभाव में यह बात आ गयी। और अैसी छोटी-मोटी कअी बातें हो सकती हैं जिनकी कि मैं पर्वाह करता हूँ या नहीं करता, अिसका भी पता मुझे नहीं रहेगा। कृपया अुनको आप सह लेंगे।

दरबारी लचक की कमी

दूसरी बात, जो अुसीका हिस्सा है, मुझे यह कहनी थी कि मेरी मातृभाषा मराठी है और मराठी भाषा में यद्यपि अद्भुत सामर्थ्य भरी हुअी है, तो भी अेक चीज की कमी है। वह यह कि जिसको दरबारीपन या सभ्यता कहते हैं—जो अुर्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तानी भाषा में है—वह मराठी में मौजूद नहीं है। हम हजार कोशिश करें तो भी 'आप आअियेगा, बैठियेगा' का तर्जुमा मराठी में ठीक ठीक कर नहीं सकते। अिसलिअे अिस दृष्टि से जो कुछ कमियाँ मुझमें रह गयी हों, अुन्हें आपको बर्दाश्त करना होगा।

लिखित व्याख्यान क्यों नहीं ?

अिसके बाद प्रस्तावना में अेक बात और मुझे कहनी होगी। मुझे सूचित किया गया था कि मैं अपना व्याख्यान लिख कर दे दूँ। शायद यह अेक सभ्यता का रिवाज है। लेकिन वह मैं नहीं कर सका। क्योंकि अकसर लोगों को देखे बिना मुझे कुछ सूझता ही नहीं। यह तो हमेशा की बात हुअी। लेकिन अिस वक्त अेक खास वजह यह भी थी कि यहाँ पर बापू का व्याख्यान होनेवाला था। मैंने सोचा कि अुनका व्याख्यान मैं सुनूँगा और अुसके प्रकाश में बोलूँगा। यानी अुन बातों को नहीं दोहराअूंगा जिनका अुन्होंने विस्तार किया होगा; और अुन्होंने जो बातें नहीं कही होंगी, अुन्हें मैं कहूँगा। यह सोच कर मैंने अपना भाषण लिख कर नहीं भेजा और अब वह व्याख्यान जबानी ही हो रहा है। अगर अिस चीज के लिअे क्षमा मांगने की जरूरत मानी जाती हो, तो वह मैं मांग लेता हूँ। अितना कहने के बाद मैं अपना व्याख्यान शुरू करता हूँ।

'गो-सेवा' शब्द का प्रयोग क्यों ?

पहले तो मैं नाम से ही शुरू करूंगा। क्योंकि नाम की महिमा सभी जानते हैं। हमारे संघ का नाम 'गोसेवा संघ' है। अुसको सुनते ही सहज सवाल होता है, कि "क्या आपने कभी 'गोरक्षा' शब्द सुना हैं ? अुसे जानते हुअे भी 'गोसेवा' शब्द आपने रक्खा है, या यों ही बे-सोचे-समझे या अनजान में गोसेवा नाम रख दिया है "?—अुसका जवाब देना जरूरी है।

संस्कृत में 'गोसेवा' शब्द हमको शायद ही मिलेगा। वहाँ 'गोरक्षा' शब्द का प्रयोग है। अिसलिअे हम सबलोग वह शब्द जानते हैं। लेकिन जान कर भी, हेतुपूर्वक, अुसको छोड़ा है, और 'गोसेवा' शब्द अधिक नम्र समझ कर चुन लिया है। यानी हम अपने में गोरक्षा की सामर्थ्य नहीं पाते, अिसलिअे गोसेवा से सन्तोष मान लिया है। अर्थात् दयाभाव से, हम से जितनी हो सकेगी, अुतनी हम गाय की सेवा करेंगे और भगवान की कृपा से जब हममें ताकत आ जायगी, तब फिर हम गोरक्षा करेंगे।

लेकिन, जब हम 'गो-सेवा संघ' कहते हैं, तो यह पूछा जायगा कि "आपलोग गाय की क्या सेवा करना चाहते हैं ? अगर आप गाय का दूध और घी बढ़ाना चाहते हैं, और अच्छे बैल पैदा करना चाहते हैं, तो अिसमें कौनसी 'गो-सेवा' है ? अिसमें तो आपलोग अपनी खुद की ही सेवा करना चाहते हैं। अंग्रेज लोगों ने 'पब्लिक सर्विस' शब्द निकाला है, वैसी ही आप की यह गो-सेवा हुअी"—अैसा आक्षेप हो सकता है। अिसके जवाब में कुछ कहना ठीक होगा।

हमारी मर्यादा

हम लोग अपनी मर्यादा समझते नहीं। अिसी लिअे यह सवाल उठ सकता है। 'सेवा' और 'अुपयोग' के बीच कोअी आवश्यक विरोध नहीं है, यह समझने की जरूरत है। हम जिस प्राणी का अुपयोग नहीं करते, अुसकी सेवा करने की ताकत हममें नहीं होती। यह हमारी मर्यादा है। अुसमें स्वार्थ का कोअी मुद्दा नहीं है। अेक-दूसरे की सेवा करने का यही अेक रास्ता हमारे लिअे अीश्वर ने खुला रक्खा है। नहीं तो, जैसा कि बापू ने बताया, पिंजरापोलों में जो होता है, वही सारे समाज में होता रहेगा। आज भी हम यही हाल देखते हैं। पक्षी को खिलाते हैं और आदमी को भूखा रखते हैं। अिस तरह दया या सेवा तो नहीं होगी, बल्कि निर्दयता या असेवा होगी।

अीश्वर के अनन्त गुण हैं, अुनमें से हमें अनेक गुणों का अनुकरण करना है। लेकिन अीश्वर का जो विशेष गुण है, अुसका अगर हम अनुकरण करेंगे, तो वह अहंकार होगा। अीश्वर के और सब गुणों का अनुकरण शक्य है, परन्तु अुसके विशेष गुण का, याने अुसके अैश्वर्य का, अनुकरण शक्य नहीं। वह सृष्टि का पालन करता है और संहार भी करता है। अिसमें हम अुसका अनुकरण नहीं कर सकते। हम किसीका पालन या रक्षण नहीं कर सकते। बहुत तो चीटियों के लिअे शक्कर डाल देंगे। चीटियाँ वहाँ अिकट्ठी हो जायँगी। और अगर संयोग से वहाँ पर अेकाध बैल आ जाय, तो अुसके पैर के नीचे वे खतम हो जायँगीं। जब अैसी बात होगी, तो अुसकी जिम्मेवारी मैं कैसे अुठाअूंगा ? मैं तो कह दूंगा कि यह तो अीश्वर की करतूत है !

मनुष्य का अहंकार

यहाँ मुझे अेक घटना याद आती है। अेक थी बुढिया, अुसके अेक बेटा था। बेटा अुसकी मानता नहीं था। अिसलिअे वह बहुत दुखी रहती थी। जब अुसके पास मैं पहुँचा, तो वह कहने लगी, " मैंने अिसको पाला-पोसा; लेकिन यह मेरी मानता ही नहीं।"

मैंने अुससे पूछा, "क्या तेरे यह अकेला ही लड़का है ?"

अुसने कहा, "हाँ, तीन चार और थे, वे सब मर गये।"

तब मैंने अपने जंगली ढंग से सीधा सवाल पूछा, "माजी, तुमने अपने तीन चार लड़कों को क्यों मार डाला ?"

आप समझ सकते हैं कि मेरे अिस जंगली सवाल से अुसके दिल पर कितनी चोट लगी होगी ! थोडी देर के लिअे वह सहम गयी और बाद में कहने लगी, "मैं क्या करूं ? भगवान ने चाहा सो हुआ।" तब मैं अुसको पूछता हूँ, "अगर तुम्हारे तीन लड़कों को भगवान ने मार डाला है, तो तुम्हारा यह जो चौथा बेटा है, अुसको पाला-पोसा किसने ? पाला-पोसा तो तुमने और मार डाला भगवान ने, यह कैसे हो सकता है ? या तो दोनों जिम्मेवारियाँ अुठाओ या दोनों को छोड़ दो।"

वेदों में गो-सेवा की शिक्षा

जिस प्राणी का हमें अुपयोग नहीं है अुसकी सेवा हमसे नहीं हो सकती। गो-सेवा का रास्ता सीधा है। गाय का हमें ज्यादा से ज्यादा अुपयोग तो है ही। वह करने की कोशिश करेंगे और अुसके साथ साथ अुसकी सेवा, अधिक से अधिक जितनी हो सकती है, करेंगे; जैसे कि हम अपने बच्चों की सेवा करते हैं। यही अुसका सीधा अर्थ होता है।

गोसेवा का प्रथम पाठ हमें वैदिक अृषि-मुनियों ने सिखाया और समझाया है। कुछ लोगों का कहना है कि गोसेवा का पाठ पढ़ा कर अृषियों ने हममें अनुचित पूजा के भाव पैदा किये हैं। अैसी पशुपूजा वैज्ञानिक नहीं है। वस्तुस्थिति अैसी नहीं है। जिस तरह हम अुपयोग की दृष्टि से विचार करते हैं, अुसी तरह सीधे अुपयोग की दृष्टि से अृषि-मुनियों ने भी विचार किया। अुसी दृष्टि से अुन्होंने बतलाया है कि हिन्दुस्तान के लिअे गोसेवा मुफीद है। अिसलिअे वही धर्म हो सकता है। तब हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम गाय का जितना हो सकता हो, अुतना अुपयोग करें। वेद का वचन है—

सहस्रधारा पयसा मही गौः।

'अैसी गाय जिससे कि हजार धाराअें रोज पैदा होती हों'। आप समझ सकते हैं कि दूध की अेक धारा कितनी होती है। हिसाब करने पर मालूम होगा कि वैदिक गाय का दूध चालीस-पचास रत्तल होता था। अिसपर से आप समझ लेंगे कि अुनकी मनशा क्या थी और गायों से वे क्या अपेक्षा रखते थे। आजकल गाय का दूध नहीं मिलता, अैसी शिकायतें आती हैं। वैदिक अृषियों ने गोसेवा की दिशा भी बतलायी है।

अकसर सुना जाता है कि दूध तो गायों से ज्यों-त्यों मिल सकता है, परन्तु घी के लिअे तो भैंस की ही शरण लेनी पड़ेगी। लेकिन हमारे प्राचीन वैदिक अृषि यह नहीं मानते। वे कहते हैं :

यूयं गावो मेदयथा: कृशंचित्।

हे गायो, जिसका शरीर (स्नेह के अभाव से) सूख गया हो, अुसे तुम अपने मेद से भर देती हो। यहाँ 'मेदयथा:' याने 'मेदती हो' का अिस्तेमाल किया गया है। मेद कहते हैं चरबी को, स्नेह को, जिसे हम 'फैट' कहते हैं। अिसका मतलब यह है कि दुबले-पतले को मोटा-ताजा बनाने लायक चरबी गाय के दूध में पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिअे और अगर आज गाय के दूध में घी की मात्रा कम मालूम होती है, तो अुसे बढ़ाना हमारा काम है। वह कसर गाय में नहीं, बल्कि हमारी कोशिश में है।

अिसीकी पुष्टि में अुन्होंने गाय का वर्णन यूं किया है :

अश्रीरं चित् कृणु था सुप्रतीकम् ।

(जो शरीर अश्रीर है, अुसे गाय श्रीर बनाती है।) 'श्रीर' का अर्थ 'शोभन' है और 'अश्रीर' का अर्थ 'शोभाहीन'। 'अश्रीर' से ही 'अश्लील' शब्द बना है। अिसपर से आप समझ लेंगे कि हमको गो-सेवा का पहला पाठ वैदिक अृषिओं ने पढ़ाया है, अुसके विकास की दिशा भी बतला दी है और वह दिशा अनुचित पूजाभाव की नहीं, बल्कि शुद्ध वैज्ञानिकता की है। यानी परम अुपयोगिता की है।

सेवा की व्याख्या

सेवा से मतलब अुपयोगहीन सेवा नहीं है। अुपयोग के साथ साथ अुपयोगी जानवर की यथासंभव अधिक से अधिक सेवा करना ही अुसका अर्थ है। अिसका भाव यह है कि अुपयोगी जानवर को हमें अधिकाधिक अुपयोगी बनाना है और अिसी तरह हम उसकी अधिक से अधिक सेवा कर सकते हैं; जैसा कि हम अपने बाल-बच्चों के विषय में करते हैं। अिस तरह हमारे लिअे सेवा का अुपयोग के साथ नित्य संबंध है। अब मैं जरा और आगे बढ़ूंगा। जैसे हम अुपयोग-हीन सेवा नहीं कर सकते, वैसे ही सेवा-हीन अुपयोग भी हमें नहीं करना चाहिअे। गोसेवा संघ के नाम में 'सेवा' शब्द का यही अर्थ है। यानी हम बगैर सेवा के लाभ नहीं अुठायेंगे। यह आज भी होता है। हम ढोरों की सेवा कुछ-न-कुछ तो करते ही हैं। लेकिन शास्त्रीय दृष्टि से जितनी करनी चाहिअे अुतनी नहीं करते। क्योंकि शास्त्रीय दृष्टि हमारे पास नहीं है। विशेषज्ञों से अिस काम में हम सहायता जरूर लेंगे। लेकिन हमें सब काम अुनपर नहीं छोड़ना चाहिअे। हमें गाय की प्रत्यक्ष सेवा करनी चाहिअे। जब अैसा होगा, तब अुसमें से गोसेवा का थोड़ा-बहुत शास्त्र हमारे हाथ आ जायगा।

स्नेहशीलता का महत्त्व

पवनार में हमारे आश्रम के अेक भाअी, नामदेव ने दो चार गायें पाली हैं। बाजार के लिअे अुसे अेक दिन सेलू जाना पड़ा। शाम को नामदेव वापस लौटा और गाय दुहने के लिअे बैठा, तो गाय ने दूध नहीं दिया। अुसने काफी कोशिश की। तब अुसने पूछा, "आज गाय को क्या हो गया है?" जवाब मिला "कुछ तो नहीं। पता नहीं दूध क्यों नहीं देती? बछड़ा भी तो बँधा हुआ था। अिसलिअे वह भी दूध नहीं पी सका होगा"। निदान नामदेव ने पूछा "किसीने अुसे पीटा-पाटा तो नहीं"? अेक भाअी ने कहा, "हाँ पीटा तो सही"। नामदेव ने कहा, "बस तो अिसीलिअे वह दूध नहीं देती।" फिर नामदेव गाय के पास पहुँचा। अुसने अुसके शरीर पर से हाथ फेरा, अुसे पुचकारा। तब गाय कुछ देर के बाद दूध देने के लिअे तैयार हो गयी। यह किस्सा अिसलिअे कहा कि हमें समझना चाहिअे कि जब हम नामदेव की तरह सेवा करेंगे, तो अुसीमें से गो-सेवा का रहस्य धीरे धीरे स्पष्ट हो जायगा और गो-सेवा का शास्त्र बनेगा।

कालिदास और गोसेवा

कालिदास ने, जोकि हिन्दू संस्कृति का अप्रतिम प्रतिनिधि है, हमारे सामने अिस सेवा का कितना सुन्दर आदर्श पेश किया है? महाराज दिलीप अृषि के आश्रम में रहने को आता है। अृषि अुसे गाय की सेवा का काम देते हैं, क्योंकि आश्रम में कोअी बिना सेवा के रह ही नहीं सकता। आश्रम तो सेवा की ही भूमि है। हाँ, तो वह गो-सेवा का काम कितनी लगन से करता है? अुसकी कैसी सेवा-टहल करता है? अुसके पीछे-पीछे कैसे

रहता है ?—अिसका चित्र रघुवंश में अेक श्लोक में यों खींचा है :—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां ।
निषेदुषीमासनबंध धीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां ।
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥

(शरीर की छाया की नाअीं राजा गाय का अनुचर बन गया था। जब वह गाय खड़ी होती थी, तब वह भी खड़ा हो जाता था। जब वह चलती तो वह भी चलता, वह बैठ जाती, तब वह बैठता, वह पानी पीती, तभी यह भी पानी पीता; गाय को खिलाअे-पिलाअे बिना खुद नहीं खाता-पीता था।)

सेवा का निचोड़

गाय अेक अुदार प्राणी है। वह हमारी सेवा और प्रेम को पहचानती है और अधिक से अधिक लाभ देने के लिअे तैयार रहती है। 'सेवा' शब्द का दोहन करके मैंने यह दूध आपके सामने रख दिया है : अेक तो हम बिना अुपयोग के किसी की सेवा नहीं कर सकते; और दूसरे सेवा किये बिना यदि हम अुपयोग करेंगे तो वह भी गुनाह होगा। हमें यह हरगिज नहीं करना है। ये दो बातें मैंने आपके सामने रक्खीं।

'संघ' की व्याख्या

अब हम 'संघ' शब्द का मनन करेंगे :—

क्या 'संघ' शब्द में कोअी विशेष दृष्टि नजर आती है ? चरखे के लिअे संघ, हरिजनों के लिअे संघ—अिस तरह हमने कअी संघ बनाये हैं। अिसी तरह गोसेवा के लिअे भी यह संघ बना है। अिसके साथ साथ और भी अेक अर्थ अिसमें लक्ष्य है। हिन्दुस्तान की भूमि की और गायों की आज जो हालत है, अुसे देखिये। सम्भवतः बिना साझे के यह काम आगे नहीं बढ़ सकेगा। शायद जगह जगह अिसे संघ का स्वरूप दे कर ही यह काम करना होगा। गोसेवा 'संघ' शब्द से अिस तरह का भाव दोहन करके अगर हम निकालेंगे, तो अुसमें अेक गुण और मिल जायगा। गोसेवा-कार्य में साझेदारी या सांघिक प्रयत्न की जितनी जरूरत है, अुतनी और किसी कार्य में शायद ही हो। हिन्दुस्तान की आज की हालत में हरअेक किसान अपने अपने घर में गाय पाले, शास्त्रीय दृष्टि से अुसकी हिफाजत करे, यह बात मुश्किल मालूम होती है। अिसीलिअे गाँवों में सांघिक रचना करनी पड़ेगी। यह अेक विशेष अर्थ 'गोसेवा संघ' शब्द से निकल सकता है।

प्रतिज्ञा का अुपयोग

अब मैं और भी आगे बढ़ता हूँ। गोसेवा संघ के कार्य का आरंभ प्रतिज्ञा से होता है। अभिप्राय यह है कि अगर हम गाय के ही दूध-घी का सेवन करेंगे, तो अुसकी सेवा करने की अिच्छा पैदा होगी। अिसलिअे आरंभ में गाय के ही दूध-घी के सेवन की प्रतिज्ञा रक्खी गयी है। कअी लोग पूछते हैं, "प्रतिज्ञा की क्या जरूरत है ? बिना प्रतिज्ञा के काम नहीं हो सकेगा ?" अुत्तर में मैं अपना अनुभव बता दूँ। मैंने देखा है कि जिस प्रयत्न का आरंभ संकल्प से होता है वह जैसे फलता है, वैसे केवल मनशा का प्रयत्न नहीं फलता। कोअी महान कार्य संकल्प के बिना नहीं होता। अगर संकल्प से आरंभ करते हैं, तो आधे से अधिक कार्य वहीं हो जाता है। प्रतिज्ञा सिर्फ यही नहीं है कि घी-दूध खायेंगे या नहीं खायेंगे। गाय के दूध-घी की पैदाअिश बढ़ाने की कोशिश करेंगे, यही प्रतिज्ञा का मतलब है।

अेक आक्षेप का जवाब

प्रतिज्ञा लेने में अक्सर यह आपत्ति अुठायी जाती है कि हम दूसरों के घर अैसे नियम ले कर जायँगे तो अुनको तकलीफ होगी।

अिसीलिअे अिसका जवाब बापू ने अपनी अहिंसा की भाषा में दिया है। मैं अपनी 'अनादर' की भाषा में बताना चाहता हूँ। अितना तकल्लुफ हमें क्यों रखना चाहिअे ? सूर्य को हम अुसकी किरणों से जानते हैं। वह जहाँ जाता है, अपनी किरणें साथ ले जाता है; चाहे वे किसी को ताप दें, या आह्लाद दें। वह अिस बात की पर्वाह नहीं कर सकता। सूर्य अगर अपनी किरणों को छोड़ता है, तो अुसका सूर्यत्व ही जाता रहता है। वैसे ही हमें भी अपनी किरणों को, यानी अपने अुसुलों को, अपने साथ ले जाना चाहिअे। अगर मैं किसी के घर में अपने सिद्धान्तों और विचारों को छोड़ कर प्रवेश करूं, तो मैं अपने मेरेपन को ही छोड़ देता हूँ; मैं 'मैं' ही नहीं रह जाता। अगर हम 'स्वत्व' छोड़ कर किसी के घर जायेंगे, तो अुसको आनन्द होगा अैसी बात नहीं है। अिसलिअे प्रतिज्ञा जरूर लेनी चाहिअे और लोगों की कल्पित तकलीफों के विषय में निर्भय रहना चाहिअे।

गाय बनाम भैंस

अब अेक बात और। गाय और भैंस के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। दोनों मनुष्य को दूध देनेवाले जानवर हैं। दोनों में कोअी मौलिक विरोध तो नहीं होना चाहिअे। फिर भी, हम गाय का ही दूध बरतने की प्रतिज्ञा लेते हैं, तो अुसका तत्त्व हम लोगों को जान लेना चाहिअे। हिन्दुस्तान का कृषि-देवता बैल है। और यह तो सब जानते ही हैं कि हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश है। बैल तो हमें गाय के द्वारा ही मिलता है। यही गाय की विशेषता है। अुसके साथ साथ गाय की अन्य अुपयोगिता हम जितनी बढ़ा सकते हैं, जरूर बढ़ायेंगे। लेकिन अुसका मुख्य अुपयोग तो बैल की जननी के नाते ही है। बिना बैल के हमारी खेती नहीं होती। अिसलिअे हमें गाय की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिअे और अुसकी सारसम्भाल करनी चाहिअे। अैसा अगर हम नहीं करते, तो हिन्दुस्तान की खेती का भारी नुकसान करते हैं। जब हम अिस दृष्टि से सोचते हैं, तो भैंस का मामला सुलझ जाता है। और यह सहज ही समझ में आ जाता है कि गाय को ही प्रोत्साहन देना हमारा प्रथम कर्तव्य क्योंकर हो जाता है।

गाय और पाड़ों की अुपेक्षा

मुझे याद आता है अेक दफा मेरे अेक मित्र ने अुनके प्रान्त में अकाल के समय जानवर किस क्रम से मरे, अुसका हाल सुनाया था। अुन्होंने कहा, सबसे पहले भैंसा मरता है। क्योंकि हम भैंसे की अुपेक्षा करके अुसे मार डालते या मरने देते हैं। वर्धा के बाजार में भैंसें अैसी अवस्था मे लायी जाती हैं जब कि वे अेक-दो घण्टों में ही ब्याने को होती हैं। हेतु यह होता है कि लोग अुसे तुरन्त खरीद लें। अेक बार अेक आदमी अैसी अेक भैंस बाजार को ला रहा था। अुसी समय मनोहरजी ने, जो कि अुन दिनों येलीकेली में महारोगी सेवामण्डल द्वारा महारोगियों की सेवा करते थे, अुसको देखा। रास्ते में ही वह भैंस ब्यायी—पुत्रजन्म हो गया! लेकिन अुस आदमी को अुस पुत्रजन्म से बडी झुंझलाहट हुअी! अुसने सोचा, यह पुत्र कैसा? यह तो अेक बला आ गयी! मनुष्य को तो पुत्रजन्म से आनन्द होता है; लेकिन भैंस के पुत्र को वह सहन नहीं करता। अुसने अुस पुत्र को वहीं छोड़ दिया और भैंस को ले जा कर वर्धा के बाजार में बेच दिया और जो कुछ पैसा मिला वह ले कर अपने घर चलता बना। बेचारा भैंस-पुत्र वहाँ पड़ा रहा। मनोहरजी बेचारे दयालु ठहरे। फिक्र में पडे कि अब अिसका क्या किया जाय? जिस खेत में वह रहते थे अुस खेत के मालिक के पास गये और अुससे कहा "भैया, अिसको

सम्हालोगे ?" मालिक ने कहा, "यह क्या बला आगयी? में अुसको कैसे रक्खूं? आखिर अुसका अुपयोग ही क्या है ? में अुसकी परवरिश क्यों करूँ ? अुसको आखिर दशहरे के दिन कत्ल होने के लिअे ही बेचना होगा। अिसके सिवा और दूसरा कोअी रास्ता नहीं है।"

मैंने यह अेक नित्य की घटना आपके सामने रक्खी। तो, सबसे पहले बेचारा भैंसा मरता है। फिर अुसके बाद गाय मरती है। अुसके पश्चात् भैंस मरती है और सबसे आखिर में बैल। बैल सबसे अुपयोगी है और अिसीलिअे अुसकी हिफाजत करने की विशेष कोशिश की जाती है। लोग किसी-न-किसी तरह अुसको खिलाते रहते हैं और अुसे जिलाने की कोशिश करते हैं। यह तो हुअी अुपयोगिता की बात। बैल अिन सब जानवरों में सबसे ज्यादा अुपयोगी तो साबित हुआ। लेकिन सवाल यह है कि गाय की सेवा के बिना अच्छे बैल कहाँ से आयेंगे ? हिन्दुस्तान का आदमी बैल तो चाहता है; लेकिन गाय की सेवा करना नहीं चाहता। वह अुसे धार्मिक दृष्टि से पूजने का स्वांग रचता है। दूध के लिअे तो भैंस की ही कद्र करता है। हिन्दुस्तान के लोगों की यह मनशा है कि अुनकी माता तो रहे भैंस और बाप हो बैल! यह योजना तो ठीक है; लेकिन वह भगवान को मंजूर नहीं है!! अिसलिअे यह मामला बहुत टेढ़ा हो गया है। भैंस और गाय दोनों का पालन हिन्दुस्तान के लिअे आज बड़ी मुश्किल बात हो गयी है।

भैंस की भी सेवा नहीं हो सकती

लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिअे कि गो-सेवा में गाय की ही सेवा को महत्त्व देना पड़ता है। बापू ने कहा कि अगर हम गाय को बचा लेंगे, तो भैंस का भी मामला तय हो जायगा। अिसका पूर्ण दर्शन तो अभी मुझे भी नहीं हुआ है और शायद अुसकी अभी जरूरत भी नहीं है।

गाय और भैंस को अेक-दूसरे की विरोधी मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन हमें तो गोसेवा से आरंभ कर देना है और वही हो भी सकता है। हमें समझना चाहिअे कि आज हम दर असल भैंस की सेवा भी नहीं करते। आज हम जो भैंस की सेवा करते हैं, वह दर असल न तो गो-सेवा है और न भैंस की सेवा ही है। हम अुसमें केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। हम भैंस का केवल सेवा-हीन अुपयोग करते हैं। जिस प्रकार अुपयोग-हीन सेवा हम नहीं कर सकते, अुसी प्रकार सेवाहीन अुपयोग भी हमें नहीं करना है।

भैंस-जाति का स्वभाव

जैसा कि मैं बता चुका हूँ, आज भैंसे की हर तरह से अुपेक्षा की जाती है। वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दुस्तान के कुछ भागों में भैंसे का अुपयोग भले ही किया जाता हो, लेकिन साधारणतः हिन्दुस्तान की गरम हवा में भैंसा ज्यादा अुपयोगी नहीं हो सकता। भैंस का हम केवल लोभ से पालन कर रहे हैं। नागपुर-बरार में गरमियों में गरमी का मान अेकसौ पन्द्रह अंश-तक चला जाता है। खासकर अुन दिनों में भैंस को पानी जरूर चाहिअे। मगर यहाँ तो पानी की कमी है। पानी के बगैर अुसको बेहद तकलीफ होती है। क्योंकि भैंस पूरी तरह जमीन का जानवर नहीं है। वह आधा जमीन का और आधा पानी का प्राणी है। गाय तो पूरी तरह थलचर है। और अकसर देखा जाता है कि जो पानीवाला जानवर हो, अुसके शरीर में भगवान ने चरबी की अधिकता रक्खी है। क्योंकि ठंड और पानी से बचने के लिअे अुसकी अुसे जरूरत होती है। मछली के शरीर में स्नेह भरा हुआ रहता है। पानी के बाहर निकालते ही वह सूर्य के ताप से जल जाती है। वैसी ही कुछ कुछ हालत भैंस

की भी है। अुसे धूप बरदाश्त नहीं होती। अिसीलिअे लोग गरमी के दिनों में अुसीके मल-मूत्र का अुसके पीठ पर लेप करते हैं, ताकि कुछ ठंढक रहे। वे जानते हैं कि अुस जानवर को अुस समय कितनी तकलीफ होती है। देहातों में जा कर आप लोगों से पूछेंगे कि आपके गाँव में कितनी भैंसें और कितने पाड़े हैं, तो वे कहेंगे कि भैंसें हैं करीब सौ-डेढ़-सौ और पाड़े हैं कुल दस; या बहुत तो बीस। अगर हम अुनसे पूछेंगे कि अिन स्त्री।पुरुषों या नर-मादाओं की संख्या में अितनी विषमता क्यों है? तो हमारे देहातों के लोग जवाब देंगे, 'क्या करें? भगवान की करतूत ही अैसी है कि भैंसा ज्यादा दिन जीता ही नहीं'। आखिर यहाँ भी भगवान की करतूत आ ही गयी! यह हमारे बुद्धिनाश का लक्षण है। हम अुसकी तकलीफ का ध्यान न करते हुअे भैंस का अुपयोग करते हैं और कहते हैं कि भैंसे जिन्दा ही नहीं रहते और नहीं रहेंगे। मतलब, हम भैंस की सेवा करते हैं अैसी, बात नहीं है। अुसमें हम सिर्फ भैंस का अुपयोग ही करते हैं। बाकी अुसकी सेवा कुछ भी नहीं करते। अिसलिअे आपकी समझ में आगया होगा कि गोसेवा संघ की स्थापना हम किसलिअे करते हैं।

यंत्रों द्वारा खेती क्यों नहीं?

चन्द लोग पूछते हैं, "हिन्दुस्तान अेक कृषि-प्रधान देश है, अिसलिअे खेती के वास्ते बैल चाहिअें और बैल चाहिअें तो गाय भी चाहिअें; अित्यादि विचार श्रेणी तो ठीक है; मगर क्या हिन्दुस्तान का यही अेक अर्थशास्त्र हो सकता है? क्या दूसरा कोअी अर्थशास्त्र ही नहीं हो सकता? समय आने पर हम खेती का काम ट्रैक्टर से क्यों न करें?"

अुसके जवाब में मैं यह पूछता हूँ कि ट्रैक्टर चलायेंगे तो बैल का क्या होगा? जवाब मिलता है, "बैल को हिन्दुस्तान के लोग खा जायँ। हिन्दुस्तान के लोग दूसरे कअी जानवरों का मांस बराबर खाते हैं; अुसी तरह बैल का मांस भी खा सकते हैं। यह रास्ता क्यों न लिया जाय?" अिस तरह जब बैलों को खा जाने की व्यवस्था होगी, तभी ट्रैक्टर द्वारा जमीन जोतने की योजना हो सकती है। कहा जाता है कि बैलों को अगर हिन्दू नहीं खायँगे, तो गैर-हिन्दू खायें। आज भी हिन्दू गाय तो बेचते ही हैं। खुद तो कसाअी से पैसा ले लेते हैं और गोहत्या का पाप अुसे दे देते हैं। अैसी सुन्दर आर्थिक व्यवस्था अुन्होंने अपने लिअे बना ली है। वह कहता है कि अगर मैं कसाअी को गाय मुफ्त में देता, तो गोहत्या के पाप का भागी होता। लेकिन मैं तो अुसे बेच देता हूँ। अिसलिअे पाप का हिस्सेदार नहीं बनता। अिस व्यवस्था को आगे बढ़ायेंगे, तो सब ठीक हो जायगा। हम भैंस से दूध लेंगे, बैलों को खा जायँगे और यंत्रों के द्वारा खेती करेंगे—अिस तरह तीनों का सवाल हल हो जायगा।

अिसके जवाब में मैं अब आप लोगों को यह समझाना चाहता हूँ कि बैलों को क्यों नहीं खाना चाहिअे? पूर्वपक्ष की दलील यह है कि कुछ प्रेज्युडिस्ड लोग यानी पूर्वग्रहदूषित लोग बैल को भले ही न खायँ; लेकिन बाकी के तो खायँगे और हम यंत्र के द्वारा मजे में खेती करेंगे। अिस विषय में हमारे विचार साफ होने चाहिअें। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तान की आज की जो हालत है और आगे अुसकी जो हालत होनेवाली है, अुस हालत में अगर हम मांस का प्रचार करेंगे और यंत्र से खेती करेंगे, तो हिन्दुस्तान और हम जिन्दा नहीं रह सकेंगे। यह समझने की जरूरत है। हिन्दुस्तान के लोग भी अगर गाय-बैल खाने लगेंगे, तो कितने प्राणियों की जरूरत होगी? अुतने बैलों की पैदाअिश

हम यहाँ नहीं कर सकेंगे। सिर्फ मांस, या गोश्त खाने का ढोंग तो नहीं करना है। मांस अगर खाना है तो वह हमारे भोजन का नियमित हिस्सा होना चाहिये। तभी तो असे अपेक्षित लाभ होगा। लेकिन हम जानते हैं कि लोग खा सकें अितने बैल पैदा नहीं हो सकेंगे। अगर हम अिस तरह करने लगे और खेती ट्रॅक्टर के द्वारा होने लगी, तो ट्रॅक्टर का खर्च बढेगा और गोश्त भी पूरा नहीं पड़ेगा और आखिर में गाय और बैल का वंश ही नष्ट हो जायगा और असके साथ मनुष्य भी।

यूरोप-अमेरिका का अुदाहरण

यूरोप और अमेरिका की क्या स्थिति है? दक्षिण अमेरिका के आर्जेंटाअिन के बन्दरगाह ब्युनॉस आयरिस में रोज करीब करीब दस हजार बैल कटते हैं। और वहाँ से गोश्त के पीपे दूर दूर के देशों को भेजे जाते हैं। अब तो यह व्यवस्था यूरोप के काम की नहीं रही। लेकिन वैसे भी अगर यह सिलसिला जारी रहा, तो आगे चल कर लोगों को गोश्त मिलना कठिन हो जायगा। अिसलिअे यूरोप के डॉक्टरों ने अब यह शोध किया है और बहुत सोच-विचार कर निर्णय किया है—सम्भव है अुसमें मतभेद होगा। क्योंकि डॉक्टरों में मतभेद तो हुआ ही करता है—कि गोश्त के मुकाबिले में दूध में गुण अधिक हैं। यह शोध हमारे आयुर्वेदिक वैद्यों और हाकिमों ने, बहुत पहले किया है। में मानता हूँ कि आज यूरोप के लोग जिस तरह मांसाहार करते हैं, अुसी तरह हिन्दुस्तान के लोग भी पुराने जमाने में मांसाहार करते थे। आखिर वे अिस नतीजे पर पहुँचे कि अगर हम मांस की बजाय दूध का व्यवहार करेंगे, तो हम भी जिन्दा रहेंगे और जानवर भी जिन्दा रहेंगे। अिसलिअे ट्रॅक्टर का अुपयोग हमारा सवाल हल नहीं कर सकता और हमें यह समझना चाहिअे कि गोश्त की बजाय दूध पर भरोसा रखना सब तरह से लाजिमी होगा।

दूध की महिमा

मेरी यह भविष्यवाणी है कि जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती जायगी, वैसे वैसे दुनिया भर में गोश्त की महिमा कम होगी और दूध की बढेगी। पूछा जाता है कि 'आखिर दूध भी तो प्राणिजन्य वस्तु ही है'? हाँ है तो सही। "फिर दूध को पवित्र क्यों माना गया?" अुसका जवाब अभी मैंने जो कुछ कहा, अुसीमें मिल सकता है। जैसा कि अभी मैंने कहा, अेक समय था जब कि हिन्दुस्तान में मांसाहार ही मांसाहार चलता था। अुस वक्त अुसमें से बचने के लिअे क्या किया जाय, यह सवाल अुत्पन्न हुआ। योगियों और वैद्यों ने जब लोगों के सामने गाय के दूध की महिमा रक्खी, तब से दूध अैसी चीज हो गयी जिसने लोगों को मांसाहार से छुड़ाया। अिसलिअे दूध पवित्र माना गया। अिसके सबूत आपको वेदों में मिल सकते हैं। अृग्वेद में

गोभिष्टरेव अमतिं दुरेवां
यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।

यह वचन पाया जाता है: अिस मंत्र का अर्थ मैंने अिस तरह किया है—'भूख को तो हम अन्न के द्वारा मिटा सकते हैं। लेकिन 'दुरेवा अमति' का यानी दुर्भाग्य में ले जानेवाली अबुद्धि का, अर्थात् गोश्त की तरफ ले जानेवाली अबुद्धि का, गाय के दूध के द्वारा ही हम निवारण कर सकते हैं'। सब तरह की अबुद्धि मिटाने के लिअे और अुसमें से बाहर निकलने के लिअे गाय का दूध हमारे काम आता है। अिसीलिअे गाय का दूध पवित्र माना गया है। मतलब यह कि कुल मिला कर यंत्रवादी जो ट्रैक्टर पर आधार रखने की बात कहते हैं, वह गलत है।

कुछ सुझाव

अब असके बाद मेरे लिअे कहने को बहुत कम रह जाता है। असलिअे हमारे संघ के लोगों के कर्तव्य के विषय में कुछ कहूँगा। आज तो अेक संघ स्थापित हो गया है। असके बारे में हिन्दुस्तान को विचार-प्रेरणा देनी है। हमें अेक व्यापक प्रचार-कार्य करना है। लेकिन सबसे पहली बात यह है कि गो-सेवा-संघ के जितने सदस्य हैं, अुन्हें, वे जहाँ होंगे वहीं, स्वदेशी-धर्म के अनुसार यह कार्य शुरू करना चाहिअे। हरेक शहर में गाय का दूध अच्छे से अच्छा मिले असी व्यवस्था करनी चाहिअे। गाँवों में गायें रख कर गो-सेवा को अुत्तेजन देना चाहिअे और प्रयोग-क्षेत्र नजदीक रखना चाहिअे। मेरा विद्यार्थी जिस तरह गाय की व्यक्तिगत सेवा करता है, वैसी व्यक्तिगत सेवा हो सकती हो, तो करनी चाहिअे। अगर हम इस तरह से नहीं करेंगे और केवल व्यापक मतप्रचार ही करेंगे, तो अुतने से यह कार्य आगे बढ़नेवाला नहीं है। असीलिअे हमको कुछ अमली कार्य करना चाहिअे और अुसका प्रारंभ जहाँ हम हों, वहीं से शुरू करना चाहिअे। यह अेक रास्ता कार्य करने के संबंध में मैंने रक्खा है।

विधायक दृष्टि की जरूरत

दूसरी बात यह है कि हमारे गोसेवा संघ के बहुत-सारे सदस्य दूसरे रचनात्मक कार्यों के कार्यकर्ताओं में से ही हैं। हमको यह अेक दृष्टि आ जानी चाहिअे कि हमारे जितने कार्य हैं, अगर हम अुनको खंडित रूप से यानी अलग अलग टुकड़े मान कर करेंगे, तो हम कामयाब होनेवाले नहीं हैं। हमें यह समझ लेना चाहिअे कि खादी, ग्रामोद्योग, गो-सेवा आदि सब मिल कर अेक ही पूर्ण काम है।

यहाँ मैं आपको अेक मिसाल देना चाहता हूँ।

हमलोग सुरगाँव गये थे। वहाँ पर हम अेक तेल का कोल्हू चलाते हैं और अुसका तेल गाँववालों को देते हैं। मैंने पूछा कि क्या अेक कोल्हू से गाँव का काम चल जायगा? अुन्होंने कहा कि अेक कोल्हू से काम नहीं चलता। तो मैंने कहा कि फिर दूसरा क्यों न रक्खें? अुन्होंने कहा कि अगर असा हम कर सकते हैं, तो अच्छा है। फिर असा तय पाया कि दो कोल्हू चलायें। सब तेल गाँव में पैदा होगा, तो फिर बाहर से तेल नहीं आयगा। वहाँ पर अेक कोल्हू के दो कोल्हू हो गये। मगर सवाल यह हुआ कि जो खली बनती है, अुसका क्या करें? क्योंकि वहाँ पूरे दाम में अुसकी माँग नहीं है। फिर जितनी खली तैयार होती थी अुतनी गायें वहाँ रखने का निश्चय किया। अस तरह से गो-सेवा को हमने वहाँ पर कोल्हू के साथ जोड़ दिया है। असी तरह से जब हम खादी, कोल्हू और गाय, अिन सबको मिला कर सोचेंगे, तभी हमारी योजना असफल और अर्थहीन नहीं; बल्कि अर्थ-युक्त और सफल हो सकती है। मेरा मतलब यह नहीं है कि हमें सब कामों में सिर लड़ाना चाहिअे। लेकिन हमारे जो कार्यकर्ता दूसरे कामों में हैं, अुनके लिअे मैं यह दृष्टि दे रहा हूँ।

अभी अेक सवाल यह भी पूछा गया कि क्या गो-सेवा-कार्य रचनात्मक कार्य में आता है? बापू ने अुसका अहिंसा की दृष्टि से और अपने नम्र शब्दों में अुत्तर दिया है। अगर मुझसे पूछा जाय, तो मैं तो पूछनेवाले से सीधा सवाल करूंगा कि क्या गो-सेवा-कार्य को आप विनाशात्मक कार्य मानते हैं? अगर वह विनाशात्मक कार्य नहीं है, तो वह रचनात्मक है, अितना समझने की क्या बुद्धि नहीं है? अगर हम लोग खादी, ग्रामोद्योग और गो-सेवा, अिन सबको अलग अलग कार्य मानेंगे, तो वे सब प्राणहीन साबित होंगे। यही हमारा अर्थ-शास्त्र है। अुसे हमें समझने की जरूरत है। अुसे हमें परिपूर्ण और सकलांग बनाना है। हमारे सदस्यों से मुझे यह कहना है कि वे गो-सेवा के कार्य में भेदभाव न मानें, अुसे परिपूर्ण करने की कोशिश करें और शास्त्र के मुताबिक अपना काम करें।

भाअियो, मैंने सब कुछ कह डाला और अब कुछ अधिक कहने की जरूरत मैं महसूस नहीं करता हूँ।

सर्वोदय की दृष्टि

स्वर्गीय नानाभाअी अिच्छाराम मशरूवाला

श्रद्धेय श्रीगोपाल कृष्ण गोखलेजी की पुण्य-तिथि याने ता० अुन्नीस फरवरी, अुन्नीस सो बियाँ-लीस को पूज्य नानाभाअी अिच्छाराम मशरूवाला का साठ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ। सारे अकोला शहर में शोक छा गया। अुनसे परिचित मित्रों के हृदय वियोग से व्यथित हो गये। नानाभाअी का वियोग अत्यन्त दु:खद हुआ। कठोर हृदयों से भी आँसू निकल पड़े, और राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करनेवाले सारे व्यक्तियों को अपनी अनाथ अवस्था का अनुभव हुआ। अकोला से राष्ट्रीय मेजवान, अेक प्रसन्नचित्त व्यक्ति, सज्जनता की मूर्ति और सब के साथ निर्वैर-वृत्ति से व्यवहार करनेवाला व्यक्ति चल बसा। नानाभाअी के देहावसान के लिअे शोक था, दु:ख था, हृदय-व्यथा थी, पर आश्चर्य नहीं था। आश्चर्य तो अिस बात का था कि वे साठ वर्ष की आयु पूरी कर सके। कअी वर्षों से बीमार रहते थे। खटिया अुनका सहारा था, दमे की औषधि अुनका जीवन था और कअी बार यम का दरवाजा अुन्होंने खटखटाया था; पर नचिकेता की तरह अुन्हें वहाँ से वापिस ही आना पड़ा था। नानाभाअी और अुनके छोटे भाअी श्री किशोरलाल मशरूवाला कभी कभी आपस में विनोद भी किया करते थे कि अुन दोनों का टिकिट पक्का है। पर अन्त में यमराज को हार माननी पड़ी। दो दिन के कष्टमय युद्ध के बाद आखिर ता० अुन्नीस को दरवाजा खोलना ही पड़ा। नानाभाअी की विजय हुअी।

मनुष्यता की दृष्टि से नानाभाअी का स्थान बहुत बड़ा था। अुनका हृदय विशाल था, दृष्टिकोण व्यापक था और विचार-प्रणाली भी अुदार थी। अितनी विशालता होते हुअे भी अुनका कार्यक्षेत्र सीमित रहा। नानाभाअी की कीर्ति निकट के सम्बन्धी, बाहर से आने वाले अतिथियों और अकोले की जनता तक ही मर्यादित रही। वे अुस पुष्प के समान थे जिसका सोरभ बहुत दूर तक नहीं जाता; पर जहाँ तक पहुँचता है, वहाँ के सारे वातावरण को सुरभित कर देता है। अकोला में वे मशहूर थे। आबाल-वृद्ध, सभी के हृदयों में अुनका स्थान था। अुनके शरीर की अपेक्षा अुनका नाम अधिक परिचित था। अेकाध बार अैसी भी घटना हो जाती थी कि जब वे किसी तांगे में बैठते और कह देते कि 'चलो घर जाना है', तो तांगेवाला पूछता 'किस के घर जाना है'? यह कहने पर कि नानाभाअी के मकान पर जाना है, तांगेवाला ठीक घर पहुँचा देता। अुस बेचारे को पता भी नहीं होता कि स्वयं नानाभाअी ही अुसके तांगे में सवार हैं।

नानाभाअी के पिता व्यापार के निमित्त अकोला में आये; पर धन की अपेक्षा यश कमाने का काम अुन्होने अधिक यत्न किया और आज निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि नानाभाअी ने अपने पिता की यशोधनरूपी सम्पत्ति को अुत्तरोत्तर बढ़ाया ही है। यहाँ तक कि अकोला की जनता आज अुनके पिताजी को भूल गयी है और नानाभाअी को ही जानती है और जानती रहेगी। नानाभाअी के पिताजी ने जिस प्रकार अपने कुल के लिअे यशोधन कमाया, अुसी प्रकार अपने कुल के लिअे वे अेक दूसरी अनमोल विरासत भी छोड़ गये। अुस विरासत का स्वरूप यह है:—जहाँ जा कर बसो वहाँ की जनता के साथ समरस हो जाओ। किसीका कर्ज चुकाये बिना न रहो, किसी कर्जदार को तंग न करो, पर-स्त्री को

माता के समान मानो, जिसको अपने घर में स्थान दिया हो, अुसे अपने परिवार का ही अेक व्यक्ति समझो। पुरानी रूढियों को पालते हुअे भी अुनके बदलने या भंग होने में अुद्वेग की सीमा तक अुनका बंधन न मानों। नये देश-धर्म और समाजधर्म को समझ कर अुसके अनुकूल होने लायक बुद्धि की जागृति और मन की तत्परता जीवन में प्राप्त करो"। अुनके पिताने न केवल अुपदेश से, बल्कि अपने जीवन द्वारा अिस कुलव्रत की दीक्षा दी।—अुन्होंने हर अेक के कष्ट में सम-भाव की मदद पहुँचायी, मित्रद्रोह बरदाश्त भले ही करना पड़ा हो, पर स्वयं मित्र-द्रोह नहीं किया; मैत्री से अपने फायदे के लिअे लाभ नहीं अुठाया और मित्र के लिअे कुछ न कुछ करना अपना धर्म मानते रहे। शारीरिक कष्ट और आर्थिक चिन्ता से मन की प्रसन्नता कभी नहीं खोयी। अिन धर्मों का नानाभाअी ने ठीक ठीक पालन किया। और यह भी कहें तो अनुचित न होगा कि अुनके कुटुम्ब का हरव्यक्ति आज अुस कुल-धर्म के पालन में तत्पर है। अुनके कनिष्ठ बंधु किशोरलाल भाअी मश्रूवाला भारत-प्रसिद्ध हैं और गांधी तत्त्वज्ञान के अुत्तम प्रणेता हैं। नानाभाअी की लड़की ताराबहन ने अपना सारा जीवन सेवा में ही अर्पण कर दिया है और अन्य सारे कुटुम्बियों के जीवन में भी तत्त्वज्ञान भरा है, सेवा भरी है और भरी है सादगी और सौजन्य।

नानाभाअी में आदर्श कुटुम्ब-वत्सलता थी, जिसका मैंने अुनके अपने बालक-बालिकाओं के साथ के व्यवहार में अनुभव किया है। पर किशोरलालभाअी को व्यक्तिगत अनुभव है। नानाभाअी की माता जब गुजरीं, तब किशोरलाल भाअी और अुनकी बहिनें बहुत छोटी थीं। किशोरलालभाअी जब आज विचार करते हैं, तो अुन्हें मालूम होता है कि अुन्हें माता का अभाव कभी महसूस नहीं हुआ अिसका कारण नानाभाअी ही थे। नानाभाअी अुनके लिअे कभी भय का स्थान नहीं हुअे। और बाल्यावस्था में तो वे माता के समान नानाभाअी को 'तू' और 'नाना' कह कर संबोधन करते थे।

नानाभाअी बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे; पर अुनकी बुद्धि बड़ी प्रखर और बहुमुखी थी। वे कभी महात्मा गांधी के सान्निध्य में नहीं रहे; पर अुनके विचारों का अुनका अध्ययन अितना सूक्ष्म था कि वे हमेशा हमें मार्ग दिखलाया करते थे और कभी कोअी शंका भी अुठाते तो वह बड़ी आदरणीय होती थी। पूज्य बापूजी ने भाअी जमनालालजी में और नानाभाअी में समानता बतायी है, वह बहुत दर्जे तक सही है: दोनों में सेवाभाव था, दोनों मे त्यागवृत्ति थी, दोनों में विचारों की निश्चितता थी और दोनों का जीवन प्रेममय था।

नानाभाअी गुजरात से यहाँ आये; पर अुन्होंने अकोले में आ कर अपने आपको यहाँ की जनता के साथ अितना समरस किया कि सब जातियों और सब धर्मों के लोगों के साथ अुनका सम्बन्ध और मित्रभाव बना रहा। अुनका घर सेवा का मन्दिर था, जहाँ सब धर्मों के लोगों के लिअे और हरिजनों के लिअे दरवाजा खुला था।

नानाभाअी हमें छोड़ गये; पर वे अपने पीछे अपनी स्मृति और अमर कीर्ति भी छोड़ गये। मृत्युदेवता ने चाहे अुन्हें हमसे छीन लिया हो, पर अुनकी यशोराशि को वह नहीं छीन सका है। अुनकी मृत्यु में भी मैं अुनके अमरत्व को देखता हूँ। और जो चीज मैं अुनमें सदा देखते आया हूँ, वह यह कि अनेक वर्षों से बीमार होते हुअे भी मैंने अुन्हें प्रसन्नचित्त ही पाया। शरीर-व्यथा से अुनकी आत्मा को कभी ग्लानि होते हुअे मैंने

नहीं देखी। वही प्रसन्नता, वही प्रेम, सदैव वही पवित्रता का स्रोत बहता रहता था। आत्मा शरीर में रहते हुअे भी अलिप्त रहता था। वे जीवन-मुक्त थे और आज देह-मुक्त भी हो गये हैं।

अकोला ब्रिजलाल बियाणी
२२:२:'४२

सिंगापुर का पतन

सरकार चाहती है कि अखबारवाले और वृत्त-विवेचक अिन दिनों घबराहट न फैलावें। सरकार-निष्ठा से नहीं, राज-निष्ठा के खातिर भी नहीं, किन्तु आत्मनिष्ठा के लिअे हमें अिस वक्त घबराहट न फैलानी चाहिअे। आत्मरक्षा और आत्महित कहता है कि अिस वक्त धैर्य और वीरता से ही हम अपनी रक्षा कर सकते हैं।

जब सिंगापुर गिर गया, तब सब से पहला ख्याल मन में यह आया कि हम अखबारवालों के प्रतिनिधि श्री ब्रेल्वी साहब को यही सरकार सिंगापुर दिखाने ले गयी थी। अुद्देश्य यह था कि हम वृत्त-विवेचकों को यह यकीन हो जाय कि पानी के समान पैसा खर्च करके और आज तक के विज्ञान से पूरा लाभ अुठा करके सरकार ने पूर्व की रक्षा किस तरह की है और अिसका प्रभाव हमारे मन पर पड़े। जो निहत्थे हैं और जिनके हाथ में सैकड़ों वर्षों से राज्यसूत्र चलाने का अधिकार नहीं है, अुनपर प्रभाव डालना कोअी बड़ी बात नहीं है। श्री जवाहरलालजी चिढ़-चिढ़ कर कहते हैं कि अिससे बढ़ कर नालायक सरकार शायद ही कहीं होगी।

लेकिन, चिढ़ने से क्या होगा? अगर किसी नालायक सर्जन के हाथ में मैंने अपना अिलाज सौंप दिया है, तो आत्मरक्षा की वृत्ति ही कहती है कि अिस वक्त सर्जन को नालायक कह कर अुसका अुत्साह न तोड़ना चाहिअे; अुसे पस्त-हिम्मत नहीं करना चाहिअे। सर्जन अगर घबरा जायेगा, तो जो कुछ कुशलता अुसके पास है वह भी खो बैठेगा। स्वार्थ के लिअे भी अुसकी तारीफ ही करनी चाहिअे।

अंग्रेज क्या करें?

गांधीजी ने अंग्रेजों की अिस प्रकार की तारीफ की है। वे कहते हैं कि यह अंग्रेजों की आदत है कि कैसा भी संकट क्यों न आ पड़े, वे घबराहट के शिकार नहीं होते। हार होने पर भी हंसते रहते हैं, और अिसी स्वभाव के कारण अनेक बार हारने पर भी अंत में विजय अुन्हींकी होती है। अंग्रेजी अखबार यह पढ़ कर निहाल हो गये हैं। संकट में पड़ा हुआ आदमी ज्योतिष और भविष्यवाणी पर अधिक विश्वास करता है। बंबअी का 'टाअिम्स' खुश हो गया है। वह कहता है कि अब तो महात्माजी भी कह चुके हैं कि अन्तमें अंग्रेजों की ही जीत होने-वाली है; अब हमें निश्चिन्त होना चाहिअे।

महात्माजी थोड़े ही अंग्रेजों की हार चाहते हैं? वे तो किसी की भी हार नहीं चाहते। वे तो अंग्रेजों से और सबों से कहते आये हैं कि न्याय से चलो, सब का भला करो, तुम्हारा भी भला होगा। धर्म की रक्षा करो; धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। भलाअी का बल सब से बड़ा बल है। हिन्दुस्तान के हिन्दुस्तानी लोगों का, आफ्रिका के काले लोगों का, अमेरिका के लाल आदि-वासियों का और प्रशान्त महासागर की बाल-जातियों का जो शाप तुम्हारे सिर पर है, अुससे मुक्त हो जाओ; तो तुम दुनियाभर में अजेय हो जाओगे। लेकिन, बात अैसी है 'पुण्यस्य फलम् अिच्छन्ति पुण्यम् नेच्छन्ति मानवाः'—अिन मानवों को पुण्य करना नहीं भाता; मगर पुण्य का फल तो चाहिअे। अगर हिन्दुस्तान को तुरन्त स्वराज दे दें, आफ्रिका के काले भाअियों

को मनुष्य बना दें, प्रशान्त महासागर के सब आदिवासियों को भाओी की तरह रख कर अुनकी अुन्नति करें और अिन सबों के हित के लिअे अपनी बुद्धि-शक्ति खर्च करें, तो अंग्रेजों को अैसा कुछ जबरदस्त नैतिक बल मिलेगा—संख्याबल का तो पूछना ही क्या ?—कि अंग्रेज लोग सारी दुनिया में धर्म-साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे। 'समर्थो धर्ममाचरेत्' जिसे अीश्वर ने सामर्थ्य दिया है, वह अगर धर्म के अनुसार, न्याय-नीति और मानवता के अनुसार चलेगा, तो धर्म की गति होने से अुसे सर्वत्र विजय ही मिलेगी।

हमें क्या सबक लेना चाहिअे ?

लेकिन, अिस वक्त हमें यह देखना नहीं है कि अंग्रेज-जाति क्या करे। हमें तो हम क्या करें, यह पहले सोचना चाहिअे। अेक बात हमें ध्यान में रखनी चाहिअे कि घबड़ाने से जो-कुछ भी थोड़ी-सी बुद्धि हमारे पास हो, वह भी गायब हो जाती है, जो कुछ भी थोड़ी-सी शक्ति हो, अुसका प्रयोग करना हम भूल जाते हैं और फिर जो कुछ हमारे शत्रु हम से चाहते हैं, वही हम करने लगते हैं। पुरानी कहावत है कि घबड़ाओी हुअी गाय दौड़ कर अपनी गर्दन आप ही शेर के मुँह में दे देती है।

'अितना बलाढ्य ब्रिटिश-साम्राज्य, यह जानते हुअे भी कि सिंगापुर पूरब की कुंजी है, अुसकी रक्षा के लिअे सब कुछ कर ने पर भी, अुसे बचा नहीं सका। देखते देखते सिंगापुर का पतन हुआ। तब अब हमारे लिअे क्या आशा रही'?—अिस तरह के निराशावाद के शिकार हमें नहीं होना चाहिअे।

हमें तो यह सोचना चाहिअे कि बलाढ्य ब्रिटिश-साम्राज्य और धनाढ्य अमेरिका दोनों को जो जापान देखते देखते परेशान कर सका, अुस जापान के विरुध्द हमारे चीनी भाओी आज चार-पाँच-वर्षों से कैसी बहादुरी से लड़ रहे हैं। चीनियों के पास अमेरिका की दौलत नहीं है, ब्रिटन के जैसी दरियाओी फौज नहीं है, जर्मनी के जैसे विज्ञान के जादूगर नहीं हैं, और न धुरी-राष्ट्रों के समान चीनी प्रजा अेकदिल और संगठित ही है; और पिछले सौ बरसों का यह अनुभव है कि अिंग्लेंड, हिन्दुस्तान-सरकार, अमेरिका, रूस या जर्मनी, किसीने भी चीन सच्ची सहायता नहीं की है; सब-के-सब लोमड़ी की तरह अिस बूढ़े हाथी की मौत की ही राह देख रहे थे। अितना होते हुअे भी अिन चीनियों ने अपना संगठन किया और बहादुरी के साथ वे जापान जैसे अतिरथी, अतिमल्ल का सामना कब से कर रहे हैं। तो क्या हम अिन चीनियों से बिलकुल ही गये-गुजरे हैं ? चीन देश में भी आत्म-घातकी दलबन्दी थी। संकट का पूर्ण दर्शन होने पर जनता ने आपस की फूट दृढ़ता से मिटायी और अब वह अेक हो कर लड़ रही है। फूट मिटाने के लिअे समझदार पक्ष ने कितना स्वार्थत्याग किया अिसका अितिहास जब प्रसिद्ध होगा, तब दुनिया आश्चर्यचकित हो जायगी। सर्वस्व का नाश नजर के सामने स्पष्ट देखते हुअे भी अगर हम आपस में शंका-वृत्ति बढ़ाते रहे, और बड़े संकट की ओर से अंधे बन गये, तो भगवान और शैतान दोनों हमपर लानत भेजेंगे। मरने पर स्वर्ग के देव कहेंगे, "यहाँ मत आओ, नरक में जाओ"। और वहाँ जाने पर नरकवासी भी कहेंगे, "यहाँ पर मत आओ, हिन्दुस्तान में जाओ। वही स्थान तुम्हें मुबारक हो"।

चाहे जितनी देर हुअी हो, हमें घबराहट छोड़ कर (और शहरों को भी छोड़ कर) देहातों में जा कर रहना चाहिअे और वहाँ की जनता की सेवा करते हुअे अुसकी शक्ति बढ़ानी चाहिअे।

हमारा अेक मात्र सहारा

यह परम सत्य है कि जब राजशक्ति, धन-शक्ति और संगठन-शक्ति मनुष्य को नहीं बचा सकती, तब सेवा-शक्ति ही अुसका अंतिम सहारा है। जो लोग देहातों में जा कर रहेंगे, देहातियों के जैसे बन कर रहेंगे और सद्बुद्धि-पूर्वक जनता की सच्ची सेवा करेंगे, वे हर हालत में सुरक्षित ही हैं। सच्चा 'वॉर अिन्शुअरन्स' (लड़ाअी का बीमा) यही है।

अेक अंग्रेज सज्जन कहते थे कि जवाहरात का व्यापार करनेवाले अुनके अेक मित्र ने अपने सब कीमती पत्थर जमीन में गाड़ दिये—वहीं से तो ये सब आये थे!—और वह देहात में जा कर रहा। अब अुसे अुस संपत्ति से कोअी मतलब नहीं है। बाजार में हीरों का निर्ख कितना है, यह वह देखता भी नहीं। अब अुसे मुख्य चिन्ता है अपनी गायों की, अपनी मुरगियों की और अपने बगीचे की साग-भाजी की। गाय बछड़ा देगी या बछिया, अिसीकी चिन्ता में वह है। अधिक-से-अधिक अंडे देनेवाली मुरगियाँ कौनसी हैं, अिस चिन्ता में वह अब 'कुक्कुट विद्या' सीख रहा है।

प्रतीकार का कर्तव्य

कोअी अैसा न समझे कि गांधीजी की अहिंसा कुछ भी न करते हुअे बैठे रहने को कहती है। गांधीजी अकर्मण्य अहिंसा नहीं सिखाते, किन्तु अहिंसक प्रतीकार सिखाते हैं। प्रतीकार मुख्य चीज है। अहिंसा अुस प्रतीकार का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। प्रतीकार-वृत्ति और प्रतीकार-शक्ति हमें बढ़ानी ही है। वह तो लोक-सेवा द्वारा और लोक-संगठन करने से ही जाग्रत हो सकती है। हमें भूलना नहीं चाहिअे कि हम अपने ही देश में हैं। हमारे देश की जनता और हम हृदय से अेक ही हैं। लोगों के बीच ही हम सुरक्षित हैं। हमें बार बार अपने को समझाना चाहिअे कि जहाँ धन अेकत्रित हुआ, वहाँ खतरा पैदा हुआ; जहाँ लोक-संख्या केन्द्रित हुअी, वहाँ खतरा है। बमगोले अक्सर शहरों पर गिरते हैं। जिनमें लाखों लोग रहते हैं, अैसे मकानों पर गिरते हैं। गाँवों पर और झोंपडियों पर गिराने के लिअे बम अभी सस्ते नहीं हुअे हैं। शहरों में रहनेवाले लोग सरकार से रक्षा की अपेक्षा करते हैं और खतरे में रहते हैं। गाँवों में खतरा कम है और सरकार की मदद की आशा भी कम है। वहाँ तो सेवा के द्वारा लोक-संगठन करके और आत्मरक्षा की आदतें डाल कर ही हम रह सकते हैं। अैसे जीवन से ही हमारा अुद्धार होगा। हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश को आधुनिक शस्त्रास्त्रों से भी भयभीत हो कर मूढ़ नहीं बनना चाहिअे। दिल्ली का पतन कअी बार हुआ; तो भी राष्ट्र का पतन नहीं हुआ, यह पुराना अनुभव होते हुअे हम सिंगापुर के पतन से भयग्रस्त क्यों हों? अंतःपुर की स्त्रियों की तरह आज तक अंग्रेजों पर विश्वास करके बैठे थे, अुस विश्वास को हम जरूर छोड़ दें; लेकिन अपने आत्मविश्वास क्यों छोड़ें? आत्मरक्षा के लिअे हमें काफी कीमत देनी पड़ेगी अिसमें शक नहीं, लेकिन, जो निर्भय हैं और मुनासिब कीमत देने के लिअे तैयार हैं, अुन्हें कम कीमत देनी पड़ती है। औरों को दस गुनी कीमत देने पर भी रक्षा हासिल नहीं होती।

२६: २:' ४२ का० का०

सरकार के शील के रक्षक या भक्षक?

'क्षत्रिय' और 'सोल्जर' अिन दो शब्दों के अर्थ करीब-करीब अेक-से हैं। लेकिन, शब्दों के सिर्फ अर्थ ही देखने नहीं होते हैं; हर शब्द के साथ अुसकी अपनी खुशबू या बदबू होती है। 'क्षत्रिय' शब्द सुनते ही मन में ख्याल आता है

कि यह आदमी अपनी खानदान का ख्याल रखने-वाला है। सदाचार और न्याय अुसे प्राणों से भी प्यारे हैं। दीन, दबे हुअे, गरीब, असहाय, अनाथ, अपाहिजों का वह रक्षक है। जो अुसे तनखा देता है, अुसीकी वह सेवा करेगा,अैसी बात नहीं है। अुसका धर्म ही यह है कि वह अनाथों की रक्षा करे और जालिमों को दबा दे। खास करके स्त्रियों का तो वह 'राखी-भाअी' है। स्त्री की अिज्जत और मर्यादा की रक्षा के लिअे अपने प्राण अर्पण करने में वह अपने जीवन की कृतार्थता मानता है। स्त्री अकेली हो या संकट में हो, जब तक कोअी क्षत्रिय नजदीक है, तब-तक अुसकी जान और मर्यादा सुरक्षित ही है।

'क्षत्रिय' शब्द में यह अितना अर्थ कहाँ से आया? यह सारा अर्थ किसी कोषकार का दिया हुआ नहीं है। व्याकरणकार की धातुओं में यह सारा अर्थ भरा हुआ नहीं था। किसी कवि ने 'क्षत्रिय' शब्द में यह सारा अर्थ ठूँस ठूँस कर भर दिया हो, सो बात भी नहीं है। समाज के नेताओं ने, राष्ट्र-पुरुषों ने और धर्मकारों ने क्षत्रियों के सामने यह आदर्श रखा और क्षत्रिय वीरों ने पुश्त-दर-पुश्त अिस आदर्श का पालन करके अिस अर्थ का परिपोष तथा विकास किया। 'क्षत्रिय' शब्द में जो खुशबू है, वह क्षत्रियों के प्राणार्पण से आयी है। क्षत्रिय में भी मनोविकार तो होते ही हैं। क्षत्रिय भी अुत्तेजित हो अुठता है। लेकिन, अुसके सामने मर्यादा का अितना अूँचा ख्याल रहता है कि अुसके कारण और अुसकी बदौलत वह सब-के-सब विकारों का शमन करता है। अगर क्षत्रिय अपना यह स्वत्व छोड़ देगा, तो अुसकी जाति और अुसका सारा समाज अुसका धिःकार करेगा, अुसका बहिष्कार करेगा। और वह तो बचपन से ही सुनता और मानता आया है कि, 'संभावितस्य चाकीर्तिः मरणात् अतिरिच्यते'।—सभ्य मनुष्य के लिअे अपकीर्ति मरण से भी बदतर है।

जिनकी प्रतिष्ठा प्रजा-रक्षक की हैसियत से है, वे ही अगर प्रजाभक्षक और शील का नाश करनेवाले बन गये, तो समाज कैसे टिकेगा?

हमारे देश में 'क्षत्रिय' शब्द का यह अर्थ है। जब कोअी आदमी कहता है कि मैं 'क्षत्रिय हूँ', तब सब दुर्बलों और अनाथों को अेकदम आश्वासन मिल जाता है। क्या 'सोल्जर' शब्द में भी यह सारा अर्थ भरा हुआ है? यूरोप के देशों में 'सोल्जर' शब्द का क्या अर्थ होता है, सो तो वहाँ के लोग जानें। हमारे देश के लोग 'सोल्जर' शब्द का अर्थ क्या करते हैं, यह कोशों में देखने से मालूम नहीं होगा। लोगों को 'सोल्जरों' का जैसा अनुभव हुआ होगा, वैसा ही अर्थ वे करेंगे।

जब से यह लड़ाअी शुरू हुअी तभी से सोल्जरों और रंगरूटों की शरारतों और दुर्व्यवहार की खबरें बराबर कानों पर आती हैं। ये खबरें अत्युक्तिपूर्ण या गलत भी हो सकती हैं। लेकिन अिस घबड़ाहट और आशंका की स्थिति में भी लोगों को फौजी सिपाहियों की अुपस्थिति से आश्वासन के बदले परेशानी ही अधिक होती है, अिस बात का ये खबरें द्योतक हैं। क्या यह स्थिति लोगों की सहानुभूति और सहायता प्राप्त करने के लिअे अनुकूल वातावरण बनाने में मदद-गार होगी? सरकार के हाथ में कानून है। कानून का अुपयोग लोगों के जान-माल और लोगों की आबरू-अिज्जत की रक्षा के लिअे भी हो सकता है, और सोल्जरों को बदनामी से बचाने के लिअे भी हो सकता है। कानून की रक्षा सोल्जरों को भी मिलनी चाहिअे अिसमें कोअी शक नहीं। लेकिन, सरकार को भी समझना चाहिअे कि लोग, खास करके हिन्दुस्तान के लोग, सोल्जरों को नाहक बदनाम

करने पर तुले नहीं हैं। "जो नहीं होना चाहिअे था सो हो गया; अब अुसकी चर्चा कर के अपने लोगों को और बदनाम क्यों करें", अैसा कह करके चुप बैठने की बुरी आदत हमारे लोगों में है।

"अगर किसी सोल्जर ने किसी को तंग किया, किसी औरत को सताया, तो अुसकी शिकायत करो, सबूत पेश करो, अदालत में जाओ", यह कहना ठीक है। यह न्याय का मार्ग है। "सुनी-सुनायी बात पर नहीं चलना चाहिअे। जब तक पूरा सबूत नहीं मिला है और अंग्रेजी अदालत की न्यायमूर्तियों को पूरा सन्तोष नहीं हुआ है, तब तक हर आदमी को अिन सोल्जरों को निर्दोष ही समझना चाहिअे"—अैसा अगर सरकार कहे, तो हम अुसका कहना मानने के लिअे बाध्य हैं। हमें आश्चर्य अिसी बात का है कि हमारे देश के हजारों नवयुवकों को और युवतियों को भी केवल सुनीसुनायी बात पर से स्थानबद्ध करते वक्त सरकार की यह धर्मबुद्धि कहाँ जाती है? सरकार कहती है कि सरकार की स्थापना भले ही प्रजा-रक्षा के लिअे हो लेकिन, सरकार को सब से प्रथम अपनी रक्षा करनी होती है। सरकार की हस्ती ही जब खतरे में आती है, तब वह अपने हाथ में न्याय की तराजू ले कर न्याय नहीं कर सकती। सरकार की रक्षा के लिअे कायदे और कानून की मर्यादा भी ताक पर रखनी चाहिअे और किसीको अन्याय होता हो, तो वह भी सहन करना चाहिअे।

तो क्या देश की देवियों की मर्यादा की रक्षा कोअी महत्त्व की चीज नहीं है? अंग्रेजी में कहावत है कि 'Ceaser's wife must be above suspicion'. सम्राट सीजर ने कहा था, 'सीजर की रानी निर्दोष और शुद्ध हो, अितना ही सब नहीं है। अुसे अितना सम्हल कर रहना चाहिअे कि वह किसी शक या किंवदन्ती से भी परे रहे'। क्या ब्रिटिशसरकार अपनी फौज के लिअे यही आदर्श नहीं रख सकती है? "हमारे सोल्जर जैसे हैं वैसे हैं, वे बराबर लोकबस्ती में दिनरात घूमते रहेंगे, अगर अुन्होंने तुम्हारा कुछ नुकसान किया तो तुम जा कर नालिश करो, अुन्हें पहचानो, अुनके खिलाफ सबूत अिकट्ठा करो और न्यायाधीश को सन्तोष दो। तब हम अुसपर थोड़ा-सा जुर्माना जरूर करेंगे और खेद भी जाहिर करेंगे। आपलोगों को भी भूलना नहीं चाहिअे कि अिन सोल्जरों की ही बदौलत आपलोगों की रक्षा होनेवाली है। अगर ये मौत से लड़नेवाले सोल्जर खुशी में आ कर कुछ गुस्ताखी कर बैठें, तो भी आपको अुसे दरगुजर करना चाहिअे।"

सचमुच आत्मरक्षा के लिअे हमसे यह बहुत ही बेजा कीमत मांगी जाती है। "अगर जापानी लोग आयेंगे, जर्मन आयेंगे, तो अैसा होगा और वैसा होगा", अैसा प्रचार करनेवाले लोगों को तो कम-से-कम अपने हाथ साफ रखने चाहिअे। फौज में हुक्म न माननेवालों को गोली से अुड़ा दिया जाता है, शत्रु को थोड़ीसी भी जानकारी देनेवाले को तुरन्त मौत की सजा दी जाती है। हुक्म के खिलाफ रात को चिराग तो ठीक, बीडी परचानेवाले को भी कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है। लॉर्ड कर्जन ने अेक बार गोरी फौज को कडी सजा दे कर ब्रिटन की अिज्जत को अुज्वल किया था। कृतज्ञ भारतवासी लॉर्ड कर्जन जैसे निरंकुश सुलतान का भी वह सत्कृत्य आजतक याद करते हैं। अंग्रेजों को याद रखना चाहिअे कि अुनके पाँच-दस सोल्जरों की ही नहीं, बरन सरकार की—सारी सरकार की ही—नीयत पर लोगों को शक हो रहा है। प्रजा के हृदय

के सामने ब्रिटिश सरकार अिस वक्त अभियुक्त है। वॉर-कौंसिल में हमें स्थान मिले और राज्य करने के लिअे अंग्रेजों की जगह देशी लोगों को नियुक्त किया जाय, तो अुससे लोगों को तनिक भी संतोष होनेवाला नहीं है। जब तक अंग्रेज सरकार अपनी गोरी फौज को (अबव् सस्पिशन), सन्देहातीत, नहीं रखेगी, तब तक अुसका कोअी भरोसा नहीं करेगा।

धर्माधर्म का जिसे ख्याल नहीं है अैसे अुद्दण्ड लोगों को 'रावण' कहने का रिवाज है। रावण सीता को अुठा कर जबरदस्ती लंका ले गया; लेकिन, अुसने भी सीता को वहाँ सुरक्षित रखा। दुर्योधन ने पांडवों का राज्य हजम किया, सो तो अुस समय की जनता हजम कर सकी; लेकिन, द्रौपदी की अवहेलना करते ही कौरवों ने प्रजा का विश्वास खो दिया। 'अदालत में जा कर सिद्ध करो, कानून का आश्रय लो,' कहने से जनता क्रुद्ध हो जायगी। यह जनता का अपमान है। फौजी कानून से देश को दबानेवाली सरकार को अगर सभ्यता का जरा भी ख्याल हो, तो अुसे अपनी फौज को काबू में रखना चाहिअे और अुसे शंकातीत बनाना चाहिअे।

अिस समय स्त्रियों का और लोगों का क्या कर्तव्य है, यह आज के 'हरिजन' में गांधीजी ने स्पष्ट किया ही है। हम पाठकों का अुसकी ओर विशेष ध्यान दिलाते हैं।

२६:२:'४२ का० का०

जमनालालजी का देहान्त

(श्री जमनालालजी का देहान्त किस प्रकार हुआ अिसके बारे में तरह तरह की गलत खबरें समाचारपत्रों में छपी हैं। खास वर्धा के लोगों को भी ठीक ठीक हाल मालूम नहीं है। अिसलिअे 'सर्वोदय' के पाठकों के लिअे सच्चा हाल यहाँ दिया जाता है।—सं०)

अिच्छा-मरण

वह हमेशा कहा करते थे, "मैं खटिया पर सड़ सड़ कर नहीं मरूंगा और न मरते समय किसी की सेवाअें लूंगा।" अुनकी भावना के अनुरूप ही अुन्हें सिद्धि मिली।

अुस दिन अेकादशी का व्रत था अुन्हें। प्रातः-काल स्नानादि से निवृत्त हो कर गोपुरी से वह अपने पुराने निवास-स्थान, बजाजवाड़ी, में अिसलिअे आये थे कि चीन के भाग्यविधाता सेनापति चैंग-काअी-शेक की खातिरदारी का समुचित प्रबन्ध वह खुद अपनी देखरेख में करें। हर छोटी-मोटी बात के बारे में अुन्होंने तफसीलवार हिदायतें दीं। गान्धीजी से फोन से कहलाया कि चैंग-काअी-शेक को यहीं ठहराया जाय।

बजाजवाड़ी से वह पूर्व-निश्चयानुसार अपनी पुरानी शहरवाली कोठी पर आये। अिधर वह यहाँ बहुत कम आया-जाया करते थे। अुनकी पुत्रवधू, छोटी पुत्री और जामाता आदि सब यहीं ठहरे थे। अुन सब के साथ फलाहार करने के विचार से आज वह वहाँ गये थे। अपने साथ डॉ० लोहिया को भी आग्रह-पूर्वक लेते गये। दूकान के लोगों से थोड़ी-सी बात करके वह अूपर गये। फलाहार किया। हमेशा की तरह फलाहार के समय काफी हास्य-विनोद भी हुआ। अपने थके हुअे दिमाग को कुछ विश्राम देने के लिअे वह बच्चों के साथ, जिनमें डॉ० लोहिया भी शामिल थे, ताश खेलने बैठ गये।

भोजन के बाद वह अक्सर आध घंटा आराम करते थे। आज भी वहीं गद्दी पर लेट गये। आराम कर चुकने के बाद अपने दामाद के साथ डेअरी के बारे में आध घंटे तक बात-चीत की। बात-चीत जारी रखने का वादा कर के वह शौच को गये। परन्तु यही बात-चीत आखिरी साबित हुअी।

शौच से आनेपर वह फिर लौट गये। अुनकी यह आदत नहीं थी। वह गद्दी पर कुछ बे-चैन-से करवट बदलने लगे। तब सबको शक हुआ कि अिन्हें कुछ हो रहा है। सब लोग अुनसे पूछने लगे। माताजी (जानकी देवी) को भी जगाया। वह अधिक बोल न सके। सिर्फ अितना ही कहा कि 'मेरा सिर फट रहा है। सिर में कुछ लगाओ'। अिधर दो-तीन दिनों से वह सिर भारी लगने की शिकायत किया करते थे। मगर किसी को क्या गुमान कि अुन्हें खून के दबाव की शिकायत है और यह प्रकृति की चेतावनी है?

बात की बात में वह बेहोश हो गये। डॉक्टरों को बुला भेजा। मुश्किल से अेक डॉक्टर आ पाये, अितने में वह अचेत हो गये। दूसरे डॉक्टर और सिव्हिल सर्जन तो अुनके अचेत होने के बाद पहुंचे। अुनका कोअी अिलाज नहीं हो सका। अेक होमियोपॅथिक हकीम ने मॅगफॉस की दो गोलियाँ दीं। वे भी नीचे नहीं अुतरीं; निकाल लेनी पड़ीं। सिर पर बर्फ और मिट्टी की पट्टी रखी। बाकी खून के दबाव के दौरे का कोअी अिलाज नहीं हो सका। देखने पर खून का दबाव की मात्रा ११० और २५० थी। बेहोशी से पहले तबीयत मचलाने लगी। अिसलिअे अुन्होंने बरतन के लिअे अिशारा किया। मूर्च्छित होने के बाद भी दो-अेक बार कै करने की कोशिश-सी अुन्होंने की; लेकिन कै हुअी नहीं।

वह दोपहर के पौनेतीन बजे पाखाने से लौट कर गद्दे पर आये और पौने चार बजे सब कुछ शान्त हो गया था। डॉक्टरों का ख्याल है कि पाखाने में ही अुनके भेजे की अेक धमनी फूट कर रक्त-स्राव शुरु हो गया होगा। अुन्हें तो यही आश्चर्य है कि वह पाखाने से अपने कमरे तक पहुँच ही कैसे पाये! गांधीजी खबर पाते ही सेवाग्राम से दवा ले कर दौड़े दौड़े आये। लेकिन अुसके पहले ही जमनालालजी की महान् आत्मा अपने कलेवर को त्याग कर विश्वात्मा में लीन हो चुकी थी!

दामोदरदास मूँदड़ा

स्तुत्य पितृनिष्ठा

स्व० जमनालालजी की मृत्यु के बाद अुनके दोनों सुपुत्रों ने अपने परम श्रद्धेय पिताजी की अुदारता के अनुरूप ही सब कुछ किया। श्री जानकीदेवी ने तो अपनी कुल व्यक्तिगत सम्पत्ति अुनके कार्य को समर्पण कर ही दी है। अुनके पुत्रों ने श्री जमनालालजी की शेष व्यक्तिगत सम्पत्ति, करीब छह लाख रुपये, भी सार्वजनिक कार्य को दे दी है। अिस प्रकार जमनालालजी की कुल जायदाद का लगभग आधा अुनके मृत्यु के बाद भी दान में दे दिया गया है। अिसके अलावा, बजाजवाड़ी के मकानों का पूर्ववत् अतिथियों के लिअे अुपयोग होता रहेगा और अतिथियों का प्रबन्ध भी बजाज-पुत्रों की ओर से ही होता रहेगा।

—सं०

सर्वोदय

पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

अप्रैल, १९४२
वर्धा

भगवान कैसे रक्षण करते हैं ?

[काका कालेलकर]

न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुं अिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम् ।

जब भगवान किसी की रक्षा करना चाहते हैं, तब पशुपाल की तरह हाथ में लकड़ी ले कर वे अुसके पीछे पीछे नहीं घूमते फिरते; लेकिन अुसे हर समय—अैन मौके पर—काम आनेवाली सद्बुद्धि से युक्त करते हैं ।

और जब भगवान किसी का नाश करना चाहते हैं, तब भी अपने हाथों अुसे बरबाद नहीं करते, किन्तु अपनी दी हुअी सद्बुद्धि छीन लेते हैं । फिर क्या पूछना है ? आदमी अैसा मतवाला और बेवकूफ बन जाता है कि वह अपने हाथों अपना सर्वनाश कर डालता है । अिसीलिअे पुरानी कहावत प्रवृत्त हुअी है कि पहले बुद्धि गायब होती है, बाद में पूंजी ।

जब दो पक्ष लड़ते हैं, तब हरअेक पक्ष मानता है कि विपक्षी की बुद्धि भ्रष्ट हुअी है, अुसके चारित्र्य का दिवाला निकला है और अुसे अुलटी ही सूझने लगी है । आज अंग्रेज और जर्मन, जापानी और अमेरिकन अेक-दूसरे के बारे में अैसा ही सोच रहे हैं । अिधर भगवान कहता है कि बुराअी का नाश करने के लिअे मैं हमेशा भलों का ही हाथ काम में लाता हूँ, अैसी बात नहीं है । मेरे पास 'सुन्द-अुपसुन्द न्याय' भी है । (सुन्द और अुपसुन्द बुराअी में अेक-दूसरे से बढ़े-चढ़े राक्षस थे । दोनों ने आपस में लड़ कर अेक-दूसरे को मार डाला और अिस तरह दुनिया को भयमुक्त किया ।) शस्त्र-युद्ध का यही तरीका दीख पड़ता है । लड़नेवाले दोनों पक्ष कहते हैं कि हम अिस युद्ध में विजय पा कर विजय के जोरों नयी विश्वरचना करनेवाले हैं । भगवान हँस कर कहते हैं, "आज तक कभी भी युद्ध के द्वारा नयी विश्वरचना नहीं हुअी है । विश्वरचना तो मेरा काम है । मैं अपने भक्तों के द्वारा वह कराता हूँ । प्रतिहस्तकों के द्वारा नहीं । प्रतिहस्तकों के द्वारा तो कूड़ेकचरे की सफाअी ही करनी होती है । जो मेरा हृदय समझ सकता है, वही मेरी नयी विश्वरचना में मददगार हो सकता है ।"

भगवान जब बचाना चाहते हैं, तब बुद्धि-योग प्रदान करते हैं । यह जैसी अनुभव की बात है, वैसी ही और भी अेक बात है, जिसे हमें भूलना नहीं चाहिअे ।

भगवान जब नवरचना करना चाहते हैं, तब शांति और सलामती के दिन खत्म कर डालते हैं। शांति और सुरक्षितता मामूली विकास के लिअे अच्छी हैं। किन्तु जब युगान्तर करना होता है, जब नव-निर्माण अभीष्ट होता है, तब पुरानी सारी व्यवस्था के अूपर हल ही चलाना पड़ता है। जब अैसे दिन आते हैं कि कल क्या होगा असका किसी को पता नहीं होता, पामर मनुष्य जो योजनाअें बनाता है वे भी देखते देखते टूटती हैं, जान और माल, परंपरा और अधिकार, सब खतरे में होते हैं, तब बुद्धि तेज हो जाती है, क्षुद्र वस्तु क्षुद्र दीख पड़ती है। जीवन के महत्त्व के तत्त्व जो हमेशा दबे हुअे और मिले हुअे रहते हैं, वे सब स्पष्ट और प्रकट होते हैं और हृदय-हृदय में आत्मा जाग्रत हो अुठता है।

हमें अिसे भगवान की कृपा ही समझनी चाहिअे कि अब हमारे लिअे अनिश्चितता के दिन आ गये, अब हम सोये पड़े नहीं रह सकते। अब हमें हरअेक चीज सोचनी पड़ेगी। हर चीज का जीवन-मूल्य कितना है, यह देखना होगा। अब हमारी सब शक्तियाँ जाग्रत हो अुठेंगी। अब जो सही है वही सही दीख पड़ेगा। जो तुच्छ वह तुच्छ ही दीख पड़ेगा। सदियों की राख हम पर जम गयी थी। भगवान ने अब अैसी आँधी चलायी है कि सारी राख अुड़ जाने वाली है और अग्नि प्रदीप्त होनेवाली है।

जब कभी भगवान किसी का अुद्धार करना चाहते हैं, तब अुसकी मामूली नियामतें अुससे छीन लेते हैं। अुसे अितना निराधार कर डालते हैं कि फिर सिर्फ हृदयस्थ भगवान के आधार पर ही वह जीना सीख जाता है। भगवान ने अैसे दिन हमारे भाग्य में लिखे हैं यह अुसकी असीम कृपा है।

२३ : ३ : '४२

सच्ची धार्मिकता

"धर्म के मामले में किसी तरह की भी जबरदस्ती नहीं होनी चाहिअे" (२-२५६)

"वह तुमसे हुज्जत करें तो अुनसे कह दो कि मैंने अपने आपको बिलकुल अल्लाह की मरजी पर छोड़ दिया है। यही अिसलाम शब्द के माअिने हैं। जिन्होंने मेरी बात मान ली अुन सब ने भी अपने को अुसी अीश्वर की मरजी पर छोड़ दिया है। जिन लोगों के पास दूसरी धर्म की किताबें हैं या जिनके पास नहीं हैं, अन सब से कहो कि तुम भी अपने को अेक अीश्वर की मरजी पर छोड़ दो। वे मान जायें तो अच्छा करेंगे। न मानें तो तुम्हारा काम कह देना ही है, अल्लाह अपने सब बन्दों को देखता है।" (३-१९)

"तुम में अिस तरह के आदमी होने चाहिअें जो लोगों को सब के साथ नेकी करने का अुपदेश दें, सब को नेक कामों में लगाअें और बुरे कामों से बचाअें, अैसे लोगों का ही भला होगा।" (३-१०३)

"हमने हर कौम के लिअे पूजा के अलग अलग तरीके ठहरा दिये हैं, जिन पर वह चलते हैं, अिसलिअे अिस बात पर नहीं झगड़ना चाहिअे। तुम्हें अुन्हें सिर्फ अीश्वर की तरफ बुलाना चाहिअे, सचमुच तुम सीधे रास्ते पर हो, और जो वे तुमसे झगडा करें तो कह दो अल्लाह सब जानता है कि तुम क्या करते हो।" (२२-६७,६८)

(कुरान की आयतें)

झूठे खयाल

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अेक मनुष्य, जाति या देश दूसरे पर अपना अधिकार कायम करता है, अुसे दबाता है या हमेशा डर में रखता है, अिस बात के पीछे अुसके सच्चे बल की अपेक्षा अक्सर अधिकार जमानेवाले राष्ट्र के बारे में अुस दूसरे शख्स, कौम या मुल्क के दिल में जो झूठे खयाल पैदा हो जाते हैं, वे ही होते हैं। खेतों में फसल के मौसम पर चिड़ियों और दूसरे जानवरों को डराने के लिअे जो 'मनअी' खड़े किये जाते हैं, वे बेचारे अेक तितली का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लेकिन अुनको देखते ही जानवरों के दिलों में अेक झूठा खौफ पैदा हो जाता है कि ये पुतले हमें खा या मार डालेंगे और अिसलिअे वे अुनसे दूर भागते रहते हैं। केवल आवाज करनेवाला खेलने का तमंचा किसी को अीजा नहीं पहुँचा सकता; फिर भी अगर कबूतरों के झुंड के सामने अुसकी आवाज कर दी जाय तो, सैंकड़ों की संख्या में होते हुअे भी, वे अुड़ जाते हैं। अिसका कारण अुस आवाज के बारे में अुनके दिल का अेक झूठा खयाल ही है।

यही बात मनुष्यों को भी लागू है। अेक का दबाना और दूसरे का दबना, अेक का मालिक होना और दूसरे का गुलाम होना, अेक का राज्य करना और दूसरे का रैयत बने रहना, अक्सर झूठे खयालों के जादू की बदौलत ही होता है। किसी वजह से जब किसी मनुष्य, जाति या देश को यह यकीन हो जाता है कि दूसरे किसी आदमी, कौम या मुल्क में अुससे ज्यादा बहादुरी या साधन-सामग्री है, तब, सच बात चाहे अिससे बिलकुल अुलटी ही क्यों न हो, वह अुस दूसरे से दब जाता है। दबाने के लिअे वास्तविक वीरता, ताकत, या साधनों की अपेक्षा अुनका दिखावा करने की हिम्मत और हिकमत की ज्यादा जरूरत होती है। जब किसी देश, कौम या व्यक्ति की तरक्की होने लगती है, तब अुसके दिल में दर असल ताकत की बनिस्बत आत्मविश्वास ही अधिक पैदा होता है। अुलटे, जिसकी हालत गिरने लगती है, अुसमें ताकत की अपेक्षा आत्मविश्वास ही ज्यादा घट जाता है।

अिस लड़ाअी ने बहुत-सी जातियों और देशों के बारे में यह बात बहुत साफ तौर पर दिखा दी है। हमारे देश के लोगों को हमेशा यह अुलाहना दिया जाता है कि हम तैंतीस, पैंतीस, चालीस कोटि आदमी नहीं हैं, मवेशी हैं, भेड़-बकरे हैं; अिसीलिअे मुट्ठीभर अंग्रेज हम पर राज कर सकते हैं। हम लोगों का भी यही खयाल हो गया था कि अंग्रेज-मात्र बहादुर स्त्री-पुरुष होते हैं, वे किसी से नहीं डरते। लेकिन सच देखा जाय, तो शुरू से अितिहास यही बताता है कि वीरता में, याने जंग की बहादुरी और कष्ट-सहन में, हिन्दुस्तान के सिपाहियों ने दुनिया की किसी भी जाति के सिपाहियों पर हमेशा सरसाअी दिखायी है। और खुद हमारे देश पर कब्जा भी अंग्रेजों ने अंग्रेजी फौज की अपेक्षा हमारी ही फौजों के जरिये किया था। अुन्हीं के जरिये आज अुनका कब्जा कायम है और अुनकी राज्यव्यवस्था भी हम ही लोग चलाते हैं। हमारी फौजों ने अुनके लिअे कुछ बाहरी मुल्क भी जीते हैं। फिर भी अंग्रेजों की विशेषता के बारे में अेक भ्रम के कारण और अपना आत्मविश्वास गँवा देने की वजह से हमने मान लिया और आजतक मानते हैं कि अुनमें अैसी

कोअी खासियत है जिसके कि कारण अुनका हम पर हुकूमत करना स्वाभाविक है, जरूरी है और ठीक भी है। वे अगर हमें जीने देते हैं, अूपर से कुछ सहूलियतें भी दे देते हैं, हमारी कुछ तकलीफें दूर करते हैं, शिकायतें सुनते हैं, हमें बोलने देते हैं, हमें अपने धर्म और रीति-रिवाजों का पालन करने देते हैं, हमें सरकारी ओहदे दे देते हैं, हमारे लिअे शिक्षा, न्यायदान, पुलीस वगैरा का थोड़ा-बहुत अिन्तजाम कर देते हैं, देश को अन्धाधुन्धी से बचाते हैं, तो यह सब अुनकी मेहरबानी है, बड़ी भारी अिन्सानियत है और अुनकी अूंची सभ्यता का, बाहोशी (दक्षता) और व्यवस्थाशक्ति का परिणाम है।

अंग्रेजों को जो सद्भाग्य हिंदुस्तान में प्राप्त हुआ, वही यूरोप की अन्य जनताओं को दूसरे देशों में हुआ। सभीका शरीर गोरे रंग का होने के कारण दुनियाभर में अेक अैसा खयाल फैल गया कि गोरे चमड़े में ही ये सब गुण कुदरती तौर से मौजूद हैं। अिस खयाल को अपने आप में और दूसरों के दिलों में पोसना अुनके हक में था, अिसलिअे अुन्होंने भी अिस खयाल को खूब बढ़ाया। और अिस तरह वे अपना आत्मविश्वास तो बढ़ाते रहे तथा हमारा तोड़ते रहे।

अिस भ्रम को सब से पहले दूर किया जापान ने रूस को १९०४-'०५ की लड़ाअी में हरा कर। लेकिन वह बात अेक अपवाद के रूप में मानी गयी। अेक तरफ से रूस को यूरोप की कुछ पिछड़ी हुअी कौम माना गया और दूसरी तरफ से जापान अेशिया के राष्ट्रों में अपवादरूप वीर राष्ट्र समझा गया। साधारण राय तो यही बनी रही कि 'यूरोप में ज्यादा बुद्धि है, ज्यादा बहादुरी है, ज्यादा स्वाभिमान है और ज्यादा मानवता भी है। यूरोप के लोगों के लिअे मरना कोअी बड़ी बात नहीं होती। अेक गोरा बच्चा या औरत भी अपनी जान दे देगी, मगर अपमान नहीं सहेगी। अपने जीते-जी वह अपने देश की स्वतंत्रता का नाश कभी नहीं होने देगी।'

लेकिन अिस लड़ाअी ने अिन सब खयालों को भ्रमपूर्ण साबित कर दिया है। क्या अिंग्लेंड और क्या जर्मनी, क्या पोलेंड और क्या ग्रीस, क्या फ्रान्स और क्या अिटाली—दुनियाभर में अब कोअी भी देश अैसा नहीं रहा कि जहाँ की जनता पराधीन हो कर और पराधीनता के सब अपमान बरदाश्त करती हुअी कभी जिन्दा ही नहीं रह सकती और जिसे जिन्दगी की अपेक्षा स्वाभिमान की कद्र बहुत ज्यादा है। हाँ, कुछ व्यक्ति अिस तरह के जरूर पाये जायँगे, और सभी देशों तथा युगों में पाये जायँगे। पर अेक समूचे राष्ट्र या कौम में—चाहे वह राजपूत, सिक्ख, पठान, गुरखा, तुर्क, मुगल, चीनी, जापानी, अंग्रेज, नाजी, कोअी भी क्यों न हो—अैसी विशेषता का अनुमान करना सिवा भ्रम के कुछ नहीं है। अिस बात में सिपहगरी करनेवाली पेशेवर जातियों में और गैरफौजी पेशा करनेवाली जातियों में कोअी ज्यादा फर्क नहीं है। जबतक आत्मविश्वास मौजूद हो, तबतक सिर्फ सिपाही ही सिपाही नहीं होता, बनिया भी सिपाही होता है। लेकिन आत्मविश्वास गायब हो जाय, तो पीढ़ियों से सिपाही होते हुअे भी वह गरीब भेड़ हो जाता है और आत्मविश्वासी बनिया अुग्र भेड़िया बन सकता है। अेक जमाने में राजपूतों को मुसलमानों ने जीत लिया, दूसरे जमाने में मराठों और सिक्खों ने मुसलमानों पर विजय पायी और तीसरे जमाने में अंग्रेजों ने तीनों को फतह कर लिया, अिसका कारण युद्ध-कला का अभाव या जंग का डर नहीं था, बरन

यह कि हारनेवालों ने अपना आत्मविश्वास खो दिया था और जीतनेवालों में वह बहुत बड़ी मात्रा में पैदा हो गया था। आज वही बात सिद्ध हो रही है और आगे भी होनेवाली है। जब हम अपना आत्मविश्वास फिर प्राप्त कर लेंगे, तब अहिंसकों का केवल अहिंसक संगठन अथवा हिंसक वृत्तिवालों की लाठी-सेना भी सफल मुकाबिला कर सकेगी।

अिस भ्रम का दूर हो जाना अिस वक्त बहुत ही जरूरी है। अिस समय अंग्रेजों की जगह-जगह हार हो रही है, अिसलिअे अुनकी बहादुरी का मजाक करना मुश्किल नहीं है। लेकिन अिसमें कोअी अिन्सानियत भी नहीं है। ओीसप ने कहा है कि छत पर बैठी हुअी बकरी भी रास्ते से जानेवाले भेड़िये को गालियाँ दे सकती है। लेकिन जिनकी आज जीत हो रही है अुनके बारे में हम गलत राय न कायम कर लें, अिसकी सख्त जरूरत है। कुछ अंश में यह बात आज हो रही है। चर्चिल साहब ने भी अनजाने अिसमें कुछ मदद पहुँचायी है। कहा जाता है कि 'जापानी बड़े बहादुर होते हैं, अुन्हें मौत की जरा भी परवाह नहीं होती, सैकड़ों की संख्या में वे सिर्फ मरने ही के लिअे मैदान में कूद सकते हैं और हारने पर या कोअी शर्म की बात हो जाने पर वे 'हारीकरी' (आत्महत्या) कर लेते हैं। अुनमें खुद की बहादुरी, अंग्रेजों की चतुराअी और जर्मनों की प्रबन्धशक्ति, अिन तीनों गुणों का मिलाप है,' वगैरा वगैरा। साथ साथ यह भी कहा जाता है कि 'वे बेहद क्रूर और हैवान होते हैं और अपने शत्रुओं से बहुत ही शर्मनाक व्यवहार करते हैं' आदि आदि। अिस तरह हमारे दिलों में अुनके लिअे अुचित से ज्यादा आदर और बेजा दहशत भी पैदा की जाती है। अिसका यही अनिवार्य फल है कि हमारा आत्मविश्वास कम होता जायेगा और अगर मुकाबिले का मौका आये, तो आज ही से हम अुसके लिअे अपने ही प्रयत्न से बेहिम्मत बनाये जा रहे हैं।

जगह जगह से खबरें आती हैं कि जहाँ जहाँ हमारे गोरे या देशी सिपाहियों की छावनियाँ बनी हैं, वहाँ वे जनता को कअी तरह से सताते हैं। ये लोग जब बस्तियों में घूमने निकलते हैं तो बन्दूक ले कर तो नहीं जाते। फिर भी अुनकी बदचलनी क्यों बरदाश्त की जाती है? कारण अितना ही है कि अुनके शरीर पर अेक खास ढंग की पोशाक होती है जिसके बारे में हमारे दिल में झूठे खयाल पोसे गये हैं। हमने यह समझ रक्खा है कि अुस पोशाक को पहनेवाले में कुछ अैसी अनोखी ताकत और हिम्मत होती है जिसका मुकाबिला मामूली आदमी नहीं कर सकते। जिस तरह चिड़ियाअें सैंकड़ों की संख्या में होते हुअे भी अेक बनावटी पुतले से डर कर भाग जाती हैं, अुसी तरह हम भी अपने से कम पढ़े-लिखे और कम बुद्धिवाले देहाती के बदन पर खाकी वर्दी देख कर डरते हैं, भाग जाते हैं और अुसकी हैवानियत बरदाश्त कर लेते हैं।

यह सब झूठे खयालों का परिणाम है। खाकी पोशाक में कोअी जादू नहीं है। न पठान, सिक्ख, राजपूत, गुरखा, मराठा, अंग्रेज या जापानी जाति का होने में ही कोअी जादू है। जो कुछ जादू है वह हमारे आत्मविश्वास की और दूसरे के प्रति आदर की मात्रा में है।

हम भिन्न भिन्न देशों और कौमों की—खास कर सिपहगरी करनेवाले वर्गों की—अिनसानियत और चरित्रनिष्ठा के बारे में झूठे खयाल न रखें। क्या चीनी-जापानी, क्या अंग्रेज-नाजी, क्या सिक्ख-पठान—सभी अपनी तीरंदाजी और जाति के अभिमान में हैवान से भी बुरे बन सकते हैं। शान्ति के दिनों में आर्यत्व भले ही रहता हो,

लेकिन लड़ाओी की आबोहवा में किसीमें आर्यत्व नहीं रहने पाता। अभी तो व्यासजी ने भगवद्गीता में लड़ाओी के अनिष्टों का जिक्र करते हुअे कहा है कि 'प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः' (अुसकी बदौलत स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं)। अवश्य, व्यासजी ने यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात कही है। अुन्होंने द्रौपदी के अपमान और भीम के रक्तपान का चित्र खींच कर यह दिखाया है कि आर्य कहलानेवालों की सभ्यता किस दर्जे तक नीचे अुतर सकती है। अिसलिअे हमें अिस भ्रम में नहीं रहना चाहिअे कि 'हमारे' सिपाही तो हमारे जान-माल और अिज्जत के रखवाले हैं और अिन्सान हैं, और शत्रु के सिपाही हमारी अिज्जत और जान-माल को लूटनेवाले और 'हैवान' होते हैं। सिपाहियों के मुंह ताके बिना ही हमें अपनी रक्षा आप करने रास्ता खोजना चाहिअे।

अिसके लिअे हममें यह आत्मविश्वास होना आवश्यक है कि हमारी स्वतन्त्रता और रक्षा हमारे ही हाथों में है; न तो वह अंग्रेजी सिपाहियों के हाथ में है और न देशी। और यह कि अब हमें वह स्वतन्त्रता हासिल करनी है और अपनी रक्षा के लिअे स्वावलम्बी बनना है। अिस लड़ाओी का कुछ भी नतीजा होनेवाला हो, लेकिन अुसका यह अेक निश्चित परिणाम तो अवश्य होगा कि अिस लड़ाओी के अन्त से पहले हमारा देश आजाद होगा। न वह अंग्रेजों के कब्जे में रहेगा, न जापानियों या नाजियों के, न किसी दल या जाति के या किसी देशी राजा के ही अधीन रहेगा। यहाँ तो सारे हिन्दुस्तानियों का स्वराज्य होगा।

निर्भयता का अभ्यास

हिम्मत, निर्भयता आदि महान् गुणों की शिक्षा मिलनी चाहिअे और हमें अुनकी कसौटी पर अुतरना चाहिअे। डरपोकपन तो अनीति माना जाना चाहिअे। कोअी मुझपर अैसा भयंकर आरोप करे कि तू व्यभिचारी है, और अगर मैं व्यभिचारी न होअूं, तो मुझे समझना चाहिअे कि अिलजाम लगानेवाले की गलती है। लेकिन यदि मैं हूँ, तो मुझे शरमिन्दा होना चाहिअे। कोअी मुझ पर डरने का आरोप करे, तो मुझे अैसा गुस्सा आना चाहिअे मानो किसीने मुझ पर अनीति का आरोप किया हो। अगर मैं डरपोक होअूं, तो मुझे शरमाना चाहिअे। अहिंसक निर्भयता का शिक्षण दिया जा सकता है। अिसकी कअी मिसालें हैं। रात को लालटेन के बिना बाहर जाने में डर लगता है। अकेले जंगल में जाने में डर लगता है। मैं कहूँगा अभ्यास करो, आदत डालो। देखें तो क्या होता है? सांप-बिच्छू काट खायँगे? क्या अुन्हें काटने के सिवा दूसरा कोअी धंधा ही नहीं है? सांप व्यर्थ नहीं काटता। जिस चीज से डर लगता हो, अुसीका अभ्यास करना चाहिअे। यहाँ के कअी लोग 'फाँसीघाट' की तरफ जाने से डरते हैं। यह अेक प्रकार की कायरता है। अुन्हें सोचना चाहिअे कि अिसमें डर कहाँ है। स्मशान से जो डरता हो, अुसे रात को स्मशान में जा कर सोना चाहिअे। भूतों से डर लगता हो, तो वहाँ जा कर देखना चाहिअे कि भूत कहाँ है। वह देखेगा कि भूत है ही नहीं। अगर वहाँ भूत दिखायी दे, तो अुससे बातें करनी चाहिअें। 'जिसने मुझे पैदा किया अुसीने तुझे भी पैदा किया है, तू तो मेरा भाअी है।'— यह कहते ही भूत गायब हो जायगा। अुसका डर भी निकल जायगा। डर भयानक दोष है। जब तक डर है, किसी भी नैतिक सद्गुण का विकास नहीं हो सकता।

(नागपुर जेल) —विनोबा

भिन्नधर्मीय विवाह

[काका कालेलकर]

जब पंडित जवाहरलालजी की बहन की शादी हुअी, तब अुन्होंने निमंत्रणपत्रिका अुर्दू भाषा में और रोमन लिपि में अपनी माताजी के नाम से छपायी थी। अुसपर बहुत चर्चा चली। कअी दिन तक चली। आखिरकार अुन्हें अपनी आत्मकथा में 'निमंत्रण पत्रिका और भाषा के सवाल' पर अेक पूरा अध्याय लिखना पड़ा। महात्माजी ने भी अुस समय पंडितजी के पास अपनी शिकायत भेजी थी अिसलिअे अुन्हें अिस विषय पर खूब सोचना पड़ा।

अब की बार पं० जवाहरलालजी की लड़की का विवाह अेक पारसी युवक के साथ हो रहा है। अिसपर भी खूब चर्चा हुअी है। अब की बार महात्माजी ने अिस विवाह-संबंध का समर्थन किया है, अिसलिअे हमें कुछ सोचना पड़ रहा है।

आज तक वर्णान्तरविवाह की ही चर्चा हिन्दू समाज में होती थी। प्राचीन काल में चाहे जो होता रहा हो, हमारे जमाने के हिन्दू समाज का हृदय आज तक वर्णान्तर विवाह के विरुद्ध ही रहा है। अब कहीं लोग वर्णान्तर विवाह को अप्रत्यक्ष संमति देने लगे हैं। कम-से-कम, अैसे विवाह होने पर समाज में हो-हल्ला कम होता है। जिस समाज में अुच्च-नीच-भाव का स्वीकार हुआ है, अुस समाज में विवाह के अनुलोम और प्रतिलोम जैसे भेद होते हैं। लड़का 'अुच्च' जाति का हो और लड़की अुससे 'नीचली' जाति की हो, तो अुसे अनुलोम विवाह कहते थे। अैसे मिश्र विवाह वर्णान्तर होते हुअे भी बुरे नहीं समझे जाते हैं। अिसीलिअे अुन्हें अनुलोम कहते हैं। अिसके विपरीत, जब लड़की अपने पति से अुच्च वर्ण की होती है, तब अुस विवाह को प्रतिलोम विवाह कहते हैं। समाज अैसे विवाहों की कड़ी निन्दा करता है।

जब श्री राजगोपालाचार्य की लड़की का विवाह गांधीजी के लड़के के साथ हुआ, तब दक्षिण में अुसकी खूब टीकाटिप्पणी हुअी। विवाहविधि का निर्णय करने में मेरा हाथ होने से मुझे दक्षिण के लोगों के लिअे कुछ लिखना पड़ा था। अुस वक्त मैंने यह दलील पेश की थी कि "रहन-सहन, सामाजिक दर्जा, जीवन का आदर्श आदि सब बातों को देखते हुअे गांधीजी का और श्री राजाजी का वर्ण तो अेक ही है। वह वर्ण कौन-सा है, सो तो मैं नहीं कहूँगा। लेकिन वर्ण अेक है अिसमें मुझे शक नहीं है। वर्णान्तरविवाह का मैं विरोध नहीं करता हूँ। लेकिन यह विवाह मेरे मन तत्त्वत: वर्णान्तर विवाह नहीं है।"

जब मेरे लड़के ने अेक जैन बनिया लड़की के साथ विवाह किया, तब किसीने यह सवाल नहीं अुठाया कि अैसा ब्राह्मण-बनिया विवाह अिष्ट है या नहीं। लेकिन मित्रों ने यह चर्चा अवश्य की कि सनातनी और जैन के बीच अगर शादी हुअी तो अुसे भिन्नधर्मीय शादी कहना चाहिअे या नहीं। अुस चर्चा में मैं नहीं पड़ा। चन्द मित्रों का कहना था कि वेदानुयायी सनातनी और वेदविरोधी जैन अेक धर्म के नहीं गिने जा सकते। दूसरे मित्र कहने लगे कि व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सनातनी और लिंगायत, जैन, बौद्ध, सिक्ख, आर्य-समाजी, ब्राह्मसमाजी जैसे अ-सनातनी तत्त्वत: चाहे जितने भिन्न भिन्न हों, लेकिन वस्तुत: भिन्न-धर्मीय नहीं कहे जा सकते। हिन्दू, फारसी, यहूदी,

अीसाअी और मुसलमान, अितने ही प्रधान और पृथक् धर्म माने जाते हैं।

में आज तक कहता आया हूँ कि आन्तर्जातीय विवाह अेवं वर्णान्तर-विवाह मुझे मान्य हैं। भिन्न-धर्मीयों के बीच विवाह मुझे पसन्द नहीं हैं। भिन्नधर्मीय विवाहों में मैं पाप नहीं देखता। लेकिन सामाजिक हित की दृष्टि से सोचा जाय, तो मुझे अैसे विवाह वांछनीय नहीं लगते।

लोग कहते हैं, 'तो क्या आप सरीखे छोटे-बड़े लोगों की राय या पसन्दगी पर ये सब बातें निर्भर हैं? अैसी बातों में शास्त्रग्रन्थ, और धर्मकारों का अभिप्राय तथा सनातन रूढ़ि का ही खयाल रखना चाहिअे।'

यह चर्चा जब बढ़ती है तब, 'धर्म का आधार क्या है? विवाहविधि धार्मिक है या सामाजिक? पाप और पुण्य किस बात पर निर्भर हैं?'—आदि अनेक मौलिक, गूढ़ और जटिल प्रश्न अुपस्थित होते हैं।

अिन्दिरा-फीरोज विवाह भिन्नधर्मीय विवाह है, अिसमें कोअी शक नहीं। हिन्दूधर्म में और झोरास्टर के पारसी धर्म में यह रिवाज नहीं है कि किसी भी भिन्नधर्मीय को दीक्षा दे कर अपने धर्म में लिया जाय। हिन्दू, यहूदी और पारसी ये तीन धर्म 'जाति'-धर्म हैं। जन्म और परम्परा को मानते हैं। अपनी जाति के लोगों को बहिष्कृत करने की अिनकी तैयारी रहती है। लेकिन बाहर के लोगों को अपने धर्म में लाने की कोशिश ये कभी नहीं करते। अिसलिअे यहाँ पति या पत्नी अपना धर्म छोड़ कर दूसरे के धर्म में नहीं जा सकती।

अेक जमाना था कि जब अैसे वधू-वरों को व्यावहारिक विधि से शादी करते समय—सिविल मैरेज करते समय—कोर्ट के सामने जाहिर करना पड़ता था कि हमारा कोअी मजहब नहीं है। आज भी जब किसी पारसी को किसी गैर-पारसी से विवाह करना होता है, तब जाहिर करना पड़ता है कि अब में पारसी नहीं हूँ।

लोग पूछते हैं, 'अैसे भिन्नधर्मीय विवाह मान्य करने से क्या हिन्दू धर्म का नाश नहीं होगा।' अगर अैसा कोअी डर है, तो वह दोनों धर्मों को होना चाहिअे। अगर हिन्दू-पारसी विवाह हो जाय तो पारसियों को भी तो सोचना चाहिअे कि हमारे धर्म का क्या होगा? अगर ठीक तरह से सोचा जाय, तो हर अेक धर्म के लिअे यह लोकसंख्या खोने का सवाल नहीं होना चाहिअे। सोचने की बात यह है कि जब जीवन के आदर्श भिन्न हैं तब शादी करना ठीक होगा या नहीं? और सन्तान किस धर्म की गिनी जायगी?

अब हम जरा अेक मिसाल ले कर सोचें। हिन्दू समाज में हरअेक खानदान के गोत्र होते हैं और सब वर्णों के लिअे हिन्दू धर्म का यह नियम है कि कोअी अपने गोत्र में शादी न करे। जिस तरह भाअी-बहन की शादी नहीं होती, अेक ही खानदान में शादी नहीं होती, अुसी तरह अेक गोत्र में भी शादी नहीं होनी चाहिअे, यह नियम है।

अब सवाल यह है कि अगर भिन्न-गोत्रीय विवाह के आग्रह के कारण गोत्र नहीं टूटते हैं, तो भिन्न-धर्मीय विवाह होने के कारण धर्म या जातियाँ क्यों कर टूटेंगी। गोत्रों और जातियों का नियम है कि पति का गोत्र और पति की जाति पत्नी को प्राप्त होती है। धर्म के बारे में भी अैसा किया जा सकता है।

अैसा करना अिष्ट है या नहीं यह सवाल अलग है। आज की हालत में लोग अिसके लिअे तैयार होंगे या नहीं, यह भी सवाल अलग है। किन्तु सर्वधर्म-समभाव को माननेवाले हम लोग धर्म का परिवर्तन गोत्र और जाति के परिवर्तन

से भिन्न क्यों मानें ? अिस विषय में क्या कोअी सार्वत्रिक नियम या रुढि बनायी जाय? अथवा यह बात व्यक्ति की पसन्दगी पर छोड़ दी जाय ?

मैंने अूपर कहा है कि भिन्नधर्मीय विवाह मुझे पसन्द नहीं है। लेकिन भिन्नधर्मीय विवाह किसे कहें, यह भी अेक बड़ा सवाल है। हम लोग आज कल खानपान के बारे में पहले के जैसे आग्रही या संकुचित नहीं रहे हैं। जब शादी का सवाल आता है, तभी हम जाति और धर्म का खयाल करते हैं। सन्ध्या, नमाज, अुपासना, प्रेअर आदि बातें तो समाज में करीब करीब छूट ही गयी हैं; खानपान का सवाल बहुत कम रहा है; पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धांत का विचार ही नहीं; व्रत, त्यौहार, अुत्सव का रहस्य रहा नहीं। अैसे जो खानदान हैं अुन सब का अेक ही धर्म है, जिसे हम अुपेक्षा-धर्म कह सकते हैं। अैसे अुपेक्षा-धर्मी खानदानों पर चाहे 'हिन्दू' का लेबल हो, मुसलमान का हो या पारसी का हो, अथवा अीसाअी या यहूदी का हो, वह सिर्फ लेबल ही है। असलियत अेक ही है।

जब अुपेक्षाधर्मी व्यक्तियों का अभिमान रख कर भिन्न भिन्न धर्मों के लोग आपस में लड़ते हैं, तब मुझे तो हँसी आती है। अिस झगडे की बुनियाद में 'धर्म' का तत्त्व तो शायद ही देखने में आता है। यहाँ या तो कोरा अभिमान होता है या राजनैतिक वोटों का हिसाब।

कोअी धर्मनिष्ठ आदमी यदि किसी युवक या युवती से कहे, 'तुम्हारा हृदय किसी भी सिद्धान्त को मानता हो या न मानता हो, तुम्हारे रस्मरिवाज, रहन-सहन, खान-पान, अुत्सव और अुपासना, चाहे जैसे हों या न भी हों, हमें अुससे मतलब नहीं है, लेकिन जब तुम शादी करो तब तो अपनी जाति, फिरके या धर्मसम्प्रदाय के बाहर तुम्हें नहीं जाना चाहिये', तो अुसकी बात सुनी जायगी या नहीं यह सवाल हम छोड़ दें, तो भी अैसी धर्मनिष्ठा का सच्चा स्वरूप क्या है, यह सवाल अुठे बिना नहीं रहता। अिन्दिरा हिन्दू होते हुअे भी अेक पारसी के साथ अुसने शादी की या फीरोज गांधी अेक पारसी होते हुअे भी अेक हिन्दू स्त्री के साथ शादी करने को तैयार हो गये, अैसी शिकायत करने-वालों को पहले यह भी देखना चाहिये कि अिन्दिरा और फीरोज गांधी के रहन-सहन, विचार, आदर्श और सामाजिक निष्ठा में क्या कोअी बहुत बड़ा फर्क दीख पड़ता है।

हम सब सिर्फ शादी को छोड़ कर बाकी की सब बातों में अुपेक्षाधर्मी बन गये हैं। यह अच्छा हुआ या बुरा, अिसके बारे में मतभेद हो सकता है; लेकिन और सब बातों में अुपेक्षा-वृत्ति रखते हुअे अगर हम केवल शादी के बारे में सम्प्रदायनिष्ठ रहने का आग्रह करेंगे, तो वह आग्रह टिकनेवाला नहीं है और अुसका कोअी प्रभाव भी पड़नेवाला नहीं है।

अिस विषय में अेक बहन ने चन्द मौलिक और दूरगामी प्रश्न पूछे हैं। अुनका अूहापोह आगे करना है। अैसे अूहापोह के पहले जो मुख्य बातें ध्यान में लेनी चाहिअें, वे ही अिस लेख में दी हैं।

यंत्रवाद का अनर्थशास्त्र

[जवेरभाअी पटेल]

१. अिफरात और फुरसत

प्रकृति से अधिक से अधिक लाभ अुठाने के अुद्देश्य से मनुष्य ने अनादिकाल से अुत्पादन के साधनों में संशोधन करने का लगातार यत्न किया है। कम-से-कम मेहनत में अधिक-से-अधिक अुत्पादन ही अुसका अुद्देश्य रहा है। अिसी प्रयत्न में वह काष्ठयुग से पाषाणयुग में आया और पाषाणयुग में से धातुयुग में आया। भाप की शक्ति का पता लगने पर तो अुसके अुत्पादन के तरीकों में जड़मूल से परिवर्तन हो गया। अैसा जान पड़ा मानों पृथ्वी पर स्वर्ग आ गया हो। मनुष्य मारे आनन्द के मतवाला हो गया। अुपभोग के साधनों की प्रचुरता देख अुसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

अिस प्रकार यंत्र को मनुष्य कामधेनु समझने लगा। अुसके दिल पर अुसकी सामर्थ्य की अद्भुत छाप पड़ी। लेकिन क्या आगे चल कर अनुभव से अिसका समर्थन हुआ? क्या अुसकी मंशा पूरी हो गयी?

वह तो विपुलता और श्रम से छुटकारे की तलाश में था। अुसे विपुलता तो नसीब हुअी। लेकिन अुसकी बदौलत वह और भी ज्यादा दुःखी हो गया है। श्रम से तो वह नहीं बच सका। जिस यन्त्र की मदद से वह अपनी मेहनत बचाने की आशा करता था, वह महज अेक अुत्पादन का अुपकरण बन गया और मनुष्य को अुसकी सेवा करनी पडी। यन्त्र ने मनुष्य की मेहनत नहीं बचायी; सिर्फ अुसकी अुत्पादन-शक्ति बढ़ा दी।

यंत्र का आर्थिक प्रयोजन यही है कि वह अुत्पादन को सस्ता कर दे। नहीं तो अुसका कोअी महत्त्व नहीं रह जाता। लेकिन जब हम यह कहते हैं कि हाथ की अपेक्षा यन्त्र से चीजें ज्यादा सस्ते में बनती हैं, तब हम यों ही अटकलपच्चू बात कह देते हैं। दर असल हमारा अभिप्राय यह होता है कि चीजें अेक तादाद में हाथ की अपेक्षा मशीन से ज्यादा सस्ते में बनती हैं। यह परिमाण जितना बड़ा होगा, अुतनी ही अुसकी कीमत सस्ती होगी। यंत्र का यही नियम है। यन्त्र से जब पूरा पूरा काम लिया जाय, तभी वह आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होता है। यन्त्र से थोड़ा काम ले कर हम अुसका अुपयोग नहीं कर सकते। लोगों की माँग पूरी करने के लिअे आप अुत्पादन नहीं करते, बल्कि यन्त्र को काम देने के लिअे। माँग चाहे ज्यादा हो या कम, यन्त्र को अुससे कोअी मतलब नहीं। अर्थात्, जो लोग यन्त्र चलाते हैं, अुनके लिअे आजादी नहीं है। बल्कि यह कहना चाहिअे कि दस्तकारियों की अपेक्षा यन्त्रोद्योग में ज्यादा कमरतोड़ और कडी मेहनत करनी पड़ती है।

यह परिस्थिति देख कर हिन्दू पुराणों का अेक पुराना किस्सा याद आता है। अेक आदमी किसी बडे योगी के पास गया और कहने लगा, "महाराज मुझे भूत का मन्त्र सिखाअिये; मैं भूत को प्रसन्न करूंगा।" योगी ने कहा, "कोअी हर्ज नहीं, बच्चा। लेकिन अेक बात कभी न भूलना। भूत को लगातार काम देते जाना; वरना पछताना पड़ेगा। अभी से आगाह किये देता हूँ।" अुस आदमी ने मन्त्र सीख लिया और भूत बुलाया। अुसके पास ढेरों काम था, अिसलिअे कअी दिनों तक वह भूत को काम में लगा सका। लेकिन आखिर वह दिन आ ही

गया जब काम कम होने लगा और अुसे भूत का डर लगने लगा। निदान, बेबस हो कर वह योगी के पास पहुँचा और गिडगिडा कर सहायता माँगनें लगा। योगी ने कहा "भाअी मेरे, मैं तो पहले ही तुम्हें सावधान कर चुका था। खैर, हिम्मत मत हारो। अुस भूत के पास यह कुत्ता ले जाओ और कह दो कि वह अिसकी पूँछ सीधी कर दे। अुसे सदा के लिअे काम मिल जायगा"।

अिस कहानी में जिसे भूत कहा गया है वही आजकल का यन्त्र है। आदमी को फुरसत देना तो ठीक, वह अुसे हमेशा मारे जाने के खौफ में रखता है। आदमी को अुसे किसी-न-किसी तरह काम में व्यस्त रखना पडता है। नहीं तो लेने के देने पड जाते हैं। अिसलिअे जिस तरह अुस भूत को कुत्ते की पूँछ सीधी करने का फिजूल काम दिया गया था, अुसी तरह यन्त्रों को फिजूल की चीजें बनाने का काम दिया जाता है। अिन चीजों की कोअी माँग नहीं होती। वह भूत तो सिर्फ आप ही काम करता था; लेकिन यन्त्र अपने साथ मनुष्य को भी जोतता रहता है।

जब तक सम्पत्ति का स्रोत मानवीय परिश्रम था, तब तक अुत्पादन और मांग का सामंजस्य होता था और दोनों अेक-दूसरे का नियमन करते थे। लेकिन यन्त्र दाखिल होते ही अुद्योग का स्वरूप ही बदल गया। अब अुसका अुद्देश्य मानवीय सुख के बदले नफा कमाना हो गया। बहुत बडे पैमाने पर अेक ही ढंग का टकसाली अुत्पादन होने लगा। शरीरश्रम की अपेक्षा यन्त्र सस्ता पडने लगा। अिसलिअे शरीरश्रम की प्रतिष्ठा और प्रचार हलके हलके कम होने लगा। अमर्यादित यन्त्रप्रयोग ने पुरानी वेतन-पद्धति को अुलट-पुलट कर दिया। पुरानी पद्धति में परिश्रम के अनुसार क्रयशक्ति का विभाजन होता था। अिस तरह, मजदूर जिस आमदनी से अपनी जरूरतें पूरी करते थे, अुस आमदनी से हाथ धो बैठे। चीजों की बहुतायत थी, लेकिन अुनका अुपभोग अिने-गिने आदमी ही कर सकते थे। विपुलता के बीच में दीनता कराह रही थी। कैसी विप्रतिपत्ति है!

अिस प्रकार यन्त्रों को दाखिल करने से मनुष्य का अुद्देश्य विकृत रूप में पूरा हुआ। अत्यधिक अुत्पादन के रूप में अुसे समृद्धि प्राप्त हुअी और बेकारी के रूप में फुरसत नसीब हुअी।

२. यन्त्रवाद और समाजवाद

जैसा कि हम अूपर देख चुके हैं, यन्त्र अमिश्र वरदान नहीं है। पहले-पहल यन्त्रों की चमक-दमक से लोग अुनपर रीझ गये थे। लेकिन थोडे ही दिनों के बाद अुन्हें महसूस होने लगा कि यन्त्र ने तो अैसे अैसे सवाल खडे कर दिये हैं, जिनका अुन्हें कोअी गुमान नहीं था। शरीरपरिश्रम की जगह ले कर अुसने पुरानी वेतन-प्रणाली छिन्न-भिन्न कर दी और जनता की क्रयशक्ति घटा दी। फलतः अिधर तो यन्त्र बडे पैमाने पर अुत्पादन करते चले गये और अुधर लोगों के पास चीजें खरीदने का साधन ही नहीं रहा। अिस प्रकार माल की खपत कम होती गयी और अुत्पादन बेतहाशा बढता चला। अुपयोग और अुत्पादन के समन्वय की समस्या समाजसुधारकों के सामने मुँह बा कर खडी हो गयी। लोग चीजों को अधिक मात्रा में किस प्रकार बरतने लगेंगे याने क्रयशक्ति का विभाजन कैसे किया जाय, अिसी की फिक्र अुन्हें पडी।

अुनके सामने तीन रास्ते थे: (१) यन्त्रों को हटा देना, (२) यन्त्र का अुपयोग मर्यादित कर देना, (३) समाज के ढाँचे को ही बदल देना। पहले दो अुपायों के प्रयोग की तो वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यन्त्रों ने चीजों का अुत्पादन बहुत आसान कर दिया था। यन्त्रों के अिस

अपरिमित अुपकार के कारण वे अुनपर फिदा थे। अुन्हें यह खयाल भी नहीं था कि यन्त्रों की भी कोअी खास समस्या हो सकती है। जो कठिनाअियाँ आती थीं, वे सब तात्कालिक समझी जाती थीं। अिसलिअे अुन्होंने तीसरे रास्ते का अनुसरण करके यह समस्या हल करने की कोशिश शुरू की।

ओवेन के दिल में पहले पहल यह विचार आया कि "जब तक बडे बडे अुद्योग व्यक्तियों के हाथ में रहेंगे और वे अुन्हें अपने निजी फायदे के लिअे प्रतियोगिता की बुनियाद पर चलायेंगे, तब तक बेकारी की तथा क्रयशक्ति के विभाजन द्वारा अुत्पादन और अुपयोग में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या का समाधान होना नामुमकिन है। अिसलिअे अुनका संचालन सहकारी या सामुदायिक ढंग से होना जरूरी है। अगर अितना कर लिया जाय तो यंत्र से किसी तरह की दिक्कत नहीं होगी"। अिसी बीच विदेशों के बाजारों में माल की खपत होने लगी। अब तो अिन सुधारकों ने सोचा कि व्यापार के विस्तार की कोअी मर्यादा ही नहीं है और वे फूले न समाये।

लेकिन मार्क्स के ध्यान में यह बात आ गयी कि विदेशों के बाजारों में माल की खपत हो जाने से यह सवाल हल नहीं हो सकता। अुस समस्या का क्षेत्र बढ़ जाने के कारण संकट की घड़ी सिर्फ टल भर गयी थी। अब वह समस्या राष्ट्रीय ही नहीं रही, आन्तरराष्ट्रीय हो गयी। संकट की घड़ी टल तो गयी, लेकिन सदा के लिअे नहीं। क्योंकि वह दिन भी आयेगा ही जब आन्तरराष्ट्रीय व्यापार के विस्तार की हद आ जायगी। और जब वह हद आ जायगी, तब बेकारी की समस्या और भी अुग्र रूप में फिर अुपस्थित होगी। मार्क्स की यह भविष्यवाणी थी कि जब यांत्रिक अुत्पादन का अन्त होगा, अुस वक्त तक बेकारों की संख्या बेहद बढ़ गयी होगी।

आज बेकारी की समस्या ने जो भीषण रूप ले लिया है, अुसपर से स्पष्ट है कि अिस समस्या के निषेधात्मक पहलू के बारे में वह कोअी स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं करा सका। मार्क्स का दर्शन साफ था। विधायक पहलू के बारे में वह यह जानता था कि अगर यंत्रों का अमर्यादित प्रयोग होता रहेगा, तो बेकारी का मसला हल नहीं होगा। अिसलिअे अुसने यह सुझाव किया कि बेकारों को बगावत करके अुत्पादन के साधनों पर कब्जा कर लेना चाहिअे। लेकिन अिस विषय में अुसका दर्शन साफ नहीं था। अुसे आशा थी कि अराजक में से भी कुछ-न-कुछ शुभ परिणाम निकलेगा।

समाजवाद में अेक बहुत प्रचलित तर्क-दोष है। समाजवादी यंत्र तो चाहते हैं, लेकिन अुसके दुष्परिणामों से बचना चाहते हैं। अुनका यह खयाल है कि पूँजीवादी अुत्पादन-प्रणाली को बदल देने से वे यंत्रों से पूरा पूरा लाभ अुठा सकेंगे। लेकिन सिर्फ यंत्रों के स्वामित्व में बदल कर देने से यांत्रिक अुत्पादन का नियम नहीं बदल जाता। यांत्रिक अुद्योग विदेशी बाजारों के भरोसे चलते हैं, और जबतक यह स्थिति रहेगी, तबतक प्रतियोगिता की आवश्यकता भी बनी रहेगी। अिसके लिअे कारखानों में आदमियों की संख्या और अुनका वेतन घटाना होगा। फिर वही अतिशय अुत्पादन और अपर्याप्त अुपयोग का सवाल अुपस्थित होगा। यांत्रिक अुत्पादन में हम विदेशी बाजारों और होड़ को टाल ही नहीं सकते। आज जिस यंत्र को मालिक चलाते हैं अुसीको कल मजदूर चलायेंगे। लेकिन अुन्हें भी अुन्हीं आर्थिक नियमों का अनुसरण करना होगा और अुसी रास्ते चलना होगा।

३. पिछली लड़ाअी का सबक

पिछले यूरोपीय महायुद्ध ने यह बात स्पष्ट कर दी कि वह बाजारों के लिअे होड़ थी। अुसने सारे राष्ट्रों पर यह बात प्रकट कर दी कि संसार में केवल व्यापारी राष्ट्र ही बलवान हैं, और सब कमजोर हैं। जिनके पास यंत्र नहीं हैं वे राष्ट्र बेकरार हैं और यंत्रवाले राष्ट्रों के गुलाम हैं।

व्यापारी दृष्टि से बलवान् राष्ट्र कृषिप्रधान देशों से कच्चा माल सस्ते दामों में खरीदते थे और अुन्हें पक्का माल बहुत महँगा बेचते थे। अिससे जो नफा होता था अुसकी बदौलत वे मालामाल हो गये। मानो उद्योगप्रधान और कृषिप्रधान देशों ने यह श्रमविभाग कर लिया कि जितना कुशल श्रम होगा वह तो अुद्योगप्रधान राष्ट्र करेंगे और अकुशल श्रम कृषिप्रधान राष्ट्र।

लड़ाअी के बाद सभी राष्ट्रों को अुद्योग और व्यापार पर कब्जा कर लेने की जरूरत मालूम होने लगी। अब अुद्योग का महत्व बहुत ज्यादा बढ़ गया। पहले वह अेक व्यक्तिगत बात थी, जिसका राज्य से कोई सीधा संबंध नहीं था। लेकिन अब तो वह सर्वथा अेक राजनैतिक चीज हो गयी है। आज हर अेक राष्ट्र अपने औद्योगिक आयोजन राष्ट्रीय दृष्टि से बनाता है। अपने अुद्योगों की रक्षा के लिअे हरअेक ने चुंगी की दीवारें खड़ी कर दी हैं और विदेशी बाजारों से प्रतियोगिता करने के लिअे मजदूरी के दर कम कर दिये हैं। सरकारें अमन के वक्त मूल अुद्योगों को सहायता देती हैं और लड़ाअी के वक्त अुनपर कब्जा कर लेती हैं।

लड़ाअी के बाद हरअेक राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने की कोशिश करने लगा। आत्मरक्षा के लिअे यंत्र दाखिल किये गये। नतीजा यह हुआ कि अिंग्लैंड, जर्मनी जैसे देशों का जो अेकाधिकार था, वह नष्ट हो गया। अब तक जो राष्ट्र अधिकतर खेती ही करते थे, अुन्हें अब सिर्फ कच्चा माल बेच कर अुसके बदले पक्का माल खरीदने से सन्तोष नहीं होता था। वे भी आत्मनिर्भर होने की चेष्टा करने लगे। कमजोर राष्ट्रों के लिअे तो यन्त्र स्वतन्त्रता और जातीय सत्ता के प्रतीक हो गये। यंत्रों ने ही साम्राज्यवाद को बनाया था, अब अुन्होंने अुसे बिगाड़ना शुरू किया। क्योंकि अब राष्ट्रों में औद्योगिक श्रमविभाग नहीं रहा और बलवान राष्ट्रों को नफा मिलना बन्द हो गया। अिसलिअे साम्राज्य की सत्ता और लाभ अब अुतरती कला पर आ गया। अब कृषिप्रधान देशों को पक्के माल के लिअे कच्चा माल भेजने की अुतनी जरूरत नहीं रही। अिसलिअे हलके हलके औद्योगिक राष्ट्रों को अन्न मिलना भी दुशवार हो रहा है।

शुरू शुरू में तो सिर्फ ग्रेटब्रिटन के ही पास यंत्र थे। अुसके बाद जर्मनी, फरान्स और बेलजियम में यंत्र दाखिल हुअे। जर्मनी, ग्रेटब्रिटन का सबसे जबरदस्त और आक्रमणशील प्रतिद्वन्द्वी था। वह ग्रेटब्रिटन में बननेवाली सभी चीजें बनाता और ब्रिटेन से सस्ती बेचता था। अुन्नीसवीं सदी के अन्त में अमेरिका की बनी चीजों से दुनिया के बाजार भर गये और करीब करीब अुसी वक्त जापान भी अेक औद्योगिक राष्ट्र के नाते मैदान में अुतरने लगा। अिटाली, पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया, स्पेन, ग्रीस, सभी यंत्रों से माल बनाने लगे।

हिन्दुस्तान पहले विलायत को कपास भेज कर मैनचेस्टर का कपड़ा खरीदता था। अब वह अपनी मिलों में आधे कपास का अुपयोग कर लेता है। वह अपनी कपड़े की जरूरत का पौन

हिस्सा आप पूरा कर लेता है और अिसके अलावा अमेरिका को कपास भेजता भी है। लड़ाअी के बाद चीन भी विदेशों से मशीनें ला कर अपना माल यंत्रों पर बनाने लगा, खास कर कपड़ा। ब्रेजिल अपनी सारी जरूरतें आप पूरी करता है।

अपनिवेशों से यह आशा की जाती थी कि वे ग्रेटब्रिटन की कच्चे माल और अन्नसामग्री की माँग पूरी करें और अुससे पक्का माल खरीदें। लेकिन अब वह अिस दृष्टि से अुपयोगी नहीं रहे। कनाडा में तो यांत्रिक अुत्पादन खासी तरक्की पर है। वहाँ से मोटरगाड़ियाँ दूसरे देशों को जाती हैं। आस्ट्रेलिया का भी वही हाल है। वहाँ से जूते बाहर जाते हैं। दक्षिण आफ्रिका ने स्थानीय अुद्योगों को सहायता देने का अुपक्रम किया है।

सारी दुनिया में यही हो रहा है। प्रत्येक राष्ट्र सिर्फ आत्मनिर्भर होने की ही चेष्टा नहीं कर रहा है, वह विदेशों में बेचने के लिअे अुत्पादन करने लगा है। बाजारों के लिअे, कच्चे माल के लिअे, अुपनिवेशों के लिअे, और जरूरतें बढ़ाने की शिक्षा पाने को तैयार पिछड़ी हुअी कौमों के लिअे, बलाढ्य राष्ट्रों में जो प्रतियोगिता जारी है वह और भी अुग्र और आततायी हो रही है। लेकिन अब चूसने के लिअे बहुत कम देश बाकी रहे हैं। अिसलिअे शोषकोंकी आपस में स्पर्धा हो रही है। वर्तमान महायुद्ध अुसी स्पर्धा के अुग्र स्वरूप का फल है।

जैसी कि मार्क्स की भविष्यवाणी थी, आन्तर-राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार की अब हद आ गयी है और समाज का ढांचा बदलने के सिवा दूसरा कोअी चारा ही नहीं रह गया है।

४. छुटकारे का रास्ता

तो, अब क्या हो? यन्त्र अपनी शक्ति की मर्यादा तक पहुँच चुका है। अुसने बहुत ज्यादा अुत्पादन किया और अब माल का अुपयोग करनेवालों की तलाश करनी पड़ रही है। अब यन्त्रों को मर्यादित करने का सवाल हमारे सामने है। आज की तरह यंत्रोत्पादन जारी ही कैसे रह सकता है? अगर संसार को अेक के बाद अेक लड़ाअियों के अनन्त भँवरजाल में डूबने से बचाना है, तो अुपयोग के लिअे अुत्पादन के सिद्धान्त के बिना दूसरा कोअी चारा ही नहीं है। अिसका यह मतलब है कि हरअेक राष्ट्र का अुद्देश्य आत्मनिर्भरता होना चाहिअे, न कि विदेशों के बाजारों के लिअे अतिशय अुत्पादन। अिस अुद्देश्य की पूर्ति के लिअे यन्त्रों का अुपयोग मर्यादित करना और अपनी औद्योगिक विचारप्रणाली में ही परिवर्तन करना आवश्यक है। आअिन्दा हमारा औद्योगिक लक्ष्य भी मानवीय सुख होगा, न कि मुनाफा।

यह प्रश्न सम्पत्ति के अुत्पादन का नहीं, बरन विभाजन का है। मगर यंत्र तो सम्पत्ति का वितरण करने के बदले अुसका केन्द्रीकरण करते हैं। सम्पत्ति के वितरण के दो तरीके हैं: अेक तो अुद्योग और दूसरा भिक्षा। कुछ लोगों का यह कहना है कि कामों के घंटे घटा दिये जायें और यांत्रिक अुत्पादन के काम में राष्ट्र के सारे व्यक्तियों को लगा दिया जाय। लेकिन अगर यह अुत्पादन राष्ट्र की जरूरतें पूरी करने के ही लिअे हो और विदेशी बाजारों के लिअे न हो, तो अुत्पादन की कीमत राष्ट्र के बूते से बाहर की होगी। क्योंकि जो लोग यह कहते हैं कि काम के घंटे कम करो, वे यह भी तो नहीं कहते कि मजदूरों को अुनके जीवन के लिअे आवश्यक वेतन से कम वेतन दो। अगर हम भिक्षा दें, तो भी वही बात है। मानवीय सुख का सिद्धान्त स्वीकार करने के बाद यही अनुभव होगा कि और किसी शक्ति की अपेक्षा

मानवीय शक्ति का प्रयोग करना ही आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी है।

अेक परिवर्तन का परिणाम दूसरे परिवर्तन में होता है। यंत्रों के लिअे कम से कम आदमियों की जरूरत होती है। अिसलिअे यंत्रव्यवस्था में थोडे लोग अिकट्ठे करके कारखानों द्वारा अुत्पादन करना आसान है। लेकिन अगर वे अधिक से अधिक आदमियों को काम देना चाहें, तो अुन्हें जनता के बहुत बड़े समूहों को कारखाने के क्षेत्र में ले जा कर बसाना होगा या अुन्हें हररोज लाने-लेजाने का प्रबन्ध करना होगा। अिस अस्वाभाविक व्यवस्था से भला कौन-सा लाभ होगा? और अगर स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिअे ही अुत्पादन करना हो, तो दूर दूर से माल और आदमी ला कर अिकट्ठे करने और अुनका फिर-से वितरण करने की जरूरत? अिससे तो यही नतीजा निकलता है कि अुत्पादन का विकेन्द्रीकरण ही सब से अधिक युक्ति-संगत तरीका है।

तो फिर यंत्र का क्या अुपयोग करें? अूपर जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, अुनपर से यंत्र के अुचित स्थान की कल्पना हो जानी चाहिअे। यह प्रश्न जाँच और निरीक्षण का है। जाँच के बाद जहाँ यह पाया जाय कि यंत्रों की बदौलत मनुष्य बेकार हो रहे हैं, या अींधन और अैसे खनिज पदार्थों का तेजी से नाश हो रहा है जिनकी कमी पूरी नहीं की जा सकती, वहाँ से सार्वजनिक हित की रक्षा के लिअे यंत्रों को हटा देना चाहिअे। लेकिन जहाँ यंत्रों का अुपयोग रूखे और भारी मेहनत के काम करने के लिअे हो सके, वहाँ अुनका प्रयोग करना चाहिअे। कुछ मूलभूत अुद्योगों के लिअे यंत्रों से काम लिया जा सकता है। सीने की मशीन, क्रेन और साअिकिल वगैरा का अुपयोग हो सकता है। ये अुदाहरण सूचक हैं। अैसे अुपकरण बनाये जाने चाहिअें जिनके द्वारा मनुष्य अपने हाथ से काम कर सके। वे मनुष्य का श्रम कम और हलका अवश्य करें, लेकिन अुस कहानीवाले भूत की तरह अुसकी नाक में दम न करें।

यंत्र बनाम शरीरश्रम

आजकल के यन्त्र शरीरशक्ति या हाथ की कारीगरी की जरूरत दिन-पर-दिन कम करते जाते हैं। लेकिन मानवीय श्रम को ही तर्क करने में और भी आगे बढ़ते हैं। ...यान्त्रिक अुद्योगों के अन्तिम-से-अन्तिम विकास में मानवीय श्रम को बिलकुल तर्क कर देने पर अधिकाधिक जोर दिया जाता है। ...अैसी हालत में अुत्पादन का खर्च कम करने का स्पष्ट रास्ता यह है कि मानवीय श्रम को जड़मूल से अुड़ा दिया जाय, या अतिशय कम कर दिया जाय। और खास कर अमेरिका और जर्मनी में अिस तरह का "रेशनलाअिजेशन" आश्चर्यकारक हद तक पहुँचा दिया गया है। ... यन्त्र दाखिल करके मनुष्यश्रम को बाद देने की क्रिया हमेशा की अपेक्षा अधिक तेजी से चल रही है। ...मानवीय श्रम को बिलकुल ही अुड़ा देना आजकल अुत्पादन का खर्च कम करने का प्रमुख साधन है।

—जी. डी. अेच्. कोल

रचनात्मक कार्यक्रम

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

४

रचनात्मक कार्यक्रम के जुदे जुदे विषयों पर ब्योरेवार विचार करने से पहले, अिस काम का अच्छी तरह आरंभ कैसे किया जाय, अिसके बारे मे हम थोड़ा सोच लें।

अिसे अच्छे अिन्तजाम के साथ शुरू करने के लिअे बेशक कॉंग्रेस कमेटियाँ ही अुपयुक्त संस्थाअें हैं। अूपर से नीचे तक अिन कमिटियों का अेक सिलसिला बन गया है। लोग कॉंग्रेस का नाम खूब अच्छी तरह जानते हैं, अुनके दिलों में अुसके लिअे अिज्जत है और अुससे अैसे कामों की आशा भी की जाती है। अपनी हस्ती या ताकत बनाये रखने के लिअे सरकार की मेहरबानी पर भरोसा करना अथवा अपने कामों को किसी अेक जाति या मजहब के लोगों तक ही सीमित रखना, अुसके सिद्धान्तों के खिलाफ है।

लेकिन कुछ खेद के साथ कहना होगा कि बहुत-से स्थानों की कॉंग्रेसकमेटियाँ ही खुद अितनी शुद्ध नहीं रही हैं कि वे अिस प्रतिष्ठा को निबाहें और अुनसे जो आशा की जाती है अुसे पूरा कर सकें। वे नहीं जानतीं कि अुनके सच्चे बल का आधार किस जगह है और किन किन कामों के जरिये अुनकी जड़ें मजबूत हो सकती हैं। अुनके दिल में अभी तक यह भावना घर किये हुअे है कि देश का स्वराज्य और स्वातन्त्र्य सरकारी कानून से बनी हुअी संस्थाओं में—म्युनिसिपालिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, धारासभा वगैरा में—बँटा हुआ है और अिन संस्थाओं में जो अधिकार हैं, अुन्हें प्राप्त करनेवालों की जड़ें मजबूत हो जाती हैं। अिसलिअे अिन सरकारी संस्थाओं पर कब्जा कर लेना और अुनका कारोबार अपने हाथों में ले लेना, ये कॉंग्रेस कमेटियाँ अपना असली ध्येय समझती हैं।

नतीजा यह है कि अिन संस्थाओं में दाखिल होने के लिअे, सिर्फ दूसरे राजनैतिक पक्षों से ही नहीं, बल्कि आपस में भी, होड़, अीर्ष्या तथा चुनाव के दूसरे दोष पैदा हो गये हैं। कॉंग्रेस कमेटियाँ भी जनता की बजाय पार्टियों की प्रतिनिधि बन बैठी हैं और भीतरी दलबन्दियों का शिकार हो रही हैं। अिसके दो परिणाम हुअे है: अेक जनता के मन में कॉंग्रेस के प्रति कुछ अनादर बढ़ता जा रहा है और दूसरे यह कि सेवकों का अेक वर्ग कॉंग्रेस की तरफ से अुदासीन हो रहा है।

धारासभाअें और स्थानीय स्वराज्यसंस्थाअें राजनैतिक सत्ता के विविध केन्द्र तो हैं। अिसलिअे अुनपर कब्जा करने का अिरादा कॉंग्रेस बिलकुल छोड़ नहीं सकती। लेकिन याद रहे कि ये संस्थाअें जनता के प्रतिनिधियों के बनाये हुअे कानूनों से नहीं बनी थीं। बरन अुनका विरोध और असम्मति होते हुअे भी बनाये गये कानूनों के आधार पर कायम हुअी हैं। लोकमत कुछ भी क्यों न हो, सरकार ने अपनी मर्जी की संस्थाअें बना दीं और जितने अधिकार देना चाहा अुतने ही दिये। ये संस्थाअें बनाने में सरकार ने सिर्फ अुन्हीं पक्षों का खयाल किया जो केवल कानूनी आन्दोलन के कायल हैं और कभी कानूनभंग, असहयोग आदि के रूप में प्रत्यक्ष विरोध करने का विचार नहीं करते। अपने असली बल में फर्क न होने देते हुअे

जितने अधिकारदान से सरकार अिन पक्षों को खुश कर सकती थी और अुनका सहयोग पा सकती थी, अुतना ही वह देती रही है। अिसके अलावा अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के लिअे वह अिन संस्थाओं में हमेशा कुछ अैसे तत्त्व दाखिल करती रही है, जिनसे आपस की गुटबन्दी और झगडे-टण्टे बने ही रहें।

कॉंग्रेस का ध्येय अिन झगड़नेवाले दलों में से अेक या अुनमें सब से बड़ा तथा विजयी दल होना ही नहीं है। अुसका ध्येय तो जनता को अिस प्रकार संगठित और मजबूत करना है कि वह ताकतवर आवाज अुठा कर कह सके कि अिस तरह का कानून बनना चाहिअे, अिस प्रकार की संस्था कायम करो, आदि। और ब्रिटिश या किसी और सल्तनत की ताब न हो कि वह अुसकी बात टाल सके। यह तभी हो सकता है जब कि कॉंग्रेस कमिटियाँ अपनी नमाज पढ़ने के लिअे धारासभा तथा स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं की तरफ मुंह करने के बदले जनता की तरफ करें और सिर्फ चुनाव के वक्त जनता की मिन्नतें न करें; बरन अुसे बलवान बनायें।

यह तो रचनात्मक कामों की व्यवस्थापूर्वक योजना बनाने और अुन कामों का संचालन करने से ही हो सकता है।

जहाँ की कॉंग्रेस कमेटी अितनी समझदार और दक्ष है, वहाँ अुस कमेटी को और जहाँ वह कमेटी अुदासीन हो, वहाँ अिस काम की लगन-वाले कॉंग्रेसवृत्ति के दूसरे लोगों को, अिस काम का भार अुठाना चाहिअे। ठीक अुसी तरह जिस तरह हम किसी बड़ी परिषद के अधिवेशन के मौके पर स्वागत-समिति बना कर प्रबन्ध कर लेते हैं। याने परिषद को सफल बनाने के लिअे जिस तरह हर छोटे-मोटे काम के लिअे जवाबदार आदमियों के मण्डल बना कर अुन्हें अेक, दो या अधिक काम सौंप दिये जाते हैं और वे अुन्हें पूरा करते हैं, अुसी तरह रचनात्मक कार्यक्रम के छत्तीस (या कम-ज्यादा) कामों में से जिन जिन कामों के लिअे अपने हलके में क्षेत्र हो, अुनमें से हर अेक की जिम्मेवारी अेक या अधिक व्यक्तियों को सौंप दी जाय और वे अुसे अुठा लें।

मेरे खयाल से अिन कामों पर अमल करने के लिअे भले ही अेक अेक देहात अेक स्वतंत्र विभाग समझ लिया जाय। लेकिन अिसका व्यवस्थित विचार करने और योजना बनाने के लिअे अेक तहसील या मण्डल से छोटा और जिले से बड़ा विभाग अनुकूल न होगा। याने किसी तहसील या जिले के लोगों की अेक समिति को सारी तहसील या जिले के लिअे अिस काम का जिम्मा लेना चाहिअे। कुछ काम अैसे होंगे जिनका अिन्तजाम हर अेक देहात को अेक अेक स्वतंत्र अिकाअी समझ कर करना होगा। कुछ अैसे होंगे जिनके लिअे दो-चार या आठ-दस देहातों का अेक मण्डल बनाना होगा। और कुछ अैसे भी होंगे जिनके लिअे सारी तहसील या जिले को ही अिकाअी मान कर चलाना होगा।

अिसका आरम्भ दो तरह से किया जा सकता है:—

जहाँपर अैसे कार्यकर्ताओं का अेक दल मौजूद हो जिनमें आपस में मेल है और जिनका अपने क्षेत्र की जनता से निकट सम्पर्क है, वहाँ वे दूसरे होनहार और दिलचस्पी लेनेवाले स्त्री-पुरुष कार्यकर्ताओं को अिकट्ठा करके अपने क्षेत्र के सारे रचनात्मक कामों के प्रबन्ध का विचार करें और हरअेक काम के लिअे अेक अेक जवाबदार संचालक तथा सहायकमण्डल बना लें। जहाँ अैसा कोअी बनाबनाया दल न हो, वहाँ तहसील या जिले के कार्यकर्ताओं और

अुत्साही नागरिकों का अेक छोटा-सा सम्मेलन करा कर अिस विचार का प्रचार करना होगा और शुरू में अैसे छोटे-छोटे कार्यक्रम बनाने होंगे जो जल्दी पूरे किये जा सकें। अैसे सम्मेलन तीन से ले कर सात दिन के शिबिरों के रूप में करना अुपयोगी होगा। अुतने दिनों के लिअे वहाँ कुछ समय तो सामुदायिक जीवन और कार्यक्रम को दिया जाय, और बाकी के समय में अपने अपने क्षेत्र में रचनात्मक कामों का प्रबन्ध करने के व्यवहार्य मार्गों का विचार किया जाय। रचनात्मक कार्यक्रम या अुसके किसी खास अंग की महिमा गाने या सुनाने में ही बहुत समय न बिताया जाय। यह मान कर चलना चाहिअे कि सम्मेलन में आये हुअे व्यक्ति रचनात्मक कार्यक्रम की जरूरत को समझते हैं। और अिसलिअे सिर्फ अमल करने के तरीकों की ही चर्चा की जाय।

अिस काम की प्रेरणा भले ही प्रान्तीय समिति से मिले। लेकिन मेरी राय में अूपर बताये हुअे सम्मेलन ज्यादा से ज्यादा अेक जिले के लोगों के ही हों। अगर अेक तहसील के हों, तो और भी अच्छा। सम्मेलन में शामिल होनेवाले कार्यकर्ताओं और दूसरे दिलचस्पी लेनेवाले व्यक्तियों की संख्या ज्यादा से ज्यादा सौ तक हो।

अिसी सिलसिले में मैं अपनी 'व्यवहार्य अहिंसा' ('प्रैक्टिकल नॉन वाअिओलेन्स')* वाली लेखमाला में से नीचे लिखा परिच्छेद यहाँ देता हूँ:—

"हर अेक ग्राम-मंडल में कार्यकर्ताओं के अेक ही तन्त्र की सेवा करनी चाहिअे और अुन सब को सम्मिलित जिम्मेवारी से काम करना चाहिअे। हाँ, वे अपनी प्रवृत्तियों के अलग अलग महकमे बना सकते हैं और हर अेक महकमे की अलग अलग समितियाँ भी बना सकते हैं। अुसी प्रकार ग्राममंडल के अेक-दूसरे से जुडे हुअे अुपविभाग भी बना सकते हैं।

यह जरूरी नहीं है कि अिस तंत्र की रचना के लिअे बाकायदा चुनाव हो। वे अपने आप ही मुकर्रर हो जायँ, तो कोअी हर्ज नहीं है। क्योंकि अेक बात पक्की है कि अगर जनता के सभी प्रमुख दलों को ग्राममंडल में विश्वास न हो और अगर वह नौजवानों को बड़ी तादाद में आकर्षित न कर सकता हो, तो वह ज्यादा काम कर ही नहीं सकेगा। लोग अुसकी प्रवृत्तियों में योग दें, यही अुसके बाजाप्ता चुने हुअे होने की निशानी है।

जिला, प्रान्तीय, मध्यस्थ जैसी अूपर की संस्थाओं के अुसे मंजूरी देने की बाबत यह नीति हो सकती है कि अगर अेक ही ग्राममंडल में काम करनेवाले बहुत-से तन्त्रों में नाम कमाने के लिअे होड़ हो रही हो, तो अेक को भी मंजूरी न दी जाय। हरअेक से कह दिया जाय कि या तो वह मंजूरी के बिना काम करे, या सब मिल कर काम करने का कोअी रास्ता निकालें। तंत्र के अंदरूनी झगड़े अुन्हें अपने आप निपटाने चाहिअें। अूपर की संस्था को अुनमें दखल देने से अिनकार करना चाहिअे और जब तक वे अपने झगड़े निपटाते नहीं हैं, तब तक किसी भी तन्त्र को मंजूरी नहीं देनी चाहिअे।

हरअेक तन्त्र को अपना विधान और नियम बना ही लेने पड़ेंगे। मार्गदर्शन के लिअे कुछ

* यह लेखमाला 'सर्वोदय' में क्रमशः तथा सस्ता साहित्य मण्डल, न्यू देहली द्वारा 'अहिंसा विवेचन' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की गयी है।

नमूने सुझाये जा सकते हैं। लेकिन अुनमें अपनी अपनी योग्यता के मुताबिक फेरबदल करने की आजादी हरअेक को होनी चाहिअे। कुछ बुनियादी सिद्धान्त बेशक सबके लिअे समान रहेंगे ही।" (सर्वोदय पृष्ठ ५७६–७७)

अुक्त सम्मेलन रचनात्मक कामों के अनेक अंगों में से नीचे लिखी बातों की योजना बगैर किसी बड़े नेता के मार्गदर्शन या संचालन के बना सकता है और अुसे अपनी शक्ति के अनुसार अमल में लाने का निश्चय कर सकता है:—

१. **सेवादल**—जो चौकी-पहरा दे, लूट-खसोट, हमला-हुल्लड़, आग-बाढ़ आदि संकटों के मौकों पर काम आये और सफाअी, दवा-दारू आदि काम भी करे।
२. अपने देहात या ग्राममण्डल की पैदावार और आयात-निर्यात वगैरा का हिसाब कर के लोगों के फायदे की सलाह देनेवाली अेक समिति।
३. जनता की विश्वासपात्र निधि-समिति के द्वारा रचनात्मक कामों के लिअे पैसों और चीजों के रूप में निधि अिकट्ठी करना।
४. सूत के जरिये आवश्यक चीजों की खरीद-बेच का प्रबन्ध करना और अिस तरह सरकारी सिक्कों की जरूरत कम करना।
५. आर्थिक विषयों में सहकारिता (को-ऑपरेटिव) के तत्व का प्रयोग करना।
६. खादी और ग्राम अुद्योगों का निर्माण।
७. गोपालन और जीवदया। (मवेशियों के प्रति क्रूरता का निवारण)।
८. राहत काम—जैसे कुंअे, रास्ते, आदि बनवाना तथा सस्ते अनाज आदि का अिन्तजाम करना।
९. साक्षरता और सामान्यज्ञान प्रचार।
१०. हरिजन, आदिवासी, घुमक्कड़ जातियाँ, गुनहगार कौमें वगैरा वर्गों के साथ होनेवाले सामाजिक तथा दूसरी तरह के अन्याय दूर करना।
११. अलग अलग कौमों, जमातों और दलों के आपस के सामाजिक सम्बन्धों में सुधार करना और अुनमें मेलजोल बढ़ाने के कार्यक्रम बनाना।
१२. पड़ोस के ग्राममंडलों और गाँववालों से सम्बन्ध जोड़ना।

सार्वजनिक कार्यक्रम

कोअी अैसा भारतवासी नहीं है—चाहे अुसके राजनैतिक विचार कुछ भी हों और चाहे अुसकी जाति या धर्म कुछ भी हो—जो अिस देश के लिअे पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं चाहता हो। अिस कार्यक्रम में अेक भी अैसी बात नहीं है जिसके सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है। यह कार्यक्रम सबके लिअे है और अिसमें सब कुछ सम्मिलित है। अिसमें हम सभी के लिअे—छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े के लिअे—विकास की काफी जगह है। यह जितना पुरुषों के लिअे अुपयोगी है, अुतना ही स्त्रियों के लिअे—जितना बच्चों के लिअे अुतना ही बूढ़ों के लिअे भी। सच पूछिये तो स्त्रियाँ तो अिसमें बहुत-कुछ कर सकती हैं। मैं आशा करता हूँ कि अिसके लिअे सबमें अुत्साह होगा और सभी अिसपर बुद्धि और बल के साथ—श्रद्धा और तीव्रता के साथ—अमल करेंगे, जिसमें भारतवर्ष जल्द-से-जल्द अपने अभीष्ट को पा सके।

—राजेन्द्रप्रसाद

गड़ा हुआ धन

(अेक सच्ची घटना)

[के. अे. व्यंकटरामैया]

अुस दिन वर्षा की झड़ी लग रही थी। अिटगी अुत्तर कैनारा जिले में अेक छोटा-सा गाँव है। यहाँ साल में दो सौ पचास अिंच वर्षा होती है। लेकिन आज तो दस अिंच पानी बरस चुका था। पूरे तीन सौ पैंसठ दिनों के साल में धारवाड़ में पच्चीस अिंच और बेंगलूर में तीस अिंच वर्षा होती है। लेकिन अिटगी में तो अेक ही दिन में दस अिंच वर्षा हुअी।

सारे दिन रिमझिम रिमझिम पानी लगातार बरस रहा था। दिन कुछ अुदास-सा लग रहा था। लेकिन वह गाँव तो बड़ा प्रसन्न दिखायी दे रहा था। गायें और भैंसे बेधड़क हवाखोरी कर रही थीं। अुन्हें पानी की तनिक भी पर्वाह नहीं थी। न अुन्हें मलेरिया का ही डर था। वहाँ के स्त्री-पुरुषों को भी किसी बात का डर नहीं लगता था। अपने अपने मकानों के बरामदों में बैठ कर बड़े मजे में गपशप कर रहे थे। बीच बीच में जो कहकहे लगते थे अुनसे अुनका आनन्द प्रकट था। पत्तों से झड़नेवाली वर्षा की बून्दों से बच्चे खेल रहे थे। ये लोग बड़े हट्टेकट्टे और तगड़े हैं। अुनके चेहरों पर हिम्मत और स्वास्थ्य की सुर्खी है। बच्चे भी बड़े फुर्तीले और होशियार हैं। अुनकी शकल पर से कोअी नहीं कह सकता कि ये मलेरिया से पीड़ित विभाग में रहते हैं। गाँव तो मलनाड़ में बसा है। लेकिन आधुनिक सभ्यता अभी अिस गाँव तक नहीं पहुँच पायी है।

अितने में अेक काला-सांवला, बिखरे बालों-वाला बूढ़ा धीरे-धीरे आया। अुसने नागेश हेड़गे को प्रणाम किया और बरामदे के अेक कोने में जा बैठा।

बूढ़ा बोला,

"हेड़गेजी, क्या यह सच है कि गांधी महात्मा अपनी जेल की कोठरी से अेकाअेक अन्तर्धान हो गये?"

"नहीं तो। तुमसे किसने कहा?"

"सभी तो कह रहे हैं। मालूम पड़ता है कि कल रात को जब जेलर ने कोठरी में ताला लगाया, अुस वक्त महात्माजी थे। लेकिन दूसरे कैदियों की गिनती करके ज्यों ही जेलर लौटा, तो महात्माजी नदारद! कोठरी बिलकुल खाली पड़ी थी।"

"अरे, ये फिजूल बातें हैं। अैसी बे-सिर-पैर की बातों में विश्वास न किया करो। महात्माजी कोअी बाजीगर थोड़े ही हैं, जो अिस तरह गायब हो जायें?"

"पुलीस! पुलीस!! पुलीस!!!"

घर के बरामदे में गाँव के बच्चों का जमघट लग गया। कंधों पर बन्दूक रखे हुअे पुलीस के सिपाहियों का अेक जत्था तेजी से नागेश हेड़गे के घर की तरफ बढ़ रहा था। अुनके पीछे लोगों की भीड़ लगने लगी। पुलीस के पास आते ही मकान के सामने की भीड़ कुछ हट गयी।

दरवाजे पर अेक धक्का मारा गया। पुलीस अन्दर घुस गयी। औरतें और बच्चें बाहर निकाल दिये गये। भात की अेक हांड़ी बाहर फेंक दी गयी। पानी तपाने के पीपे को ठोकर से अुड़ा दिया। वह धड़ाम-से जा गिरा। किवाड़ों में

ताला लगा कर अुसमें मुहर लगा दी गयी। पुलीस का अफसर फिर लोगों की भीड़ की तरफ मुड़ा और अपना कमरबन्द संभाल कर झटके के साथ होंठ फड़काता हुआ बोला:—

"सरकारबहादुर ने बादशाहसलामत के खिलाफ बगावत करने और बाजाब्ता टैक्स अदा न करने के जुर्म की सजा के तौर पर यह मकान जब्त कर लिया है।"

"नागेश हेड़गे और दूसरे कअी आदमियों को दीवारों के पीछे बन्द कर दिया है और औरतों को अुनके घरों की दीवारों के बाहर निकाल दिया गया है। लेकिन सरकार और टैक्सों के बीच अेक चौड़ी दीवार खड़ी है," अेक छोटा-सा लड़का बोला। अुसे धप्प-से अेक धौल जमायी गयी। लड़का 'अरे बापरे!' कह कर चम्पत हो गया। लड़का बेतहाशा दौड़ा। अुसकी रफ्तार देख कर पुलीस के जवान की हिम्मत अुसका पीछा करने की नहीं हुअी। लेकिन अुसने अपना गुस्सा पास ही खड़े हुअे दो अधेड़ आदमियों पर अुतारा और अुनपर अपनी छड़ी का प्रयोग किया।

बादशाह का हुक्म बजा कर पुलीस की टुकड़ी ने रास्ता नापा।

रास्ते पर पार्वतम्मा खड़ी थी। अुसकी गोद में दो साल का अेक बच्चा था और दूसरे बच्चे अुसे घेर कर चारों तरफ खड़े थे। वह अपनी पतली साड़ी के अंचल से अुस छोटे बच्चे को पानी से बचाने की कोशिश कर रही थी। नागेश हेड़गे के चार भाअियों की स्त्रियाँ, अुसकी बहन, अुसकी बूढ़ी मां और छ महीने से ले कर ग्यारा साल तक की अुम्र के कअी बच्चे, सब बेचारे पानी से भीग रहे थे।

अुत्तर कैनेरा जिले के सत्याग्रहियों ने कर-बन्दी का आन्दोलन छेड़ दिया था। अुनसे किसी न किसी तरह लगान वसूल करने की सरकार ने ठान ली थी। अुसी सिलसिले में अुसने यह नया तरीका अख्तियार किया था। सत्याग्रही जेल बड़ी खुशी से चले जाते हैं। लेकिन अुनकी स्त्रियाँ और बालबच्चे अगर घरों से बाहर निकाल दिये जायँ तो?

अिन स्त्रियों और बच्चों को अिस तरह भीगते हुअे देख गाँववालों से नहीं रहा गया। अुन्हें अुनपर बहुत दया आयी। अुन्होंने अुनसे बड़ी आजिजी के साथ हो कहा, 'चलो, हमारे घर में चल कर आश्रय लो।'

अुस बुढ़िया ने कहा, "आश्रय! हमें आश्रय की क्या परवाह है! अिन दिनों आश्रय सिर्फ दगाबाजों को ही मिलता है।"

"लेकिन बहिनो, तुम कम-से-कम मेरे यहाँ तो आ सकती हो। नहीं तो अिन बच्चों को जुकाम हो जायगा," गाँव के पटेल ने कहा।

"क्यों? हम अपने ही घर के बरामदे में बैठेंगी। हमारे घर के देशभक्त-मालिक जेल में बन्द हैं," अुस मानिनी माता ने कहा।

"तुम रोटी कहाँ पकाओगी?"

"यहीं"।

"क्या कहा? ये औरतें यहाँ दालान में पकायेंगी और खायेंगी? अैसा नहीं हो सकता। हम यह ताला तोड़ डालेंगे," बाअिलअली ने कहा।

फिर क्या था? फौरन तड़ाक-से ताला तोड़ दिया गया और दरवाजा खुल गया। लोगों की भीड़ घर के अन्दर घुस गयी। अुन्होंने दरवाजे के चौखटे में से किवाड़ निकाल कर झाड़ी में फेंक दिये। प्रतीकार का जोर तोड़ देने के लिअे पुलीस ने जिस नये तरीके से काम लिया था, अुसका यह पहला जवाब था। अुस दिन से सत्याग्रहियों के घरों के अगवाड़े और पिछवाड़े के दोनों दरवाजे खुले हुअे रहने लगे।

मानों वे सभी मित्रों का स्वागत कर रहे हों और पुलीस को जतला रहे हों कि वसूली के लिअे माल कुर्क करना बिलकुल फिजूल है। सरकार ने जब्त किये हुअे मकान का ताला तोड़ कर अुसे दखल कर लेने के अपराध में श्री पार्वतम्मा और दूसरी स्त्रियों को अेक अेक साल की सख्त सजा दी गयी। अुस परिवार के पाँच आदमी और सात औरतें, कुल बारा व्यक्ति, जेल में गये। बच्चे कारवार के बालकाश्रम में भेज दिये गये।

सबसे छोटे भाअी श्री रामकृष्ण अभी बाहर थे। अुक्त घटना के कुछ महीने पहले मा और अुसकी छहों बहुओं ने बैठ कर सलाह की। परिवार की स्त्रियों की अुस परिषद में रामकृष्ण भी निमन्त्रण से अुपस्थित था।

माता ने कहा, "देखो, यह अपने परिवार का सारा सोना-चांदी है। यह हमारी सारी जंगम जायदाद है। अब अितना ही बचा है। बाकी सारी स्थावर और जंगम सम्पत्ति सरकार ने हड़प ली है। हमे अब अिन्हीं के भरोसे कुछ साल काटने पड़ेंगे। अिसलिअे, देखो रामकृष्ण, तुम सत्याग्रह मत करो। बाहर ही रहो और हमारे अिस 'आपद्धन' की हिफाजत करो।" दूसरी स्त्रियों ने मा की बात का समर्थन किया। सारा का सारा सोना और चांदी गला कर अेक पीतल के बर्तन में बन्द किया गया और फिर अुसपर मुहर लगा दी गयी। फिर रामकृष्ण ने अुस बर्तन को अेक बगीचे में पूर दिया। सिर्फ वही अकेला जानता था और बड़ी चौकसी रखता था।

दो-अेक महीने बाद रामकृष्ण को भी सजा हुअी। सारे परिवार में अुसी की सजा सब से कम थी—केवल छ महीने की! कहना न होगा कि वही सब से पहले छूटा। वह 'पैरोल' पर रिहा किया गया। रिहा होते ही, वह हमेशा की तरह कांग्रेस के दफ्तर में नहीं गया। न तो अुसने अपने मित्रों की तलाश की और न अपने भाअियों या बहिन के बच्चों की। जहाँ अुसने अपनी थाती पूर कर रखी थी, वहीं के लिअे वह सीधा रवाना हुआ। बगीचे तक पहुँचते पहुँचते अंधेरा हो गया।

"अरे! यहाँ तो कुछ भी नहीं है!!"

रामकृष्ण ने रातभर में सारा बगीचा छान डाला। बड़े तड़के श्री चन्नमा नाम की हरिजन स्त्री आयी। सुपारी के पेड़ों पर से झड़नेवाले पत्ते अिकट्ठे करना अुसका नित्यक्रम था। अुसने रामकृष्ण को देखा। अुसकी सूरत अुतर गयी थी, बाल बिखर रहे थे और होश ठिकाने नहीं थे।

"हाय! किसीने हमारे परिवार के तमाम गहने चुरा लिये! लेकिन कौन विश्वास करेगा कि कोअी अजनबी चोर अुन्हें चुरा कर ले गया? क्या मेरी भाभियों को विश्वास होगा? मेरे भाअी विश्वास करेंगे? वे कहेंगे कि मैं सिर्फ बहाना बना रहा हूँ; मैं सारे गहने हजम करना चाहता हूँ। हाय भगवान्, यह क्या हुआ? हमारा सारा घर तबाह हो गया! मेरे सभी भाअी चौपट हो गये! बन्धुप्रेम का वह रेशमी नाजुक धागा टूट गया!! हरे राम! अब क्या करूं? कैसे करूं?"

चन्नम्मा ने अुसे ढाढ़स बँधाने की कोशिश की। लेकिन वह अुसकी बकवास सुनता ही नहीं था। वह हरिजन स्त्री अुसके रिश्तेदारों को खबर देने चली। लेकिन वह खबर अुस स्त्री से कहीं अधिक तेजी से दौड़ी और चंद मिनटों में सारा गाँव अुस बगीचे में अुमड़ आया। स्त्री, पुरुष, बच्चे, सभी रामकृष्ण का हाल देख कर आँसू बहा रहे थे। रामकृष्ण पागल की तरह

बड़बड़ा रहा था। अेकाअेक अुठ कर दौड़ने लगा। चन्नम्मा ने अुसे रोकने की कोशिश की। लेकिन गाँव के धर्मनिष्ठ पुरोहित ने अुसे फटकार सुनायी।

पुलीस के थाने पर खबर पहुँची और अेक घंटे के अन्दर हथियारबन्द सिपाहियों ने सारे बगीचे को घेर लिया। कुछ जवान चन्नम्मा की झोंपड़ी में घुसे, चन्नम्मा और अुसके पति को घसीट कर बाहर निकाला गया और अुनके हजार अिनकार करने पर भी अुन्हें अिस तरह पीटा गया कि अुनकी चीखों से सारा जंगल गूंज अुठा। लेकिन मारने से गुमे हुअे धन की कोअी टोह नहीं मिली। 'अिसे पता भी है कि धन ठीक कहाँ गड़ा था? शायद वह ठीक जगह भूल गया हो। सारा बगीचा खोजो,' थानेदार साहब का हुक्म हुआ।

कहीं अुस गुप्त धन का पता लग जाय! थानेदार साहब के लिअे वह अेक बड़ी गौरव की बात होगी। अुसे बेच कर वह नागेश हेड़गे का लगान वसूल कर लेता और सरकार को दिखा देता कि सरकार और हेड़गे की लड़ाअी में हेड़गे चारों खाने चित हो गया। कैसा बढ़िया मौका है? लेकिन वह हाथ से निकल गया। अुस गुप्त धन ने अपनी जगह बदल दी।

जानकम्मा जेल से रिहा हुअी। रामकृष्ण को नीम पागल हुआ देख अुसका कलेजा बैठ गया। वह न कभी घर आता था, न अुससे बोलता था। अपने छोटे भाअी की मदद से वह अुसे घर लायी, अुसकी सेवा और अिलाज करने लगी। लेकिन अुसके अच्छे होने के कोअी लक्षण दिखायी नहीं दिये। सजा पूरी होने पर मा और दूसरी बहुअें भी छूटीं।

"दूध पीओगे?"

"तुम्हारा नाम?"

"जानकी"।

"जानकी, अगर मैं कहूँ कि गहने और किसीने चुराये हैं, तो तुम सच मानोगी?"

"गहनों की किसे पड़ी है? तुम भर अच्छे हो जाओ।"

"लेकिन सारा घर चौपट जो हो गया? हम सब कंगाल जो हो गये?"

"हम मेहनत-मजदूरी कर के पेट भर लेंगे।"

"लेकिन बेअीमानी की जिन्दगी किस काम की?"

"बेअीमानी कैसी?"

"गहनों का पाप मेरे सिर पर जो है।"

"लेकिन तुमने थोड़े ही चुराये हैं?"

"नहीं, मैंने नहीं चुराये। लेकिन तुम मेरी बात सच मानती हो?"

"हाँ, क्यों नहीं?"

"सच कहो? तुम बड़ी नेक औरत हो। तुम कौन हो, बताओगी?"

जानकम्मा अपने आपको सँभाल न सकी। अुसके मुँह से शब्द निकलना असंभव हो गया। लेकिन रामकृष्ण आज पहली बार अुससे बोल रहा था। अिसलिअे अुसका भी जी बोलने को तरस रहा था।

"मैं तुम्हारी स्त्री जानकी हूँ।"

"तुम मेरी स्त्री हो? और तुम्हें विश्वास है कि मैं बहाने नहीं बनाता? मेरे लिअे अितना ही काफी है। अब सारी दुनिया मेरा विश्वास न करे तो भी मुझे परवाह नहीं।"

"तुम बिलकुल फिकर न करो। कोअी नहीं समझता कि तुमने अपने भाअियों को धोखा दे कर सारे जेवर गट कर लिये हैं"।

"तुम नहीं जानते। मनुष्य का स्वभाव अैसा नहीं है। लेकिन मैं अपनी भाभियों के लिअे अुन गहनों को संभाल कर रखने की आशा लगाये बैठा था।"

श्री नागेश हेड़गे भी समय पर रिहा हो गये। अुस दिन अुनका बडी धूमधाम से स्वागत हुआ। अुनका स्वागत करने के लिअे मानो सारा ताल्लुका अिकट्ठा हुआ था। सभा के बाद वह घर आये और अुनके साथ दूसरे देशसेवक और मित्र भी अुन्हें पहुँचाने आये।

घर आते ही अुनके सामने यह सवाल खड़ा हुआ कि अब क्या किया जाय? अितने बड़े परिवार की गुजरबसर कैसे हो? क्या जरिया है? सब कुछ लुट गया। वह दो हजार रुपया सालाना लगान देते थे। अिसलिअे अुनकी बड़ी अिज्जत थी। अब अुस प्रतिष्ठा का आधार ही नष्ट हो गया। अुस दिन अुन्हें नींद नहीं आयी। करीब सौ आदमी अुनके आसपास बैठे-बैठे सारी रात जागते रहे।

रात के करीब दो बजे थे। अेकाअेक किसी ने दरवाजा खटखटाया। अितनी रात गये कौन आया होगा? कहीं पुलीस तो नहीं है? क्या वह नागेश हेड़गे को फिर-से पकड़ना चाहती है? दरवाजा खोल दिया गया। अेक अधेड़ औरत भीतर आयी। अुसके सिर पर अेक पोटली थी।

"अरे! यह तो चन्नम्मा है! क्यों चन्नम्मा, अितनी रात बीते क्यों आयीं?"

"जेल से छूटने के बाद मैं धनी (हुजूर) से मिलना चाहती थी।"

वह नागेश हेड़गे के पास आयी और अपनी पोटली नीचे रख कर अुसने अुसे खोला। बोली, "बाबा, अपना माल लो। देख लो, सब चीजें ज्यों की त्यों हैं न? भगवान की बलिहारी है। आज मेरे सिर पर से यह बोझ अुतरा। मेरा जी हलका हुआ।"

नागेश हेड़गे हक्काबक्का रह गया! यह सोना तो गुम गया था। किसीको अुसे फिर पाने की आशा नहीं थी। अिस हरिजन स्त्री के वह कैसे हाथ लगा? अितने दिनों तक वह अुसे कैसे संभाले रही? यह हरिजन औरत कौन है जो अिस 'कलियुग' में अनायास हाथ आया हुआ अितना सोना लौटाना चाहती है?

"बात अैसी है," चन्नम्मा ने कहना शुरू किया, "मैं हररोज बगीचे में सुपारी के पत्ते बटोरने आया करती थी। अेक दिन क्या देखा कि कोअी चीज चमक रही है। जरासी मिट्टी खुरच कर देखा तो अेक पीतल के लोटे की किनारें दिखायी दीं। सोचा, हो न हो, अिसमें कोअी चीज है। अुसे फिर मिट्टी से मूँद दिया। रात को फिर लालटेन और कुदाली ले कर पहुँची। मैंने लोटा खोद कर निकाला, अुसकी मुहर खोली और अुसे औंधा कर अपने अंचल में अुंडेल दिया। देखती क्या हूँ, कि वह सारा बर्तन सोने और चांदी से लबालब भरा है। मैंने अपनी अुम्र में अितना सोना कभी नहीं देखा था। मैंने अितना सोना पाया! मेरा दिल मारे आनन्द के फड़कने लगा। लेकिन मैं नहीं जानती थी कि अितने सोने का मैं क्या करूं?

'हो न हो, यह सारा माल मेरे धनी, नागेश हेड़गे का है। वह तो जेल में हैं। अुनके लौटने पर मैं अुन्हें अुनका माल वापस कर दूंगी। अिसे किसी सुरक्षित जगह छिपाने के लिअे मैं अपने पति की सहायता लूंगी। लेकिन मेरे पति पियक्कड़ हैं। वह हररोज अेक अेक चीज गिरवीं रख कर डँट कर पीयेंगे। मुझे अपने पति से भी नहीं कहना चाहिअे।

"अिसलिअे मैं अपने पति के सोने की राह देखती रही। अुसके बाद मैंने चूल्हे के पास की जगह खोदी और अुसमें वह बर्तन पूर कर अुस पर अेक पत्थर रख दिया। मैं अुसी पत्थर पर बैठ कर रसोअी बनाती रही।

"रोज मैं अुस पत्थर पर बैठ कर अपना दुखी हृदय भूना करती थी। हरे राम! अुन अठारा महीनों का अेक अेक दिन कितनी मुश्किल से बीता, क्या कहूँ? बारा और छ–पूरे अठारा महीनों तक अपने कलेजे को थामे रही। मेरे पति की तो पुलीसवालों ने खाल ही अुधेड़ दी। वे अुनसे पूछते थे कि बताओ वह सब धन कहाँ है। वह बापुरा कैसे बताता? अुसे क्या मालूम? अुन्होंने मुझे भी बुरी तरह पीटा। मैंने कहा 'राम दुहाअी, मैं कुछ नहीं जानती।' लेकिन फिर भी अुन्होंने मुझे नहीं छोड़ा।

"मेरे पति विषमज्वर से बीमार हो गये और हफ्तों खटिया पर पड़े रहे। मैं मजदूरी करके थोड़ा-बहुत कमाती, अपने बीमार पति की तीमारदारी करती, बच्चे को संभालती, अिस धन की हिफाजत करती और हरदम दरवाजा खटखटानेवाली पुलिस को भी जवाब देती। यह सब करने की शक्ति मुझमें कहाँ से आयी, भगवान ही जानें। अुनकी कृपा से मैं अपने 'धनी' के लिअे यह धन बचा सकी। लेकिन भगवान ने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। अुसने मुझसे मेरे पति को, मेरे अपने सोने को, छीन लिया। वह शीतला से मर गये। मैंने झूठ का समर्थन करने के लिअे भगवान की दुहाअी दी। अिसलिअे अुसने मुझे सजा दी। लेकिन यह सच है कि मैंने अपने लिअे अुसकी कसम नहीं खायी थी।

"लेकिन, मेरे मालिक, आप अपना माल संभाल लीजिये। मुझे जाने दीजिये।"

"तुम कहाँ जाओगी?"

"दूर, बहुत दूर।"

"लेकिन, अिसमें से थोड़ा-सा तुम्हें भी लेना होगा। तुम तो सारी चीजें वापस लायी हो।"

"नहीं! नहीं! नहीं! यह मेरे घर में था अिसीलिअे तो मेरे पति चल बसे–मेरा सर्वस्व लुट गया!"

"कुछ तो लोगी? कुछ रुपये–पैसे?"

"अेक कौड़ी नहीं लूंगी। कुछ भी नहीं।"

जानकम्मा रामकृष्ण को लायी और अुसने अुसे वह सोना दिखाया। अुसने वह लोटा अपने सिर पर रख लिया और घर के चारों तरफ नाचने लगा।

"जानकी, देखो! मैंने तुमसे कहा था न, कि मैं सच कहता हूँ? तुमने मुझ पर विश्वास किया। तुमने मुझ पर विश्वास किया! जानकी, प्रिये, तुमने मुझपर विश्वास किया! देखिये, भाभीजी, सारा माल यहाँ है। मैं अपनी प्यारी भाभी को कभी धोखा नहीं दूंगा। मैं अपने भाअी को धोखा नहीं दूंगा। कैसे दे सकता हूँ? लेकिन चन्नम्मा, तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं?"

"तुम तो सिड़ी हो गये थे। अगर मैं तुमसे कह देती, तो पुलीसवाले तुमसे छीन लेते।"

"नहीं, नहीं, मैं सिड़ी नहीं हूँ। कौन कहता है मैं सिड़ी हूँ?"

आज सिद्दपुर में बड़े अुत्सव का दिन है। अुन्नीस सो चौंतीस के हरिजन दौरे के सिलसिले में महात्मा गांधी सिद्दपुर आ रहे हैं। अुस पूज्य नेता के दर्शनों के लिअे लालायित लोग अेक विराट सभा में अिकट्ठे हुअे हैं। चन्नम्मा का जुलूस निकाला गया। अुसे मालाअें पहनाअी गयीं और ब्राह्मणों ने अुसकी आरती अुतारी। चन्नम्मा को देखते ही लोग बड़े आदर से अुसे हाथ जोड़ कर प्रणाम करते थे। अुसे महात्माजी के पास मंच पर बैठाया गया। जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री ने महात्माजी और सारी सभा को नागेश हेड़गे के धन तथा चन्नम्मा का सारा किस्सा सुनाया। महात्माजी की आँखें छलक अुठीं।

"सत्य के तुम्हारे जैसे भक्तों के पुण्यचरित के भरोसे ही आज यह संसार चल रहा है," अपने अंगोछे से आँसू पोंछते हुअे महात्माजी ने कहा।

खादी का समग्र दर्शन

[विनोबा]

(तारीख नौ जनवरी अुन्नीस सौ बयालीस को ग्रामसेवा मण्डल की सर्वसाधारण सभा में दिया हुआ यह भाषण मैंने दुहराया और संशोधित किया है—विनोबा)

स्वैर या मूढ़ युद्ध

जेल में तटस्थ चिन्तन के लिअे थोड़ा-बहुत अवकाश मिल जाता है। अिसलिअे हमारे आन्दोलन के विषय में और हिन्दुस्तान तथा संसार की सारी परिस्थिति के विषय में बहुत-कुछ विचार हुआ, चर्चा भी हुअी। कुल मिला कर परिस्थिति बहुत बिगड़ी हुअी मालूम होती थी। अैसे समय कौन-से अुपाय करने चाहिअें, अिसका चिन्तन हम वहाँ करते थे। लेकिन हमारे जेल से छूटने के थोड़े ही दिन बाद जापान और अमेरिका के लड़ाअी में शामिल हो जाने से परिस्थिति और भी बिगड़ गयी। अिसलिअे जेल में किये हुअे कुछ विचार अधूरे मालूम हुअे और कुछ दृढ़ हुअे। अिस युद्ध के विरोध में हम प्राय: तीन कारण दिया करते थे : पहला कारण था युद्ध की हिंसकता, दूसरा दोनों पक्षों की—चाहे वह न्यूनाधिक भले ही हो—साम्राज्यवादी तृष्णा; और तीसरा यह कि हिन्दुस्तान की सम्मति नहीं ली गयी। लेकिन जापान और अमेरिका के मैदान में कूद पड़ने के बाद तो अब करीब करीब सारा संसार ही युद्ध में शामिल हो गया है। अब यह युद्ध मनुष्य के हाथ में नहीं रहा; बरन मनुष्य ही युद्ध के आधीन हो गया है। अिसलिअे यह युद्ध स्वैर या मूढ़ है। हमारे युद्धविरोध का यह और अेक नया कारण है। वासुदेव कॉलेज (वर्धा) में भाषण देते हुअे मैंने अिसीपर जोर दिया था।

हमारी परावलंबिता

लेकिन अिस प्रकार संसार के सभी बड़े राष्ट्रों के युद्ध में शरीक हो जाने से, हिन्दुस्तान की, जो कि पहले से ही अेक दरिद्र और विषम परिस्थिति में ग्रस्त देश है, हालत और भी विषम हो गयी है। अंग्रेजी राज से पहले हिन्दुस्तान स्वावलंबी था। अितना ही नहीं, वह अपनी जरूरतें पूरी करके विदेशों को भी थोड़ा-बहुत माल भेजा करता था। लेकिन आज तो पक्के माल के लिअे हिन्दुस्तान करीब करीब पूरी तरह परावलंबी हो गया है। राष्ट्रीय रक्षा के साधन, युद्धविषयक सरंजाम, वगैरा में जो परावलम्बन है, अुसकी बात मैं नहीं कहता। हालाँकि अगर अहिंसा का रास्ता खुला न हो, तो राष्ट्रीय दृष्टि से अिस बात का विचार भी करना ही पड़ता है। लेकिन मैं तो सिर्फ जीवनोपयोगी नित्य आवश्यकताओं की ही बात कह रहा हूँ। ये चीजें आज हिन्दुस्तान में नहीं बनतीं और फिलहाल वे बाहर से कम आ सकेंगी। लड़नेवाले राष्ट्र युद्धोपयोगी सामग्री बनाने की ही फिक्र में होंगे; अुनके पास बाहर भेजने के लिअे बहुत कम माल रहेगा। और अिसके बाद भी जो माल तैयार होगा, अुसे दूसरे राष्ट्रों तक न पहुँचने देने की व्यवस्था शत्रुराष्ट्र अवश्य करेंगे। अमेरिका से माल आने लगे, तो जापान अुसे डुबो देगा और जापान से तो माल आ ही नहीं सकेगा। अिस तरह अगर बाहर से माल आना

कम हो गया या बन्द हो गया, तो हिन्दुस्तान का हाल बहुत ही बुरा होगा। पक्का माल यहाँ बनाने के विषय में सरकार, अगर हेतुपूर्वक नहीं तो परिस्थिति के कारण, अुदासीन रहेगी। अुसका सारा ध्यान लड़ाअी पर केन्द्रित है, अिसलिअे अुसे दूसरी गंभीर योजनाअें नहीं सूझेंगी। गंभीरता से जोकुछ विचार होगा, वह केवल युद्ध के विषय में ही होगा। अगर सरकार की यही वृत्ति रही कि हिन्दुस्तान का जैसे-तैसे रक्षण—याने अुसे अंग्रेजों के कब्जे में बनाये रखना—भर हमारा कर्तव्य है, तो कोअी ताज्जुब नहीं।

हमारी जिम्मेदारी

अैसी अवस्था में हम कार्यकर्ताओं पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ती है। अुस दिन दादा धर्माधिकारी मेरे पास आये थे। अुस वक्त मैंने हमारी अिस दशा का जिक्र अुनसे किया था। अुसके विषय में अुन्होंने 'सर्वोदय' में अेक टिप्पणी लिखी है। यों लोगों पर यह अिलजाम लगाया जाता था कि खादी की बिक्री काफी नहीं होती, अुसके लिअे लोगों की मिन्नतें करनी पड़ती हैं। अब हमपर यह अिलजाम आनेवाला है कि अिस लड़ाअी की परिस्थिति में लोगों की माँग हम पूरी नहीं कर सकते। अैसे संकट के समय अगर हम खादी के काम को तरक्की न दे सके, तो खादी के भविष्य के लिअे बहुत कम आशा की गुंजाअिश रहेगी।

जाजूजी की योजना

जाजूसाहब ने 'खादी जगत्' द्वारा हाल ही में अेक योजना पेश की है। अुसमें अुन्होंने यह प्रमाणित किया है कि सरकार बेकारों को जितने अुद्योग दे सकती है, अुतने अवश्य दे; लेकिन सरकार की शक्ति खतम होने पर भी अगर भूख बाकी रह जाय, तो अुतने अंश में खादी को प्रोत्साहन देना सरकार का कर्तव्य है। किसी भी सरकार को खादी का यह कार्य-क्षेत्र प्रायः मंजूर करना पड़ेगा।

लेकिन अिस योजना का स्वरूप तो अैसा है कि मानो जहाँ हम प्रवेश नहीं पा सकते, वहाँ धीरे-से अपनी पोटली रख देते हैं। हमारे घर पर कब्जा करनेवाले से हम कहते हैं, "भैया, मकान तेरा ही सही। लेकिन तेरा यह खयाल गलत है कि मकान बिलकुल भर गया है। वह देखो, अुस कोने में थोड़ीसी जगह खाली है। मेरी यह पोटली वहाँ पड़ी रहने दे।" हमारा यह आक्रमण मनुष्य से अपेक्षित न्यूनतम सद्गुणों पर होता है, अिसलिअे अुसका परिणाम अवश्य होता ही है।

खादी की बुनियाद

परन्तु अिस प्रकार की अकाल-पीड़ित खादी खादी की बुनियाद नहीं हो सकती। आज जिस तरह खादी का अुत्पादन और बिक्री हो रही है, वह भी अुसकी बुनियाद नहीं है। खादी की अिमारत का वह अेक भाग जरूर है। खादी की अन्तिम योजना में भी अुत्पत्ति-बिक्री का स्थान रहेगा; और आज से कहीं अधिक रहेगा। लेकिन वह खादी की सम्पूर्ण योजना का अेक अंग मात्र है।

अुसी तरह आज जगह जगह जो वस्त्र-स्वावलम्बन जारी है अुससे, याने अिस गाँव में चार वस्त्र-स्वावलम्बी आदमी हैं, अुस तहसील में सौ-दो-सौ हैं, अिसी प्रकार दूसरे गाँवों में भी वस्त्र-स्वावलम्बन शुरू करते रहने से, भी हमारा मुख्य काम नहीं होता। यह तो चौराहों पर जगह जगह म्युनिसिपालिटी की बत्तियाँ लगाने के समान है। अिन बत्तियों का भी अुपयोग तो है ही। अुनके कारण चारों तरफ का वातावरण प्रकाशित रहेगा। लेकिन चौक की बत्तियाँ घर के

चिरागों का काम नहीं देतीं। अिसलिअे यह अिस तरह बिखरा हुआ वस्त्र-स्वावलम्बन भी खादी का मुख्य कार्य नहीं है।

खादी की नींव तो यह है कि किसान जैसे अपने खेत में अनाज अुपजाता है, अुसी तरह वह अपना कपड़ा अपने घर में बनावे। शायद शुरू से ही हम अिस तरह काम न कर सकते। अिसलिअे हमने खादी का काम दूसरे ढंग से शुरू किया। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ। अिससे खादी को गति मिली और लोगों को थोड़ी बहुत खादी हम दे सके।

'खादी को मौका दिया गया'

लेकिन अब तो लोगों की खादी की मांग बढ़ेगी। आज के तरीके से हम अुसे पूरा नहीं कर सकेंगे। अैसी स्थिति में अगर हम लाचार हो कर चुपचाप बैठे रहेंगे, तो हम दोषी समझे जायेंगे। और यह दोषारोपण न्यायानुकूल ही होगा। क्योंकि खादी को बीस साल का समय मिल चुका है। हिटलर ने बीस वर्षों में अेक गिरे हुअे राष्ट्र को खड़ा कर दिया। अुन्नीस सौ अठारा में जर्मनी की पूरी तरह हार हो गयी थी और अुन्नीस सौ अड़तीस में वह अेक आला दर्जे का राष्ट्र बन गया। रूस ने भी जोकुछ ताकत कमायी, वह अिन बीस बरसों में ही कमायी। अितने समय में अुसने दुनिया को मुग्ध कर देनेवाली विचार और आचार की अेक प्रणाली का निर्माण किया। ये दोनों प्रयोग हिंसामय या हिंसाश्रित हैं, अिसलिअे अुनकी स्थिरता खतरे में है, यह बात अलग है। कहा तो यही जायगा कि खादी को भी अिसी प्रकार बीस वर्ष तक मौका दिया गया। अितने समय में खादी अधिक प्रगति नहीं कर सकी, अिसकी कअी वजहें हैं। अिसलिअे जर्मनी या रूस से तुलना करके हमें अपनेतअीं अपना धिक्कार करने की जरूरत नहीं है। फिर भी अैसे संकट के मौके पर अगर हम लाचार बन गये, तो, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, खादी के लिअे अेक कोना दिखा कर अुतने से सन्तुष्ट रहना पड़ेगा। लेकिन यह खादी की मुख्य दृष्टि--जिसे अहिंसा की योजना में करीब करीब केन्द्रस्थान है--छोड़ देने के समान है। कम से कम हिन्दुस्तान में तो खादी और अहिंसा का गँठ-बन्धन अटूट समझना चाहिअे।

'दशयन्त्रपींजन'

जब लोगों की माँग बढ़ेगी तो हम अुनसे कहेंगे, 'सूत कातो।' तब लोग कहेंगे, 'हमें पूनियाँ दो'। हमारे आन्दोलन में पूनियों की समस्या बड़ी टेढ़ी है। पूनियों के बाद की क्रिया अपेक्षाकृत सरल है। लेकिन पूनियों का सवाल हम शास्त्रीय या लौकिक पद्धति से अब तक हल नहीं कर सके हैं। तब, लोगों से कहना होगा, 'तुम अपने लिअे धुनो।' अिसमें तांत का सवाल आयेगा। पक्की तांत की व्यापक माँग अेकदम पूरी नहीं की जा सकती। अिसलिअे काम रुक जायगा। अिसका ज्यों ज्यों मैं विचार करता हूँ, त्यों त्यों मेरी निगाह अुस 'दशयंत्र पींजन' पर ठहरती है। पाँच और पाँच दस अंगुलियों से जो काम होता है, अुसे 'दशयंत्र' कहते हैं। सोमरस दस अंगुलियों से निचोड़ा जाता है। अिसलिअे वेदों में 'दशयंत्राः सोमाः' का अुल्लेख है। अुसी तरह यह तुनाअी का दशयंत्रपींजन है। वह बहुत लाभदायी और सारी दिक्कतों से बचानेवाला साबित होगा। रबर लगाने के नये तरीके की खोज ने अिस दशयंत्र-पींजन में क्रान्ति कर दी है। अुसके कारण यह काम आसान हो गया है। यह बात सच है कि रबर सर्वसुलभ नहीं है। लेकिन अुसका भी विचार हो सकता है। और

वह भी अिस काम के लिअे अनिवार्य तो नहीं है। अुस दिन मैं खरांगना गया था। वहाँ मैंने अिस दशयंत्र-पींजन का प्रदर्शन किया। दर्शकों में से अेक ने कहा, 'जरा मैं भी देखूँ।' और देखते देखते अुसने पन्द्रा-बीस मिनिटों में, अगर अच्छी नहीं तो, साधारण पूनी बना ली। अिसे सीखना अितना आसान है। अुसकी गति भी व्यवहार-सुलभ है। अिस सम्बन्ध के कुछ आंकड़े वल्लभभाअी (भगवानजी) ने अपने अेक लेख में दिये हैं। नागपुर जेल में मैंने जो प्रयोग किये अुनके आधार पर मैंने भी जेल से ही अेक लेख भेजा था। रामदासजी गुलाटी को जब तुनाअी करके दिखायी गयी, तब वह तो कहने लगे कि मिल की पूनी के लगभग सभी गुण अिस पूनी में है और वैज्ञानिक दृष्टि से यह पूनी करीब करीब निर्दोष है। अिस दशयंत्र-पींजन का सर्वत्र प्रचार करने के लिअे ग्राम-सेवा-मंडल में और अधिक शोध और प्रयोग होने चाहिअें।

बुनकर भी कातें

दूसरी महत्त्व की बात यह है कि बुनकर खुद कात कर अुसी सूत की खादी बुनें। अिसकी तरफ जाजूसाहब ने सब का ध्यान दिलाया है। हिन्दुस्तान में बुनकरों का बहुत बड़ा वर्ग है। लड़ाअी के समय अुनके लिअे कोअी अिन्तजाम नहीं हो सकेगा। अिसलिअे अुन्हें भी अिस खादी के काम में लगाना चाहिअे। मैं कअी तरह के आंकड़ों पर से अिस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आज दूसरों का काता हुआ भला-बुरा सूत बुनने के लिअे बुनकर जो मजदूरी पाता है, अुससे कम मजदूरी अुसे अपना सूत बुनने में नहीं मिलेगी। अपना सूत बुनना अुसके लिअे अधिक आसान तो होने ही वाला है। अिस विषय में भी व्यापक प्रयोग की आवश्यकता है।

सूत में अुन्नति

अिसीके साथ साथ जहाँ के वस्त्रस्वावलंबी लोगों का सूत वहीं बुनवाने का प्रबन्ध करना होगा। अिसके लिअे स्वावलंबी व्यक्तियों के सूत में अुन्नति होना जरूरी है। सूत में अुन्नति की बात आते ही फिर 'दशयंत्रपींजन' पर ही ध्यान जाता है। साधारण 'यंत्र-पींजन' वैसे अुपयोगी भले ही मान लिया जाय, तो भी लड़ाअी के जमाने की व्यापक योजना में वह निरुपयोगी है। मेरा यह दावा है कि अुस यंत्र से जितनी शास्त्रीय पूनी नहीं बनती, अुतनी अिस दशयंत्र से बनती है।

कपास से शुरू करो

परन्तु अिसमें यह मानी हुअी बात है कि यह दशयंत्रपींजन या तुनाअी कपास से ही होनी चाहिअे। आज सब जगह प्रायः सारी क्रियाओं में रुअी ही काम में लायी जाती है। अब रुअी की जगह कपास का अुपयोग करना चाहिअे। किसान को अपने खेत में से अच्छी बड़ी-बड़ी बौंड़ीवाली कपास का संचय करना चाहिअे। फिर अुसे सलाअी-पटरी जैसे साधन से ओंट लेना चाहिअे। अिसमें प्रायः अेक भी बिनौला नहीं बिगड़ेगा। किसान छाँट-छाँट कर अच्छी-अच्छी बौंड़ियाँ बीनेगा। अिसलिअे अुसे अच्छा बीज मिलेगा और अुसका खेत समृद्ध होगा। अिस प्रकार कपास से शुरू करने में अनेक लाभ हैं। रुअी से शुरू करने में हम अुन्हें गँवा देते हैं।

खादी का अर्थशास्त्र सचमुच अितनी पुख्ता नींव पर खड़ा है कि अुससे सस्ता और कुछ भी नहीं सिद्ध हो सकता। लेकिन अुसकी जगह बीच-की ही किसी अलग प्रक्रिया को खादी की प्रक्रिया मान लेना खादी को नाहक बदनाम करना है।

मिल का अिन्द्रजाल

कार्यकर्ताओं को समग्र दर्शन के अिस विचार पर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिअे। कहा जाता

है कि मिलें सस्ती पड़ती हैं। हम हिसाब करके दिखा देते हैं कि वे महँगी हैं। मिलों में व्यवस्थापक वर्ग का जबरदस्त खर्च, यंत्र, यंत्रों का घिसना, माल का लाना-ले जाना, मालिकों का अजस्र मुनाफा, आदि कअी आपत्तियाँ स्पष्ट ही हैं। लेकिन फिर भी अगर मिल सस्ती मालूम होती है, तो, या तो अुसमें कोअी जादू होना चाहिअे या फिर हमारे अेतराज गलत होने चाहिअें। अेतराज तो गलत नहीं कहे जा सकते। तो फिर अवश्य तिलस्म है। वह जादू यह है कि मिल अेक विराट यांत्रिक रचना की जंजीर की अेक कड़ी है। बड़े कारखानों में मुख्य अुद्योग के साथ साथ अुससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे भी फुटकर अुद्योग कराये जाते हैं। कारखाना अुन अुद्योगों के लिअे नहीं चलता। अिसलिअे अुन्हें गौण पैदावार कहते हैं। अिन गौण अुद्योगों से जो आमदनी होती है अुससे प्रधान अुद्योग को लाभ होता है और यह सब मिला कर वह कारखाना आर्थिक दृष्टि से पुसाता है। मिल की यही स्थिति है। वह अेक समग्र विचार-शृंखला की कड़ी है।

मिलों के साथ साथ रेल आयी। शांति के समय माल लाना-लेजाना अुनका प्रधान कार्य है। यात्रियों को भी अुनसे लाभ होता है। लोगों को लम्बे सफर करने की आदत हो जाती है। अुनके विवाह-सम्बन्ध भी दूर दूर के स्थानों में होने लगते हैं और अिस तरह रेल अुनके जीवन की अेक आवश्यकता हो जाती है। फिर अुससे फायदा अुठा कर मिलों के विषय में सस्तेपन का अेक भ्रम पैदा किया जा सकता है।

व्यवछिन्न दर्शन

मैंने रेल का अुदाहरण दिया। अैसी कअी चीजें मिल की मदद के लिअे अुपस्थित हैं। अिसलिअे मिल सस्ती प्रतीत होती है। अगर सिर्फ मिल का ही विचार किया जाय, तो वह बहुत महँगी होती है। यही नियम खादी के लिअे भी लागू करना चाहिअे। अगर अकेली खादी का ही विचार किया जाय, तो वह महँगी मालूम होगी। लेकिन अैसा असम्बद्ध विचार नहीं किया जा सकता। किसी सुन्दर आदमी के अवयव अलग अलग काट कर अगर हम देखने लगें, तो क्या होगा? कटी हुअी नाक खूबसूरत थोड़े ही लगेगी? अुसमें तो आरपार छेद दिखायी देंगे। लेकिन अैसे पृथक् किये हुअे अवयव अपने में सुन्दर न होते हुअे भी, सब मिल कर शरीर को सुन्दर बनाते हैं। जब हम समग्र जीवन को दृष्टि में रख कर खादी को अुसका अेक अंग मानेंगे, तब खादीजीवन मिलजीवन की अपेक्षा कहीं सस्ता साबित होगा।

सांगोपांग खादी-कार्य

खादी में लाने-लेजाने का सवाल ही नहीं है। वह तो जहाँ की वहीं होती है। घर की घर ही में व्यवस्थित-रूप से रहती है। याने व्यवस्थापकों का काम नहीं रह जाता। कपड़े की जरूरत से ज्यादा कपास फिजूल बोयी ही नहीं जायगी। अिसलिअे कपास का भाव हमारे हाथों में रहेगा। चुनी हुअी बोंड़ियाँ घर पर ही ओंटी जायँगी, जिससे बोने के लिअे बढ़िया बिनौले मिलेंगे और खेती विशेष सम्पन्न और प्रफुल्लित होगी। बचे हुअे बिनौले बेचने नहीं पड़ेंगे। वे सीधे गाय को मिलेंगे और फलस्वरूप अच्छा दूध, घी और बैल मिलेंगे। वस्त्रस्वावलंबन के लिअे आवश्यक बोंड़ियाँ सलाअी-पटरी या अुसी की विशेषताअें रखनेवाली ओंटनी पर ओंट ली जायँगी। वह ताजी साफ रुअी आसानी से धुनी जा सकेगी। वह दशयंत्र से भलीभाँति

धुनी जायगी और सूत समान तथा मजबूत कत सकेगा। सूत अच्छा होने के कारण बुनने में सुगमता होगी। अच्छी बुनावट के कारण वह शरीर पर ज्यादा दिन टिकेगा और कपड़ा ज्यादा दिन चलने के कारण अुतने अंश में कपास की खेती की जमीन की बचत होगी। अब अिस सब में तेल की घानी आदि ग्रामोद्योग और जोड़ दीजिये और देखिये कि वह सस्ती पड़ती है कि महँगी। आप पायेंगे कि वह बिलकुल महँगी नहीं पड़ती। जब खादी का यह 'समग्र दर्शन' आपकी आँखों में समा जायगा, तो खादीकार्य का आरम्भ कपास की बजाय रुअी से करने में कितनी भारी भूल होती है, यह भी समझ में आ जायगा। और अिसके अतिरिक्त सारा खादीकार्य सांगोपांग करने की दृष्टि भी प्राप्त होगी।

परिपूर्ण और अेकांगी अर्थशास्त्र

और अेक बात; जिससे समग्र दर्शन और स्पष्ट होगा। यह अेक स्वतन्त्र विषय भी है। पाँच-छ साल पहले मैं रेल में अपना चरखा खोल कर कातने लगा। वैसे भी मेरी आँखें कमजोर हैं, अुसमें फिर गाड़ी के धक्के लगते थे, अिसलिअे धीरे धीरे सम्हल कर कातने पर भी थोड़ा-बहुत टूटता ही था। टूटते ही मैं अपने सिद्धान्त के अनुसार अुसे फिर जोड़ लेता था। मेरी बगल में अेक सज्जन बैठे थे। बी. अेस्सी. पास थे। बड़े ध्यान से ये सारी बातें निहार रहे थे। थोड़ी देर के बाद बोले, "कुछ पूछना चाहता हूँ"। "पूछिये", मैंने कहा। वह बोले, "आप टूटे हुअे तारों को जोड़ने में अितना वक्त खोते हैं, अिससे अुनको वैसे ही फेंक देना क्या आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं होगा?" मैंने अुनसे कहा, "अर्थशास्त्र दो तरह का है: अेक आंशिक अथवा अेकांगी और दूसरा परिपूर्ण। अिनमें से अेकांगी अर्थशास्त्र को छोड़ कर परिपूर्ण अर्थशास्त्र की कसौटी पर परखना ही अुचित है।" वह बोले, "दुरुस्त है।" तब मैंने अुनसे पूछा, "आप कहते हैं कि थोड़ा-सा टूटा हुआ सूत अगर अकारथ जाय तो कोअी हर्ज नहीं। लेकिन अुसकी क्या मर्यादा हो? कितना फीसदी आप माफ फर्मायेंगे?" अुन्होंने कहा, "पाँच प्रतिशत तक माफ कर देने में हर्ज नहीं है"। तब मैंने कहा, "पाँच प्रतिशत सूत, जो कि जुड़ सकता है, फेंक देने का क्या नतीजा होता है, यह देखनेलायक है। अिसका यह मतलब है कि कातनेवाला अिस तरह सौ अेकड़ कपास की खेती में से बैठे बैठे पाँच अेकड़ की अुपज यों ही फूंक देता है। तांत के सौ कारखानों में से पाँच कारखानों को बेकार कर देता है। कातनेवालों के लिअे बनायी गयी सौ अिमारतों में से पाँच गिरा देता है। हिसाब की सौ बहियों में से पाँच फाड़ देता है," अित्यादि अित्यादि।

अिसके अलावा, जिसने पाँच-प्रतिशत का न्याय स्वीकार कर लिया, अुसके सभी व्यवहारों को वह ग्रास कर रहेगा। अुससे होनेवाली हानि कितनी भयानक होगी, यह समझना मुश्किल नहीं है। भोजन के वक्त अगर कोअी थाली में बहुत-सी जूठन छोड़ कर अुठ जाता है, तो हम अुसे मस्ताया हुआ कहते हैं। क्योंकि जूठन छोड़ने का यह मतलब है कि वह, किसान के बैल से ले कर रसोअी बनानेवाली मा तक, सबकी मेहनत पर पानी फेर देता है। अिसलिअे जूठन छोड़ने से मा का नाराज होना काफी नहीं है। हल चलानेवाले बैल को चाहिअे वह अुसे अेक लात मारे और किसान से ले कर दूसरे सब अेक अेक धौल जमायें।

"असंशयं समग्रम्"

अिसीलिअे हर चीज सामग्र्य की दृष्टि से देखनी चाहिअे। अिसीलिअे भगवद्गीता में अीश्वर के ज्ञान के पीछे "असंशयं समग्रम्" ये विशेषण लगाये गये हैं। हमारे खादी के आन्दोलन में समग्र दर्शन की बहुत जरूरत है। हम जब खादी को समग्रदर्शनपूर्वक आगे बढ़ायेंगे, तभी, और केवल तभी, वह व्यापक हो सकेगी। यह हमारी कसौटी का समय है।

(मराठी 'ग्रामसेवा वृत्त' से अनूदित)

सर्वोदय की दृष्टि

ग्रहण का अशौच

"ग्रहण के अुपलक्ष्य में अशौच आदि की विधि शास्त्रों में है। आजकल के पढ़े-लिखे लोगों की मान्यता अिस विषय में कुछ और तरह की है। आप अिस विषय को जरा समझाने की कृपा कीजिये।"

खगोलशास्त्रियों ने ग्रहण का जो खुलासा किया है, वही स्वीकार करने योग्य है। अर्थात् जब सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी अेक ही सीध में आ जाते हैं, तब सूर्य या चन्द्र के कम या अधिक ढँक जाने को ही ग्रहण कहते हैं। सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य और हमारे बीच में आ जाता है और चन्द्रग्रहण में चन्द्र पृथ्वी की छाया में आ जाता है। यह दृश्य हर साल कम-से-कम दो वक्त दुनिया के किसी-न-किसी हिस्से में दिखायी देता है।

ग्रहण कब होगा यह गणित से अितने निश्चित-रूप से जाना जा सकता है कि अुसमें अेक मिनिट का भी फर्क नहीं पड़ता। सृष्टि में नियमों की सत्ता कैसी सुन्दर है और मनुष्य ने भी गणित का कैसा गहरा अध्ययन किया है, अिसका यह सबूत है।

आकाश की अैसी असाधारण घटनाओं को पर्व कहते हैं। अैसे कअी प्रकार के आकाशीय पर्व हैं—जैसे सिंहस्थपर्व, कुम्भपर्व, मघापर्व अित्यादि। जब अिस तरह की घटनाओं के वैज्ञानिक कारण समाज ठीक ठीक जानता नहीं था अथवा अुनके साथ किसी अुल्कापात (अुत्पात) का भी अनुभव हो जाता था, तब लोगों में अुनके विषय में कुछ कौतुक तथा भय और आदर की वृत्ति का होना स्वाभाविक ही था।

सूर्यग्रहण के समय पक्षी भी अकुला कर अुड़ते हुअे दिखायी देते हैं, तो फिर अज्ञान होते हुअे भी विचार कर सकनेवाले मनुष्य को कुछ बेचैनी होती होगी, अिसमें क्या आश्चर्य? पारमार्थिक, धार्मिक प्रवृत्तिवाले और भ्रमित डरपोक लोग अिस घटना को जप, तप, दान आदि अनुष्ठानों का प्रसंग बना लेते हैं। और लोगों को डर तथा लालच दिखा कर अुनसे कुछ दान-पुण्य का कर्म कराने की अिच्छा रखनेवाले धर्म-प्रचारक तथा धार्मिक वृत्ति और डर पर निर्वाह करनेवाले स्वार्थी मनुष्य नयी रूढ़ियाँ कायम करने के लिअे अिन घटनाओं से लाभ अुठाते हैं। यह सब स्वाभाविक है।

व्रतादिक का आरम्भ, अुपवास और स्नान से करने का वैदिक हिन्दू समाज में अेक सर्वमान्य आचार है। जन्म, मृत्यु, जनेअू, शादी आदि गृह्यसंस्कार, तरह तरह के यज्ञ, श्राद्ध, कोअी विशेष व्रत, तप वगैरा, कोअी भी धर्मवृत्ति से मनाया जानेवाला अवसर क्यों न हो, अुसके पहले छोटा-बड़ा अुपवास और स्नान अवश्य होता ही है। अिसी तरह ग्रहण के अुपलक्ष्य में अनुष्ठान करनेवाले भी कुछ समय के लिअे अुपवास और ग्रहण के पहले ही स्नान करते हैं। जिनमें व्रताचरण की धार्मिक वृत्ति है और जो कोअी विशेष अनुष्ठान करना चाहते हैं, वे अिस अवसर पर अनशन करते हैं और स्नान करके अेकान्त में जपादिक करते हैं। यह अेक व्यक्तिगत धार्मिक साधना कही जा सकती है।

जिसे अिस तरह की कोअी साधना करनी नहीं है अुसके लिअे दोनों निरर्थक हैं। और वैसे भी ग्रहण से पहले स्नान तो शायद ही कोअी करते हों।

परंतु ग्रहण के बाद का स्नान अेक अत्यंत प्रचलित रूढि है। मेरी समझ में अिसके पीछे अधिकतर अस्पृश्यता की भावना ही छिपी है। पुराणों ने ग्रहण को राहु-केतु की रूपकात्मक कथा द्वारा समझाया है। अुन्हें असुर ठहराया है। असुर माने अनार्य और अनार्य माने पतित और पतित माने अस्पृश्य। अिस तरह अेक अेक अर्थ बढ़ता गया। देवों के प्रतिनिधि के रूप में अुन्होंने भूदेव याने ब्राह्मण को अुपस्थित किया; अुसी तरह राहु के प्रतिनिधि के तौर पर भंगियों को नियुक्त किया। देवों की तुष्टि ब्राह्मणों को दान देने से होती है और राहु की भंगी को। अिस प्रकार अुनके लिअे साल में दो-तीन अैसे दान के अवसर प्रस्तुत हो गये।

कोअी यह न समझे कि यह सब अिस तरह योजनापूर्वक हुआ है। यह भी सम्भव है कि हिन्दुस्तान के मूल निवासियों की किसी रूढि को अिस रूप में अपना लिया गया हो। लेकिन भंगी को दान देना ग्रहण की महान रूढि बन गयी। मगर अिससे भंगियों के सिर चढ़ने का डर है; अिसलिअे छूआछूत मानने वाले समाज में अुसके बाद नहाने की प्रथा पड़ गयी। नहा कर ब्राह्मणों को दान देने की विधि तो सुअी के पीछे धागे के समान लगी ही रहती है। अिस प्रकार ग्रहण के बाद का स्नान अस्पृश्यता का ही अंग जान पड़ता है। कुछ लोगों के लिअे वह व्रत की पूर्णाहुति का स्नान भी हो सकता है। अस्पृश्यता-निवारण करनेवाले के लिअे यह दूसरा स्नान अनुचित है और कोअी खास अनुष्ठान या व्रत न रखनेवाले को दोनों में से अेक भी स्नान या अुपवास की जरूरत नहीं रह जाती है।

२५-३-'४२ कि० घ० म०

स. ४५–५

चायबन्दी

मेरे मित्र श्री सिद्धराज ढढ्ढा अेक निष्ठावान समाजसेवक हैं। हरिजनसेवा में अपनी बहुत कुछ शक्ति खर्च कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा के प्रति आपकी भक्ति कम नहीं है। आपका अेक पत्र अभी अभी मेरे पास आया है। वह 'सर्वोदय' के पाठकों के काम का है; अिसलिअे अुसे यहाँ देता हूँ:

"कुछ दिन हुअे मैं प्रवास में गया था। रेल के जिस डिब्बे में मैं सफर कर रहा था, अुसी में अेक नौजवान महाराष्ट्री चढ़े। रेल्वे में क्लर्क हैं। कुल चौंतीस रुपये महावार तनख्वाह के मिलते हैं। मेरे पास 'सर्वोदय' का अंक रखा था। कुछ देर चुप रहने के बाद अुस युवक ने 'सर्वोदय' मुझसे माँगा और पन्ने अुलटने लगा। फिर तो पढ़ने में अितना तन्मय हुआ कि करीब करीब दो घंटे तक बराबर पढ़ता ही रहा। तीन चार लेख पढ़ डाले। अिसी प्रसंग से बातचीत शुरू हुअी। अुन्होंने कहा कि अुन्होंने 'सर्वोदय' पहले कभी नहीं देखा था और हिन्दी में अितना अच्छा मासिक निकलता है अिसका अुन्हें पता नहीं था। अुन्होंने 'सर्वोदय' मँगाने की गरज से पता नोट कर लिया। पर आगे जो हुआ वह रोचक है।

"बातचीत के सिलसिले में व्यसनों की बात चल पडी। अुस नौजवान ने कहा कि हालांकि वह रेल्वे की नौकरी में है और अुसके सभी साथी अेम्प्लायीज का यह मत है कि रेल की नौकरी में सिगरेट, पान, चाय वगैरा नहीं खाने-पीने से 'आगे बढ़ने' का मौका नहीं मिलता, श्री—न सिगरेट-चाय पीता है, न पान खाता है। चाय के बारे में वह खास तौर से मजबूत मालूम हुआ। मैं खुद चाय पी लिया करता हूँ—या यों कहना चाहिअे कि पी लिया करता था—पर जब कभी चाय के विज्ञापन देखता हूँ—और वे सब जगह

पाये जाते हैं--तो मेरा मन, न जाने क्यों, हताश हो जाता है। मुझे अैसा लगता है कि अिन सरासर झूठे विज्ञापनों द्वारा भोली जनता को यह 'मीठा जहर' (स्लो पायजन) पीने की आदत डाल कर अपनी मौत नजदीक बुलाने को आमादा किया जा रहा है। और अिस अन्याय के विरुद्ध आवाज भी कौन अुठाये ? प्रचार के जो साधन हैं, अुनके मुंह तो चाँदी से बन्द कर दिये गये हैं।

"खैर, तो हमारे नौजवान ने सुनाया कि पिछले कुछ बरसों में—अुनकी खुद की अुम्र कुल तेअीस बरस की हैं—अुन्होंने अपनी सफल वकालत से पचासों व्यक्तियों का चाय पीना छुड़वा दिया है। रेल की नौकरी में अक्सर जगह जगह अुनका तबादला होता रहता है। नये नये साथियों के साथ रहने का और काम करने का मौका मिलता है और श्री— अपना काम शुरू कर देते हैं। कुल चौंतीस रुपये महीना तनख्वाह मिलती है। पर चाय छुड़वाने के लिअे अुन्होंने अेक मित्र-दम्पत्ती में से प्रत्येक को अेक अेक चांदी का प्याला और रकाबी भेंट करने का वादा किया है। अपने साथ रहने वाले रेलवे के कुलियों में से अेक को अपने जेब से अतिरिक्त वेतन दे कर अुसका चाय पीना छुड़वाया। अेक मित्र की पचास वर्ष की माता ने—जो सदा से चाय की आदी रही हैं—अिन्हें चाय न पीते देख कर बिना कुछ कहे-सुने अपनी आदत छोड़ दी। और अिसी तरह श्री—— का यह चाय-विरोधी दल धीरे धीरे बढ़ रहा है, जिसमें अब से मुझे भी शामिल होने का गर्व है। अुनसे पेटभर बातचीत करने के बाद मुझसे यह वादा किये बिना न रह गया कि अिस जन्म में मैं चाय नहीं पीअूंगा।

"वास्तव में जब तक आशा के ये छोटे छोटे दीपक जलते हैं तब तक घने अन्धकार में *भी मायूसी की गुंजाअिश नहीं है। बिजली की रोशनी का चौंधिया देनेवाला प्रकाश फिलहाल* अिन दीपकों की रोशनी को भले ही दबा दे, पर भविष्य अिन्हीं नन्हे-नन्हे दीपकों का है, अिसमें सन्देह नहीं।"

श्री सिद्धराजजी के साथ में भी आशा करता हूँ कि अिस कहानी से 'सर्वोदय' के दूसरे पाठकों को चाय छोड़ने का अुत्साह मिले। अितना तो यहाँ कहना चाहिअे कि चाय छोड़ने के लिअे किसी मित्र दम्पत्ती को चांदी के प्याले की घूस देना चाहे जितना स्वाभाविक और असरकारक हो, अच्छा तो नहीं है। चाय का प्रचार करनेवाले भले ही अैसे प्रलोभन दें, छुड़ाने वालों को हरगिज अैसे तरीके नहीं अख्तियार करने चाहिअें।

१२:३:'४२ का० का०

जरा सब्र

असहयोग के दिन थे। आत्मशुद्धि द्वारा राष्ट्रशक्ति को जाग्रत करने की बात हृदय हृदय को जँच गयी थी। रत्नागिरि जिले में चिपळूण में अेक परिषद थी। श्री गंगाधरराव देशपांडे अुसके अध्यक्ष थे। अुन दिनों विधायक कार्यक्रम के प्रस्ताव लोग नहीं जानते थे। आत्मशुद्धि की बात ही हर अेक के मुँह पर थी। अेक महाशय ने चाय के विरोध में प्रचंड भाषण दिया और अुसी आशय का अेक प्रस्ताव भी पेश किया। अध्यक्ष स्वयं चाय पीनेवाले थे। अुन्होंने प्रस्ताव सुनते ही कहा कि मैं तो चाय पीनेवाला हूँ। लेकिन, मेरे लिहाज से अिस प्रस्ताव को आप छोड़ न दीजिये। जो चीज राष्ट्रहित की हो अुसमें मैं अपने व्यक्तित्व से रुकावट डालना नहीं चाहता। प्रस्ताव का विरोध कौन करे ? मत लेने की नौबत आयी।

मैं चाय न पीनेवालों में से था, जैसा कि आज भी हूँ। बचपन ही से मुझे चाय की आदत नहीं थी। कॉलेज के दिनों में कुछ महीनों तक रोज दस दस या बारा बारा कप भी पी लेता था। बाद में तो जो चाय छोड़ी, सो अेकबारगी छोड़ ही दी। मैंने अुठ कर के चाय-विरोधी प्रस्ताव का विरोध किया। सब अवाक् हो गये। मैंने कहा, "आत्मशुद्धि आवश्यक है। अभी हमने मद्यपान-बंदी का प्रस्ताव पास किया है। अुसे सफल बनाना हमारा प्रधान कार्य है। मै अपने लिअे चाय को त्याज्य समझता भी हूँ। लेकिन, अैसी राजनैतिक परिषद में अगर हम प्रस्ताव पास करें, तो वह राष्ट्रीय नीति का अंग बन जाता है। अुसे कार्यान्वित करने के लिअे हमें अेक कार्यकारी दल पैदा करना पड़ता है। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि चाय-विरोधी आन्दोलन खड़ा करने से शराबबन्दी का आन्दोलन कमजोर पड़ जायगा, हमारी शक्ति दो दिशाओं में बँट जावेगी और हमारा मद्यपानविरोध भी शिथिल हो जायेगा।

अेक बात हम याद रखें। हम अपनी किश्ती में अितना बोझ न लादें कि किश्ती ही डूब जाय। मेरी सिफारिश है कि हम यह चाय-विरोधी प्रस्ताव अपनी नाव में न लादें।

मेरी सिफारिश सदस्यों को जँच गयी और अुन्होंने प्रस्तावक को अपना प्रस्ताव वापिस ले लेने को कहा। चाय अुपयोगी चीज नहीं है, अनावश्यक भी है और देश के लिअे नाहक का आर्थिक बोझ भी है। अितना होते हुअे भी अुसका विरोध हमें ढंग से ही करना चाहिअे। सब सुधार अेक साथ, अेक ही ढंग से करने नहीं होते हैं।

३१:३:'४२ का० का०

शान्तिदलों का संगठन

शांतिदलों की स्थापना कितनी आवश्यक है अिसके बारे में गांधीजी ने १९३८ में गांधी सेवा संघ के सामने डेलांग में, अपने विचार प्रकट किये थे। शांतिसेवादल अहिंसा का कहाँ तक पालन कर सकेगा, यही चर्चा का और चिन्तन का विषय था। १९२१ की अहमदाबाद-कॉंग्रेस के समय पर भी गांधीजी ने स्वयंसेवकों के लिअे कुछ नियम बना कर दिये थे। तो भी स्वयंसेवक दल की स्थापना और संगठन अभी तक ठीकठीक नहीं हो पाया है। डा० हार्डीकर ने हिन्दुस्तानी सेवादल की स्थापना की कोशिश की और अुसके पीछे पूरा समय और शक्ति खर्च की। तो भी राष्ट्रीय पैमाने पर स्वयंसेवकदल स्थापित नहीं हुअे हैं, अैसा ही कहना पड़ता है। खुदाअी खिदमतगार जैसे दलों को हम भूल नहीं सकते। तो भी जब तक जर्मन और जापानी आक्रमण हिंदुस्तान के नजदीक नहीं आया था, तबतक सेवादल का सवाल हमारे सामने प्रत्यक्ष-रूप से अुपस्थित नहीं हुआ था, अैसा ही कहना पड़ता है। 'जब प्यास लगी, तब चले कुअँा खोदने', यही नीति हिन्दुस्तान आजतक बरतता आया है। और जब हिन्दुस्तान देखता है कि कुअँा खोदने में देर लगती है, तब वह प्यास लगने पर भी हिम्मत हार कर कुअँा खोदने का विचार ही छोड़ देता है।

अिन दिनों सब जगह शान्तिदल किसी न-किसी रूप में स्थापित हो रहे हैं। अेक जगह सवाल अुठा कि शान्तिदल का आदर्श क्या हो सकता है? गांधीजी के सिद्धान्त जिन्हें कंठस्थ थे, अुन्होंने तुरन्त कहा कि अहिंसक अुपायों से देश में शान्ति की स्थापना करना, अन्याय, अत्याचार, गुण्डाराज और आग, बाढ़, छूत के रोग, जैसी आस्मानी-सुलतानी का अिलाज करना—

यही शान्तिसेवादल का अुद्देश्य हो सकता है। जो लोग अिस चीज को समझते हैं लेकिन अुसके अनुसार चलने की तैयारी नहीं रखते, अुन्होंने संशोधन पेश किया कि 'सब शान्तिमय और विहित मार्गों से देश में शान्ति की स्थापना करना' अित्यादि अिस दल का अुद्देश्य हो।

'अहिंसा' की जगह अुक्त शब्द ला कर अुन्होंने यह स्पष्ट किया कि 'शान्तिमय' और 'अुचित' मार्गों में हिंसा को भी स्थान है।

अिस 'व्यापकता' के कारण हिन्दू-मुस्लिम आदि सब तरह के लोग अैसे संगठन में शरीक हुअे और अुसमें सर्वसंग्राहक राष्ट्रीयता भी दीख पड़ने लगी।

सरकार की मातहत क्यों नहीं?

सरकार का और जनता का दृष्टिकोण अेक न होने के कारण ये संगठन सरकार की मातहत चलाना लोगों को पसन्द नहीं था। सरकार भी अैसे संगठन को शक की निगाह से देखने लगी और अिसलिअे शुरू से ही कठिनाअियाँ आने लगीं। अिस कारण हिंसा-अहिंसा की चर्चा फिर से छिड़ी।

हिंसा और अहिंसा की मीमांसा संगठन और सरकार की दृष्टि से हमें स्पष्टरूप से करनी चाहिअे। अिसलिअे अेक दृष्टि नीचे दी जाती है।

हिंसा और अहिंसा दोनों तत्त्व मनुष्यस्वभाव में हैं। अत्यंत हिंसक मनुष्य भी अेक तरह से अहिंसा का ही पुजारी रहता है और अत्यंत अहिंसक मनुष्य के हृदय में भी हिंसा की अुमंग अुठे बिना नहीं रहती। प्रयत्न से वह अुसे सफलता पूर्वक दबा दे, यह बात दूसरी है।

मनुष्यस्वभाव में अिन दोनों वृत्तियों के होने के कारण मनुष्य ने अिन दोनों की मर्यादा बांध दी है।

अहिंसा साधुता का लक्षण है। अिसलिअे जिस मनुष्य के हृदय में अहिंसा का जितना अुदय हुआ हो, अुतना ही वह राज्यपरतंत्र कम रह सकता है। समाज ने देखा है कि हिंसा अेक खतरनाक शक्ति है। अिसलिअे अुसका संगठन समाज की प्रतिनिधिरूप सरकार के ही हाथों में रखना चाहिअे। व्यक्ति की असंगठित हिंसाशक्ति कोअी भी सरकार न तो पूर्णतया रोक सकती है, न पूर्णतया अुसका निषेध ही कर सकती है। हरअेक व्यक्ति की हर तरह से रक्षा करने का भार कोअी भी सरकार पूर्णतया अपने पर नहीं ले सकती। अिसलिअे व्यक्ति का आत्मरक्षा का अधिकार सरकार को मंजूर करना ही पड़ता है। व्यक्ति आवश्यक बलप्रयोग कर के आत्मरक्षा कर सकता है। यह बात दुनिया भर की तमाम सरकारों ने मान्य की है। लेकिन हिंसा का तनिक भी संगठन करना हो तो, या तो अुसे स्वयं सरकार करेगी या वह अपनी देखभाल में किसी समुदाय को हिंसा के लिअे संगठित होने की अिजाजत देगी। सरकार से बिलकुल स्वतंत्र हो कर हिंसा के लिअे संगठन करना तब तक ही शक्य है, जब तक सरकार अुसकी ओर अुपेक्षा की दृष्टि से देखती है या अुसे जब चाहे अपनी मातहत लाने का विश्वास रखती है। अगर कोअी संगठन हिंसा में विश्वास करता है, हिंसा के लिअे गुंजाअिश रखता है और सरकार से कहता है कि तुम पर हमारा विश्वास नहीं है अिसलिअे हम अपना स्वतन्त्र संगठन कर रहे हैं, तो सरकार अैसे संगठन को कायम ही नहीं होने देगी। हिंसा ही जिसकी अन्तिम बुनियाद है अैसी सरकार का यह सिद्धान्त होता है कि हिंसा तो हमारा ही अेकाधिकार है। अिस बारे में जो हमारी मातहत नहीं हैं, वे हमारे विरोधी ही हैं।

अहिंसा की शर्त क्यों ?

अहिंसक संगठन के बारे में सरकार की दृष्टि और नीति अलग होती है। अगर सरकार अशिक्षित है, अन्धी है, तो वह अहिंसक संगठन का भी विरोध करती है और विरोध करते करते स्वयं शिक्षित और संस्कारी बन जाती है।

हिंसापर विश्वास करनेवाली सरकार अगर शिक्षित है, तो वह कहती है कि अहिंसक लोग अेक किस्म के अुदात्त पागल हैं। अुन्हें न छेड़ने में ही बुद्धिमानी है। अुनका विरोध करने से अुनकी शक्ति बढ़ती है। जिन लोगों ने हिंसा का त्याग किया है, वे कभी भी समाज के शत्रु नहीं बन सकते और असलिअे अुनको मामूली और अभ्यस्त गुनहगारों की श्रेणी में गिना नहीं जा सकता। और असीलिअे अहिंसक संगठन का सीधा विरोध भी नहीं हो सकता।

अितनी बातों पर से यह सिद्ध होगा कि अगर सरकार से अलग कोअी संगठन हम करना चाहें, तो वह पूर्णतया अहिंसक ही होना चाहिअे। जो लोग हिंसा का समर्थन करते हैं, अुन्हें सरकार की मातहत जाने की तैयारी रखनी चाहिअे; अथवा सरकार को धोखा दे कर गुप्तरूप से अपना संगठन करना चाहिअे। असके माने यह होते हैं कि अिस तरह हम अेक अलग राज्य की ही स्थापना करना चाहते हैं।

जिस देश में जनता अेकविध या अेकरूप है, वहाँ पर अैसा गुप्त हिंसक संगठन शायद आसानी से हो सकता होगा। लेकिन जिस देश की जनता बहुधर्मी, बहुविध और असंगठित है और जिसकी राष्ट्रीयता बड़ी ही शिथिल है, अुस में तो हिंसक संगठन आत्मघाती ही हो जाता है। असलिअे हिन्दुस्तान के लिअे तो प्रजा-संगठन अहिंसा के आधार पर ही हो सकेगा।

हिंसक संगठन में मरने-मारने की, दोनों की, तैयारी रखनी पड़ती है। मरने की तैयारी न हो तो हिंसक संगठन निर्माल्यवत् हो जाता है। असलिअे मरने की तैयारी के बिना कोअी भी संगठन हो ही नहीं सकता।

'जब मारने की अिजाजत हो, तभी हम मरने को तैयार होंगे,' यह दृष्टि हुअी हिंसक संगठन की। और 'मारने का मौका मिला, तो भी हम किसी को मार कर हिंसा को प्रतिष्ठित नहीं करेंगे', यह दृष्टि होती है अहिंसक संगठन की। हिंसक संगठन विरोधी में डर और निराशा पैदा कर सकता है। अहिंसक संगठन विरोधी में आदर, शराफत और बन्धुभाव पैदा कर सकता है।

हिंसक संगठन की विफलता सिद्ध हो रही है। लेकिन अहिंसक संगठन की सफलता का अभी तक पूर्णरूप से अनुभव नहीं हुआ है। अैसी हालत में लोग दोनों तरफ से अुत्साह खो बैठें तो अुससे आत्मनाश ही होगा। हिंसक संगठन स्वतंत्ररूप से कोअी भी सरकार चलने नहीं देगी और अुसके लिअे आज हम तैयार भी नहीं हैं। अैसी हालत में अगर शुद्ध अहिंसक संगठन का प्रयोग करें, तो थोडी-बहुत तैयारी से हो जायगा और अगर अुसकी सफलता सिद्ध हो गयी, तो हमें अपने और दुनिया के अुद्धार का निश्चित और शुद्ध रास्ता मिल जायगा।

अिस वक्त जो संगठन हम करना चाहते हैं, वह जापान और जर्मनी का मुकाबिला करने के लिअे नहीं—वह तो सरकार के सुपुर्द है—किन्तु जब सरकार के दोनों हाथ परचक्र का सामना करने में अुलझे हुअे हैं, अैसे समय पर अंतस्थ अव्यवस्था, लूटपाट आदि से लोगों को बचाने के लिअे है। असाधारण परिस्थिति मे हमारे देश के चन्द लोग पागल हो जायँ, तो अुनके खिलाफ हिंसा का क्या प्रयोग करना है ? सेवा,

त्याग और बलिदान के द्वारा ही हम अपना और अुनका रक्षण कर सकते हैं।

अिसलिअे हमारे शांतिसेना दल अहिंसा की बुनियाद पर ही स्थापित होने चाहिअें।

३०:३:'४२ का० का०

वीरवर सुभाषबाबू

अशुभ समाचार शायद ही झूठ साबित होते हैं। श्री सुभाषचन्द्र बोस की जापान के किनारे पर हवाअी जहाज से गिर कर मृत्यु होने का समाचार आया है। काश वह गलत साबित हो!

मृत्यु की पवित्र छाया में छोटे-बड़े भेदभाव भूल जाना मनुष्यजाति का शील है। लेकिन अंग्रेजों ने मौके-बे-मौके यह बताया है कि अुनकी मानवता कुछ और ही ढंग की है। नेपोलियन अुनके हाथ लगने पर अुसके प्रति अिंग्लिश जाति ने जो सलूक रक्खा, वह सारी दुनिया के लिअे अेक मिसाल हो गया है। सुभाषबाबू की मृत्यु पर लिखते हुअे बम्बअी का 'टाअिम्स आव् अिण्डिया' लिखता है कि सुभाषबाबू ने अन्तिम दिनों में अपने देश से द्रोह ही किया था।

अगर सुभाष बोस पर राजद्रोह का अिलजाम लगाया जाता, तो बात अलग थी। अंग्रेजी राज्य ने हिन्दुस्तान में अितना प्रजाद्रोह किया है कि अंग्रेजी राज्य के लिअे किसी के भी हृदय में प्रेम या आदर न रहा होगा। 'अेक बला सिर पर सवार है, किसी भी तरह अुससे निपटना है', अिसी वृत्ति से लोग अिस राज्य में रह रहे हैं। सुभाषबाबू का काँग्रेस के साथ मतभेद हो गया, अुन्होंने अैन मौके पर कुछ गलतियाँ भी कीं— और गलतियों से मुक्त कौन है ?—तो क्या हुआ ? क्या सुभाषबाबू की देशभक्ति पर कोअी शंका कर सकता है ? देशबंधु चित्तरंजन दास का विश्वास जिन्होंने संपादन किया, जिन्हें राष्ट्र ने दो दफा राष्ट्रपति चुना और जिनका जीवन निरन्तर बलिदान से लबालब रहा, अुन्हें देशद्रोही कहने के लिअे 'टाअिम्स' की ही निरर्गल जीभ चल सकती है। क्या भारत की अंग्रेज सरकार ने सुभाषबाबू को बड़ा सुख दिया और अुनकी कद्र की, जो अुनके मन में भारत के अुद्धार के लिअे किसी और की मदद लेने का विचार न आता ?

अिस स्वार्थी दुनिया में किसी भी विदेशी सत्ता की मदद से हम देश का अुद्धार नहीं कर सकते, यह हमारा विश्वास होने के कारण ही हम और किसी की सहायता लेने के फेर में नहीं पड़ते, यह बात अलग है। लेकिन अपने देश की आजादी के लिअे चाहे जो साधन काम में लाना हरअेक राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। अिंग्लेंड की दृष्टि से अंग्रेज लोग सुभाषबाबू को चाहे जितनी गालियाँ दें, हम क्षमा कर सकते हैं। लेकिन दिनरात हिन्दुस्तान का द्रोह करनेवाले लोग शराफत जतला कर सुभाषबाबू को देशद्रोही कहते हैं, यह तो गुस्ताखी की सीमा है। 'टाअिम्स' ने अैसी बेहूदी बात लिख कर अंग्रेजी साम्राज्य और अंग्रेजी चारित्र्य की तनिक भी सेवा नहीं की है।

हमारी तो यही प्रार्थना और आशा है कि यह समाचार गलत साबित हो। सुभाषबाबू कहाँ हैं, अिसका भी किसीको ठीक ठीक पता नहीं है। आये दिन अुनके विषय में तरह-तरह की भली-बुरी अफवाहें फैला करती हैं। हमारी तो यही अभिलाषा और प्रार्थना है कि अुनके जैसा अुत्कट देशभक्त, त्यागी, दिलेर और धुन का पक्का वीरपुरुष, और अपनी जान पर खेलनेवाला योद्धा चिरायु हो।

३०:३:'४२ का० का०

स्वसंरक्षण माने पारस्परिक रक्षण

लड़ाअी ब्रह्मदेश से भी अिस तरफ आ पहुँची है। अब हिन्दुस्तान में भी आने में देर नहीं है। सरकार लोगों से कहती है अपनी जान, माल, जमीन और जोरू-बच्चों की रक्षा के लिअे कटिबद्ध हो जाओ। मगर फिर भी लोगों में कोअी जोश या अुत्कटता नहीं पैदा होती है। कुछ अुदासीन हैं, कुछ चकराये हुअे हैं, कुछ घबराये हुअे हैं।

अिसका कारण जाहिर है। सरकार जब लोगों को अपनी रक्षा करने के लिअे कहती है, तो लोग आज तक के अनुभव से यही समझते हैं कि अिसमें जरूर कोअी न कोअी चालबाजी है। और यह सच भी है। सरकार हमसे कहती है, 'देखो, अगर जापान या जर्मनी आ जायगा, तो तुम्हारे जान-माल और अिज्जत की खैरियत नहीं है'। लोग सोचते हैं, 'आज ही हमारी जान और माल सुरक्षित कहाँ है? हमारी बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ ही तो हमारा वैभव और आभूषण हैं। कोअी लुटेरा आयेगा तो अिन्हींको लूटेगा। अैसे लुटेरे का भगवान भला करें।' सरकार को यह समझना चाहिअे कि बेड़ियों की चोरी के डर से कोअी आत्म-रक्षा के लिअे कमर कस कर तैयार नहीं होता। जहाँ के लोगों को दूसरों के भरोसे जीने की आदत हो गयी हो, अुनमें जीने का मोह भले ही हो, लेकिन अुनकी अिज्जत तो ठीक, अुनकी जान की भी कोअी कीमत नहीं होती।

अिसलिअे अिस मौके पर हमें अपनी रक्षा के लिअे सरकार पर भरोसा नहीं करना चाहिअे। सरकार की दृष्टि से तो हम आत्मरक्षा के लिअे असमर्थ ही हैं। यह सत्य कितना ही कड़वा क्यों न हो, हमें अुसका सामना करना चाहिअे। 'अगर हममें आत्मरक्षा की ताकत होती, तो हम अंग्रेजों की गुलामी में रहना क्यों मंजूर करते'?

अिसका जवाब हम सरकार को भला-बुरा कह कर, जोशीले भाषणों से या सरकार की दलीलें काट कर नहीं दे सकते। हमें अपने बर्ताव से यह साबित कर देना चाहिअे कि हम सरकार की मदद के बिना भी अपने जानमाल और अिज्जत की हिफाजत कर सकते हैं।

अिस दृष्टि से हमारे राष्ट्रीय जीवन में दो मूलभूत दोष हैं: अेक हमारी अशरणता और दूसरी रक्षणाकांक्षिता। जहाँ ये दो दोष मौजूद हैं, वहाँ न तो स्वावलम्बन हो सकता है और न स्वतन्त्रता। स्वावलम्बी व्यक्ति को भी दूसरों की मदद की जरूरत तो होती है। लेकिन अुसे कोअी रक्षणाकांक्षा या असहायता नहीं मानता। जो अपनी जान, सम्पत्ति और अिज्जत की रक्षा के लिअे किसी दूसरे पर निर्भर रहता है, अुसकी जान, सम्पत्ति या अिज्जत दर असल अुसकी अपनी नहीं होती; बरन अुसके रक्षण-कर्ता की होती है। अिस संकट की घड़ी में भी अगर हम अिस सचाअी को अच्छी तरह महसूस कर लें, तो यह कहा जायगा कि अिस संकट के रूप में परमात्मा ने हमारे लिअे अेक अपूर्व सुयोग अुपस्थित किया।

हमारे अन्दर आत्मविश्वास और आत्मरक्षा की शक्ति तभी पैदा होगी, जब हम अेकदूसरे को अपना प्रतिद्वन्दी या विरोधी समझना खुले दिल से छोड़ दें। आज नागरिकों के संरक्षण के लिअे कअी अलग अलग दल बन रहे हैं। अिनमें से कुछ निरपवाद अहिंसा की बुनियाद पर कायम किये जा रहे हैं और कुछ मर्यादित अहिंसा की। याने जब दूसरा कोअी चारा ही न रहे, तब अेक आपद्धर्म के रूप में हिंसा का प्रयोग करना वे जायज और सही मानते हैं। लेकिन ये दल भी जनता का विश्वास तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब कि वे आपस में अहिंसक रहने का दृढ़ संकल्प कर लेंगे और हर सूरत में अुसे निबाहेंगे। अन्यथा अिन दलों की आपस की मारपीट से ही जनता तंग आ जायगी और सरकार से पनाह मांगेगी। अिस तरह आत्मविश्वास और आत्म-रक्षा की ताकत पैदा होने की जगह हमारी मुँहताजी और लाचारी बढ़ेगी और गुलामी की जड़ें मजबूत होंगी। अिस तरह, स्वसंरक्षण के माने परस्पर-संरक्षण या सर्व-संरक्षण हैं।

सारांश, अगर हम अिस देश में दर असल आत्मरक्षा की सामर्थ्य पैदा करना चाहते हैं, तो 'सर्वेषामविरोधेन' (किसी का विरोध न करते हुअे) के त्रिकालाबाधित सूत्र पर अमल करके ही कर सकेंगे।

३१:३:'४२ दा० ध०

स्वराज्य शास्त्र—ले० विनोबा
[प्रकाशक–ग्राम सेवा मंडल नालवाडी, वर्धा (सी.पी), मूल्य ०-६-०]

श्री विनोबा की अिस मराठी पुस्तिका का अनुवाद अिस अंक में दिया गया है ।

गांधी-साहित्य में अिस पुस्तक को गांधीजी की 'हिन्दस्वराज्य' नामक आद्य पुस्तक के बाद का स्थान देना पड़ेगा। गांधीजी ने अपनी पुस्तक समुद्रयात्रा में लिखी और विनोबा ने जेलयात्रा में। गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' दोनों हाथों से लिखी। विनोबा ने दूसरे के हाथों लिखवायी। 'हिन्द स्वराज्य' प्रश्नोत्तर के रूप में लिखी गयी है। यह 'स्वराज्य शास्त्र' भी पाँच प्रश्नों के जवाब में समाप्त किया गया है। गांधीजी का दीक्षाग्रन्थ ॠषि की श्रद्धाघन शैली में लिखा गया है। विनोबा के अिस 'प्रश्नोपनिषद' में आचार्य की तर्कप्रणाली है। गांधीजी के कथन जीवनसिद्ध मालूम होते हैं। विनोबा के तर्कशुद्ध प्रतीत होते हैं। गांधीजी की पुस्तक में प्रसन्न लेखनशैली भिनी हुअी है। विनोबा का शास्त्र गाढ़ी और ठोस प्रवचनशैली से सजा हुआ है। विनोबा को अपनी पुस्तक का अेक लंबा भाष्य लिखना पड़ेगा। गांधीजी का प्रयोगमय, सत्यनिष्ठ, भारतव्यापी जीवन ही अुनकी 'हिन्द स्वराज्य'का महाभाष्य है।

अिस पुस्तक में जिन प्रश्नों का विचार किया गया है, अुनमें से पहला प्रश्न प्राथमिक श्रेणी का है। दूसरे प्रश्न में 'मुख्य बात' महत्त्व के लिहाज से बिलकुल अेक कोने में पड़ी हुअी है। पुस्तक का वास्तविक तेज तीसरे 'प्रश्न' से प्रकट होने लगता है। अिस 'प्रश्न' में वर्ण-व्यवस्था के बारे में जो विवेचन किया गया है, वह बहुत ही संक्षिप्त है। भारतीय समाज-व्यवस्था की अिस भारतभव्य कल्पना की मीमाँसा अिसकी अपेक्षा अधिक सुचारूरूप से होनी चाहिअे थी। चौथे और पाँचवें प्रश्नों में हिंसा-मार्ग की विफलता जिस सुन्दरता से साबित की गयी है, अुसी खूबसूरती के साथ अहिंसा की सफलता प्रमाणित नहीं की गयी। लेकिन यह मीमांसा का दोष नहीं है। हिंसामार्ग की आत्मघातकी शक्ति संसार के सभी राष्ट्र अपने अलौकिक पुरुषार्थ से सिद्ध कर रहे हैं। अहिंसा की आत्मोद्धारक और विश्वोद्धारक सामर्थ्य अभी साबित होनी है।

आशा और प्रार्थना है कि भारतवर्ष की साधना अुसकी सिद्धि में सहायक हो।

२५ : ३ :' ४२ का० का०

राज्य और स्वराज्य

राज्य अलग चीज है; स्वराज्य अलग चीज। राज्य हिंसा से भी कमा सकते हैं; स्वराज्य अहिंसा के बिना असम्भव है। अिसलिअे विचारवन्त राज्य नहीं चाहते। लेकिन "आओ, सब मिल कर स्वराज्य के लिअे यत्न करें" कह कर बेचैन होते हैं। 'नत्वहं कामये राज्यं' (मुझे राज्य नहीं चाहिअे) और 'यतेमहि स्वराज्ये (हम स्वराज्य का यत्न करते हैं) ये दो अुनके निषेधक और विधायक राजनैतिक 'अुद्घोष' होते हैं।

स्वराज्य वैदिक परिभाषा का शब्द है। अुसकी व्याख्या अिस प्रकार की जाती है —स्वराज्य याने प्रत्येक का राज्य, याने अैसा राज्य जो हर अेक को अपना लगे, अर्थात् सब का राज्य। अिसी के माने हैं रामराज्य। स्वराज्य का शास्त्र नित्य बढ़ रहा है। अुसकी पद्धति देशकालानुसार सतत बदलती है। लेकिन अुसके मूलतत्त्व शाश्वत हैं। (स्वराज्य शास्त्र की प्रस्तावना से)

२ : २ : '४२ —विनोबा

स्वराज्य-शास्त्र

[विनोबा]

१

राजनैतिक प्रश्न के माने

[१] **प्रश्न**–आज संसार में कितने और कितने प्रकार के राजनैतिक विचार प्रचलित हैं ?

अुत्तर–सबसे पहले हमें यह देखना चाहिअे कि राजनैतिक विचार तत्त्वत: कितने प्रकार के हो सकते हैं। तत्त्वतः जितने प्रकार हो सकते हैं, अुनकी अपेक्षा आज के प्रचलित प्रकार या तो कम होंगे या अुतने ही होंगे। अुनसे अधिक नहीं हो सकते। लेकिन अिसका अुत्तर भी अिस प्रश्न के जवाब पर निर्भर है कि राजनैतिक विचार किसे कहते हैं। अिसलिअे अुसी प्रश्न का विवेचन पहले करना चाहिअे।

प्रश्न–राजनैतिक विचार क्या चीज है ?

अुत्तर–संसार में अगर अेक ही मनुष्य होता, तो अुसके सामने राजनैतिक विचार का प्रश्न ही अुपस्थित नहीं होता। अपना जीवन सुचारुरूप से चलाने के लिअे वह आसपास की सृष्टि का कितना और कैसा अुपयोग करे, अितना ही अुसके सामने सवाल होता। लेकिन मनुष्यों का अेक समूह विद्यमान है। अिसलिअे अुनके सामने अिन भौतिक प्रश्नों के अतिरिक्त दूसरा सामाजिक प्रश्न भी पेश होता है। अर्थात् सृष्टि पर आधिपत्य कैसे किया जाय, अिस प्रश्न के अलावा, आपस में व्यवस्था कैसे कायम की जाय, यह दूसरा भी अुतने ही महत्त्व का प्रश्न अुपस्थित होता है। अिस दूसरे प्रश्न में से ही राजनैतिक विचार का अुद्गम होता है। पारस्परिक व्यवस्था का पहला प्रश्न यह है कि मनुष्य की मिलकियत—जिसमें जमीन और तद्अितर अैसा भेद है—आपस में कैसे बाँटी जाय ? और दूसरा प्रश्न यह है कि मनुष्य अपने पारस्परिक व्यवहार में समाज के मानसिक सुखदुःख का सन्तुलन कैसे सम्भालें ?

पहले प्रश्न को मुख्यत: राजनैतिक प्रश्न कहते हैं और दूसरे को सामाजिक। परन्तु ये दोनों प्रश्न हमेशा अेक-दूसरे से बिलकुल अलग नहीं किये जा सकते। अिसलिअे आखिर व्यापक दृष्टि से राजनैतिक प्रश्न में दोनों का अन्तर्भाव होता है। सारांश, 'राजनैतिक प्रश्न माने मानवसमूह या मानव समूहों की व्यवस्था का प्रश्न'—यह अुसकी संक्षिप्त परिभाषा है।

राजनैतिक प्रश्न की कृत्रिम व्याख्या

[२] १. आज मनुष्य-समाज में अुच्च वर्ग, मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग, ये तीन वर्गभेद बिना-कारण किये जाते हैं और ये तीन वर्ग पारस्परिक व्यवस्था किस प्रकार करें, यह राजनैतिक प्रश्न का कृत्रिम अर्थ किया जाता है।

२. हिन्दूसमाज में कार्य-विभागानुसार वर्ण-विभाग माने गये हैं और अिन वर्गों की पारस्परिक व्यवस्था का प्रश्न ही राजनैतिक प्रश्न माना गया है। राजनैतिक प्रश्न का यह अर्थ भी कृत्रिम है।

३. राजनैतिक प्रश्न की और भी अेक कृत्रिम व्याख्या की जाती है। संसार में कुछ लोगों के पास सम्पत्ति अिकट्ठी हो गयी है और कुछ लोग अुससे बिलकुल वञ्चित हैं। आज की अिस स्थिति के लिहाज से श्रीमान और गरीब अिन या अिस तरह के दो वर्गों की कल्पना की गयी है और अुनकी पारस्परिक व्यवस्था का प्रश्न राजनैतिक प्रश्न माना गया है।

अिन तीनों व्याख्याओं को कृत्रिम अिसलिअे कहा है कि वे अमूलभूत या काल्पनिक भेदों पर आश्रित हैं। 'अूपर' और 'नीचे' की व्याख्या कल्पना के सिवा कुछ भी नहीं है। तीन, चार या अधिक वर्ण हमारे ही बनाये हुअे हैं। अिसलिअे अुनके आधार पर रची हुअी विचारप्रणाली भी काल्पनिक, याने हमारी कल्पना की ही अुपज, है। और अगर अुसे मिथ्या के अर्थ में काल्पनिक न कह सकें, तो भी वह मूलभूत तो हरगिज नहीं है। श्रीमान और गरीब के भेद को काल्पनिक कहना मुश्किल मालूम होता है। लेकिन वह भी मूलभूत भेद तो नहीं है। अर्थात वह कारणरूप नहीं है; कारणविशेष का कार्य है। और सूक्ष्म विचार किया जाय तो यह भेद काल्पनिक भी है। याने श्रीमान को पैसे से श्रीमान और गरीब को पैसे से गरीब कहें, तो अिसके विपरीत गरीब श्रमशक्ति की दृष्टि से श्रीमान और श्रीमान कहलानेवाला श्रमशक्ति के लिहाज से गरीब कहा जा सकता है। अिस दृष्टि से 'श्रीमान' और 'गरीब' भी काल्पनिक ही साबित होने लगते हैं।

भाषाभेद और धर्मभेद

अिन तीन तरह के भेदों के अलावा भाषाभेद और धर्मभेद को ले कर पारस्परिक व्यवस्था का प्रश्न अुपस्थित किया जाता है और अुसे राजनैतिक रूप दिया जाता है। लेकिन थोडे विचार के बाद विदित होगा कि ये भेद भी मूलभूत नहीं हैं।

राजनैतिक प्रश्न की स्वाभाविक व्याख्या

[३] तो फिर मानव-समूह की व्यवस्था का मूलभूत और स्वाभाविक विचार किस ढंग से किया जाय ?

कुछ व्यक्ति स्वभावतः याने निसर्गतः ही अधिक बुद्धिमान या अधिक शक्तिशाली होते हैं और कुछ कम बुद्धिवाले और अल्प शक्तिवाले होते हैं। बुद्धि और शक्ति दोनों का समावेश हम 'सामर्थ्य' शब्द में कर सकते हैं। सम्पत्ति, साधन-सामग्री, दर्जा अित्यादि सारी बातें सामर्थ्य में से ही अुत्पन्न होती हैं। अिसलिअे मनुष्यों में, कुछ समर्थ और बहुतेरे असमर्थ—अिस तरह के दो वर्गों की कल्पना की जा सकती है।

लेकिन वर्ग के रूप में सिद्ध करने के लिअे अुनमें संगठन की कल्पना करनी होगी। याने यदि सारे समर्थ व्यक्ति संगठित हो कर अेक हो जायँ, तो समर्थों का वर्ग सिद्ध होगा। अन्यथा वह काल्पनिक ही रहेगा। असमर्थ अेक हो जायें, तो अुनका वर्ग बनेगा। लेकिन बनते ही वह आत्महत्या कर लेगा, क्योंकि वह असमर्थ नहीं रहेगा; बल्कि समर्थ बन जायगा। कारण कि सामर्थ्य जिस प्रकार शक्ति और बुद्धि से अुत्पन्न होता है, अुसी प्रकार संख्या से भी अुत्पन्न होता है। अिसके विपरीत अगर वह संगठित न हो, तो वर्ग के रूप में वह काल्पनिक ही रहेगा।

सारांश यह कि समाज में स्वाभाविकरूप से कोअी भी वर्ग नहीं है। सिर्फ कम या अधिक सामर्थ्यवान व्यक्ति हैं। 'ये कम या अधिक सामर्थ्यवान व्यक्ति मिल कर अपनी व्यवस्था कैसे करें ?'—यही राजनैतिक प्रश्न का मूलभूत और स्वाभाविक अर्थ है। अिसमें से अमूलभूत और काल्पनिक कअी प्रश्नों की कल्पना या रचना की जा सकती है और फिर अुनका समाधान भी करना होता है।

व्यवस्था के स्वाभाविक प्रकार

[४] अिसलिअे व्यवस्था के तीन स्वाभाविक प्रकार होंगे :—

१. कोअी प्राज्ञ या समर्थ व्यक्ति सबके लिअे व्यवस्था करे। २. अनेक प्राज्ञ या समर्थ व्यक्ति अेकत्रित हो कर सबके लिअे व्यवस्था करे। ३. सब मिल कर समान जिम्मेवारी से अपनी व्यवस्था कर लें।

राज्यव्यवस्था के अिन तीन स्वाभाविक प्रकारों को हम 'अेकायतन', 'अनेकायतन' और 'सर्वायतन' ये पारिभाषिक नाम दें।

अवान्तर अुपभेद

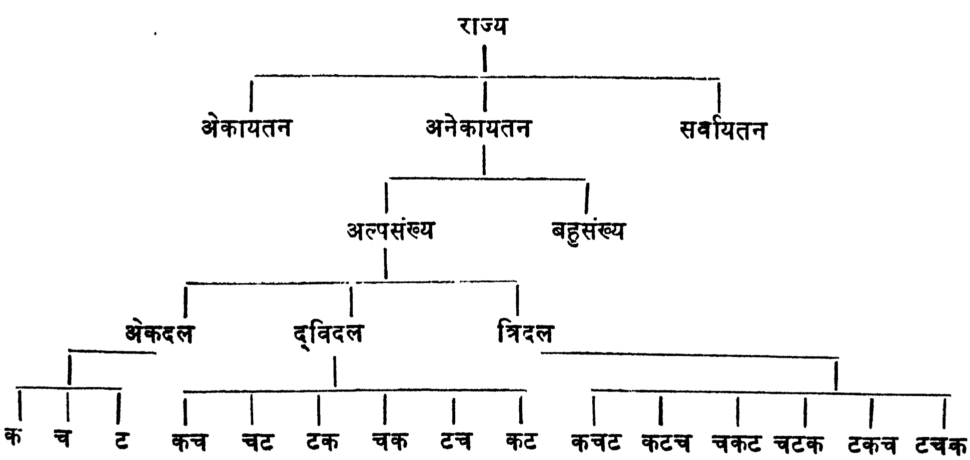
[५] परन्तु अिन तीन नैसर्गिक भेदों में से कअी स्वाभाविक और कृत्रिम अथवा काल्पनिक परन्तु अवश्य विचारणीय अुपाधियों के आधार पर अवान्तर भेद भी अुत्पन्न हो सकते हैं। अेकायतन और सर्वायतन ये दो प्रकार बिलकुल अेकान्तिक और अतअेव अेकविध हैं। लेकिन अेकायतन पद्धति में से दूसरी अनेक पद्धतियाँ निर्माण हो सकती हैं। अुसके दो स्वाभाविक विभाग अल्पसंख्यायतन और बहुसंख्यायतन होते हैं।

बहुसंख्यायतन

'बहुसंख्या' याने जिसे लक्ष्मी, शक्ति और सरस्वती का हिस्सा बहुत थोडा मिला है, वह श्रमपरायण सामान्य जनता। अुसका स्वरूप आम तौर पर सब देशों में और सब कालों में प्राय: अेक ही सा होता है। अिसलिअे बहुसंख्यायतन राज्यपद्धति अेकविध ही होती है।

अल्पसंख्यायतन के भेद

अल्पसंख्यायतन राज्यपद्धति में से शास्त्रिक सत्ता, शस्त्रिक सत्ता और धनिक सत्ता, ये तीन अेकदल सत्ताअें मूलतः अुत्पन्न होती हैं। अिन तीनों में से दो-दो के मिश्रण से शस्त्र-शास्त्रिक, शस्त्र-धनिक और शास्त्र-धनिक अैसी तीन द्विदल सत्ताअें पैदा होती हैं। अुनमें से फिर महत्त्व-तारतम्य के अनुसार शास्त्र-शस्त्रिक, धन-शस्त्रिक, और धन-शास्त्रिक अैसी और भी तीन द्विदल सत्ताअें पैदा होती हैं। अिस प्रकार कुल छह द्विदल शाखाअें अुत्पन्न होंगी। अुसी प्रकार तीन मूलभूत अेकदल सत्ताओं में से तीनों के समवाय और तारतम्य से शस्त्र-शास्त्र-धनिक आदि छह त्रिदल शाखाअें निकलेंगी। यहाँ यह विस्तार खतम होता है। कुल अठारह प्रकार होते हैं। अुनका चित्रण हम अिस प्रकार कर सकते हैं:—



सूचना :—क = शास्त्रिक; च = शस्त्रिक; ट = धनिक

दीगर भेद तत्त्वतः अभिन्न

[६] अिन अठारह प्रकारों से राज्यव्यवस्था के अधिक प्रकार तत्त्वतः नहीं हो सकते। वार्णिक—यथा गोरों की कालों पर, सवर्ण हिन्दुओं की अवर्ण हिन्दुओं पर; वांशिक—यथा अीसाअियों की यहूदियों पर; राष्ट्रिक—यथा, अिंग्लेंड की हिन्दुस्तान पर; नागरिक—यथा, पुराने रोम शहर की तत्कालीन संसार पर, आदि दूसरी अनेक प्रकार की सत्ताअें अलग अलग नामों से भले ही प्रकट हुअी हों, लेकिन तत्त्वतः अुन सबका समावेश अुपर्युक्त अठारह प्रकारों में कहीं-न-कहीं हो जायगा।

सर्वायतनपद्धति कहीं नहीं है

[७] राज्यसंस्था की बौद्धिक छानबीन करने के बाद कितने प्रकार अुत्पन्न हो सकते हैं, अिसका विचार किया। अिससे यह स्पष्ट है कि आज दुनिया में अिन्हींमें से कोअी-न-कोअी प्रकार अलग अलग नाम धारण करके प्रचलित होंगे। यह बात बिलकुल स्थूलबुद्धि व्यक्ति के भी ध्यान में आयेगी कि आज सर्वायतन राज्यपद्धति कहीं भी विद्यमान नहीं है। गांधीजी अुसकी स्थापना का प्रयत्न कर रहे हैं और अुन्होंने अुसके साधन का शोध भी किया है। अुस साधन का प्रयोग वह भारत में करना चाहते हैं।

प्रजातन्त्र का नाम धारण करनेवाली और सर्वायतन होने का दम भरनेवाली अेक राज्यपद्धति है, जिसका स्वांग यूरोप और अमेरिका में किया जा रहा है। लेकिन हिंसा पर आश्रित कोअी भी पद्धति, चाहे वह 'जितने सिर अुतने मत' गिनने का दम्भ भले ही करती हो, दर असल सर्वायतन नहीं है। अिसके विपरीत सब लोग मिल कर स्वेच्छा से और सोचसमझ कर अपनेमें से किसी अेक को या अनेकों को राग-द्वेष-रहित, भूतहित-तत्पर, बुद्धिमान और कुशल जान कर सारी सत्ता सौंप दें, तो वह सत्ता आकार में अेकायतन अथवा अनेकायतन प्रतीत होती हो, तो भी अगर अुसका आधार अहिंसा हो, तो अुसे सर्वायतन ही मानना चाहिअे। हिन्दुस्तान के पुराने पंचायती राज्य को अिस तरह का कुछ अधकचरा और बिलकुल अशास्त्रीय परन्तु प्रामाणिक प्रयत्न कह सकते हैं। लेकिन वह प्रयत्न अितना अशास्त्रीय है कि अुसका अुल्लेख मात्र करने के अलावा और आज कोअी अुपयोग नहीं है।

अितना कहना काफी होगा कि अिस समय सर्वायतन पद्धति कहीं भी प्रचलित नहीं है और आअिन्दा अुसकी स्थापना करना है।

अेकायतनपद्धति

[८] अेकायतनपद्धति शुरू से अब तक कअी जगह जारी है। हमारी देशी रियासतें अुसके नजदीक के अुदाहरण माने जा सकते हैं। अिन रियासतों का मूल संस्थापक जितना निरंकुश या अहंप्रमाण होता था, अुसकी अपेक्षा अुसके बाद वंश-परम्परा से आनेवाले बने-बनाये राजा अकसर कहीं अधिक स्वेच्छाचारी और अहंप्रमाण होते हैं। मूल संस्थापक को कमाअी करनी होती है। अिसलिअे, अिच्छा हो न हो, अुसे अनेकों से सहकार्य करना पड़ता है। बाद में आनेवाले अिस तरह की कोअी जिम्मेवारी महसूस नहीं करते। अिसलिअे वे अधिक गैरजिम्मेवार बन सकते हैं। कहा भी है कि सूर्य अुतना नहीं तपता जितनी कि बालू तपती है। संसार के दूसरे हिस्सों में भी कअी जगह अेकायतनपद्धति ज्यों-की-त्यों चालू है।

अल्पसंख्यायतनपद्धति—विद्यमान प्रकार और स्वरूप

[९] अल्पसंख्यायतनपद्धति के कुछ प्रकार यूरोप में और अन्यत्र विशेष प्रबल हो रहे हैं। नाजीवाद, फैसीवाद, साम्राज्यवाद ये सब, कम या अधिक मात्रा में, अल्पसंख्यायतनपद्धति के ही रूप हैं। हिंसा, यंत्रवाद, अेकत्रित पूँजी, बडे पैमाने पर योजनाअें अुनके हथियार हैं। वे करेंगे तो हिंसा; लेकिन कहते रहेंगे कि वह अहिंसा के लिअे ही है। बहुसंख्या को प्रसन्न रखना जरूरी है। अिसलिअे हमेशा अुसके हित का मन्त्र पढ़ते रहेंगे। आघात-प्रत्याघात की परम्परा अुत्तरोत्तर बढ़ती चली जायगी। 'संसार की सर्वसामान्य जनता हमारी व्यवस्था के बिना व्यवस्थित रह ही नहीं सकती'—यह कल्पना सारी योजना का आधार है। जबतक बहुसंख्या अिस कल्पना के वश होने अितनी अज्ञान अथवा दुर्बल रहेगी, तबतक अिस पद्धति का किसी-न-किसी रूप में बना रहना अनिवार्य है।

बहुसंख्यायतनपद्धति का रूसी प्रयोग

[१०] अिसके विपरीत रूस ने मानो अन्धे आवेश से बहुसंख्यायतनपद्धति का प्रयोग शुरू किया प्रतीत होता है। लेकिन हिंसा कभी भी और कहीं भी बहुजनसमाज का हथियार नहीं हो सकती। अिसलिअे रूस का प्रयोग वस्तुतः शस्त्र-शास्त्र-धनिक अल्पसंख्यायतनपद्धति का प्रयोग ठहरने-वाला है। स्टैलिन की वर्तमान नीति यह अनुमान प्रमाणित कर रही है। जो शस्त्र से कमाया हो अुसे शस्त्र से ही सम्हालना होगा। बडे परिमाण में शस्त्रास्त्रों की तैयारी के बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, यह आज साबित हो चुका है। अिसलिअे बहुसंख्या को शस्त्रों के प्रयोग में व्यस्त रखना होगा। बहुसंख्या शस्त्र चलाने में स्वभावतः असमर्थ होती है। अिसलिअे अुसे अुस काम में निपुण अल्पसंख्या के ही आधीन हो कर रहना पडेगा। अिस सारी योजना के लिअे धनसंग्रह और आत्मरक्षा के लिअे राजनीति-निपुणता का शास्त्र जरूरी होगा। अितना होने के बाद वह प्रयोग बहुसंख्यायतन नहीं रह सकता। जबतक बहुसंख्या को वह हितकर प्रतीत होता है, तबतक भले ही चलता रहे। आज मैंने अुस प्रयोग को 'शास्त्र-शस्त्र-धनिक' का नाम दिया है। परंतु सांख्यो के तीन गुणों की तरह जब शस्त्र, शास्त्र और धन की अेकत्र आवश्यकता होती है, तब अिन तीनों में से कौन-सा, कब और कितना प्रबल होगा, अिसका ठिकाना नहीं है। अिसलिअे थोडे में और निश्चित शब्दों में, अुसके विषय में अितना ही कहा जा सकता है कि कदाचित् अीमानदारी से बहुसंख्या के हित के लिअे शुरू किया हुआ, लेकिन वस्तुतः अल्पसंख्यायतनपद्धति का ही वह अेक नये ढंग का प्रयोग है।

'नये प्रकार' से मतलब अूपर गिनाये हुअे प्रकारों के अलावा किसी नये प्रकार से नहीं है। 'गिनाये हुअे प्रकारों में से ही अेक लेकिन शायद पहले न किया गया हुआ'—अितना ही 'नवीन' से मतलब है। मनुष्य का अितिहास दस-पांच लाख वर्षों का है। अिसलिअे यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि अैसा प्रयोग पहले कभी हुआ ही नहीं होगा। मनुष्यों के विचारों का चक्र परि-चित रास्ते पर से भी अपरिचयपूर्वक नित्यनूतन घूमता ही रहता है। किसी माता के जब लड़का होता है, तो अुसकी मानसिक प्रसूति अितने आनन्द और अुत्साह से जारी रहती है कि मानों आजतक किसी भी माता के अैसा लड़का कभी हुआ ही न हो।

अुपसंहार

[११] संसार में कितनी और कितनी तरह की राज्यपद्धतियाँ वर्तमान हैं और कौन-कौन से विचारप्रवाह मौजूद हैं, अिसका यह संक्षिप्त विवरण है।

प्रश्न २ रा

प्रश्न–आपने यह सब सिद्धान्त के रूप में बतलाया। लेकिन वर्तमान नाजीवाद, फैसीवाद और समाजसत्तावाद का प्रत्यक्ष व्यावहारिक दृष्टि से स्पष्टीकरण होना जरूरी है। अिन वादों में से कौन-सा वाद श्रेष्ठ है।

जनता जीवन-निष्ठ वाद और पद्धतियाँ

[१२] **अुत्तर**—हमने अूपर विचार की दृष्टि से राज्यव्यवस्था के मुख्य चार प्रकारों का, याने अेकायतान, अल्पसंख्यायतन, बहुसंख्यायतन और सर्वायतन पद्धतियों और अुनके अन्तर्गत अल्पसंख्यायतन-पद्धति के अवान्तर प्रकारों का, समावेश करके अठारह प्रकारों की लम्बी-चौडी सूची बनायी। लेकिन फिर भी अिन सब प्रकारों में समान अंश है ही। अुन्हें ध्यान में लेने के बाद प्रचलित वादों के अथवा पद्धतियों के भेद अधिक स्पष्ट होंगे। किसी राजा की बिलकुल व्यक्तिगत सत्ता हो, तो भी वह राज्य अक्षरशः अकेले अुसका नहीं होता। अुसका अेक सहायकवर्ग होता है और बहुसंख्या का सहयोग भी अुसे थोड़ाबहुत मिलता है। अिसीलिअे अुसका राज्य चलता है। अिसके विपरीत सर्वायतन-पद्धति में सभी लोग प्रत्यक्षरूप से शासनसंचालन नहीं करते। सब का सहयोग मान कर ही प्रत्यक्ष शासनकार्य थोड़े लोगों के सुपुर्द किया जाता है। और अिस प्रणाली में भी प्रायः किसी व्यक्ति को अन्तिम प्रमाण के रूप में मानना ही पड़ता है। जनता कभी भी वादनिष्ठ या पद्धतिनिष्ठ नहीं होती। वह तो जीवननिष्ठ होती है। जीवन सुचारूरूप से चलता रहे, तो वाद या पद्धति कौन-सी भी क्यों न हो, जनता को अुसकी पर्वाह नहीं होती। वाद तत्त्वज्ञानी छेड़ते हैं, व्यवहारनिष्ठ लोग पद्धति बनाते हैं और समाज सहयोग देता है। तत्त्वज्ञ और व्यवहारी लोग क्रमशः वादनिष्ठ और पद्धतिनिष्ठ होते हैं। लेकिन वे भी आखिर अपने अपने मत के अनुसार जीवन-निष्ठ ही होते हैं; अिसीलिअे वाद या पद्धतिनिष्ठ होते हैं। तत्त्वज्ञानी मानता है कि अमुक 'वाद' के बिना जीवन अच्छा बन ही नहीं सकता। अिसलिअे, अपनी जीवननिष्ठा के कारण ही, वह वादनिष्ठ बन जाता है। व्यावहारिक मनुष्य अपने अनुभव से यह ठहराता है कि अमुक पद्धति के बिना जीवन अच्छा बन ही नहीं सकता। और अिसलिअे, याने अपनी जीवननिष्ठा के कारण ही, वह पद्धतिनिष्ठ बन जाता है। लेकिन आग्रह और मोह की बदोलत कभी कभी जीवननिष्ठा शिथिल हो जाती है और केवल वादनिष्ठा तथा पद्धतिनिष्ठा तत्त्वज्ञों, व्यावहारिक लोगों और दूसरों के मनों पर अधिकार जमा लेती हैं। लेकिन किसी भी हालत में सभी वादों, पद्धतियों और अुन पद्धतियों के व्यवहार में नीचे लिखे अंश सामान्य समझने चाहिअे :–

(अ) जीवननिष्ठा—वास्तविक अथवा कम-से-कम अूपरी; अन्तिम या कम-से-कम तात्कालिक; सार्वजनिक अथवा कम-से-कम स्थानीय।

(आ) बहुसंख्या का और सबका सहयोग—स्वेच्छापूर्वक, ज्ञानपूर्वक, मूक या जबरदस्ती का; पूर्णतः या पर्याप्त।

(अि) समर्थ व्यक्तियों के हाथ में राज्य की बागडोर—चुने हुअे, नामजद अथवा अेकत्रित।

(अी) अन्तिम प्रमाण अेक व्यक्ति—सब के द्वारा, अधिकांश के द्वारा या अल्प संख्याकों के द्वारा, प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से निर्वाचित; अथवा स्वयंभू।

साम्य होते हुअे भी विरोध कैसे ?

[१३] "अितना अंश समान होने पर फिर यह पद्धतियों का और वादों का झगड़ा किस लिअे ? शासन-प्रणालियों में परिवर्तन और क्रान्तियाँ क्यों ? पद्धतियों की तुलना की गुंजाअिश ही कहाँ है ? और किन बातों के आधार पर "?

अिन सब प्रश्नों का अुत्तर अेक ही है और वह समान अंश का विवेचन करते हुअे जो विविध विशेषण लगाये गये हैं, अुन्हीं में अन्तर्हित है ।

[१४] (अ) जीवननिष्ठा अगर केवल स्थानीय हो, तो अन्य स्थानीय जीवन से अुसका विरोध होता है और अिस तरह की विरोधी जीवननिष्ठा टिक नहीं सकती । वह नयी पद्धति को जन्म देती है और स्वयं नष्ट हो जाती है । अगर वह तात्कालिक या अदूरदर्शी हो, तो उछाले फुटबॉल की तरह अुसका वेग मंद होता जायगा और नवीन वेग की आवश्यकता रहेगी । अगर वह भासिक याने केवल बाहरी हो, तो जब तक आभास का असर रहेगा तभी तक वह टिक सकेगी ।

[१५] (आ) बहुजनसमाज का सहयोग–(१) अगर वह जबरदस्ती का हो, तो बहुजन-समाज जब तक जाग्रत और समर्थ नहीं हुआ है, तभी तक ज्यों-त्यों राज्य चलेगा । (२) जबरदस्ती का होते हुअे भी अगर थोड़ा-बहुत सुखद हो, तो अुतने दर्जे में वह सहयोग अधिक समय तक रहेगा । (३) जबरदस्ती के शासन में यदि कुशल शासकवर्ग अशिक्षण या कुशिक्षण के प्रयोग से लोक-जागृति रोक दे, तो वह और भी अधिक टिकेगा । (४) प्राथमिक सुख तो अिस प्रणाली से प्राप्त ही नहीं हो सकता । लेकिन अगर गौण सुख का आभास अुत्पन्न किया जा सके, तो लोग अुसके थोड़े-बहुत आदी हो जायँगे । लेकिन अिसमें शक नहीं कि हर हालत में अिस पद्धति का अन्त कभी-न-कभी अवश्यंभावी है ।

सहयोग स्वेच्छापूर्वक दिया जाने पर भी अगर वह ज्ञानपूर्वक न दिया गया हो, केवल मूक सहयोग हो, तो वह जनता में बुद्धिभेद होने तक ही टिकेगा ।

[१६] (अि) समर्थोंका धुरीणत्व—शासन का संचालन हमेशा समर्थ व्यक्तियों के द्वारा ही होता है । लेकिन अगर वे व्यक्ति चुने हुअे हों तो अुनका टिकना अुनकी सुराज्यशक्ति पर निर्भर है । अगर नियुक्त हों, तो वे तभी तक कायम रहेंगे जब तक जनता समर्थ नहीं होती या अुन-व्यक्तियों में आपस में फूट नहीं होती । अगर वे अेकत्रित हुअे हों तो कुछ अधिक दिन टिकेंगे । लेकिन जनता के आधार के अभाव मे समर्थ व्यक्तियों की अेकता भी ज्यादा दिन नहीं ठहरती । समर्थ व्यक्तियों में अक्सर सामर्थ के साथ साथ पारस्परिक अीर्षा भी होती है ।

[१७] (अी) प्रमाणभूत व्यक्ति अगर स्वयंभू हो, तो अुसकी राज्यप्रणली तभी तक रहेगी जब तक कि अुस व्यक्ति के पराक्रम या प्रभाव का अन्त नहीं हुआ है । अगर निर्वाचित हो, तो निर्वाचन का अधिष्ठान जितना व्यापक, व्यवस्थित और खुला होगा, अुतना ही अधिक स्थायित्व रहेगा ।

मुख्य बात—सार्वराष्ट्रीय अविरोध अथवा भ्रातृभाव

[१८] राजनैतिक पद्धतियों का विचार करते हुअे अुपर्युक्त बातों के अलावा दूसरी भी अेक बहुत महत्त्व की बात पर ध्यान देना जरूरी है । वह यह कि राष्ट्र की अन्तर्गत व्यवस्था के साथ साथ अन्य राष्ट्रों से व्यवहार कहाँ तक अविरोधी है । पुराने जमाने में जब कि आवा-गमन के साधन अितने वेगवान नहीं थे, तब भी यह प्रश्न कम महत्त्व नहीं रखता था। आज तो सार्वराष्ट्रीय

अविरोध ही नहीं, बरन आनुकूल्य और भ्रातृभाव प्रत्येक राष्ट्र या समूह के व्यवहार का मूलतत्त्व माना जाना चाहिअे।

राज्यपद्धति की कसौटी के सिद्धान्त

[१९] अिस सारी चर्चा के सारांश के रूप में हम राज्यपद्धति की कसौटी के कुछ सिद्धान्त यहां देते हैं :—

(अ) सार्वराष्ट्रीय भ्रातृभाव
(आ) राष्ट्र के सब लोगों का ज्ञानपूर्वक, यथाशक्ति, परन्तु सहजस्फूर्त और हार्दिक, सहयोग
(अि) समर्थ अल्पसंख्या और सर्वसामान्य बहुसंख्या का हितैक्य
(अी) सबके सर्वांगीण और समान विकास की दृष्टि
(अु) राज्यसत्ता का व्यापकतम विभाजन
(अू) अल्पतम शासन
(अे) सुलभतम तन्त्र
(अै) न्यूनतम खर्च
(ओ) कम-से-कम रखवाली
(औ) सार्वत्रिक अव्याहत और तटस्थ अथवा मुक्त ज्ञानप्रचार

नासीवाद, फाँसीवाद और समाजवाद का भ्रमपूर्ण स्वरूप

[२०] अब हम मूल प्रश्न का विचार कर सकते हैं। नासीवाद और फॉसीवाद में मुझे अितना ही फर्क मालूम होता है कि नासीवाद अधिक संगठित है और समाज के अधिक बड़े अंश का स्पर्श करता है। अिससे अधिक फर्क अिन दोनों पद्धतियों में नजर नहीं आता। वंशाभिमान दोनों के लिअे समान हैं। दोनों ने अिंग्लैंड को अपना गुरु माना है और दोनों राज्य-विस्तार-तृष्णा के कायल हैं। सैनिक शक्ति पर दोनों को विश्वास है। पोर्तुगाल, स्पेन, अिंग्लैंड, हॉलैण्ड, फरान्स आदि देशों ने जिस पद्धति से सँसार को व्यापने का प्रयत्न किया, अुसीका अनुसरण ये भी कर रहे हैं। दोनों पद्धतियों के विषय में आज का अुपलब्ध साहित्य पढ़ने से अुनके बारे में जो राय कायम होगी, अुसे पन्द्रह दिन के बाद निकली हुअी पुस्तकें पढ़ने पर बदलने की नौबत आयगी।

अिसके विपरीत, रूस में साम्यवाद या समाजवाद के नाम से प्रयोग शुरू हुआ है। मूलभूत कल्पना अुसे विश्वव्यापी बनाने की थी। लेकिन वह न टिक सकी और बाद को अुसे राष्ट्रबद्ध स्वरूप प्राप्त हो गया है। सैनिक शक्ति में अुनका अुतना ही विश्वास है जितना कि औरों का। अगर आज तैयारी में कुछ कसर रह गयी है, तो कल वह दूर हो जायगी। तत्त्वहीन अवसरवादिता से किसी को भी परहेज नहीं है। व्यापार दूसरों ने पहिले ही हथिया लिया और रूस में जमीन भरपूर है। अिसलिअे रूस खेती की योजनाअें अधिक बनाता है। लेकिन यह फर्क मूलभूत नहीं है, परिस्थिति के कारण हुआ है। रूस की क्रान्ति बीस वर्ष की अल्प अवधि में ही अितनी बासी और खट्टी हो गयी है कि अुसका असली आकर्षक स्वरूप प्राय: लोप हो गया है। कारण यह है कि केन्द्रीकरण, यंत्रपूजा, शस्त्रनिष्ठा और शोषण—पूँजीवाद के अिन चार लक्षणों में से तीन कायम रखते हुअे चौथे के निराकरण का प्रयत्न साम्यवाद कर रहा है। अर्थात् यह

अक मोहचक्र है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि पहिले तीन लक्षणों के साथ चौथा, टालने पर भी, बरबस आ ही जाता है। लेकिन केन्द्रीकरण से प्राप्त क्षमता, यंत्रपूजा की बदौलत मिला हुआ आराम और शस्त्रनिष्ठा का दिया हुआ रक्षा का आश्वासन—अिन तीनों का लालच अितना जबरदस्त है कि अुनमें से अेक का भी त्याग करने की कल्पना मोहचक्र में पड़े हुअे चित्त को नहीं भाती। नासीवाद और फाँसीवाद के लिहाज से रूस का 'वाद'—आप अुसे चाहे जो भी नाम दीजिये—अधिक सद्हेतुमूलक प्रतीत होता है। लेकिन तीनों अेक-ही-से भ्रान्त हैं और अिसलिअे अधिकांश का हित साधने में भी करीब करीब अेक-से असमर्थ ठहरे हैं।

नाजीवाद और समाजवाद के मूढ़ग्राह

[२१] जब तक कोअी पद्धति निर्माण की अवस्था में हो और प्रतिक्षण बदल रही हो, तब तक अुसके गुणदोषों की तुलना या चर्चा भ्रम-जनक हो सकती है। अुदाहरणार्थ सार्वराष्ट्रीय भ्रातृभाव की कसौटी की दृष्टि से विचार किया जाय, तो अिटाली या जर्मनी की वर्तमान विचारधारा में वह कहीं नहीं पायी जाती। अिसके विपरीत रूस के साम्यवादी तत्वज्ञान में अुसका स्थान होना चाहिअे। लेकिन साम्यवाद का अेक सिद्धान्त यह भी माना गया है कि साम्यवाद की विचार-धारा जब तक सारे संसार में नहीं फैलती, तब तक किसी भी अेक देश में वह स्थायी नहीं हो सकेगा। अिसके अलावा, साम्यवाद के प्रचार-साधनों में हिंसा वर्जित नहीं है। अिसलिअे केवल प्रचार के आनन्द के ही लिअे, मौका पा कर, रूस दूसरे किसी भी राष्ट्र पर आक्रमण कर सकता है, चाहे अुस राष्ट्र ने रूस का कुछ भी न बिगाड़ा हो। जब तक अिस तरह के आक्रमण का सुयोग नहीं मिलता, तब तक सार्वराष्ट्रीय भ्रातृभाव, कम से कम, पुस्तकों में तो रह सकेगा। बाद में उसको वहाँ से भी निर्वासित किया जायगा। भक्तों की यह धारणा है कि रामचन्द्रजी के बाण से जितने आदमी मरे वे सब मुक्त हो गये। साम्यवाद के भोले भक्त भी कअी बार यह कहते पाये जाते हैं कि रूस का आक्रमण जिस जिस राष्ट्र पर होगा, अुस का कल्याण ही होगा। अिस सारी विचारधारा का अगर खयाल किया जाय, तो जर्मनी और अिटाली की अपेक्षा रूस राष्ट्रीय भ्रातृभाव की कसौटी पर अधिक खरा अुतरेगा, यह कहना मुश्किल है।

हमारी कसौटी की अन्तिम शर्त ज्ञानप्रचार की स्वतन्त्रता है। अुसका रूस में अुतना ही अभाव है जितना कि जर्मनी में। और सो भी केवल युद्धकाल में ही नहीं; बरन हमेशा। रखवाल-दारी के विषय में भी वही बात है। सबका रक्षा का साधन हिंसा ही है। अिसलिअे यही कहना पड़ेगा कि जो रखवाली पर अधिक से अधिक खर्च करेगा वही बुद्धिमान है।

रूस की विचारप्रणाली में ध्येयवाद की जो सामर्थ्य है, वह नाजी और फैशी विचार-प्रणाली में नहीं पायी जाती। लेकिन अुसकी जगह आज स्वजाति और स्ववंश का अभिमान वहाँ के लोगों के लिअे प्रेरणाप्रद हो रहा है।

रूस के ध्येयवाद में बहुजनसमाज के हित की जो दृष्टि निहित है, वह वस्तुतः सर्वोदय के प्रतिकूल नहीं है। बहुजनसमाज के हित में ही वस्तुतः दूसरे सब लोगों का हित सुरक्षित रह सकता है। अिस हितैक्य दृष्टि के आधार पर आज की अपेक्षा अधिक स्थायी क्रान्ति हो सकती थी। लेकिन हितैक्य दृष्टि की अपेक्षा हितविरोध की दृष्टि ही अधिक प्रभावशाली तथा सद्यःफलदायी मानी गयी और अुसीका अवलंबन किया गया। कार्य शीघ्र होता-सा मालूम हुआ; लेकिन बाद में अुसे सम्हालने की चेष्टा करते करते राष्ट्राभिमान का सहारा लेना पड़ा। जनता को समत्वयुक्त

और विवेकी दृष्टि की शिक्षा देने के बदले, बलवान प्रतीत होनेवाली आवेशपूर्ण दृष्टि ही सिखाने के मोह को विषप्रकारी नेता रोक नहीं सकते। रूस का बहुजनहितवाद और जर्मनी का राष्ट्र-संगठनवाद असके ज्वलंत अुदाहरण हैं। जर्मन नेताओं को अिस मोह ने घेर लिया कि वंशाभिमान जाग्रत किये बिना शायद राष्ट्रसंगठन शीघ्रता से नहीं होगा और रूस के नेता अिस मोह के शिकार हुअे कि वर्गविरोध की भूमिका सजाये बिना क्रान्ति द्रुतगति से नहीं होगी।

मैजिनी के अिटाली की दुरवस्था

[२२] जोसेफ मैजिनी की दृष्टि से अिटाली की परिस्थिति पर दृष्टि डाली जाय तो अेक अजीब दृश्य दिखायी देता है। मैजिनी गिजो का भक्त था। लेकिन गिजो आत्मौपम्य के सिद्धान्त को स्वतन्त्रता की बुनियाद मानता था। मैजिनी को वह अपर्याप्त प्रतीत हुआ। अिसलिअे अुसने अीश्वर के पितृत्व के आधार पर सार्वराष्ट्रीय स्वतन्त्रतावाद का प्रतिपादन किया। लेकिन अुसके जीतेजी अिटाली की निजकी राज्य सत्ता खडी हो गयी। जनता तो परायी सत्ता के नष्ट होने के आनन्द में गर्क थी; परन्तु मैजिनी अपने ध्येय के तिरोहित हो जाने पर बिलख रहा था। अब अुस राज्यसत्ता को हटा कर अुसकी जगह अेक व्यक्ति में केन्द्रित क्षत्रिय वर्ग की सत्ता ने ले ली है। जब जब क्षत्रियवर्ग वर्ग के नाते अग्रसर होता है, तब तब वह जनता के हित का दम भरता है। यह क्षात्रवर्ग अपने आपको अीश्वर की रक्षकशक्ति का अुत्तराधिकारी मानता है। वंशाभिमान तो अुसमें कूट कूट कर भरा हुआ होता है। अिसलिअे अुसे विषप्रकारित्व के लिअे आवश्यक जोश-ओ-खरोश सहज ही अुपलब्ध होता है। यह क्षात्रवर्ग अगर अन्तस्थ कलह या बाह्य आक्रमण से परास्त हो जाय, तो अेक क्षण के लिअे जनता अुसपर तरस खाती है और फिर अपने नित्य व्यवहार में मग्न हो जाती है।

साम्यवाद अधिक रोचक और संशोधनक्षम

[२३] अब अिन तीन वादों की श्रेष्ठता और कनिष्ठता कैसे ठहरायी जाय, यह बड़ा कठिन प्रश्न है। जनता जब किसी पुरानी व्यवस्था से तंग आ जाती है, तब वह पुरानी व्यवस्था को तोड़नेवाली चाहे जिस नयी व्यवस्था को पसन्द करती है। पुरानी व्यवस्था का अन्त हो गया, यही अुसके लिअे आनन्द का विषय होता है। पेशवाशाही के बाद अेलफिन्स्टन साहब की अमलदारी शुरू हुअी और कानून से नियंत्रित राज्यसत्ता जारी हुअी, अिसीकी खुशी अुस जमाने के मराठों को हुअी। लेकिन पचास साल के भीतर ही यह खुशी गायब हो गयी और असंतोष की हवा चलने लगी। अेलफिन्स्टन के जमाने का मराठा जिस आनन्द में मशगूल था वह आनन्द सर्वथा मिथ्या नहीं था। लेकिन आज अुस तरह के आनन्द से हमें कोअी लाभ नहीं। अिटाली, जर्मनी और रूस की जनता को—फिलहाल ही क्यों न हो, लेकिन—अुनकी कल्पना के अनुरूप आनन्द प्राप्त हुआ है। हम हिन्दुस्तानी अर्से से परतन्त्र हैं। गरीबी तो हमारी बेमिसाल है। हमारे परम्पराप्रिय समाज को जात्यभिमान भी रुचिकर प्रतीत होगा। अिसलिअे सम्प्रति भारतवर्ष में गरीबों के हित की चिंता करनेवाला अेक साम्यवादी वर्ग भी है और जात्यभिमान को संगठित रूप देने की चेष्टा करनेवाला दूसरा वर्ग भी मौजूद है। लेकिन हिन्दुस्तान की शोचनीय दशा का विचार थोडी देर के लिअे छोड़ दिया जाय, तो तटस्थ वृत्ति के किसी विचारक को साम्यवाद के प्रति जितना आकर्षण हो सकता है और थोडे-से संशोधन से अुसमें सुधार की जितनी गुंजाअिश है, अुतना आकर्षक या संशोधनक्षम नाजी या फैसीवाद नहीं हो सकता, यह मानना पड़ेगा।

प्रश्न ३ रा

प्रश्न—अगर प्रचलित सभी पद्धतियों को सदोष करार दिया जाय, तो निर्दोष पद्धतियों का स्वरूप कैसा होना चाहिअे ?

[२४] **अुत्तर**—किसी भी पद्धतिविशेष का आग्रह न रखते हुअे, समय-समय पर पद्धति बदलते रहना ही सर्वोत्तम पद्धति समझनी चाहिअे। पद्धति कोअी अबाधित तत्त्व नहीं है कि जिसके आधारपर हम अपने जीवन का निर्माण कर सकें। अक्सर किसी अेक पद्धति से जो मनुष्य तंग आ जाता है, वह दूसरी पद्धति की तलाश में रहता है। लेकिन जिन विशेष गुणों या दोषों के कारण लाभ अथवा हानि होती है, अुनकी तरफ मनुष्य का ध्यान नहीं जाता। बालविवाह से जो समाज तंग आ जाता है, वह प्रौढ़-विवाह की तरफ मुड़ता है; और जो प्रौढ़विवाह से संत्रस्त हो जाता है, वह बाल-विवाह का आश्रय ले सकता है। वास्तव में तारक तत्त्व तो संयम है। विवाह की अुम्र निर्धारित कर देने से ही मनुष्य का अुद्धार नहीं हो सकता। सबका शासन सब के द्वारा करने की स्थूल पद्धति समाज के विकास की अवस्था पर निर्भर है। परन्तु अिन सारी पद्धतियों में, कम से कम, नीचे लिखी चार चीजें तो अनिवार्यरूप से रहेंगी:—

(१) समर्थों का सामर्थ्य जनसेवा को अर्पण किया गया हो।

(२) जनता पूरी तरह स्वावलम्बी और पारस्परिक सहयोग का आचरण करनेवाली हो।

(३) नित्य सहयोग और प्रासंगिक असहयोग या प्रतीकार का अधिष्ठान अहिंसा ही हो।

(४) सबके प्रामाणिक परिश्रम (नैतिक और आर्थिक) की कीमत समान हो।

सामर्थ्य का स्वरूप और अुचित विनियोग

[२५] अुपर्युक्त बातों में से हर अेक का थोड़ा थोड़ा विवेचन करना अुपयोगी होगा:—

'समर्थ' से मतलब है स्वभावतः अधिक बुद्धिशाली और शक्तिशाली व्यक्ति। यह भेद प्राणिशास्त्र का ही किया हुआ है और फिलहाल अुसके निराकरण की कोअी आशा नहीं है। लेकिन आज तो सम्पत्ति आदि साधनों की बदौलत समर्थ बना हुआ अेक गिरोह है। पहले दो गिरोह स्वाभाविक हैं। यह तीसरा औपाधिक है। अिन तीनों को निसर्ग और परिस्थिति ने जो सामर्थ्य प्रदान किया है, वह जनता की सेवा के लिअे ही है। अिस बात का निरन्तर जाग्रत भान अुन्हें होना चाहिअे। यह सामर्थ्य जनता की सेवा को अर्पण किया जाय, अिस तरह का प्रबन्ध कालानुरूप करनेवाली राज्यपद्धति होनी चाहिअे।

बुद्धि का अुपयोग लोकजीवन ज्ञानमय बनाने के लिअे, शक्ति का अुपयोग लोकहितार्थ पराक्रम करने के लिअे और सम्पत्ति का अुपयोग सारे समाजशरीर में अुत्पादनशक्ति का सुव्यवस्थित और समानरूप से वितरण करने के लिअे होना चाहिअे। समर्थ व्यक्ति अगर समाज को अपनी शक्तियों का अिस तरह से अुपयोग नहीं देंगे, तो लोकमत की दृष्टि में वे राज्यप्रणाली के सिद्धान्तों के अनुसार अपराधी ठहरने चाहिअें।

लोकमतानुवर्ती कानून

लोकमत के होते हुअे, अगर जरूरत हो, तो अुस सम्बन्ध में कानून भी बनाया जा सकता है। कानून याने अनुशासन की गुंजाअिश लोकमतानुसारी अहिंसक राज्यप्रणाली में होती है। हां,

दंड के भय से समाज सीधे रास्ते पर रहता है, यह विचार अनुभव से गलत साबित हो चुका है। लेकिन फिर भी वह लोकमान्य है। असल बात यह है कि समाज को सही रास्ते पर रखने के लिअे लोकमत का डर—या लोकमत की कद्र कह लीजिये—अधिक से अधिक अुपयोगी हुअी है और हो रही है। जिन्हें नैतिक मर्यादा के पालन के लिअे लोकमत की जरूरत नहीं होती, अैसे कुछ थोड़े-से महान व्यक्ति सर्वत्र और सभी युगों में होते हैं। लोकमत की अवहेलना करके अनीति की राह पर चलनेवाले कुछ भ्रान्त अविवेकी व्यक्ति भी होते हैं। परन्तु आम जनता या सर्वसाधारण वर्ग लोकमत के विधानों का पालन करता है और लोकमत के निषेधों को टालता है। यही सहज कानून या लोकमत अनुशासन का आधार होता है और अुसका आदर सर्वसाधारण जनता हमेशा करती है।

अब जो थोड़े-से भ्रान्त व्यक्ति बाकी रह जाते हैं, अुनका सम्बन्ध फौज वगैरा से जोड़ने के बदले थोड़े-से महापुरुषों के साथ कायम करना चाहिअे। अर्थात् जिन्हें कानून की पर्वाह नहीं है अुन्हें, जिन्हें कानून की जरूरत नहीं है अुनके, हवाले करके सर्वसाधारण को कानून के अनुसार चलना चाहिअे।

चोर और सूम

आज लोकमत चोर को बरदाश्त नहीं कर सकता। वही हाल कदर्य या कृपण का भी होना चाहिअे। याने आज जिस प्रकार चोर कानून से अनुशासनीय है, अुसी प्रकार सूम भी होना चाहिअे। अर्थात् लोकमत का स्वरूप ही वैसा बन जाना चाहिअे। सभ्य मा-बाप अपने बच्चों को बाल्यावस्था से ही यह शिक्षा देते हैं कि बिना माँगे कोअी चीज हथिया लेना अेक बड़ा भारी गुनाह है। अुसी प्रकार जिसे जरूरत हो अुसे मांगने पर भी न देना शिक्षण-शास्त्र की दृष्टि में नैतिक दोष माना जाना चाहिअे। यह विचार नया नहीं है। लेकिन अेक सामान्य तत्त्व के रूप में अबतक अुसका अमल नहीं हुआ है। अुपनिषद में राजा अश्वपति अपने राज्य की महिमा अेक ही वाक्य में अिस प्रकार वर्णन करता है:—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः।

(मेरे राज्य में न तो चोर है और न कंजूस)। वह दोनों को अेक ही श्रेणी के मानता है और यह संकेत करता है कि कृपण चोरों के जनक हैं तथा चोर अुनके अुत्तराधिकारी पुत्र हैं। अिस विचारधारा को कानून में दाखिल कर देना जरा भी मुश्किल नहीं है।

संपत्तिमानों की संपत्ति छीन लेने की बात बिलकुल फिजूल कही जाती है। वस्तुतः सम्पत्तिमान सम्पत्ति केवल संचय के लिअे नहीं रखना चाहते। अुन्हें तो प्रतिष्ठा, सुख, भावी जीवन की सुनिश्चितता, संतान की चिन्ता और दानवीरता के लिअे नामवरी, अिन्हींमें से कुछ की, या अिन सब की, अभिलाषा होती है। अगर कोअी अैसी युक्ति हाथ लग जाय जिसकी बदौलत ये सब चीजें मिलने की सुविधा हो, और अूपर से निश्चिन्त भी रहा जा सके, तो अुसपर किसी को अेतराज नहीं होगा। आज भी संपत्तिमानों की संपत्ति कअी सहकारियों, मुनीमों और अुसी तरह के दूसरे लोगों में बँटी हुअी होती है। अन्यथा अुनकी संपत्ति का विनियोग हो ही नहीं सकता। मुनीमों के हवाले सारी सम्पत्ति करनी ही पड़ती है। सम्पत्तिमान व्यक्ति यह जानता है कि मुनीम अुसे धोखा देते हैं। अिसलिअे अुसे अिसीकी फिक्र में रहना पड़ता है कि वे ज्यादा धोखा न देने पायें। अिसके बदले राज्यपद्धति समर्थों को यह दर्शन करा दे कि अुनका पैसा समाज के कामों में लग

रहा है, अब चिंता की जगह अुन्हें लोकोपयोगी चिन्तन का लाभ मिला है और अिसके अलावा तथा अुसके परिवर्तन में प्रतिष्ठादि सारी चीजें पहले से कम नहीं, बल्कि बहुत अधिक मात्रा में और सच्चे स्वरूप में, मिलती हैं।

अध्यापकवर्ग

पुराने जमाने में विद्वान अध्यापक निष्कांचन रहता था। अिसके यह माने नहीं हैं कि अुसका अन्तर्जीवन तो ठीक, लेकिन बाह्य जीवन भी, निरानन्द होता था। वह निष्कांचन होता था, अिसका अितना ही अर्थ है कि वह कांचन की चिन्ता से मुक्त होता था। अुसका शिष्यवर्ग अुसकी आवश्यक सेवा में कोअी कसर नहीं रहने देता था। कभी कभी सम्राट पर भी अुसकी हुकूमत भी चलती थी। वह अपनी शिक्षाप्रणाली पर किसी का अंकुश नहीं स्वीकार करता था। दीर्घायु का अुपभोग करता था। अिस तरह का अध्यापकवर्ग वास्तव में कभी था या नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता है। लेकिन अगर अिस तरह का वर्ग मौजूद हो, तो वह किसी कदर कम प्रतिष्ठित या कम सुखी अथवा कम वैभवशाली नहीं होगा। हमारा आज का अध्यापक पुस्तकों का अध्यापक होता है, न कि शिष्यों का। याने अुसके जीवन में शिष्यों को और शिष्यों के जीवन में अुसको स्थान नहीं होता। पारस्परिक प्रेम की यह कमी पूरी करने के लिअे वह अधिक पैसे ले लेता है। ये पैसे बीमारी वगैरा के बहाने डॉक्टर-हकीम अुससे अैंठ लेते हैं। अिस तरह अुसका कोअी फायदा नहीं होता और वह आम जनता के लिअे महँगा साबित हो कर नाहक अुसकी सेवा से वंचित रह जाता है। राज्यप्रणाली या लोकमत की रचना ही अैसी होनी चाहिअे कि हर अेक व्यक्ति यह महसूस करने लगे कि लोगों का विरोध सह कर संपत्ति का संचय करने में हित नहीं है।

सम्पत्ति भी व्यय से बढ़ती है

लोगों में यह कहावत रूढ़ है कि विद्या देने से दुगनी होती है। अिस विषय में संपत्ति और विद्या के स्वभाव में विरोध माना जाता है। लेकिन वह वास्तविक नहीं है। संपत्ति भी देने से दुगनी होती है। अर्थशास्त्र में अिसीको क्रयशक्ति का बढ़ना कहते हैं। साहूकार कर्जदार को भरपूर धन देता है। अुसमें वह अपनी सम्पत्ति की वृद्धि ही देखता है। अुससे भी अधिक वृद्धि सम्पत्ति के विभाजन से होती है। यह बात समझना बिलकुल मुश्किल नहीं है। परन्तु तदनुकूल समाज-रचना करनी होती है। अिस तरह की समाज-रचना आदर्श राज्यपद्धति में अन्तर्हित है। समाज व्यक्ति का बैंक है। व्यक्ति का पैसा किसी भी बैंक में जितना सुरक्षित रह सकता है, अुससे कहीं अधिक सुरक्षित समाजरूपी बैंक में रहेगा।

व्यक्तिगत अधिकार और दायित्व

असमर्थों की सेवा ही समर्थों की शक्ति की शोभा है। मनुष्य को संतोष भी अुसीमें होता है। मनुष्य समाजप्रिय है। अिसलिअे अुसे अकेले अुपभोग करने में, दूसरों को अपने भोग में भागीदार बनाये बिना अुपभोग करने में, कभी सन्तोष नहीं होता। फिर भी आज के श्रीमान अपने आसपास अधभूखे लोगों को जान कर और देख कर भी अपने ही कांजीहौस में आनन्द का आभास अनुभव करते अवश्य पाये जाते हैं। मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध होते हुअे भी यह प्रवृत्ति कैसे जीवित रह सकती है? अिसका जवाब यह नहीं है कि ये सब श्रीमान लोग आदमियों से बाहर हैं। बल्कि समाज में जो यह अर्धसत्य और अर्धमिथ्या भावना रूढ़ है कि हर व्यक्ति अपनी

कमाअी के लिअे जिम्मेवार और अुसका हकदार है, अुसी भावना का यह परिणाम है। सबको यथाशक्ति कमाअी करनी ही चाहिअे। जो शक्ति होते हुअे भी कमाअी नहीं करता, वह हकदार नहीं हो सकता। लेकिन यह सर्वथा सही है कि यथाशक्ति कमाअी करनेवाला हरअेक व्यक्ति सम्मिलित कमाअी का समान हकदार है। अगर मनुष्यों की शक्ति में फर्क न होता, तो अुनकी कमाअी की विषमता अुनकी सचाअी की न्यूनाधिकता का द्योतक मानी जा सकती और अुस हालत में यह नियम यथार्थ होता कि हरअेक अपनी कमाअी के लिअे समानरूप से जिम्मेवार और हकदार है। लेकिन जब कि शक्तिवैषम्य प्रत्यक्ष है, अैसी स्थिति में व्यक्तिगत जिम्मेवारी के तत्त्व का हिसाब त्रैराशिक की रीति से लगाना सरासर गलत गणित करना है। परिवार में जो आर्थिक व्यवस्था थोड़े-बहुत अंश में सर्वत्र पायी जाती है अुसे सारे समाज पर लागू करने के लिअे, जो कुटुम्ब की शक्ति से परे है अुसे कार्यान्वित करने के लिअे, ही राज्यव्यवस्था होती है। अगर राज्य-व्यवस्था यह कार्य न करे, तो दरअसल अुसकी जरूरत नहीं रह जाती। यह कार्य करने की बजाय अगर राज्यव्यवस्था वैषम्य का ही निर्माण करती हो, तो अुसे नष्ट करके अराजकता मंजूर करना भी धर्म होगा। अपनी चाहे जैसी कुराज्यव्यवस्था लोगों के गले अुतारने के लिअे ही राज्य-व्यवस्थापकों ने अराजकता का डर चारों तरफ फैला दिया है।

अंध-पंगु-न्याय

समर्थों को हम समर्थ मानते हैं। लेकिन असमर्थ मानी गयी जनता की सहायता के बिना अुनका काम किसी हालत में नहीं चल सकता। अिस अर्थ में वे असमर्थ ही साबित होते हैं। अिसके विपरीत, जिन्हें हम असमर्थ कहते हैं, अुनमें भी अुनकी अपनी विशेष सामर्थ्य होती ही है। अुसके बिना राज्यसत्ता भी नहीं चल सकती। भावार्थ यह कि दोनों अेक-दूसरे की मदद के बिना असमर्थ और अेक-दूसरे की मदद से समर्थ बनते हैं। सांख्यशास्त्रकार जिसे अंध-पंगु-न्याय कहते हैं, वह यहाँ चरितार्थ होता है। अिन दोनों के मिलन में दोनों का हित है। जिस राज्यव्यवस्था के समर्थों में अितना समझ सकने की भी अक्ल न हो, वह राज्यव्यवस्था असल में राज्यव्यवस्था ही नहीं है; बल्कि अराजक से भी अराजक है। थोडे में भावार्थ यह है कि राज्यव्यवस्था को अधिकार समर्थों के सुपुर्द तो करना चाहिअे, लेकिन वह अधिकार केवल जनता की सेवा का ही हो।

स्वावलंबी सहयोग

[२६] अिस अुद्देश्य की पूर्ति के लिअे, याने समर्थों के हाथ में सेवा के अतिरिक्त अन्य सत्ता न जाने देने के लिअे, यह जरूरी है कि जनता सिर्फ असहाय और दुर्बल न रहे। अिसलिअे वह अितनी स्वावलंबी होनी चाहिअे कि अुसे अपनी शक्ति का, याने अपनी स्वतंत्र शक्ति का, भान रहे। अर्थात् अुसके हाथ में स्वायत्त अुद्योग होने चाहिअें। बहुजनसमाज मिलों के मजदूरों की तरह महज परायत्त अुद्योग में संलग्न हरगिज नहीं रहना चाहिअे। हर अेक गाँव आर्थिक दृष्टि से बहुत दर्जे तक अेक स्वयंपूर्ण समूह बन जाना चाहिअे। अैसी स्थिति होनी चाहिअे कि समर्थ अपनी अिच्छा से जनता के साथ सहयोग करें और जनता स्वतन्त्रतापूर्वक समर्थों को सहयोग दे। यह तभी हो सकता है जब कि जनता अपने पैरों पर खड़ी हो। दूसरा अुपाय नहीं है। गाँव के लोगों के लिअे, हम जिन्हें जीवन की प्राथमिक आवश्यकताअें कहते हैं वे सब, और जिन्हें हम गौण आवश्यकताअें कहते हैं अुनमें से बहुतेरी, गाँव में ही पूरी होनी चाहिअें। अिसके बाद जो गौण और गौणतर आवश्यकताअें बाकी रह जाती हैं, अुन्हें राजसत्ता को समर्थों द्वारा पूरा कराना चाहिअे।

सहज, सुलभ और समर्थ योजना

आज किसान के खेत में जो पैदावार होती है, अुससे जो पक्का माल बन सके, वह जहाँ तक हो अुसीके घर में बनना चाहिअे और जो घर में न बन सके, वह गाँव में बनना चाहिअे। आज तो यह कह सकते हैं कि हिन्दुस्तान का किसान खेत में कच्चा माल पैदा करने के अलावा और कुछ नहीं करता। वह तिल तो बेच देगा और अपनी जरूरत के लिअे तेल मोल लेगा; दूसरों की तेल की माँग पूरी करना तो किनारे रहा। कपास बोयेगा; मगर अपने लिअे सिर्फ कपड़ा ही नहीं, बल्कि बोने के लिअे और गाय-बैलों के लिअे बिनौले भी मोल लेगा। अपनी हरअेक आवश्यकता पूरी करने के लिअे अुसे गल्ला बेचना पड़ता है। अिस सौदे में अुसे घाटा ही होता है। गल्ले के बदले जो पैसा मिलता है, अुससे वह जरूरी चीजें खरीदता है। यह सौदा भी घाटे का ही होता है। जनता की अितनी पराधीन अवस्था न केवल जनता के ही लिअे, बरन किसी भी राज्यव्यवस्था के लिअे और समर्थ माने गये अल्पसंख्य लोगों के लिअे भी, हितकर नहीं है। अिसलिअे आदर्श राज्यव्यवस्था का यह सहज स्वरूप है कि ग्रामोद्योगों का जाल सारे राष्ट्र में फैला हो और अुनके संरक्षण तथा स्थिरता का प्रबन्ध राज्यसत्ता करे। न केवल सम्पत्ति का विभाजन वृष्टि की तरह अेक अेक बून्द हर घर में करने के लिअे, न केवल बहुजन समाज या जनता को स्वावलंबी बनाने के लिअे और न केवल समर्थों से सेवा लेने के ही लिअे अपितु स्वशक्ति से समर्थों की सेवा करने के लिअे और जनता के परस्पर सहयोग को दृढ़ करने के लिअे भी ग्रामोद्योगों के समान दूसरी कोअी सहज, सुलभ और समर्थ योजना नहीं है।

दूसरी योजना के खतरे

'पहले सम्पत्ति अेक जगह अिकट्ठी करो और बाद में अुसे बराबर बराबर बांट दो', अिस तरह की दूसरी अेक योजना साम्यवादी पेश करते हैं। लेकिन अिसमें तीन तरह का खतरा है। पहली बात तो यह है कि अुत्पत्ति के द्वारा ही सम्पत्ति का समान बँटवारा करने की अिकहरी योजना की अपेक्षा पहले सम्पत्ति अेक जगह अिकट्ठी करके फिर अुसके समान-विभाजन की दोहरी प्रक्रिया आर्थिक दृष्टि से ज्यादा महँगी पड़ेगी। यह अेक खतरा है। अिस अेकत्रित सम्पत्ति की रक्षा की अलग तजबीज करनी होगी और तिस पर भी वह विदेशी आक्रमण का शिकार आसानी से हो सकेगी। यह दूसरा खतरा है। अिसके अलावा, अुसकी बदौलत समाजरचना अितनी व्यामिश्र और अुलझी हुअी अथवा अन्योन्यावलम्बी होगी कि सारा का सारा यंत्र किस दिन अति घर्षण से टूट-फूट कर नष्ट हो जायगा अिसका कोअी ठिकाना नहीं।

अन्योन्यावलंबन है तो बहुत अच्छी चीज। लेकिन वह स्वसमर्थ और स्वावलंबी गिरोहों के बीच होना चाहिअे। अेक ही गाड़ी में जुते हुअे दो दुर्बल बैल अपना अपना बोझ अेक-दूसरे पर ढकेल कर गाड़ी खींचने की कोशिश करते हैं। परावलंबी गिरोहों का अन्योन्यावलंबन ठीक अिसी ढंग का होगा। तिपाअी तीन पैरों पर खड़ी होती है। अिन तीनों पैरों में पारस्परिक सहयोग होता है। लेकिन तीनों पैर अपने अपने बल खड़े होते हैं। यह सीधी-सादी यंत्र-रचना है। अेकाध पैर टूट जाय, तो वही अेक दुरुस्त करना पड़ेगा। लेकिन जब अेक पहिये के भीतर दूसरा और दूसरे के अन्दर तीसरा, अिस तरह पहियों के सिलसिले का कोअी यन्त्र बनता है, तब वह व्यामिश्र कहलाता है। अुसमें अेक पहिये के टूटते ही दूसरे पहियों को धक्का लग कर सारा यन्त्र ही रुक जाता है। सादे यन्त्र की अपेक्षा अिस यन्त्र को दुरुस्त करना बहुत ही मुश्किल होगा। अिसके अलावा,

यन्त्र चालू हो तब भी व्यामिश्र यन्त्र में घर्षण स्थान कभी होंगे और स्नेहन-कार्य भी बहुत लम्बा चौड़ा होगा।

सम्पत्ति अिकट्ठी करके बाँटने की सारी योजनाओं के कारण राज्यव्यवस्था पर बहुत ज्यादा दबाव पड़ता है और आखिर वे हिंसाश्रित हो जाती हैं। अिसलिअे अगर हम हिंसा का आश्रय, राज्यसत्ता पर पड़नेवाला दबाव और समाज रचना की क्लिष्टता टालना चाहें, तो हर अेक देहाती किसान अपना बादशाह होना चाहिअे, और ग्रामीणों का सहयोग बटी हुअी रस्सी की नाअीं पक्का होना चाहिअे। तब वह किसान और अुसका गाँव अेक सहज और करीब करीब स्वयंपूर्ण राज्य संस्था में परिणत हो जायेंगे। जो अिस प्रकार स्वायत्त ग्रामों का संगठन करती है वह निमित्तमात्र प्रान्तीय सत्ता है। अैसे प्रांतों का संगठन जो करती है वह निमित्तमात्र राष्ट्रीय सत्ता। अैसे स्वायत्त राष्ट्रों के परस्पर-सहकार्य का जो संगठन करती है वह है निमित्तमात्र अखिल मानव-सत्ता। अखिल मानवसत्ता में—जिसे हमने निमित्तमात्र कहा है—संसार के रागद्वेष रहित प्राज्ञ और प्रातिनिधिक व्यक्तियों की परिषद होगी। अिस परिषद के पास दण्डशक्ति बिलकुल शून्य होगी और नियमन शक्ति पूरी पूरी होगी। मनुष्यों को मनुष्यता की अैसी विशाल कल्पना करनी चाहिअे। राजनीतिज्ञों की यह राय सही है कि केन्द्रीय सत्ता अगर प्रचण्ड शक्तिशालिनी नहीं होगी, तो काम नहीं चलेगा। लेकिन प्रचण्ड शक्ति का स्रोत निर्विकार प्रज्ञा और सदाचार है, न कि चेतनहीन शस्त्रास्त्र या जवाहिरात। स्पष्ट है कि जब तक जनता स्वावलंबी और सहकारी नहीं होगी, तब तक अिस तरह की मानव्यरचना का निर्माण नहीं हो सकता।

राज्ययंत्र की मरम्मत का अिन्तजाम

[२७] राज्यव्यवस्था कितनी भी बढ़िया क्यों न हो, प्रत्यक्ष व्यवहार में अुसकी अुत्तमता किसी न किसी अंश में अुन व्यक्तियों की योग्यता और सज्जनता या असज्जनता पर निर्भर करती है जिन्हें समाज के नाम पर शासनतंत्र के सूत्र सौंपे गये हों। साधारणत: अच्छे आदमी ही चुने जाने की योजना करना अुत्तम राज्यपद्धति का अेक अंग और लक्षण है। लेकिन अुसके बावजूद भी व्यक्तित्व का थोड़ाबहुत परिणाम राज्यव्यवस्था पर अवश्य होगा।

राज्यव्यवस्थाशास्त्र या थोड़े में राज्यशास्त्र, शुद्ध गणितशास्त्र तो ठीक, व्यावहारिक गणित-शास्त्र के समान भी नियमित शास्त्र नहीं है। शुद्ध गणितशास्त्र विचारसृष्टि में विचरण करता है। व्यावहारिक गणितशास्त्र भौतिक सृष्टि मे विचरण करता है। लेकिन राज्यशास्त्र अुस मानव-सृष्टि में विचरण करता है जो विचारसृष्टि और भौतिक सृष्टि दोनों से जुदी है। अिसलिअे अुसे मानव-निरपेक्ष केवल यांत्रिक रूप नहीं दिया जा सकता। सभी मनुष्यों के समग्र, सर्वांगीण और अविरुद्ध हित की रक्षा करना राज्यशास्त्र की प्रतिज्ञा है। अुसके लिअे, (१) व्यापकतम मतदान, (२) बहुमत के अनुरूप शासन, (३) अल्पमत का पूर्ण संरक्षण और अधिक से अधिक सन्तोष, (४) मत-प्रचार की स्वतन्त्रता, (५) निष्पक्ष, सस्ता और सुलभ न्यायदान (६) सार्व-जनिक शिक्षण का प्रबन्ध, (७) सुधारक दण्डनीति आदि सुराज्यव्यवस्था के जो बाह्य अंग माने गये हैं, वे अुपयुक्त हैं। लेकिन राज्यशास्त्र की मानव-सापेक्षता के कारण अनेक दोषों, वादों और टण्टों का निर्माण होना संभव है। अिनके अिलाज के रूप में जनता को सहयोग, असहयोग और प्रतीकार के अवसरों का ज्ञान होना चाहिअे। यथावसर अिन तीनों का प्रयोग करने की शक्ति जनता में होनी चाहिअे और अिस सम्बन्ध की अहिंसक शक्ति जनता में रमी हुअी होनी चाहिअे।

यथार्थ सहयोग और असहयोग की पात्रता

[२४] सहयोग जीवन का नित्य तत्त्व है। लेकिन जब वह स्वेच्छापूर्वक और ज्ञानपूर्वक किया हो, तभी अुपयोगी हो सकता है, तभी अहिंसक हो सकता है; बल्कि, तभी वह 'सहयोग' हो सकता है। लाचारी या अज्ञानवश किया हुआ सहयोग अुत्तम राज्यव्यवस्था के लिअे अुपयोगी नहीं है! अुसकी शकल देखने में सहयोग के जैसी भले ही लगती हो, लेकिन अुसमें मिथ्यात्व होने के कारण वह ज्यादा दिन टिक नहीं सकता। वह पहले तो गुप्त हिंसा में और बाद में प्रकट हिंसा में अवश्य परिणत होगा। असलिअे जनता के प्रत्येक व्यक्ति की यह प्रतीति होनी चाहिअे कि कानून हम ही ने बहुमत से बनाया है, हम अुसे बदल भी सकते हैं। जबतक हम अुसे बदलते नहीं हैं, तबतक, चाहे वह हमें व्यक्तिशः पसन्द न हो तो भी, हम अुसका पालन करते रहेंगे; बशर्ते कि वह नीति के खिलाफ न हो। जिनका मतविरोध नहीं है अुनके सहयोग का कोअी सवाल नहीं है। लेकिन जिनका मतविरोध है, अुनकी वृत्ति सहयोग देने में अगर अूपर लिखे मुताबिक हो, तो वह सहयोग अहिंसक कहलायेगा। जो व्यक्ति अिस तरह का सहयोग नित्य करता है, अुसीको यथाप्रसंग आवश्यक असहयोग और प्रतीकार करने का अधिकार हो सकता है। अैसे ही व्यक्ति अहिंसक प्रतीकार करने की सामर्थ्य रखते हैं और अुन्हीं का वह कर्तव्य भी है।

जनता को असहयोग और प्रतीकार की शिक्षा की जरूरत

[२५] जनता के शिक्षण या विचार-जागृति का अेक पहलू यह है कि जहाँ तक मुमकिन हो वह सहयोग ही करे और स्वेच्छा से तथा समझबूझ कर करे। अुसी प्रकार जनता के शिक्षण अथवा विचारजागृति का दूसरा पहलू यह है कि वह असहयोग और प्रतीकार के प्रसंग पहचान सके और वैसे प्रसंग आने पर सविनय असहयोग और प्रतीकार करे। असहयोग और प्रतीकार अेक ही वस्तु की दो अवस्थाअें हैं। पहली की अपेक्षा दूसरी अधिक अुग्र है। जहाँ असहयोग से ही काम चल सके, वहाँ प्रतीकार नहीं करना चाहिअे। असहयोग में हम अपना सहयोग का हाथ हटा लेते हैं और प्रतिपक्षी को परिस्थिति में सुधार करने का मौका देते हैं। अितने से जब काम होता नहीं जान पड़ता, तब राज्य के कानून का भंग (१) विनयपूर्वक याने विशिष्ट मर्यादा में रह कर, (२) व्यवस्थित-रूप से याने कहीं भी अनुशासनभंग न होने देते हुअे, (३) प्रकटरूप से याने कुछ भी गुप्त न रखते हुअे और छल-प्रपंच के बिना, और (४) दृढ़ता से याने वादविषयक प्रश्न के बारे में कम से कम मांग पेश करके और जबतक वह पूरी न हो, तबतक हार न मानते हुअे—करते हैं। अिस तरह के कानूनभंग के लिअे जो सजा हो, अुसे खुशी से और बगैर द्वेषभाव के भुगत लेते हैं। अिस तरह की शिक्षा जनता के जीवन में घुलमिल जानी चाहिअे और शिक्षण तथा राष्ट्रीय नीतिशास्त्र में अुसका नित्य स्थान होना चाहिअे।

यम और नियमों में विवेक

सुराज्यव्यवस्था में असहयोग और प्रतीकार प्रासगिक और नैमित्तिक ही होंगे। किन्तु तो भी समाज-जीवन में अुनका नित्य स्थान है। क्योंकि अुनकी जरूरत केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं होती; किन्तु समाजनीति, कुटुम्बनीति और व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार में भी अुनके प्रयोग की थोड़ी-बहुत आवश्यकता हमेशा रहेगी। प्रतीकार न करते हुअे, निष्क्रिय हो कर अन्याय सह लेना या फिर सक्रियता के आवेश में होश-हवास भुला कर या सम्भाल कर भी, हिंसात्मक प्रतीकार करना, ये दोनों मार्ग टाल कर सविनय असहयोग या प्रतीकार का यही अेक बीच का राजमार्ग है।

राज्यव्यवस्था कैसी भी क्यों न हो, जरूरत होने पर अिस मार्ग का अवलम्बन करने की वृत्ति समाज के नीतिशास्त्र में जाग्रत होनी चाहिअे। अिसके लिअे मोटे-मोटे नियमों के अपवाद भी बचपन से बालकों को सिखाये जाने चाहिअें। 'मा-बाप की आज्ञा नम्रतापूर्वक मानो', अिस शिक्षा के साथ मा-बापों को अपने बालकों को यह भी शिक्षा देनी चाहिअे कि अगर वह आज्ञा विवेकबुद्धि से सुसंगत न हो, तो अुसका बच्चे सविनय भंग करें। यह अेक अुदाहरण दिया। दूसरे स्थूल नियमों के विषय में भी लोकमत अिसी तरह का होना चाहिअे।

यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः

(समझदार आदमी यमों का याने सत्य-अहिंसादि शाश्वत धर्मों का नित्य पालन करे। नियमों के नित्य पालन की आशा अुससे नहीं की जाती।)

मनु के अिस वचन का भी यही अर्थ है। नियम चाहे कौटुम्बिक हों, सामाजिक हों अथवा राष्ट्रीय हों, जबतक वे सिद्धान्तों के प्रतिकूल न हों, तबतक अुनका पालन अवश्य करना चाहिअे। जहाँ अुनका सिद्धान्तों से विरोध अुपस्थित हो, वहाँ अुनका सविनय त्याग करना चाहिअे। सुव्य-वस्था में नियम साधारणतः नित्य सिद्धान्तों के अप्रतिकूल ही होते हैं। लेकिन गतिमान यंत्र में थोड़ा-बहुत घर्षण पैदा होने की संभावना रहती ही है। 'अेक बार आदर्श राज्यव्यवस्था कायम कर दी, अब वह व्यवस्था ही जनता को संभालेगी और सुख देगी, जनता खुशी से नींद ले या आंख मींच कर चले'—अैसी बात हो नहीं सकती। और थोड़ी देर के लिअे अैसी संभावना मान भी ली जाय, तो अुससे मनुष्य का विकास नहीं होगा। और अिसीलिअे अीश्वर कृपा से अैसी बात सध ही नहीं सकेगी।

सारांश, सहयोग, असहयोग और प्रतीकार की मर्यादा जान कर अुनका यथा-प्रसंग अहिंसा-पूर्वक प्रयोग कर सकने लायक जनता का जाग्रत होना या रखा जाना, अुत्तम राज्य-व्यवस्था का अंग ही समझना चाहिअे।

अहिंसा की सर्वतोमुखी अुपयोगिता

[२६] हिन्दुस्तान जैसे अनेक जमातों के, अनेक धर्मों के, अनेक भाषाओं के, विशाल जन-संख्या और विशाल क्षेत्रफल के देश को निगाह में रख कर अुसकी दृष्टि से किसी प्रश्न का समाधान करना मानों सारी दुनिया का सवाल हल करने के समान है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस समय आवागमन के वर्तमान साधनों का आविष्कार ही नहीं हुआ था, अुस समय जिन्होंने अिसे अेक देश माना, अुन्होंने अुसके पहले अनेक तरह के टंटों का अनुभव करके संगठन के प्रधान सिद्धान्त का पाठ सीखा होगा और अुसके बाद ही अिसे अेक देश माना होगा। अितना बड़ा राष्ट्र अहिंसा के बिना अेकत्र टिक ही नहीं सकता। यह रहस्य जान कर ही हिन्दुस्तान के नीतिशास्त्र में अुन्होंने अहिंसा को राजनैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, आर्थिक और शैक्षणिक क्षेत्र में तत्त्वतः सर्वोच्च स्थान दिया।

अिसीके फलस्वरूप हिन्दुस्तान की आम जनता ने शस्त्रास्त्रों में विश्वास कभी का छोड़ दिया था। यहाँ के निवासियों की यह वृत्ति बन गयी कि हिन्दुस्तान अेक राष्ट्र है, रवीन्द्रनाथ के शब्दों में वह 'मानवों का महासागर' है और सागर की तरह वह सबके लिअे खुला रहेगा। लेकिन अहिंसा की अितनी सारी नीति देखने पर भी मानना पड़ेगा कि राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा के व्यापक प्रयोग के अुदाहरण अिनेगिने ही हैं। हिन्दुस्तान में रहनेवाली जमातों के अितिहास पर से

ज्ञात होगा कि सामाजिक, कौटुम्बिक और वैयक्तिक क्षेत्र में हिन्दुस्तान ने यह प्रयोग बहुत बड़े अंश में किया है। जान पड़ता है कि सामाजिक अहिंसा के अिस प्रयोग के कारण ही, बाहर से जो जो जातियाँ हिन्दुस्तान में आयीं, अुन सबको वह आत्मसात् कर सका।

जन, सज्जन, महाजनों की राजनीति

लेकिन राजनैतिक क्षेत्र में अिस प्रयोग के न होने का प्रधान कारण यह मालूम होता है कि हिन्दुस्तान में खुद राजनैतिक क्षेत्र का ही महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं था। आज तो जीवन के हरअेक अंग-प्रत्यंग से राजनीति का सम्बन्ध बँध गया है। अिसलिअे सज्जन, महाजन और जनता—याने कोअी भी—अुसके प्रति अुदासीन नहीं रह सकता। हिंसा जनता की शक्ति ही नहीं है। अिसलिअे यदि सज्जनों को अैसी व्यापक राजनीति मे शामिल होना हो, तो अुन्हें अहिंसा के बिना चारा ही नहीं। क्योंकि हिंसा सज्जनों की वृत्ति नहीं है। महाजनों के लिअे यह बात नयी नहीं है अैसा जान पड़ता है। लेकिन नयी है भी। क्योंकि जिस राजनीति में वे आज तक शरीक होते थे वह जीवनव्यापी कभी नहीं थी। अिसलिअे अुन्हें भी अहिंसा के आश्रय के सिवा छुटकारा नहीं है। क्योंकि हिंसा की शक्ति और वृत्ति अुनके लिअे सुसाध्य भले ही हो, लेकिन जीवनव्यापी राजनीति में हिंसा की गुंजाअिश नहीं होती। अिसलिअे जन, सज्जन और महाजन अिन तीनों को अिकट्ठा करनेवाली राजनीति के लिअे केवल अहिंसा ही अेक सहारा है।

यह संरक्षक हथियार बरतने का ज्ञान सज्जनों को स्वाभाविकरूप से होना चाहिअे और अुन्हें वह ज्ञान जनता को देना चाहिअे। राज्यव्यवस्था अुन्हें अुतनी स्वतन्त्रता दे। अगर राज्य-व्यवस्था से अुन्हें वह आजादी न मिल सके, तो सज्जनों को चाहिअे कि वे महाजनों को समझाबुझा कर और आवश्यकता होने पर सत्याग्रह करके भी अुसे प्राप्त करें। यह सब अच्छी राज्यव्यवस्था में अन्तर्हित ही है।

सुराज्य का प्रमुख लक्षण

महाजनों के लिअे हिंसा की शक्ति और वृत्ति जितनी अनुकूल है, अुतनी अहिंसा की शक्ति और वृत्ति अनुकूल न हो, अैसी बात तो नहीं है। लेकिन अगर जन दुर्बल हो गये, सज्जन अुदासीन हो गये और दुर्जनों के प्रतीकार की सारी जिम्मेवारी महाजनों पर ही रही, तो हिंसा का प्रतीकार हिंसा से करने के अतिरिक्त अुन्हें दूसरा कोअी अुपाय नहीं सूझता। लेकिन व्यापक राजनीति में जन, सज्जन और महाजन तीनों का अेकीकरण अनिवार्य है। और जब ये तीनों अेक हो जाते हैं तो अुनके लिअे दुर्जनों का—चाहे वे दुर्जन कितने ही संगठित क्यों न हों—अहिंसा से मुकाबिला करना असंभव नहीं है। और वही वांछनीय भी है। कारण, अुसके द्वारा दुर्जनों की जड़ याने अुनकी दुर्जनता का ही निर्मूलन किया जा सकता है। जन, सज्जन और महाजनों का अहिंसा की बुनियाद पर अेक होना ही दुर्जनों के लिअे स्थायी नियन्त्रण है। जैसा कि अूपर बतलाया जा चुका है, अिन तीनों का अेकीकरण अहिंसा के बगैर असंभव है। अीन तीनों का अेकीकरण होना, दुर्जनों पर अुनका हमेशा दबदबा रहना, अच्छी राज्यव्यवस्था का प्रधान लक्षण है। अिसके मुकाबिले में दूसरे सारे लक्षण गौण माने जाने चाहिअें। अुन सब के होते हुअे भी अगर यह अेक न रहा, तो वह राज्यव्यवस्था अेक सर्वांग-सुन्दर परन्तु चैतन्य-विहीन चित्र के समान होगी।

परिश्रम का मूल्यमापन

[२७] आदर्श राज्यप्रणाली में परिश्रम के मूल्यमापन का तरीका आज की तरह केवल यान्त्रिक और गैरजिम्मेवार नहीं रह सकता।। कम या अधिक शक्तिमान् और बुद्धिमान्, कार्य-क्षम और अक्षम, आदि सभी के संगोपन तथा संरक्षण का दायित्व आदर्श राज्यप्रणाली अुठायेगी। सभी अेक-सा परिश्रम नहीं कर सकते। परिश्रम में शारीरिक और बौद्धिक का भेद भी अवश्य रहेगा। शारीरिक परिश्रम में भी साधारण और कुशल का भेद रहेगा। लेकिन अितने भेदों के होते हुअे भी, जो कोअी बगैर जी चुराये, सचाअी के साथ, अपनी शक्ति के अनुसार किसी भी तरह का लोकोपयोगी परिश्रम करे, अुसे समान अधिकार के मुताबिक जीवननिर्वाह का पात्र मानना चाहिअे। दर असल तो, 'शारीरिक या मानसिक सेवा की आर्थिक कीमत'—यह भाषा ही गलत है। कारण, सेवा का समावेश नैतिक कोटि में होता है। अिसलिअे अुसकी कीमत नैतिक भाषा में ही आंकनी चाहिअे। बीमारी की हालत में सेवक रुग्ण व्यक्ति की जो चिन्ता करता है, या रात को जागता है या दूसरी मेहनत करता है, अुसका मूल्य अर्थशास्त्र की दृष्टि से कैसे कूता जा सकता है? न्यायाधीश जो निष्पक्ष निर्णय देता है, अुसकी कीमत पैसों में कैसे लगायी जा सकती है? डूबते हुअे आदमी को बचाने की या जलती हुअी आग में से बाहर निकालने की कीमत त्रैराशिक की रीति से कैसे निकाली जाय?

ये भिन्न भिन्न अुदाहरण अिसलिअे दिये कि अुनमें से कुछ बौद्धिक, कुछ शारीरिक और कुछ मिश्र स्वरूप के हैं। लेकिन तीनों का मूल्य अनन्त है। याने तीनों अमूल्य हैं। अिसलिअे सेवा या परिश्रम के मुआवजे की भाषा का त्याग कर हरअेक व्यक्ति अपनी सारी शक्ति लगा कर भक्तिपूर्वक समाज की सेवा करे और समाज व्यक्ति का जीवननिर्वाह चलाने का अपना कर्तव्य अदा करे, यही दृष्टि अुपयुक्त है। जीवन-निर्वाह का सिद्धान्त स्वीकारने पर मजदूरी-मजदूरी में आज जो आत्यन्तिक विषमता वर्तमान है, अुसका सहज ही अन्त हो जायगा।

कौटुम्बिक न्याय

कुटुम्ब में तो हम कभी कभी अैसा देखते हैं कि छोटे बच्चों का खर्च, कमानेवाले व्यक्ति से भी अधिक होता है। अिन बच्चों ने कोअी भी सेवा तो की ही नहीं होती। लेकिन अुनसे आगे के लिअे सेवा की आशा होती है। फिर भी अुनके लिअे खर्च करते समय हम पहले यह हिसाब नहीं लगाते कि आगे चल कर वे कितनी सेवा कर सकेंगे और अुस अन्दाज से अुनके लिअे खर्च नहीं करते। बरन अिन बालकों की परवरिश करना मा-बाप अपना फर्ज मानते हैं। हरअेक व्यक्ति के सम्बन्ध में यही जिम्मेवारी राज्यव्यवस्था को स्वकर्तव्य मान कर अुठानी पड़ती है। अुसी प्रकार व्यक्ति को अपनी सारी शक्ति स्वकर्तव्य की भावना से समाज की सेवा में लगा देनी चाहिअे। लेकिन व्यक्तिकृत सेवा का समाजकृत संरक्षण से समीकरण नहीं हो सकता। सारी व्यक्तियों की सम्मिलित समाज-सेवा और समाज द्वारा सारी व्यक्तियों के संरक्षण का समीकरण हो सकेगा।

संरक्षण और मजदूरी

यहाँ संरक्षण और मजदूरी या पारिश्रमिक का फर्क समझ लेना जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति को संरक्षण बिलकुल समान मिलेगा। लेकिन मजदूरी या वेतन का समान होना जरूरी नहीं है।

क्योंकि समान मजदूरी दे देने से समान संरक्षण नहीं मिल जाता। समान संरक्षण का दायित्व पूरा करने के लिअे जिसे जितनी मजदूरी की जरूरत है, अुसे अुतनी देनी होगी। अिसका यह भी परिणाम हो सकता है कि अधिक शक्तिमान् लेकिन कम आवश्यकतावाले व्यक्ति को कम मजदूरी दी जायगी और अल्पशक्तिमान् परन्तु ज्यादा आवश्यकतावाले व्यक्ति को ज्यादा मजदूरी दी जायगी। जिसका हाजमा अच्छा है अैसे अेक सेनापति को दो आने रोज मिलेगा और कमजोर पाचनवाले सिपाही को रुपया रोज मिल सकेगा।

सारांश

सारांश, ये सब सिद्धान्त संक्षेप में अिस प्रकार होंगेः—

(१) हरअेक को समान संरक्षण मिलेगा।

(२) हरअेक से सेवा यथाशक्ति याने असमान मिलेगी।

(३) समान संरक्षण का अर्थ समान वेतन नहीं है।

(४) लेकिन अेक तरह की मजदूरी और दूसरी तरह की मजदूरी में आज जितनी असमानता पायी जाती है, अुतनी असमानता किसी हालत में नहीं रहेगी।

(५) वेतन कम-से-कम असमान या, भावात्मक भाषा में, तुल्य होगा।

(६) वेतन की असमानता सेवा की असमानता के अनुसार नहीं, बल्कि आवश्यकता की असमानता के अनुसार होगी।

(७) सब मिल कर दी हुअी सेवा का सबको सम्मिलितरूप से मिले हुअे संरक्षण के साथ सम-परिमाण रहेगा।

प्रस्तावित व्यवस्था सर्वथा अनोखी नहीं है

अिन सात नियमों से जिस व्यवस्था का निर्माण होगा वह सर्वथा अपरिचित नहीं है। हमारे गाँवों में जब दस-पाँच मजदूर मिल कर किसी काम का ठीका लेते हैं, तब वे सब अेक-से काम नहीं करते। तो भी ठीके में अुनका साझा बहुत दर्जे तक समान होता है। अिसमें जी चुरानेवाले को काम टालने की सहूलियत नहीं रह सकती है और अीमानदार लेकिन कुछ कमजोर आदमी को थोड़ी रियायत भी मिल सकती है। सामुदायिक श्रम के सिद्धान्त के कारण काम में जोश दाखिल होता है और भ्रातृभाव बढ़ता है। अिसी बात को सार्वसमाजव्यापी बना देना बिलकुल मुश्किल नहीं है।

कृत्रिम भेद

शारीरिक परिश्रम के अुपविभागों में अिस व्यवस्था के प्रयोग में कोअी कठिनाअी नहीं होगी। लेकिन शारीरिक और मानसिक परिश्रमों की कीमत समान ठहराने में ही मुख्य अड़चन है। शिक्षित वर्ग को अिसपर अैतराज होगा। लेकिन अिस व्यवस्था में से निर्मित होनेवाले भ्रातृभाव की बदौलत जो संरक्षण और सन्तोष मिलेगा, अुसपर अगर ठीक ठीक ध्यान दिया जाय, तो दरअसल अैतराज नहीं होना चाहिअे। स्त्री-पुरुषों के वेतन में असमानता तो बिलकुल बे-बुनियाद है। स्त्रियों के कार्य में अधिक सातत्य, सावधानी और कला पायी जाती है। अिसके विपरीत कुछ ज्यादा मेहनत के काम आमतौर से स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। अर्थात् कुल मिला कर दोनों

तरफ से आर्थिक समानता होने में कोअी कठिनाअी नहीं होनी चाहिअे। स्त्री-पुरुष-भेद, शरीर परिश्रम के अुपभेद, शारीरिक और मानसिक परिश्रम का भेद, मानसिक परिश्रम के अन्तर्गत भेद; ये सब राष्ट्रीय दृष्टि से समान भमिका पर हैं।

वास्तविक भेद

प्रामाणिक या अप्रामाणिक याने अीमानदारी की मेहनत और बेअीमानी की मेहनत, यह भेद वास्तविक है। अुसी प्रकार कुशल और अकुशल का भेद भी अनिवार्य है। अप्रामाणिकता को संरक्षण देने की जिम्मेवारी नहीं है। लेकिन अुसे सुधारने की जिम्मेवारी राज्यव्यवस्था पर अवश्य है। और सुधार की जिम्मेवारी के साथ साथ आनुषंगिकरूप से संरक्षण का दायित्व भी आ ही जाता है। अकुशल परिश्रम कुशल बनता जाय, यह भी राज्यव्यवस्था का ही अंग है। तिसपर भी कुछ परिश्रम स्वभावतः ही कम कुशल होते हैं, और अुनकी राष्ट्र को आवश्यकता भी होती है। अुन्हें करने के लिअे कम कुशल व्यक्ति नियुक्त किये जा सकते हैं। आज यह मान लिया गया है कि राष्ट्र की कुशलता, प्रामाणिकता, अुत्साह और जिम्मेवारी को प्रोत्साहन देने का अेक मात्र मार्ग कम या अधिक वेतन देना ही है। लेकिन सामुदायिक जिम्मेवारी मनुष्य को बहुत बड़ी प्रेरणा देनेवाली वस्तु है। लड़के के लिअे मा की शाबाशी जितनी अुत्साहवर्धक हो सकती है, अुतने अवांतर हजार पारितोषिक नहीं हो सकते। और यदि हों भी, तो वे लोभ-वर्धक भी होते हैं। अतः सामाजिक गौरव, और अुससे भी बढ़ कर आत्मसन्तोष को ही प्रेरक तत्त्व मान कर तुल्यता की बुनियाद पर आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करने के सिवा सार्वत्रिक 'समतौल' सम्हालने का दूसरा कोअी भी अुपाय नहीं है।

हिन्दूधर्म की वर्णव्यवस्था का मूल स्वरूप

अिस दृष्टि से वर्णव्यवस्था की कल्पना करके हिन्दूधर्म ने अेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया है। लेकिन अुसमें अुच्च-नीचता के भाव दाखिल हो जाने के कारण अुसका असली विशुद्ध स्वरूप दूषित हो गया और आगे चल कर आर्थिक प्रतियोगिता के सिद्धान्त के लालच के कारण बिलकुल नष्ट ही हो गया। वर्णव्यवस्था का स्वरूप थोड़े में अिस प्रकार है:—

व्यक्ति समाज का दिया हुआ काम करे। समाज व्यक्ति की योग्यता देख कर अुसे काम दे। योग्यता के विकास में आनुवंशिक संस्कारों की सहायता ली जाय। कार्य के अनुरूप तैयारी करके अुस कार्य को स्वीकारना व्यक्ति अपना कर्तव्य समझे। दूसरे कोअी व्यक्ति अुसमें अुससे प्रति-द्वन्द्विता न करें। सबको समान संरक्षण और तुल्य वेतन मिले। जिम्मेवारी से अपने अपने काम करनेवाले तमाम व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ के नाते समकक्ष माने जायं और अुनकी अिस स्वकर्मरूप पूजा से भगवान् प्रसन्न हों।

अिसी तरह की किसी न किसी व्यवस्था की जरूरत आदर्श राज्यप्रणाली को होगी। (१) वेतन की तुल्यता, (२) होड़ का अभाव, (३) आनुवंशिक संस्कार से लाभ अुठानेवाली शिक्षणयोजना—ये वर्णव्यवस्था के सारभूत सिद्धान्त हैं। पहले दो सिद्धान्त अर्थशास्त्र के महान् प्रमेय हैं और तीसरा समाजशास्त्रीय प्रमेय है। कुछ लोगों के मत से वह विवादास्पद है। यदि वह विवादास्पद साबित हो, तो भी पहले दो अबाधित ही रहेंगे। अुनके आधार पर व्यवस्था

का निर्माण करना पड़ेगा। परन्तु विचार और अनुभव की कसौटी पर कसने के बाद अगर तीसरी बात भी निर्विवादरूप से खरी अतरे—और अैसा होना बहुत संभव है—तो अुच्चनीचभाव की कल्पना के बिना, और अुसे बिलकुल अेक पौलादी चौखटे का रूप न देते हुअे, वर्णव्यवस्था का पुनरुज्जीवन करना पड़ेगा।

प्रकार का आग्रह हो न कि आकार का

[२८] सेवाभाव, स्वावलम्बन, अहिंसक त्राण और तुल्य पारिश्रमिक—अिन चार खम्भों पर राज्यप्रणाली के भवन का निर्माण करना चाहिअे। सामाजिक मनोभूमिका और स्थानिक अेवं कालिक अवस्था के अनुसार राज्यप्रणाली के स्थूल आकार में अन्तर हो सकता है। जिस कुटुम्ब में मा-बाप और बिलकुल छोटी अुम्र के बच्चे हों अुस कुटुम्ब का स्वरूप अेक तरह का होगा, जिसमें मा-बाप और तरुण लड़के-लड़कियाँ हों, अुसका दूसरी तरह का होगा और जिसमें बिलकुल बूढ़े मा-बाप और प्रौढ़ लड़के-लड़कियाँ हों, अुसका तीसरी तरह का होगा। अिसी तरह बड़ा कुटुम्ब, छोटा कुटुम्ब, सामुदायिक कुटुम्ब, विभक्त कुटुम्ब आदि कअी नैसर्गिक और औपाधिक भेदों की कल्पना की जा सकती है। अिन सब कुटुम्बों में कौटुम्बिक तत्त्व अेक ही रहेगा। स्थूल पद्धतियाँ अलग अलग तरह की सोची जा सकती हैं।

मीमांसा-पद्धति के भिन्न भिन्न अभिमानी मीमांसाग्रही बन जाते हैं। अुसी तरह राजकीय विचारक, भिन्न भिन्न वादों के समर्थक और अभिमानी बन कर कहने लगते हैं कि अमुक वाद या पद्धति सभी देशों और कालों के लिअे अुपयुक्त है। लेकिन गणित जैसे स्थिर शास्त्र को भी आज सापेक्षतावाद के सामने झुकना पड़ रहा है। राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र तो स्थूल अर्थ में स्थिरता का दावा कभी कर ही नहीं सकते। वस्तुतः जिन्हें 'शास्त्र' संज्ञा तत्त्वतः लागू हो सके, अैसे मूलभूत शास्त्र बहुत ही थोड़े हैं और वे मनुष्य के नियामक हैं। दूसरे सारे शास्त्र—जो शास्त्र के नाम से पहचाने जाते हैं—केवल व्यावहारिक नियमन हैं, मनुष्यों द्वारा कल्पित हैं और मनुष्यों द्वारा नियम्य हैं।

नियामक शास्त्र और नियम्य शास्त्रों के रूप भिन्न हैं। लेकिन अिसका ध्यान न रखते हुअे नियम्य शास्त्रों को भी नियामक शास्त्र का रूप देने की कोशिश करना अशास्त्रीय बुद्धि का लक्षण है। अिसलिअे जन-सुखदायी और जन-हितकारी राज्यप्रणाली के ये जो चार आवश्यक प्रमेय हैं, अुन्हीं का आग्रह रख कर अवान्तर सारी बातें तत्तत्कालीन आवश्यकता पर छोड़ देनी चाहिअें।

प्रश्न ४ था

प्रश्न–क्या अहिंसा पर अधिष्ठित राज्यपद्धति टिक सकती है ?

हिंसक प्रयोगों की परिणति—संकुल युद्ध

[२९] **उत्तर**–अिस प्रश्न में यह मान लिया गया है कि हिंसा पर आश्रित राज्यपद्धति टिक सकती है। अबतक के सारे अितिहास में सभी ने राज्यपद्धति के स्थायित्व के लिअे हिंसा के प्रयोग किये हैं। कोअी भी राज्यपद्धति हिंसा के आधार पर टिक सकी हो अैसा अनुभव कही नहीं हुआ है। तो भी हमारा मन हिंसा से अबतक अितना प्रभावित है कि हिंसा के हजारों दफा असफल होने के बाद भी अुसकी सफलता में हमारी श्रद्धा बराबर बनी हुअी है। कोअी भी हिंसात्मक पद्धति स्थायी नहीं हुअी यह निषेधात्मक सबूत भी अिस अनुमान के लिअे काफी होना चाहिअे कि अहिंसा के बिना राज्यपद्धति टिक नहीं सकती। जो थोडी-सी हिंसात्मक पद्धतियाँ टिक सकीं या टिक रही हैं, वे लोकमत की शक्ति का अर्थात् अप्रत्यक्षरूप से अहिंसा का ही, पृष्ठ-पोषण प्राप्त करने के लिअे अुत्सुक रहती हैं। अिस पर से कट्टर हिंसक के भी दिल में यह शंका अुठनी चाहिअे कि शायद राज्यपद्धति के स्थायित्व का अधिष्ठान अहिंसा ही तो नहीं है ? अबतक के हिंसा के प्रयोग सरासर असफल हुअे हैं। प्रयोगों की असफलता की वजह हिंसा के बदले दूसरा कोअी दोष होगा, अिस तरह के सन्देह का लाभ भी हिंसा को कितनी बार दिया जाय ? सच तो यह है कि 'सेर को सवा सेर' के न्यायानुसार अेक की हिंसा का जवाब दूसरे ने अधिक हिंसा से दिया। अुसके जवाब में तीसरे ने अुसको भी मात किया और अिस तरह हम टोटलवॉर (संकुल-युद्ध) तक आ पहुँचे हैं।

व्यापकता की कसौटी

[३०] लेकिन अेक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ। कोअी भी तत्त्व नैतिक दृष्टि से योग्य है या अयोग्य और व्यावहारिक दृष्टि से लाभकारक है या हानिकारक, अिसका निर्णय करने की नीतिशास्त्रकारों की अेक कसौटी यह भी है कि अुस तत्त्व को सार्वजनिक बना कर देखा जाय। याने अुसे सब के लिये लागू करके अुसके व्यापकतम प्रयोग का परिणाम देखा जाये। जो तत्त्व व्यापक बनते ही नष्ट होना चाहता है, ठहर नहीं सकता, आत्मघात कर लेता है, अुस तत्त्व को नीति की और व्यवहार की दृष्टि से बेशक निकम्मा समझना चाहिअे। भीख मांगना अुचित है या अनुचित, अिसका निर्णय करना हो तो सभी भीक मांग कर देखें। वैसा करते ही भिक्षा टिक नहीं सकती। स्वनाश कर लेती है। तात्पर्य, भिक्षा मांगना अनुचित है।

अिस तरह का प्रयोग हिंसा के विषय में केवल तत्त्वनिर्णयार्थ कौन करे ? लेकिन 'सेर को सव्वासेर' के न्यायानुसार कदम बढ़ाते बढ़ाते यूरोप के राष्ट्र आज अनायास ही नीतिशास्त्रकारों की कसौटी के मुताबिक हिंसा की अनुपयुक्तता प्रमाणित करने में तत्पर हो गये हैं। अब व्यक्तिगत मारपीट, गिरोहों के झगड़े और फुटकर लडाअियाँ करके देखने की कोअी जरूरत ही नहीं रह गयी है। युद्ध ही करना हो तो संकुल युद्ध करना होगा अथवा युद्ध छोड़ ही देना होगा। अिसके सिवा तीसरा कोअी चारा यूरोप के पराक्रमी और प्रयोगी लोगों ने बाकी नहीं रहने दिया है। शायद

अब अितना ही बाकी रह जाता है कि संकुलयुद्ध में पराजित अेक राष्ट्र दूसरे अनेक राष्ट्रों की सहायता ले कर राष्ट्रों के संकुलयुद्ध की बजाय राष्ट्रसंघ या खण्डों के संकुलयुद्ध करे। लेकिन यह सिलसिला कितना भी बढ़ाया जाय तो भी अब ज्यादा गुंजाअिश नहीं रही। हिंसा के व्यापकतम और पराकाष्ठा के प्रयोग के बाद अुसे आत्मघात करके अपना स्थान अहिंसा को दे देना चाहिअे। अिसके सिवा गत्यंतर नहीं है। केवल विवेकी लोकमत ही नहीं, अपितु सर्वसाधारण लोकमत भी अिसी निर्णय पर पहुँचा है या पहुँचना चाहता है।

अहिंसा में 'सेर के लिअे सवासेर' की नीति बाधक नहीं

[३१] अिस प्रकार विचार में से हिंसा की पद्धति तर्क कर देने के बाद अहिंसा की ही पद्धति बाकी रह जाती है। और फिर अहिंसा के बारे में शंका या संदेह की गुंजाअिश नहीं रहती। केवल अुसके श्रद्धापूर्वक प्रयोग की ही गुंजाअिश रह जाती है। 'सेर के लिअे सवासेर' वाला न्याय अहिंसा में बाधक नहीं होता। मुझसे जिसकी अहिंसा अधिक हो, वह मुझे कुचलना नहीं चाहता। मेरा हृदय-परिवर्तन करना चाहता है। अुसमें अुसे स्वाभाविकरूप से सफलता मिलती है और मेरे लिअे भी वह सफलता ही साबित होती है। 'अेक की जीत याने दूसरे की हार,' यह रीति हिंसा की है। अहिंसा में तो जो अेक की जीत है, वही दूसरे की जीत है। अगर कोअी वादग्रस्त प्रश्न रह जाय, तो वह तटस्थ पंचों को सौंप दिया जाता है। अहिंसा का तरीका अितना सरल है।

अहिंसा का राष्ट्रव्यापी प्रयोग सुलभतर

[३२] अहिंसा का राष्ट्रीय प्रयोग अेक तरह से व्यक्तिगत प्रयोग की अपेक्षा अधिक सुलभ होगा। व्यक्तिगत मामले में अैसा हो सकता है कि जब दो व्यक्तियों में विरोध हो जाय तो अहिंसक व्यक्ति को हिंसक व्यक्ति के मन को अपनी अहिंसा से प्रभावित करने का मौका ही न मिलने पावे और अुससे पहले ही हिंसक व्यक्ति आपे से बाहर हो कर अुसका काम तमाम कर दे। लेकिन राष्ट्रों के सम्बन्ध में अिसके लिअे गुंजाअिश नहीं होती। दो राष्ट्रों में विरोध अुपस्थित हो गया है, अुनमें से अेक समूचा राष्ट्र अेकाअेक मतवाला हो गया है और वह अपने प्रतिपक्षी अहिंसक राष्ट्र का अुसकी अहिंसा से प्रभावित होने से पहले ही अचानक सफाया कर देता है, अिस तरह की कल्पना नहीं की जाती। लेकिन व्यक्तिगत युद्ध में भी, जहाँ जामे से बाहर होने की सम्भावना अधिक होती है वहाँ भी, अहिंसक व्यक्ति प्रायः हिंसक व्यक्ति पर विजय पाता है। तो फिर राष्ट्रीय युद्ध में, याने जहाँ दीवानेपन की गुंजाअिश नहीं है वहाँ, अहिंसा का प्रयोग करनेवाला राष्ट्र विजयी क्यों न हो, अिसका कोअी अुत्तर नहीं है। और भी अेक बात है। हिंसा की तरह यहाँ अेक की जय याने दूसरी की क्षय नहीं है। अैसी स्थिति में अहिंसक राष्ट्र की विजय के विषय में शंका का कोअी कारण नहीं होना चाहिअे।

नित्य जाग्रत प्रतीकारशक्ति

[३३] 'या तो अहिंसक राज्यपद्धति या संकुलयुद्ध की तैयारी'?—अिस तरह का प्रश्न अुपस्थित होने पर अहिंसा का रास्ता अपने आप ही प्रशस्त हो जाता है। लेकिन अिसके बाद भी

अहिंसक राज्यपद्धति के लिअे संगठन और शिक्षण-प्रचार आदि की आवश्यकता रहेगी ही। संकुलयुद्ध के लिअे जिस प्रकार के संगठन की जरूरत होती है, अुसकी अपेक्षा अहिंसा का संगठन भिन्न प्रकार का होगा। लेकिन वह अितना व्यापक होना चाहिअे कि जनता के प्रत्येक व्यक्ति का स्पर्श कर सके। अिसके लिअे योजना अूपर सुझायी है। अुसे कार्यान्वित करने के लिअे अहिंसा की ओर सहजप्रवृत्त लोकमत को ज्ञानपूर्वक अहिंसक बनाना पड़ेगा। सर्वसाधारण जनता वृत्ति से हमेशा अहिंसक होती है। लेकिन अुसे तत्त्वज्ञान से अहिंसक बनना चाहिअे।

मतलब यह कि निष्क्रिय अहिंसा से काम नही चलेगा। अुसके बदले जीवन के सभी क्षेत्रों को व्यापनेवाली सक्रिय अहिंसा की जरूरत होगी। अहिंसा अेक सार्वभौम निष्ठा या दर्शन है। दर्शन अेकांगी नहीं होता; अुसे जीवनव्यापी होना चाहिअे।

अगर यह मान लिया जाय कि समाज की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था ज्यों की त्यों रहेगी, तो अहिंसा के लिअे अुसमें गुंजाअिश ही कहाँ है? लेकिन अगर राष्ट्र के अन्तर्व्यवहार और अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार की कुल व्यवस्था अहिंसा के सिद्धान्त के आधार पर की जाय, तो कोअी वजह नहीं है कि वह टिक न सके। आज हम देखते हैं कि हिंसक राज्यपद्धति की रक्षा के लिअे जबरदस्त त्याग करना पड़ता है। लेकिन अहिंसक पद्धति की हिफाजत के बारे में अैसी आशा की जाती है कि शरीर और सम्पत्ति को जरा भी धक्का लगे बिना ही काम बन जाना चाहिअे। अहिंसक संरक्षण सब तरह से कुशल तो है, परन्तु यह आश्वासन नहीं दिया जा सकता कि वह यों ही बिना तकलीफ के हो जायगा। कल्पनाशक्ति को थोड़ी गति दे कर आत्मक्लेश और प्राणार्पण के लिअे—प्रतिपक्षी को बाल-बाल बचा कर शान्त प्राणार्पण के लिअे—तैयार रहना होगा। अहिंसा की लड़ाअी रणक्षेत्र में नहीं होती, हृदयक्षेत्र में होती है। लेकिन लड़ाअी के लिअे तैयारी तो अहिंसा में भी चाहिअे। सारे संसार में अहिंसा का प्रचार हो जाने के बाद भी तैयारी की जरूरत तो रहेगी ही। अेक बार कमाया हुआ जन्मभर खाने की गुंजाअिश न तो हिंसा में है और न अहिंसा में ही। प्रतिकार-शक्ति सर्वदा जाग्रत रखनी ही होगी। अहिंसक जीवन के माने प्रासंगिक त्याग नहीं, बरन निरन्तर त्याग है; और केवल त्याग ही नहीं, अपितु त्याग का आनन्द।

अहिंसक व्यवस्था अति-मानवीय नहीं है

लेकिन बहुतों को शंका होती है कि यह सब हो कैसे? कोअी तो पूछते हैं कि क्या अिसके लिअे अति-मानवों की जरूरत होगी? अतिमानवों की कल्पना करने के बाद प्रतीकार का सवाल ही नहीं अुठता। जब हम प्रतीकार की चर्चा करते हैं, तब हम सामान्य मानवकोटि का ही विचार करते हैं। केवल पशुत्व को ही बाद देते हैं। और यह भी आशा नहीं करते कि पशुत्व सभी मनुष्यों में से सर्वथा नष्ट हो जायगा। अितनी ही अुम्मीद करते हैं कि पशुत्व मनुष्यता के अंकुश में रहे। अिसलिअे अहिंसक रचना करना किसी भी तरह असंभव नहीं है। और जितनी स्थायी यह अहिंसक रचना होगी, अुतनी दूसरी कोअी भी व्यवस्था नहीं हो सकती।

प्रश्न ५ वां

प्रश्न–जब कि दूसरे सभी राष्ट्र हिंसावादी हैं, क्या अेक ही राष्ट्र अहिंसावादी हो सकता है ?

सार्वत्रिक सहानुभूति का वज्रकवच

अुत्तर–[३५] अहिंसक विचारप्रणाली के अनुसार अेक ही मानवसमाज में विभिन्न राष्ट्रों की कल्पना केवल सुभीते के ही लिअे हो सकती है। किसी भी अेक राष्ट्र को अगर अहिंसा की सुबुद्धि प्राप्त हो जाय, तो वह राष्ट्र अपने आप को दूसरे राष्ट्रों से अलग और विरोधी नहीं मानेगा। वह जितनी अपने हित की चिन्ता करेगा, अुतनी ही दूसरे राष्ट्रों के हित की भी चिन्ता करेगा। हिंसावादी राष्ट्र भी समूचे दीवाने नहीं होते। बल्कि यह कहना चाहिअे कि राष्ट्र अेक-दूसरे के प्रभाव में आ कर हिंसक बने हैं। मनुष्य को हिंसा के लिअे हिंसा नहीं भाती। अिसलिअे अगर अहिंसक विचार के अनुसार व्यवहार करके अुसीके अनुरूप सारी दुनिया से सम्बन्ध जोड़ने की अिच्छा रखनेवाला कोअी राष्ट्र प्रस्तुत हो जाय, तो वह अपने आसपास के राष्ट्रों की विवेकवृत्ति को जगायगा, अुसे गति देगा और अुस अंश में अुन राष्ट्रों को अहिंसा के रास्ते पर लायगा।

अहिंसक राष्ट्र जबरदस्ती अपना माल दूसरों पर नहीं लादेगा। अहिंसक राष्ट्र में हरअेक गाँव श्रमनिष्ठ और स्वावलम्बी रहेगा। अिसलिअे दूसरे राष्ट्रों की लोभवृत्ति के लिअे गुंजाअिश नहीं होगी। अगर दूसरे राष्ट्र अुसके और अपने हित का विरोध मानें, तो अुनको पूरी तरह सन्तोष देने के लिअे मित्रता की भावना से यत्न करेगा। दूसरे राष्ट्रों पर अकालादि संकट आ पड़े, तो अुनकी यथासंभव निष्कामभाव से सेवा करेगा। विवादग्रस्त प्रश्न पंचों के सामने पेश करने के लिअे सदा तैयार रहेगा। दूसरे राष्ट्र अगर पंचों द्वारा न्याय कराने को राजी न हों, या राजी होने पर भी अुनका फैसला मानने को तैयार न हों, और अुस अहिंसक राष्ट्र पर धावा बोल दें, तो वह अुनका अहिंसक प्रतीकार करेगा।

अिस तरह की वृत्ति रखनेवाला अेकाकी राष्ट्र भी अेकाकी नहीं रहेगा। वह सारी दुनिया भर में अपने लिअे सहानुभूति के वज्रकवच का निर्माण करेगा। अैसे राष्ट्र की कल्पना हम क्यों नहीं कर सकते ?

अकुतोभय अहिंसक राष्ट्र

[३६] अच्छा; और दूसरे राष्ट्र आक्रमण क्यों करना चाहेंगे ? क्या अिसलिअे कि अुनके पास जमीन कम और जन संख्या अधिक है और हमारे पास जमीन भरपूर और लोकसंख्या अल्प है ? अगर अैसा हो, तो अुनमें से जो लोग हमारे देश में रहना चाहते होंगे और यहाँ की व्यवस्था मंजूर करने तैयार होंगे, अुनका हम स्वागत ही क्यों नहीं करेंगे ? अूपर कहा जा चुका है कि अहिंसक राष्ट्र अपने आप को असम्बद्ध नहीं मानेगा। प्राचीन हिन्दुस्तान की वृत्ति शास्त्रीय और परिनिष्ठित अहिंसा की नहीं कही जा सकती। लेकिन फिर भी क्या हिन्दुस्तान ने संकटग्रस्त पारसियों को जगह नहीं दी ? और अुससे हिन्दुस्तान का क्या नुकसान हुआ ?

अथवा, क्या दूसरे राष्ट्र दुर्भिक्षादि किसी विशेष आपत्ति के कारण चढ़ाअी करेंगे ? अहिंसक राष्ट्र स्वयम् थोड़ी-बहुत मुसीबत अुठा कर भी अिनकी मदद किये बिना कैसे रहेगा ?

या लोभवृत्ति के अधीन हो कर व्यापार की मंडी पर कब्जा करने के लिअे हम पर कोअी आक्रमण करेगा ? लोभ की ताली कभी अेक ही हाथ से नहीं बजती। हम अगर आलसी या

विलासी हों, तो पड़ोसी को हम लोभ के लिअे कारण देंगे। लेकिन अुस हालत में हम अहिंसक ही नहीं होंगे।

या फिर, सरहद पर रहनेवाले सम्मिश्र समाज के अन्तर्गत विदेशियों के हित की रक्षा के लिअे हमपर कोअी आक्रमण करेगा? अुस हालत में अिस समस्या का दोनों पक्षों को मान्य समाधान करना दुबली अहिंसा के लिअे असम्भव भले ही हो, पर वीर्यवती अहिंसा के लिअे असम्भव क्यों हो? और मान लीजिये कि आखिर लड़ाअी तक ही नौबत आ जाय, तो हिंसा से आज तक राष्ट्रों को जितना संरक्षण मिला अुससे कम संरक्षण अुस राष्ट्र को क्यों मिलेगा, जिसमें अहिंसा से आमरण कष्ट झेलनेवाले वीर सन्नद्ध होंगे?

दुर्बल अहिंसा का लक्षण

[३७] सच तो यह है कि जब अेक राष्ट्र अहिंसावादी बन गया हो, तब अुसके स्थायित्व पर सन्देह करना कल्पनाशक्ति की कमी का परिणाम है। वस्तुतः आज हिंसक लड़ाअी करनेवाले लोगों को कुछ कम कष्ट नहीं अुठाने पड़ते। हिंसा की वेदी पर अितनी आहुतियाँ और बलिदान देने के बाद जो लाभ होता है, अुससे कम लाभ अहिंसा के लिअे अुतना बलिदान करने की तैयारी से होगा, यह कल्पना मानसशास्त्र को मंजूर नहीं है। लेकिन हिंसा के लिअे बहुत भारी बलिदान की कल्पना करके, अहिंसा के लिअे अल्प बलिदान या अ-बलिदान की कल्पना करना दुर्बल अहिंसा है। अैसी अहिंसा दुनिया में टिक नहीं सकती, यह बात पक्की है।

अहिंसक व्यवस्था की निर्भयता

[३८] लेकिन भीतरी अराजक और बाहरी आक्रमण का भय हमारी कल्पना को परेशान करते रहते हैं। अगर अहिंसक राज्यपद्धति सबके सुख के लिअे प्रतिज्ञा किये बैठी हो, तो अिस तरह के भयों से वह भयभीत नहीं होगी। सबकी अविरोधपूर्वक चिन्ता करनेवाली व्यवस्था के प्रचलित होते हुअे भी, और सभी के दुःखों का निवारण करने की सुविधा होते हुअे भी, अगर कोअी दंगाफसाद करने पर आमादा हो जाय, तो अुसका बन्दोबस्त करने की बहुत बड़ी समस्या प्रश्नोत्तर का विषय नहीं होनी चाहिअे। अहिंसक व्यवस्था में यह स्थिति गृहीत है कि जनसेवक साधारणतः लोगों की सेवा द्वारा अुनके निकट सम्पर्क में रहेंगे। अैसे सेवकों की स्वयंसेना सर्वत्र मौजूद रहेगी। अिसलिअे अेकाध जगह बलवा हो जाय, तो वह थोड़े ही बलिदान की तैयारी से शान्त किया जा सकेगा। 'जिन्होंने हमारी सेवा की है वही हमारे परिचित बन्धु हमारे विरोध में मरने के लिअे तैयार हैं और चाहे जब हमारी शिकायतें सुन कर हमें अभयदान देने को प्रस्तुत हैं,'—यह दृश्य दंगा शान्त करने के लिअे पर्याप्त होना चाहिअे।

पुलीस नहीं; सेवकवर्ग

पूछा जाता है कि तुम्हारी राज्यपद्धति में फौज नहीं तो कम से कम पुलीस तो रहेगी? जवाब दिया जाता है, 'पुलीस रहेगी, मगर कुछ और ढंग की।' लेकिन जरा दूसरी भाषा में यह क्यों नहीं कहा जाता कि पुलीस नहीं होगी, जागरूक सेवकवर्ग रहेगा और नागरिकों में स्वकर्तव्य की जागृति रहेगी? अैसा अुत्तर नहीं दिया जाता।—क्योंकि ये प्रश्नोत्तर आदर्श व्यवस्था के विषय में नहीं हैं। आज अहिंसा की दिशा में हम किस रफ्तार से बढ़ रहे हैं और वर्तमान परिस्थिति से विमुख न होते हुअे हम कितने दूर तक देख सकते हैं, अिसीके लिहाज से ये अुत्तर दिये गये हैं।

(मराठी से अनूदित)

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

मअी, १९४२
वर्धा

आत्मसंतोष और अल्पसंतोष

[केदारनाथ]

[गीता में कहा है, 'जोषयेत् सर्व कर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्' (ज्ञानी समत्वपूर्वक, अच्छी तरह, कर्म करके (अज्ञानियों को) सब कर्मों में प्रेरित करे')। ''लेकिन अैसी वृत्तिवाल राष्ट्र-सेवक के 'समाचरन्' की, याने समत्वपूर्वक आचार की, मर्यादा कोनसी है? क्या अुससे यह आशा की जाती है कि संसारासक्त मनुष्य की तरह वह अपनी बुद्धि को गति दे कर नये नये कार्य खोजता रहे और अंगीकृत कार्यों को बढ़ाता रहे? या जानबूझ कर नये नये काम न खोजते हुअे जितने काम अनायास प्राप्त हों, अुन्हींमें से अुचित कार्य अच्छी तरह पूरे करके सन्तोष माने'' ?— यह प्रश्न श्री किशोरलाल भाअी मशरूवाला ने पू० नाथजी से पूछा था। अुनका अुत्तर बहुत ही विचारप्रेरक और सभी के लिअे अुपयोगी है। अतः वह सारा-का-सारा दिया जा रहा है। —सं०]

आत्मसंतोष के बारे में तुमने जो लिखा था, अुसपर से मेरे मन में जो विचार आये, अुन्हें भेज रहा हूँ।

वेदान्त की विचारप्रणाली भी कुछ-कुछ अिसी तरह की है। अपने अंतस्थ रिपुओं को परास्त कर वासनाक्षय के द्वारा आत्मसंतोष और मोक्ष प्राप्त करना ही यदि मानवीय जीवन का ध्येय मान लिया जाय, तो यह विचारधारा सही है। 'सुख-दुःख कर्माधीन हैं, हर अेक को अपने कर्म का फल स्वयं ही भुगतना पड़ता है, अुसे कोअी घटा-बढ़ा नहीं सकता', अैसी दृढ श्रद्धा से मनुष्य अगर अपने और दूसरों के दुःख के प्रति अुदासीन वृत्ति रख सके—तिसपर भी यदि, कभी सद्भावना अुत्पन्न हो ही गयी, तो अनायास किसीके लिअे जो कुछ थोड़ा-बहुत कर सके सो कर दिया, अिस तरह की वृत्ति सध गयी और 'मैं ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निर्विकल्प आत्मा हूँ', अिस धारणा से जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के भय और दुःख का निराकरण कर सके—तो वह आत्मसंतोष प्राप्त कर सकेगा। जिनमें पहले ही से भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और कर्तृत्व आदि की कमी हो, वे अिस स्थिति को जलदी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन अुनमें भी आत्मसन्तोष की स्थिति का टिकना असम्भव ही जान पड़ता है। शायद मनुष्य अपनी अशुभ वृत्तियों पर पूरी तरह काबू कर ले सके; परन्तु वह चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करे, यह असम्भव है कि वह अपने चित्त में शुभ वृत्तियों का अुठना ही बन्द कर दे। जिनमें भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और कर्तृत्व की मात्रा भरपूर थी, अुन व्यक्तियों ने संन्यास या भक्तिमार्ग का

स्वीकार करके, निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करने पर भी, निवृत्ति का बाह्यत: प्रतिपादन करने के साथ साथ बहुत बड़ी प्रवृत्ति की है। संसार को माया समझ कर, अुसे त्याज्य मान कर, अेक नये संप्रदाय के नये संस्कारों का निर्माण अुन्होंने किया। वे कुछ भी प्रतिपादन क्यों न करते रहे हों, अुनकी भावनाशीलता और क्रियाशक्ति प्रकट हो कर ही रही। अिसपर से अैसा जान पड़ता है कि जिन व्यक्तियों में सद्भावना और क्रियाशक्ति का बड़े अंश में अभाव होता है, वे आत्मसंतोष जलदी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन जिनमें अुनकी कमी नहीं होती, अुन्हें केवल धारणा के द्वारा आत्मसंतोष प्राप्त नहीं होता और अगर प्राप्त हो भी जाय, तो टिक नहीं सकता। अैसे व्यक्तियों के लिअे आत्मसंतोष का वास्तविक साधन संन्यास या भक्ति नहीं, बरन सद्भावना-युक्त कर्माचरण ही है। लेकिन निरीक्षण के अभाव में या पहले ही से बुद्धि में जमी हुअी विशेष धारणाओं तथा पूर्वसस्कारों के कारण, यह बात अुनके ध्यान में नहीं आती।

सद्भावना और कर्तृत्वशक्ति का बहुत दर्जे तक अभाव, निरुपाधिक जीवन, वेदान्तिक विचारप्रणाली, मोक्ष की अुत्कण्ठा, आदि कारणों से किसी को आत्मसंतोष प्राप्त हो जाय, तो भी प्राकृतिक नियमों के कारण या बाह्य सात्विक संस्कारों के कारण अुसकी जड़ता ज्यों ज्यों कम होती जायगी, त्यों त्यों अुसकी वृत्ति में फर्क होने लगेगा और अुस हालत में आत्मसंतोष बनाये रखना अुसके लिअे मुश्किल हो जायगा। बहुत दिनों के निरुपाधिक जीवन, कर्मशिथिलता और विशेष प्रकार की धारणा के अभ्यास के कारण अुसके चित्त की दशा अेक विकलांग व्यक्ति के जैसी हो जायगी। और सद्भावना के जाग्रत होने पर अुसे कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति अगर नष्ट हो गयी हो, तो अुसके आत्मसंतोष का टिकना और भी अधिक मुश्किल हो जायगा। परन्तु सद्भावनाओं के साथ साथ जिसकी कर्तृत्वशक्ति भी जाग अुठेगी, वह किसी भी हालत में अपना रास्ता निकाले बिना नहीं रहेगा। जो श्रेयार्थी है और जीवन का यथार्थ ध्येय जान कर अुसीको प्राप्त करने की जिसकी अुत्कट अिच्छा है, वह यदि किसी कारणवश अपने ध्येय तक न पहुँच सका, तो भी जहाँ तक वह पहुँच सकेगा अुस अवस्था में भी अुसे जो आत्म-संतोष प्राप्त होगा, वह पहले की अपेक्षा निःसंदेह अधिक यथार्थ और टिकाअू होगा।

केवल परदुःख-निवारण की वृत्ति के पीछे पड़ने से ही वह खुद या संसार सुखी नहीं होगा। परदुःख-निवारण की वृत्ति में अगर विवेक, तारतम्य, औचित्य, योजकता आदि आवश्यक सद्गुणों की कमी हो, तो अुस वृत्ति का भी स्वयं अुसके लिअे और दूसरों के लिअे सुखदायी होने के बदले दुःखदायी होना ही अधिक सम्भव है। अुस वृत्ति के साथ साथ यदि आवश्यक सद्गुण और कर्तृत्वशक्ति न हों, मनुष्य ने अपनी पात्रता से अधिक कार्य का भार अपने अूपर ले लिया हो, कार्य और योजना में कहीं दोष रह गया हो, या मनुष्य को दुःखनिवारण का केवल व्यसन या चस्का ही लग गया हो, तो भी अुस वृत्ति से किसीका सुखी होना सम्भव नहीं है। योग्यता के अभाव में केवल धनतृष्णा के कारण जब व्यापार बढ़ाया जाता है, तो अुस व्यापारी का या अुसके बाद की पीढ़ी का दिवाला निकल जाता है। वही हालत दुःख-निवारण के केवल व्यसन या तृष्णा की बदौलत हो सकती है। किसी अच्छी वृत्ति के भी व्यसन या अतिशयता से तथा केवल निरुपाधिकता

से बच कर मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग खोजना है। अगर सद्गुणों का सामंजस्य न सध सका, अुनमें यथायोग्य मेल कायम न किया जा सका, तो सद्गुणों का प्रभाव ही नष्ट हो जाता है। अितना ही नहीं, बल्कि वे सद्गुण ही हमारे और दूसरों के नाश का कारण बन जाते हैं। अिस प्रकार सद्गुणों से जब दुर्गुणों के सदृश परिणाम होते हैं, तब अुन्हें सद्गुण भी कैसे कहा जाय?

किसी-न-किसी तरह आत्मसंतोष प्राप्त कर लेना ही मनुष्य का ध्येय है?—या अपनी जड़ता का निराकरण कर मानवीय सद्गुणों का विकास करना अुसका ध्येय है? ध्येय के अनुरूप साधनो और मार्गों में भी भिन्नता रहेगी ही। अपनी जड़ता का निराकरण कर अपने अन्दर सब तरह से सात्विकता का विकास करना जिसका ध्येय हो, अुसे शरीर, बुद्धि और मन को क्रियाशील बनाना चाहिअे। चित्त में अुठनेवाले आवेगों से क्रियाशीलता पैदा होती है। चित्त में शुद्ध और अशुद्ध दोनों तरह के आवेग अुठते हैं। अुनमें से अशुद्ध आवेगों को रोक कर, अुनका जोर कम करके, शुद्ध आवेगों को गति देनी चाहिअे। सद्भावना और सद्गुण शुद्ध आवेग के लक्षण हैं। अुन्हें अुचितरूप से कार्य में परिणत करने से अुनकी गति और शक्ति बढ़ती है। अिस तरह अुनकी गति और शक्ति के बढ़ते रहने से हमारी जड़ता का नाश होता है। जब तक शरीर, बुद्धि और मन के किसी कोने में जड़ता का अंश बाकी रह गया हो, तब तक हमारे विकास के लिअे गुंजाअिश है। तब तक हमें आगे बढ़ने के लिअे, अुन्नत होने के लिअे, मौका है। अिस प्रकार जब हमारी जड़ता सर्वथा नष्ट हो जायगी, तब हमारे शरीर, बुद्धि और मन के द्वारा हमारी सात्विकता और चेतना ही प्रकट होगी। सर्वांगों से, सब तरफ से, चेतनस्वरूप होने का क्या यही अेक रास्ता नहीं है? और अगर मनुष्य को यह रास्ता मिल जाय और वह अुस-पर चलना सीख ले, तो फिर, 'मैं ही आत्मा हूँ, नित्य, निर्विकल्प, चेतन-स्वरूप हूँ', अैसा चिन्तन करके अुस भावना को दृढ़ करते रहने की क्या कोअी आवश्यकता है? अिसके अलावा, जिस आत्मसंतुष्ट स्थिति में जड़ता शेष रहती है और सहन हो सकती है, क्या अुसे पूर्ण सात्विक और पूर्ण चेतन स्थिति कह सकते हैं?

मनुष्य के ध्येय और अुन्नति का विचार और भी अेक दृष्टि से किया जा सकता है। मनुष्य के सम्बन्ध जितने विशाल और व्यापक होते जाते हैं, अुसके अनुरूप अुसमें सद्भावनाओं की, सद्गुणों की और कर्तृत्व की अनेकविध विशालता और व्यापकता आती रहनी चाहिअे। अन्यथा मानवीय जीवन पूर्ण नहीं हो सकेगा। जब मनुष्य के सम्बन्ध अेक संकीर्ण क्षेत्र तक ही मर्यादित हों, तब सद्गुणों की और कर्तृत्व की विशालता की गुंजाअिश ही नहीं रहती।

अैसी अवस्था में मनुष्य की धर्मकल्पनाओं का स्वरूप भी संकीर्ण ही रहेगा। संकीर्ण धर्मकल्पना अुस समय अुसके लिअे और अुसके समाज के लिअे भी अुपयुक्त हो सकती है। लेकिन जब शत्रु या मित्र के नाते मानवजाति के साथ मनुष्य का संबंध पहले की अपेक्षा कअी तरह से अधिक व्यापक होने लगता है, तब भावना, सद्गुण, धर्म, कर्तव्य, आदि के बारे में अुसकी पुरानी धारणाअें बदल जाती हैं और अुन सब में व्यापकता तथा विशालता आ ही जाती है। मेरा खयाल है कि मनुष्य के धर्म तथा कर्तव्य की मर्यादा संसार के साथ अुसके सम्बन्ध के अनुसार व्यापक और विशाल सहज

ही माननी पड़ती है। परन्तु जो समाज यह बात नहीं जानता या जानते हुअे भी अुसपर ध्यान नहीं देता और अपने बढ़ते हुअे संबंधों के अनुरूप अपनी धर्मकल्पना तथा स्वभाव में परिवर्तन नहीं करता, वह समाज दिन-पर-दिन अधिक दीन, लाचार और आत्मविश्वासहीन बनता जाता है। संकीर्णता का त्याग न करने के कारण अुसे चारों तरफ से दुःख और अपमान सहना पडता है। अिस प्रकार मानव्य की दृष्टि से व्यक्ति और समाज की अधोगति होती रहती है।

भारतवर्ष के लोगों की अवनति का अितिहास अगर शुरू से देखा जाय, तो यही बात साफ नजर आयेगी। जैसे जैसे भिन्न भिन्न मानवसमूहों से हमारा संबंध होता गया, वैसे वैसे हमारी अवनति ही होती गयी। हमारा अितिहास यही बताता है। वरना, अितनी बड़ी जनसंख्या और धारण-पोषण के लिअे आवश्यक वस्तुओं की अितनी प्रचुरता होते हुअे भी अितने बड़े राष्ट्र की अैसी हीनदीन अवस्था क्यों होती गयी? अिसका विचार करने पर मालूम होता है कि संकुचित परिस्थिति में से व्यापक परिस्थिति में दाखिल होने के बाद हमें अपने अन्दर जिस व्यापकता का विकास करना चाहिअे था, वह हमने नहीं किया, अिसीका यह परिणाम है।

संकीर्णता में से निकल कर व्यापकता में पदार्पण करते ही मनुष्य अवश्य सुखी होगा, यह कहना भी मुश्किल है। मनुष्यजाति किसी भी समय बिलकुल दुःख-मुक्त हो कर पूर्णरूप से सुखी हो सकेगी या नहीं और अगर हो सकी तो किन अुपायों से, यह कहना बहुत ही मुश्किल है। फिर भी अितना तो हम भलीभाँति समझ सकते हैं कि लाचारी और हीन-दीन अवस्था में जो सुख-दुःख प्राप्त होते हैं अुनकी अपेक्षा मानवता की विशालता की तरफ अग्रसर होने में प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखों में कोअी-न-कोअी विशेषता जरूर है। जिस स्थिति के सुख-दुःखों में दीनता, व्याकुलता, अुद्वेग और पश्चात्ताप हो, अुसकी अपेक्षा जिस स्थिति में दुःख के साथ साथ चित्त की दृढ़ता और निश्चय भी कायम रहता हो, दुःख के होते हुअे भी अुद्वेग और पश्चात्ताप का अभाव हो, जहाँ निष्ठा, आत्मविश्वास और धन्यता मनुष्य का त्याग न करती हो, वह स्थिति, निर्दुःख न होते हुअे भी, क्या पहली की अपेक्षा कहीं गौरवास्पद नहीं है? अुसी प्रकार जिस अवस्था के सुख में लोलुपता या अुन्माद, केवल स्वार्थ, तृष्णा अथवा दूसरी किसी भी हीन वृत्ति का अभाव हो, जहाँ सुख में भी धर्मनिष्ठा का त्याग न करना पड़ता हो, वह अवस्था पूर्णरूप से सुखमय भले ही न हो, लेकिन क्या अुसमें भी कोअी विशेषता नहीं है? शुद्ध सात्विक और सुखमय जीवन अगर कभी प्राप्त होना हो, तो क्या अिसी मार्ग से प्राप्त न होगा? संसार की स्थिति शुरू से जैसी थी वैसी ही आज भी है। आज भी दुःख का अभाव और सुख की वृद्धि तो नहीं देख पड़ती है। लेकिन अैसी स्थिति में भी कहीं कहीं मानव्य का यथार्थ विकास हो रहा है। यही विशेषता है। हरअेक युग में अुस युग के अनुरूप अिस प्रकार की विशेषता पायी गयी है। यह सच है कि मनुष्य अबतक पूर्णरूप से मानवीय जीवन बिताने में समर्थ नहीं हुआ है। लेकिन फिर भी, अुस दिशा में अुसका प्रयत्न निरंतर जारी है।

मानवीय जीवन के विकासक्रम की अेक और विशेषता पर हम ध्यान दें, तो मनुष्य का ध्येय निर्धारित करने में हमें सहायता मिलेगी। शरीर बुद्धि और मन के द्वारा सम्पूर्ण चेतनता प्राप्त

करने के प्रयास में ही मनुष्य महानता प्राप्त करता रहता है। अुसे कोअी शिवरूप या अीश्वर-स्वरूप भी कहते हैं। अिस महानता की प्राप्ति भी मानवीय जीवन का अेक हेतु है। हरअेक जीव में 'अपनेपन' का अेक भान है। मनुष्य में वह अधिक स्पष्टरूप में पाया जाता है। अिस भान के साथ साथ मनुष्य में अेक तरह की सत्ता-वृत्ति भी सदैव विद्यमान है। अुस आत्मभाव और सत्तावृत्ति का विकास करने की स्वाभाविक प्रेरणा भी मनुष्यमात्र में मौजूद है। जिस प्रकार कोअी भी मनुष्य आत्मभान से खाली नहीं पाया जाता, अुसी प्रकार अिस प्रेरणा से भी कोअी मुक्त नहीं है। अपना अल्पत्व त्याग कर महानता प्राप्त करना, अिस सत्तावृत्ति का सहज भाव है। अपनी अपनी पात्रता और स्वभाव के अनुरूप प्रत्येक मनुष्य महानता की प्राप्ति के प्रयत्न में व्यस्त है। सात्विक या राजस अुपायों से वह अुसी दिशा में बढ़ रहा है। वह अपनी सत्ता या आत्मता को ही अनेक अुपायों और साधनों से बढ़ा रहा है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, राज्य, धन, प्रतिष्ठा, अैश्वर्य आदि की प्राप्तिद्वारा मनुष्य अपने अल्पत्व को छोड़ कर महानता प्राप्त करने का ही प्रयत्न कर रहा है। अुसी महानता को कोअी सेवा के, कोअी ईश्वर-भक्ति के और कोअी ज्ञान के द्वारा प्राप्त करने की कोशिश में है। कोअी सत्ता के बल सारे संसार को अपने काबू में करके महान बनने का यत्न करता है और कोअी संसार से तद्रूप हो कर महानता प्राप्त करना चाहता है। अिस प्रकार, किसी न किसी अुपाय या साधन से अल्पत्व से परे जाने की अिच्छा और प्रयत्न मनुष्यमात्र में पाया जाता है। मनुष्य की गति स्वभावतः अुसी ओर दिखायी देती है। 'हे अीश्वर, मुझे छोटा ही रहने दे, चींटी की तरह शक्कर का कण खाने दे', अैसी प्रार्थना तुकाराम ने की तो है। अुसमें निरहंकारता और नम्रता की प्रशंसा करके 'छोटापन' या अल्पता की माँग की है। लेकिन अूपर अूपर से अैसा प्रतीत होता हो, तो भी तुकाराम की दृष्टि अल्पता पर नहीं थी; बल्कि अल्पता के कारण शकर की जो डली मिलनेवाली है, अुसपर थी। जब तक भक्त अीश्वर में विलीन नहीं हो जाता, तब तक भक्ति का अन्त नहीं होता और जब तक ज्ञानी विश्व के साथ समरस नहीं हो जाता, तब तक ज्ञान का अन्त नहीं होता। यहाँ भी अल्पत्व को पार करके महानता प्राप्त करने का प्रयत्न ही देख पड़ता है। सात्विक या राजस अुपायों और साधनों द्वारा मनुष्य जहाँ तक अपनी सत्तावृत्ति और आत्मत्व को सक्रियरूप से बढ़ा सकता है, वहाँ तक वह अुन्हें बढ़ाता रहता है और अपने अुद्देश्य की पूर्ति के लिअे कल्पना, भावना या धारणा का आश्रय करके अपने आपको सन्तोष देने की चेष्टा करता है। मनुष्य के सद्गुण और कर्तृत्व मर्यादित होते हैं। अिस-लिअे वह सक्रियरूप से सारे विश्व के साथ समरस नहीं हो सकता। किन्तु 'सारे चराचर विश्व का अधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ', अिस चिन्तन से मनुष्य सन्तोष प्राप्त करने की कोशिश करता है। यह भी महानताप्राप्ति के प्रयत्न की अेक काल्पनिक चेष्टा है। आप चाहे किसी भी व्यक्ति का चित्त टटोलिये, यही पायेंगे कि वह अल्पता सह ही नहीं सकता। अगर प्रत्यक्षरूप से महानता की प्राप्ति अुसके लिअे असंभव हो, तो वह कल्पना से ही महानता का संतोष प्राप्त कर लेता है। परंतु अुसके बिना नहीं रह सकता।

अिस प्रयत्न में से केवल राजस अुपाय और कल्पनाजन्य भावना का अंश छोड़ दिया जाय,

तो जिस अंश में प्रत्यक्ष सात्विक भावना और कर्तृत्व के द्वारा मनुष्य आत्मभाव का क्रियात्मक दर्शन कर सका हो, अुतने ही अंश में अुसकी प्रगति मानी जा सकती है। वहीं तक अुसे वास्तविक महानता प्राप्त हुअी है। राजस वृत्ति के प्रभाव से जो सत्ता और आत्मभाव बढ़ता है, अुससे व्यक्ति या समाज का कल्याण होना असम्भव है। जिस सत्ता को कायम करने के लिअे और बनाये रखने के लिअे दुष्ट मनोवृत्ति और दुष्ट साधनों का अवलम्बन करना पड़ता है और जिसके पीछे केवल अैहिक स्वार्थ के सिवा दूसरा कोअी अुद्देश्य नहीं होता, अुस सत्ता को हमेशा बाह्य विरोध का डर रहेगा और वह कभी भी चिरस्थायी नहीं हो सकती। परन्तु दया, क्षमा, बन्धुता, वात्सल्य, मित्रता, अुदारता, सत्यता, प्रामाणिकता, समता आदि सद्भावनाओं के प्रत्यक्ष आचरण से सत्ता और आत्मीयता का जो विस्तार होता है, वह व्यक्ति और संसार के लिअे कल्याणप्रद होता है और अुसे विरोध का डर कदापि नहीं होता। सारा संसार भी अगर अिस प्रकार अपनी सत्ता-वृत्ति का विकास करे और महानता प्राप्त करे, तो भी संसार में संघर्ष नहीं होगा। वह महानता अशाश्वत नहीं, शाश्वत होगी। संसार के साथ क्रियात्मकरूप से समरस होने का कहीं यही कल्याणप्रद मार्ग तो न हो? जड़ता का त्याग कर सभी ओर से और संपूर्णरूप से कर्म के द्वारा निरंतर शुद्ध चेतन को व्यक्त करते हुअे सात्विकता से संसार के साथ क्रियात्मक अेकरूपता, समरसता, प्राप्त करना ही यदि मानव-जीवन का साध्य मान लिया जाय, तो क्या कोअी हर्ज है?

(मराठी से अनूदित)

सरकार की अक्षम्य भूल

सरकार ने हमारे चारित्र्य को गिरा दिया, हमारे अन्दर से सारी क्षात्रवृत्ति कुचल कुचल कर निकाल दी, योद्धाओं और वीरपुरुषों के राष्ट्र को डरपोक कलमखोरों के झुंड में बदल दिया, अिसके लिअे हम अुसके प्रति कृतज्ञ नहीं रह सकते। ......दुर्भाग्य से हमारी सरकार अिस मामले में जो गलत नीति बरतती आयी है, अुसकी बदौलत सिर्फ हम ही को नुकसान अुठाना या पछताना नहीं पड़ेगा। दुनिया में आप अपनी चारों तरफ चाहे जहाँ नजर डालिये, आप सेना और हथियारों के विराट आयोजन देखेंगे। सारी सभ्य दुनिया पर आफत आनेवाली है। आज नहीं तो कल, अेक अजस्र युद्ध होगा, जिसका अन्त होने से पहले ग्रेटब्रिटन अुसमें निश्चय ही अुलझा हुआ होगा। ग्रेटब्रिटन चाहे कितना ही मालदार क्यों न हो, जहाँ यूरोपखंड के अनेक राष्ट्र लड़ाअी के मैदान में हजार सैनिक खड़े कर सकेंगे, वहाँ अिंग्लेंड सौ सैनिक भी खड़े नहीं कर सकता। ·········अुस दिन अिंग्लेंड पछतायेगा कि आक्रमणकारियों के दाँत खट्टे करके अुन्हें हटाने के लिअे शस्त्रविद्या में प्रवीण करोड़ों हिन्दुस्तानियों के बदले अब अुसके पास आक्रमणकारी का सामना करने के लिअे मुट्ठीभर गोरे सिपाही ही हैं।

कलकत्ता कॉंग्रेस
२९:१२:१८८६

—राजा रामपालसिंह

शिक्षण में ज्ञानदृष्टि

[विनोबा]

(ता० १४:२:'४२ को तुमसर की तिलक राष्ट्रीय शाला के विद्यार्थियों और गाँव के तरुणों की सभा में दिया हुआ प्रवचन)

मेरे मित्रो,

कल के भाषण में मैंने सर्वजनों के लिये जो कुछ मुझे कहना था, सो कहा। आज मेरे सामने विशेषकर स्कूल के लड़के और शिक्षक हैं। अुन्हीं के लिये कुछ कहूँगा।....................

मेरी दृष्टि से हमारे शिक्षण में सबसे बड़ी जरूरत अगर किसी चीज की है, तो विज्ञान की। हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश भले ही कहलाता हो, तो भी अुसका अुद्धार सिर्फ खेती के भरोसे नहीं होगा। यूरोपीय राष्ट्र अुद्योग-प्रधान कहलाते हैं। हिन्दुस्तान में खेती ही प्रधान व्यवसाय होते हुअे भी यहाँ फी-आदमी सवा अेकर जमीन है। अिसके विपरीत फ्रांस में, जो अेक अुद्योग-प्रधान देश कहलाता है, प्रति-मनुष्य साढ़े तीन अेकर जमीन है। अिसपर से मालूम होगा कि हिंदुस्तान की हालत कितनी बुरी है। अिसका मतलब यह है कि हिन्दुस्तान में अकेली खेती ही होती है; और कुछ नहीं होता। अमेरिका (संयुक्त राज्य) संसार का सबसे सधन देश है। अुसमें खेती और अुद्योग दोनों बहुत बड़े परिमाण में चलते हैं। वह युद्ध के लिये रोज पचपन करोड़ रुपये खर्च कर रहा है। हमारे देश की जनसंख्या चालीस करोड़ है। अितने लोगों को हर रोज भोजन देने के लिअे, यहाँ के हिसाब से, प्रति दिन पाँच करोड़ रुपया खर्च लगेगा। अमेरिका अितना धनवान देश है कि वह रोज जितना खर्च करता है, अुसमें हिंदुस्तान को ग्यारह दिन भोजन दिया जा सकता है। हिन्दुस्तान की फी आदमी सालाना आमदनी खेती से पचास-साठ रुपये और अुद्योग से बारा रुपये है। अिसीलिअे हिन्दुस्तान को कृषिप्रधान कहना पड़ता है। अब जरा अिंग्लैंड की तरफ नजर डालिये। वहाँ भी खेती की आमदनी यहाँ की ही तरह फी-आदमी पचास-साठ रुपये सालाना होती है, और अुद्योग की होती है पाँचसौ बारा रुपये। अिसपर से आपको पता चलेगा कि हमारा देश कहाँ है। यह हालत बदल देने के लिअे हमारे यहाँ के विद्यार्थी, शिक्षक और जनता, सभी को अुद्योग में निपुण बन जाना चाहिअे। अुसके लिअे अुन्हें विज्ञान सीखना चाहिअे।

(अ) हमारा रसोअीघर हमारी प्रयोगशाला होनी चाहिअे। वहाँ जो आदमी काम करता हो, अुसे किस खाद्य पदार्थ में कितना अुष्णांक, कितना ओज, कितना स्नेह है, आदि सारी बातों की जानकारी होनी चाहिअे। अुसमें यह हिसाब करने की सामर्थ्य होनी चाहिअे कि किस अुम्र के मनुष्य को, किस कामके लिअे कैसे आहार की जरूरत होगी।

(आ) शौच को तो सभी जाते हैं। लेकिन स्कूलवालों का काम अितने से नहीं चलेगा। "मैले का क्या अुपयोग होता है? सूर्य की किरणों का अुसपर क्या असर होता है? मैला अगर खुला पड़ा रहे तो अुससे क्या नुकसान है? कौनसी बीमारियाँ पैदा होती हैं? जमीन को अगर अुसका

खाद दिया जाय, तो अुस की अुर्वरता कितनी बढ़ती है ?"—आदि सारी बातों का शास्त्रीय ज्ञान हमें हासिल करना चाहिये।

(अि) कोअी लड़का बीमार हो जाता है। वह क्यों बीमार हुआ ? बीमारी मुफ्त में थोड़े ही आयी है ? तुमने अुसे गिरह से कुछ खर्च करके बुलाया है। अतिथि की तरह अुसका खयाल रखना चाहिये। वह क्यों आयी, कैसे आयी, आदि पूछना चाहिये। अुसकी अुपयुक्त पूजा और अुपचार कैसे किया जाय, यह सीखना चाहिये। जब वह आ ही गयी है, तब अुससे सारा ज्ञान ग्रहण कर लेना चाहिये। अिसमें शिक्षण की बात है। 'वह ज्ञानदाता रोग आया और गया; हम कोरे के कोरे रह गये !' यह दूसरों के साथ भले ही होता हो; हमारे साथ हरगिज नहीं होना चाहिये।

(अी) तुम यहाँ सूत कातते हो, खादी भी बना लेते हो। तुम्हें बधाअी है। लेकिन खादी-क्रिया के बारे में शास्त्रीय प्रश्नों के जवाब यदि तुम न दे सके, तो पाठशाला और अुत्पत्ति केन्द्र याने कारखाने में फर्क ही क्या रहा ? लेकिन मैं तो अपने कारखाने से भी अिस ज्ञान की आशा रखूंगा।

मुझसे कहा गया है कि यहाँ के लड़के अंग्रेजी वगैरा की परीक्षा में पास होते हैं, दूसरे विद्यालयों के लड़कों से किसी तरह कम नहीं हैं, आदि आदि। लेकिन लड़के पास होते हैं अिसमें कौन-सी बड़ी बात है ? हमारे लड़के नालायक थोड़े ही है ? जरा विलायत के लड़कों को अितिहास और भूगोल मराठी में सिखा कर देखिये तो ? देखें कितने पास होते हैं। कअी साल पहले बड़ौदे में अेक साहब आया था। अुसने गीता का पूरे बीस वर्ष तक अध्ययन किया था। यों अुसने अच्छा भाषण दिया। परन्तु वह संस्कृत के वचनों के अुच्चारण ठीक नहीं कर सका। अुसने कहा :

'कुरु कम्मैव टस्माट् ट्वम्'

(कुरु कर्मेव तस्मात् त्वम्)

बीस बीस साल अध्ययन करने पर भी अुनका यह हाल है। हमारे यहाँ सैकड़ों आदमी अुनकी भाषा में खूब बोल लेते हैं। लेकिन यह हमारी अिस भूमि का ही गुण है। हजारों वर्षों से यहाँ विद्या की अुपासना होती आयी है। यह कोअी यहाँ के पाठकों का गुण नहीं है। अिसलिअे हमें अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से सन्तोष नहीं मानना चाहिये। हमें आरोग्यशास्त्र, रसायनशास्त्र, पदार्थ-विज्ञान, यंत्रशास्त्र आदि शास्त्र सीखने चाहिये। शास्त्रों और विज्ञानों की अिस तालिका को देख कर आप घबराअिये नहीं। आप अुन्हें अुद्योग के साथ बड़ी आसानी से सीख सकेंगे।

दो विद्याअें सीखना आवश्यक है: अेक हमारे आसपास की चीजों को परखने की शक्ति; अर्थात् विज्ञान। और, दूसरी, आत्मज्ञानपूर्वक संयम करने की शक्ति; अर्थात् अध्यात्म। अिसके लिअे बीचमें निमित्तमात्र भाषा की जरूरत होती है। अुसका अुतना ही ज्ञान आवश्यक है। भाषा चिट्ठीरसा का काम करती है। अगर मैं चिट्ठी में कुछ भी न लिखूं, तो वह कोरा कागज भी चिट्ठीरसा पहुँचा देगा। भाषा विद्या का वाहन है। यह भी कोअी कम कीमती बात नहीं है। विज्ञान और अध्यात्म ही विद्या है। अुसीका मैं विचार करूंगा। मेरा चरखा अगर टूट गया, तो क्या मैं रोता बैठूंगा ? मैं बढ़अी के पास जा कर अुसे सुधरवा लूंगा। अुसी तरह, अगर मुझे बिच्छू ने काट खाया, तो मुझे रोते नहीं बैठना चाहिये। अुसका अुपचार कर के छुट्टी पानी चाहिये। अिस प्रकार आत्मा की अलिप्तता का ज्ञान होना चाहिये। अुसकी मुझे आदत हो जानी चाहिये।

यही मेरी शाला की परीक्षा होगी। मैं भाषा का पर्चा निकालने की झंझट में नहीं पड़ूंगा। लड़कों की बोलचाल से ही मैं अुनका भाषा-ज्ञान भाँप जाअूंगा।

विद्यार्थी भोजन करते हैं और दूसरे लोग भी भोजन करते हैं। लेकिन दोनों के भोजन करने में फर्क है। विद्यार्थियों का भोजन ज्ञान-मय होना चाहिअे। जब विद्यार्थी अनाज पीसेगा और छानेगा, तो वह देखेगा कि अुसमें से कितना भूसा निकलता है। मान लीजिये कि सेर में आठ तोले भूसा निकला। याने दस-प्रतिशत भूसा निकला। यह बहुत ज्यादा हुआ। दूसरे दिन वह पड़ोसी के यहाँ जा कर वहाँ का भूसा तोलेगा। वह देखता है कि अुसके आटे में से ढाअी तोले ही भूसा निकला है। दस-प्रतिशत भूसा निकलने में क्या हर्ज है? अुतना भूसा अगर पेट मे जाय, तो नुकसान क्यों होगा?—आदि प्रश्न अुसके मन में अुठने चाहिअे और अुनके अुचित अुत्तर भी अुसे मिलने चाहिअे। जब अैसा होगा, तो, जैसा कि गीता में कहा है, अुसका हर अेक काम ज्ञान-साधन होगा। अगर बुखार आया, तो वह ज्ञान दे जायगा। वह भी प्रयोग ही होगा। फिर अुस तरह का बुखार नहीं अुायगा। जहाँ हर अेक काम अिस तरह ज्ञान-दृष्टि से, किया जाता है, वह पाठशाला है और जहाँ वही काम कर्म-दृष्टि से होता है वह कारखाना है।

अिस प्रकार प्रयोगबुद्धि से, ज्ञानदृष्टि से, प्रत्येक काम करने में थोड़ा खर्च तो होगा। लेकिन अुससे अुतनी कमाअी भी होगी। स्कूल में जो चरखा होगा वह बढ़िया ही होगा। चाहे जैसे चरखे से काम नहीं चलेगा। स्कूल में काम चाहे थोड़ा कम भले ही हो, लेकिन जो कुछ काम होगा, वह आदर्श होगा। कपास तौल कर ली जायगी। अुसमें से जितने बिनौले निकलेंगे, वे भी तौल लिये जायेंगे। रोजिया में से जब अितने बिनौले निकले, तब व्हेरम में से अितने क्यों, अिस तरह का सवाल पूछा जायगा। और अुसका जवाब भी दिया जायगा। बिनौला मटर के आकार का हो कर भी दोनों के वजन में अितना फर्क क्यों? बिनौले मे तेल होता है, अिसलिअे वह हलका होता है। फिर यह देखा जायगा कि अिसी तरह के दूसरे धान्य कौन-से है। अिसके लिअे तराजू की जरूरत होगी। वह बाजार से नहीं खरीदा जायगा। स्कूल में ही बनाया जायगा। जब हम यह सब करने का विचार करेंगे, तभी से विज्ञान शुरू हो जायगा। हरअेक काम अगर अिस ढंग से किया जाय, तो वह कितना मनोरंजक होगा? फिर अुसे कौन भूलेगा? अकबर किस सन् में मरा, यह रटने की क्या जरूरत है? वह तो मर गया, लेकिन हमारी छाती पर क्यों सवार हुआ? मैं अितिहास रटने को पैदा नहीं हुआ हूँ। मैं तो अितिहास बनाने के लिअे पैदा हुआ हूँ।

शिक्षक की दृष्टि से हरअेक चीज ज्ञान देनेवाली है। अुदाहरण के लिअे, मैले की ही बात ले लीजिये। वह बहुत बड़ा शिक्षण देता है। मैंने तो अुसके बारे में अेक श्लोक ही बना डाला है: "प्रभाते मलदर्शनम्" ("सबेरे मैले का दर्शन करो")। सबेरे अुसके दर्शन से मनुष्य को अपने स्वास्थ्य की स्थिति का पता चलता है। मैले में अगर मूंगफली के टुकड़े हों, तो वे पेट पर पिछले दिन किये हुअे अत्याचार तथा अपचन का ज्ञान और भान करायेंगे। अुसके अनुसार हम अपने आहार-विहार में फर्क कर लेंगे। आप चाहे कितनी ही सावधानी और सफाअी से रहिये, आखिर मैला तो गन्दा ही रहेगा। सबेरे अुसके अवलोकन से देहासक्ति कम होगी और

वैराग्य पैदा होगा। माँ जाड़ों में जिस तरह बच्चे को कपड़े से ढँकती है, अुसका कोअी भी अंग खुला नहीं रहने देती, अुसी तरह हम भी बड़ी सावधानी से सूखी मिट्टी से अगर मैले को ढँक दें और यथासमय अुसे खेत में फैला दें, तो वही मैला हमारी लक्ष्मी को बढ़ायेगा।

अिसी तरह से पाठशाला में प्रत्येक काम ज्ञानदायी और व्यवस्थित होगा। लड़का बैठेगा, तो सीधा बैठेगा। अगर मकान का मुख्य खंभा ही झुक जाय, तो क्या वह मकान खड़ा रह सकेगा? नहीं। अुसी तरह हमें भी अपने मेरु-दण्ड को हमेशा सीधा रखना चाहिअे। पाठशाला में यदि अिस प्रकार से काम होगा, तो देखते देखते राष्ट्र की कायापलट हो जायगी। अुसका दुःख-दैन्य गायब हो जायगा, सर्वत्र ज्ञान की प्रभा फैलेगी।

स्कूल में होनेवाला प्रत्येक काम ज्ञान का साधन बन जाना चाहिअे। अिसके लिअे स्कूलों को सजाना होगा। अच्छे अच्छे साधन जुटाने होंगे। श्री रामदासस्वामी ने कहा है, 'देवता का वैभव बढ़ाओ'। लोगों को अपने घर सजाने के बदले शालाअें सजाने का शौक होना चाहिअे। अुन्हें शाला को आवश्यक चीजें अुपलब्ध करा देनी चाहिअें। लेकिन अितना ही बस नहीं है। अेकाध दान ेर मिल जाता है और कहता है, 'मैंने अिस शाला को अितनी सहायता दी'। लेकिन अपने लड़कों को किस स्कूल में भेजता है?— सरकारी स्कूल में। सो क्यों? अगर आप राष्ट्रीय पाठशालाओं को दान के योग्य मानते हैं, तो अुन्हें सब तरह से सम्पन्न और सुशोभित करके अपने लड़कों को वहीं क्यों नहीं भेजते?

लड़के राष्ट्र का धन हैं। लेकिन अुनके भोजन में न दूध है, न घी! फी लड़के का मासिक भोजनखर्च ढाअी रुपये है! अिसे क्या कहा जाय? हम सारे राष्ट्र की अवस्था को भूल नहीं सकते, यह तो माना। लेकिन फिर भी जितना कम-से-कम जरूरी है, अुतना तो मिलना ही चाहिअे। पिछले दिनों यह शिकायत थी कि जेल में कैदियों को अुचित खुराक नहीं मिलती, दूध नहीं मिलता। गांधीजी की सूचना से बाहर के डॉक्टरों ने यह तय किया कि निरामिषभोजी व्यक्ति के लिअे कम-से-कम कितने दूध की जरूरत है। अुनके निर्णय के अनुसार हरअेक व्यक्ति को कम-से-कम तीस तोले दूध मिलना चाहिअे। और सरकार अगर कैदियों को रखती है, तो अुमे अुनकी कम-से-कम आवश्यकता पूरी करनी ही चाहिअे। लेकिन अगर हम अपने विद्यालयों में ही अिस नियम पर अमल नहीं करते, तो सरकार से आशा करना कहाँ तक शोभा देगा? लड़कों को दूध मिलना ही चाहिअे। अुन्हें अच्छा अन्न मिलना ही चाहिअे। वरना अुनमें तेज नहीं पैदा होगा।

मैंने कुछ बातें शिक्षकों के लिअे, कुछ छात्रों के लिअे और कुछ औरों के लिअे कही हैं। ये सब मेरे अनुभव की बातें हैं। आशा है कि अुनका अुचित अुपयोग होगा।

('ग्राम सेवा-वृत्त' से अनूदित)

लिपियों का सवाल

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अेक परिवार में चार-पाँच छोटे बच्चे थे, जिनकी माँ मर गयी थी और जिनको अुनकी बड़ी भोजाओी संभालती थी। बड़े भाओी बच्चों का बहुत ही दुलार करते थे। असलिअे भाभी पर अुनका बहुत जोर चलता था। खाने के वक्त हर बच्चे की माँग अलग अलग होती थी। अेक को रोज अरहर की गाढ़ी दाल चाहिअे थी। दूसरे को अुसके पतले पानी में ही मजा आता था। तीसरी रोज कढ़ी ही माँगती और मूंग की दाल के बिना खाना चौथी के गले के नीचे ही नहीं अुतरता था। सागभाजी के बारे में भी अैसी ही जुदी जुदी रुचियाँ थीं। किसीको भी नाखुश तो किया ही नहीं जा सकता था। जिसकी मर्जी के मुताबिक कोओी बात न होती, वह अगर शैतान हो, तो झगड़ा करता और सीधा हो, तो रोने लगता। और फिर स्कूल और ऑफिस का समय तो सम्हालना जरूरी ही था। खर्च अधिक न होने पाये असकी फिक्र भी रखनी पड़ती थी। रसोओी बनानेवाली अकेली भाभी ही थी। वह हरअेक के लिअे अलग अलग कितना बनाती और कब?

सुनसीब से अैसे हठ के पीछे बुद्धि की कुछ कमी होती ही है। हठ करनेवाले बच्चों की नामों से जितनी पहचान होती है, अुतनी चीजों से नहीं होती। असलिअे भाभी ने बड़े भैया की मदद से कुछ अैसी युक्तियाँ खोज निकाली थीं, जिनकी बदौलत वह अरहर, मूंग, कढ़ी आदि में से अपनी सुविधा के अनुसार कोओी भी अेक ही चीज पका कर हरअेक बच्चे को अुसकी मन-चाही चीज बनी-बनायी देती थी। असमें क्या करामात थी, असका वर्णन करने की जरूरत नहीं है। लेकिन यह अेक सच्चा किस्सा है और जबतक वे बच्चे समझने न लगे, तब तक यह युक्ति बराबर काम देती रही।

हमारे देश में लिपियों का सवाल भी कुछ कुछ अिन नादान बच्चों की रुचियों के जैसा है। हर-अेक प्रान्त को अपनी ही लिपि भाती है। और वहाँ भी जो मुसलमान हैं, अुन्हें तो अुर्दू ही चाहिअे। अेक प्रान्त का आदमी दूसरे प्रान्त में जा कर बसने पर भी अपनी भाषा और लिपि को बदन की चमड़ी की तरह साथ ले जाता है। राष्ट्रभाषा के विषय में हिन्दू नागरी की तरफ खींचते हैं और मुसलमान अुर्दू की तरफ और आन्तरराष्ट्रीय वृत्तिवाले रोमन की ओर। अुर्दू में भी सिंधी का चौका अलग है और दूसरों की खिचड़ी अलग पकती है। नागरी लिपि में भी हिन्दी प्रान्तों को अक्षरों के अेक तरह के आकार पसन्द हैं और महाराष्ट्र को दूसरी तरह के। हाथ की लिखावट में भी युक्त प्रान्त, बिहार, पंजाब, सबका अपना अपना अेक खास तरीका बन गया है। और गुजरात, द्रविड़, बंगाल, अुड़ीसा वगैरा नौसिखिये प्रान्तों में लिखने के नये नये ढंग पैदा होते जा रहे हैं। अिस कारण हस्ता-क्षर से ही लेखक के प्रान्त का पता चल जाता है। हरअेक के अपनी प्रान्तीय लिपि लिखने के ढंग का असर अुसके नागरी अक्षरों पर भी होता है। असके अलावा, शिरोरेखा रखने और हटानेवाले, स्वतंत्र स्वर तथा युक्ताक्षरों के हिमायती, 'अ की बारहखड़ी' तथा अस्वतंत्र युक्ताक्षर के पक्षपाती, आदि आदि सम्प्रदाय भी हैं। अूपर के किस्से में तो भाभी को सिर्फ चार-पाँच ना-समझ देवर-ननंदों को ही समझाना

था। मगर हमारी राष्ट्रलक्ष्मी को तो करीब पच्चीस प्रान्तों और जातियों की रुचि-अरुचि में मेल कायम करना है। अबतक कोअी राष्ट्रपति अैसा रास्ता नहीं दिखा सका जिससे सभी को सन्तोष हो।

जिस आशा से भाअी और भाभी ने सभी बच्चों का हठ पूरा किया, अुसी आशा से जब हम भी काम लेंगे, तभी अेक दिन अिस सवाल का सन्तोषजनक हल हाथ आयेगा। अुस आशा का आधार यह है कि हकीकत में अिन सब पसन्दगी-नापसंदगियों और जिद के मूल में अबुद्धि ही है। समय के साथ वह अबुद्धि भी जाने ही वाली है। तब सभी लोग समझने लगेंगे और जिस बात में सत्य तथा सबकी भलाअी होगी, अुसके बारे में सब अेकही-सा बर्ताव करने लग जायेंगे। सब झगड़ों की जड़ में भिन्न भिन्न नामों का जितना ज्ञान है, अुतनी अुन पदार्थों की परख नहीं है। अिसलिअे आज ही सबको अेक राय पर लाने की जल्दी नहीं करनी चाहिअे, बल्कि किस चीज का सत्य और हितकर होना मुमकिन है अिसका शोध कर, अुसीके द्वारा हरअेक को सन्तोष देने की कोशिश करनी चाहिअे।

लिपियों को हमने रुचि-अरुचि का याने धर्म, देश, प्रान्त, जाति वगैरा के अभिमान और मुहावरे के कारण बनी हुअी सुन्दरता-असुन्दरता की दृष्टि का, विषय बना लिया है। यह बाल-बुद्धि है। जब हममें समझ आजायेगी, तब हम लिपि की ओर अेक ही दृष्टि से देखेंगे। याने लिखने-पढ़ने को सहूलियत की दृष्टि से। हमारी दृष्टि का विकास होने पर हम अक्षरों के चन्द सर्वसामान्य रूपों की आवश्यकता भी महसूस करने लगेंगे। हमें यह आशा रखनी चाहिअे कि यदि भविष्य में हमारा अुदय होनेवाला है, तो यह परिणाम भी अवश्य होने ही वाला है।

तो, फिर, हमारा काम किसी अेक ही लिपि से नहीं चलेगा। नागरी, अुर्दू और रोमन, अिन तीनों लिपियों को अुचित स्थान देना होगा। हरअेक की सुखसुविधा अिसीमें है। तीनों लिपियों में अुनके खास गुण और दोष हैं। तीनों की अनिवार्य जरूरत भी है। अुन लिपियों के प्रयोग के अनिवार्य प्रसंगों की अथवा अुनसे सम्बन्ध रखनेवाली जनता की संख्या कम-ज्यादा भले ही हो, लेकिन यह मानना ही होगा कि किन्हीं खास खास प्रसंगों में अिनमें से कोअी अेक ही लिपि सबसे अधिक सुविधाजनक होती है। जिस तरह रोज रोज अेक ही-सी खुराक खाने से पाचन के विकार होते हैं, अुसी तरह जिस भाषा और जिस मौके के लिअे जो लिपि सबसे ज्यादा अनुकूल हो, अुसे छोड़ कर दूसरी लिपि का अुपयोग करने से अुच्चारों में विकार हुअे बिना नहीं रहते। अुच्चारण के विकार से भाषा बिगड़ती है अथवा नयी भाषा बन जाती है। फिर भी, कभी कभी हरअेक भाषा को किसी परायी लिपि में लिखने की जरूरत पड़ती ही है। अैसे मौके पर स्वलिपि का ही आग्रह नहीं रखना चाहिअे। लिपि के लिअे भाषा बदलने की अपेक्षा भाषा कायम रख कर लिपि को बदलने या छोड़ने में ज्यादा समझदारी है। अैसे समय अपनी अपनी भाषा की खास खास जरूरतों का विचार कर तीनों लिपियों में अुचित चिन्ह बढ़ा-कर अुनसे काम लेने में व्यवहार-बुद्धि है।

अपनी भाषा की तरह अपनी लिपि के लिअे भी रुचि होना प्रकृति याने कुदरती स्वभाव है। अुस प्रकृति पर शर्म न होने को ही यदि अुसका अभिमान कहा जाय, तो वह अभिमान ठीक है और अुसकी अुतनी ही मर्यादा होनी चाहिअे। स्वभाषा या लिपि के लिअे अरुचि और परभाषा या लिपि के लिअे रुचि विकृति

है। यह विकृति स्वयं हमारे द्वारा पैदा की गयी हो या हमें मिली हुअी तालीम से पैदा हुअी हो और अिसीलिअे अब अुसे निबाहना पड़ रहा हो, आगे चल कर वह विकृति ही हमारे लिअे प्रकृति बन जाती है।

सुननेवाले और पढ़नेवाले की भाषा और लिपि का लिहाज करके वह हमारी बात ठीक ठीक समझ सके अैसे ढंग से भाषा और लिपि का प्रयोग करने की कोशिश करने में अहिंसा है और संस्कृति है। अिसके बदले अुनपर अपनी ही भाषा और लिपि लादने में दुरभिमान है अर्थात् विकृति और असभ्यता है। जो असभ्य नहीं बनना चाहता, अुसे पढ़नेवाले और सुननेवाले का खयाल रख कर अपनी भाषा और लिपि के अिस्तेमाल में भरसक फेरफार करते रहना चाहिअे।

बालबुद्धि के ही कारण प्रान्तीय लिपियों के त्याग की गुंजाअिश नहीं है। अगर कोअी तानाशाह जबरदस्ती वैसा कराने का प्रयत्न करेगा, तो अुन बच्चों की तरह जोरावर प्रान्त टंटा करेंगे और निर्बल रोने लगेंगे। ज्यों ज्यों अक्षर-ज्ञान बढ़ता जायगा, त्यों त्यों अुन लिपियों के जाननेवाले भी बढ़ेंगे। मुमकिन है कि अिस तरह प्रान्तीय लिपियों का कभी त्याग न हो। लेकिन यदि हरअेक सुशिक्षित व्यक्ति को नागरी, अुर्दू और रोमन, तीनों लिपियों का ज्ञान कराया जाता हो, तो प्रान्तीय भाषाओं के कुछ ग्रंथ तो अिन लिपियों में भी छपेंगे। शायद अिसका यह नतीजा हो कि धीरे धीरे प्रान्तीय लिपियाँ त्याग दी जायँ। लेकिन जबतक अैसा नहीं होता, तबतक पढ़नेवालों के लिअे अेक हद के बाद प्रान्तीय लिपि के अलावा नागरी, अुर्दू और रोमन लिपियाँ जानना भी वाञ्छनीय है। यह बोझ कुछ अधिक है, यह स्वीकार करने पर भी अुसे अुठाना ही होगा। व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति तीनों का स्वयं बार बार अुपयोग नहीं करेगा। कोअी कोअी तो अेक ही का करेंगे और बहुत-से अिनमें से दो का। लेकिन आज तो यही मान कर चलना चाहिअे कि तीनों का स्थान रहेगा।

प्रान्तीय लिपि तो हर अेक शख्स जानता ही होगा। यह कहा जा सकता है कि रोमन लिपि की जरूरत सबसे कम है और यहाँ से ब्रिटिश राज हट जाने पर और भी कम हो जायगी। अिस लिपि की अपूर्णता के बारे में भी बहुत-कुछ कहा जा चुका है। फिर, हमारी राजनैतिक पराधीनता के कारण हमें जो दुःख होता है, अुसकी वजह से हममें अेक हीन-ग्रह (अिनफीरिऑरिटी काम्प्लेक्स) पैदा हो गया है। अुसके असर के कारण अपनी लिपियों को महत्त्व देने के लिअे हममें अपने लिपि के लिअे अुत्साह बताने की वृत्ति अिस हद तक होती है कि जिससे रोमन लिपि के प्रति द्वेष मालूम हो। लेकिन अिन सब बातों के होते हुअे भी, रोमन लिपि में कुछ अैसे अन्तर्गत गुण और सुविधाअें हैं जिन के कारण अुसे सीख लेने में सीखनेवाले को ज्यादह दिलचस्पी होती है। यह अनुभव-सिद्ध बात है। दक्षिण भारत में पुराने प्रान्तीय अंकों की जगह अंग्रेजी अंकों का अुपयोग करने की रूढ़ि सर्वमान्य हो गयी है। और जहाँ नाम के आदि हरफ ही लिखने हों, वहाँ प्रान्तीय लिपि के साथ ही अंग्रेजी मूलाक्षर लिखने का रिवाज चल पड़ा है। अिसके अलावा, चाहे मुट्ठीभर ही क्यों न हों, हमारे देश में अधगोरे, फिरंगी और कुछ देशी अीसाअी आदि का अेक अैसा छोटा-सा वर्ग बन चुका है जिनकी स्वभाषाअें रोमन लिपि में ही लिखी जाती हैं। अिसलिअे यह मान कर ही चलना चाहिअे कि हमारे देश में अिस लिपि का भी स्थान अवश्य है।

बनारस हिन्दू युनिव्हर्सिटी के रजतोत्सव के समय वहाँ के प्रवेशद्वार पर रोमन लिपि में लिखे हुअे नामों की गांधीजी ने जो आलोचना की अुसके परिणामस्वरूप नागरी लिपि के कुछ हिमायतियों के अिस आशय के खत आये कि 'हरिजन सेवक' आदि अखबारों पर ग्राहकों के पते अिस वक्त रोमन लिपि में लिखे जाते हैं, अुसके बदले नागरी में लिखने की आज्ञा गांधीजी को जारी करनी चाहिअे। मेरी राय में अैसा करना अनुचित होगा। अेक तो यह सवाल होगा कि नागरी ही में क्यों; अुर्दू में क्यों नहीं? नतीजा यह होगा कि सभी पते दोनों लिपियों में लिखने की नौबत आयेगी। अिसके अलावा, विदेश के ग्राहकों के लिअे रोमन लिपि रखनी ही होगी। अगर यह कहा जाय कि पत्र जिस लिपि में निकलता हो अुसी लिपि में ग्राहकों का पता लिखा जाय, तो अूपर की अड़चन नहीं आयगी। लेकिन तो भी परप्रान्त या परदेश को जानेवाली प्रतियों पर पते लिखने में कठिनाअी होगी। मेरी समझ म तो सही नीति यह होगी कि जिसके लिअे पता पढ़ना अनिवार्य है अुसकी सुविधा पहले देखी जाय। अगर हम अपने विचार अिस खूंट पर स्थिर कर लेंगे, तो हमें निर्णय करने में कोअी मुश्किल नहीं होगी। अिस दृष्टि से पत्र जहाँ भेजना है अुस स्थान की प्रान्तीय लिपि में पता लिखने से वहाँ के डाकिये को सब से ज्यादा सहूलियत होगी। अिसलिअे अगर हम अुस प्रान्त की लिपि में लिख सकें तो व्यक्ति का नाम अुस लिपि में लिखना सब से बेहतर होगा। गाँव का नाम दो डाकियों को अवश्य पढ़ना पड़ता है। जहाँ से चिट्ठी रवाना हुअी हो वहाँ के और जिस मुकाम पर अुसे पहुँचना हो वहाँ के। जब अिन दोनों स्थानों की लिपियाँ न्यारी न्यारी हों, तब जिस सामान्य लिपि का दोनों को अधिक मुहावर होना मुमकिन हो अुसका अुपयोग करना चाहिअे। अिसमें पता लिखनेवाले हरअेक व्यक्ति को अेक साथ अनेक लिपियों का अुपयोग करना पड़ने की सम्भावना होती है। परंतु हरअेक मनुष्य सभी लिपियाँ अेक-से सुवाच्य (सुपाठ्य) अक्षरों में तथा आसानी से नहीं लिख सकता। अिसलिअे समाचारपत्र के जैसे बड़े पत्र-व्यवहार में किसी सामान्य लिपि का ही आश्रय करना होगा। अिस दृष्टि से आज की परिस्थिति में प्रान्तीय लिपियों के अलावा रोमन लिपि में पते लिखने में अधिक-से अधिक सभ्यता और अहिंसा है। जब अैसा समय आयगा कि डाकियों को नागरी या अुर्दू के मुकाबिले में रोमन लिपि का अभ्यास बहुत कम होगा, तब अिस रूढि में अपने आप फर्क हो जायगा।

लिपि का बहुत अधिक मात्रा में अभिमान हमें पाठक की सहूलियत की तरफ से कैसे लापर्वाह बना देता है, अिसका सबूत कुछ महाराष्ट्री लेखकों से कभी कभी मिल जाता है। सारा पत्र सुन्दर बालबोध (देवनागरी) में लिखा हुआ होता है। लेकिन नीचे दस्तखत मोड़ी लिपि में होते हैं। पत्र में अगर किसी दूसरी जगह से लेखक के नाम का पता चले, तो ज्यादा मुश्किल नहीं होती। लेकिन अगर वैसा न हुआ तो पाठक परेशान हो जाता है। यह आदत सदोष ही समझनी चाहिअे। ये ही भाअी जब किसीको अंगरेजी में पत्र लिखते हैं, तो हस्ताक्षर बराबर रोमन लिपि में करते हैं। तो फिर नागरी में लिखे हुअे पत्र के नीचे नागरी में ही हस्ताक्षर क्यों न किये जायँ? कम-से-कम अितना तो करना ही चाहिअे कि जिस तरह दुष्पाठ्य दस्तखत करनेवाले विवेकी मनुष्य नीचे सुपाठ्य अक्षरों में फिर से अपना नाम लिख देते हैं, अुसी तरह ये लोग भी मोड़ी सही के नीचे देवनागरी में फिर अपना नाम लिख दें। लेकिन बात यह है कि मोड़ी का प्रचार कम हो जाने के कारण अुनके अभिमान को जो ठेस लगी है, अुसमें से अेक जिद पैदा हो गयी है और वह अिस रूप में प्रकट होती है।

मोड़ी को बलपूर्वक जिन्दा रखने की कोशिश के पीछे जो 'हीनग्रह' है वही रोमन लिपि का हठपूर्वक त्याग कराने अथवा नागरी या अुर्दू में से किसी अेक ही को आगे बढ़ाने के प्रयत्न की जड़ में है। मेरा दिल अिन सब संकीर्णताओं से प्रसन्न नहीं होता।

३।४।'४२

राजपूतकाल का साक्षात्कार

[काका कालेलकर]

यह कहते कहते कि 'मैं साहित्यिक नहीं हूँ' जिस तरह मैं अनेक किताबें लिख गया, अुसी तरह 'कविता मेरा क्षेत्र नहीं है' अैसा जोर दे दे कर कहने पर भी, कुछ काव्यग्रंथों की प्रस्तावनाअें मुझे लिखनी पड़ीं। नाटकों से खासकरके बच जाना था, मगर प्रारंभ में ही 'अचलायतन' के अनुवाद पर लिख कर मैंने यह संकल्प ढीला कर दिया था। आज जब कि हिन्दी का अेक लोकप्रिय नाटक, 'रक्षाबंधन', गुजराती पहनावे में जनता के आगे रखा जा रहा है, अुस वक्त मुझे अिसका 'प्रवेशक' (दीबाचा) लिखना पड़ रहा है। अैसे निमित्तों की बदौलत मुझसे कुछ थोड़ा-सा किन्तु अच्छा साहित्य कभी कभी पढ़ा जाता है। अिसलिअे मैं अिस परिस्थिति का कृतज्ञ ही हूँ।

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'रक्षाबन्धन' हिन्दी साहित्य में कौनसा स्थान रखता है, यह मैं स्वयं कहूँ अिससे यह अधिक अुचित होगा कि हिन्दी साहित्य के अेक अितिहासकार स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के ही शब्द यहाँ अुद्धृत करूँ। कहा जाता है कि हिन्दी में नाट्यसाहित्य बहुत कम है और अुसमें भी जो अुच्च कोटि की समझी जा सकें अैसी रचनाअें तो बिलकुल ही कम हैं। अुनमें स्व० श्री जयशंकर प्रसाद और श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' अिन दो लेखकों की रचनाअें ही विशेष सराही जाती हैं।

प्रस्तुत नाटक, 'रक्षा-बन्धन', प्रेमीजी की अुत्कृष्ट और सफल कृति मानी गयी है। प्रेमीजी ने हिन्दू-मुस्लिम-अैक्य के प्रश्न को लेकर छह-सात नाटक लिखे हैं। अुनमें 'रक्षाबन्धन' को प्रथम स्थान दिया जाता है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं:-'प्रेमी'जी के 'रक्षाबन्धन' में मेवाड़ की महारानी कर्मवती का हुमायूँ को भाअी कह कर राखी भेजना और हुमायूँ का गुजरात के मुसलमान बादशाह के विरुद्ध अेक हिन्दू राज्य की रक्षा के लिअे पहुँचना, यह कथा-वस्तु ही हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव की शान्ति सूचित करती है। अुसके अूपर, कट्टर सरदारों और मुल्लों की बात का विरोध करता हुआ हुमायूँ जिस अुदार भाव की सुन्दर व्यंजना करता है, वह वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम दुर्भाव की शान्ति का मार्ग दिखाता जान पड़ता है।"

(हिन्दी साहित्य का अितिहास, पृ. ६६५)

नाटक कैसा है, अुसका कलाविधान किस कोटि का है, अैतिहासिक नाटकों के तन्त्र का अुसमें पालन किया गया है या नहीं, आदि बातों का निर्णय गुजराती पाठक अिस भाषान्तर पर से स्वयं ही कर सकेंगे। अत: और अिसलिअे भी कि यह मेरा क्षेत्र नहीं है, मैं अिस विषय को यहाँ नहीं छेड़ता।

जब मैं यह प्रवेशक लिखने का विचार कर रहा था, अुसी वक्त 'नागरी प्रचारिणी सभा' की त्रैमासिक पत्रिका देखने में आयी। अुसमें 'रक्षाबन्धन' पर अेक समीक्षा आयी है। नाटक का योग्य और पर्याप्त बखान करने के बाद समीक्षक लिखता है, 'परन्तु अिस सफल नाटक में अेक बात खटकती है। वह यह है कि लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम अैक्य की भावना को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है, जो अेक तो अितिहास-संमत नहीं, दूसरे रस-दृष्टि से भी नाटक को दोषयुक्त बनाता है।"

मैं अिस आलोचना से सहमत नहीं हूँ।

यह आग्रह ही गलत है कि अैतिहासिक नाटकों और अुपन्यासों को अितिहास की घटनाओं से वफादार रहना ही चाहिअे। सच्चे अितिहास को छंदोबद्ध करनेभर से वह अैतिहासिक काव्य नहीं बनता और न अैतिहासिक सच्ची घटनाओं को कथोपकथन का रूप दे देने से अैतिहासिक नाटक ही बनते हैं। काव्य और नाटक मूलतः कल्पना के विषय हैं। जिस तरह किसी पौराणिक प्रसंग को ले कर काव्य लिखते समय अिस बात से लाभ अुठा कर कि लोग अुन आख्यानों से परिचित हैं, कवि थोड़े शब्दों में अधिक भाव व्यक्त कर सकते हैं और बहुतसी घटनाओं को अध्याहृत रखने की सहूलियत प्राप्त करते हैं, अुसी तरह अैतिहासिक काव्यों या नाटकों में अैतिहासिक व्यक्तियों के बारे में लोग जो कुछ जानते या मानते है, अुनकी अनायास अुपलब्ध नीव का अिस्तेमाल करके कवि अुस पर अपनी प्रतिभा की दीवार खड़ी करता है। अैसे स्थान पर कवि अितिहास से वफादार नहीं रहते; लेकिन लोगों के अितिहास-परिचय से लाभ अुठा कर अितिहास से सेवा लेते हैं। सामर्थ्य के अभाव में कलाकार अगर अैतिहासिक वातावरण न निबाह सके, तो अुतनी हद तक अुसकी कला में त्रुटि रहेगी; हालाँकि वहाँ भी लेखक कुछ-न-कुछ छूट तो लेता ही है। शेक्सपीयर के जहाज स्विट्जरलैंड के किनारे पहुँचें, गांधीजी की गंगाजी मानससरोवर से निकलें, अथवा प्रेमीजी का मध्यकालीन मौजी पृथ्वी के प्रति सूर्य के आकर्षण के विषय में बातें करे, तो ये सारी बातें वस्तुस्थिति की विरोधी होती हुअी भी, वातावरण को नहीं बिगाड़ती। अिसलिअे वे दरगुजर की जाती हैं।

नाटककार भूतकाल को केवल चितेरना नहीं चाहता, बल्कि वह अैसी नाट्यकृति का निर्माण करना चाहता है, जो वर्तमान काल के लिअे अुपयोगी हो और अुसकी आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके। अैसा करने में वह अैतिहासिक घटनाओं से लाभ अुठाता है। अितना ही अुसके लिअे अैतिहासिक घटनाओं का महत्त्व है।

कुछ लोगों को अैसा लगता है कि अिस नाटक में हुमायूँ का पात्र अतिरंजित है, क्योंकि मुसलमान बादशाह अैसे ध्येयवादी और तरंगी थे ही नहीं। वे वैसे थे या नहीं, यह सवाल यहाँ अप्रस्तुत है। अितना ही सवाल हमारे सामने प्रस्तुत है कि हम मुसलमान बादशाहों के विषय में अैसा आदर्श प्रस्थापित करें या न करें। अिस बात की भी हम अवश्य जाँच कर सकते हैं कि अैसा आदर्श मुसलमान कौम के स्वभाव के अनुकूल है या नहीं।

केवल अेक राखी का मान रखने के लिअे हुमायूँ अपनी जान और सल्तनत खतरे में डालने को तैयार हो गया, यह बात अगर वास्तविक दुनिया में सही नहीं मालूम होती है, तो कहना होगा कि अिस बात का कुछ भी विचार किये बिना कि अुसका पक्ष सच्चा है या नहीं, अपने पुश्तैनी शत्रु के भाअी को अपनाना, अुसे बचाने के लिअे दो-तीन पीढ़ियों से क्षीण होते आये अपने राज को खतरे में डालना और अपनी सारी कौम का सत्यानाश करने पर आमादा हो जाना, राजपूतों के लिअे भी सही नहीं मालूम होता।

और फिर भी, जैसा कि नाटककार ने बताया है, यह कहने का कोअी कारण नहीं कि हुमायूँ ने केवल अंधी आर्यता या अिन्सानियत से प्रेरित हो कर ही कदम बढ़ाया था। मैं अगर 'रक्षाबंधन' लिखने बैठता तो हुमायूँ के निश्चय को फेरने के प्रयत्न में हारे हुअे अुसके दोनों सरदारों को हुमायूँ की बेगम के पास ले जाता

और अुसके मुँह से हुमायूँ की कार्रवाओी की व्यावहारिकता अुन सरदारों पर प्रकट कराता।

हुमायूँ की बेगम तातारखाँ और हिन्दूबेग से कहती, "बादशाह का स्वभाव बचपन से ही भावनाशील है, बाबर से ही अुसे यह विरासत मिली है। लेकिन केवल अुसी कारण यह साबित नहीं होता कि बादशाह की हरकत आत्मघाती है। आप ही देखिये न! यह महत्त्व का सवाल नहीं है कि शेरखाँ की फौजी ताकत कितनी है। अुसको तो परास्त किया जा सकता है। लेकिन हम मुगल लोग अिस देश में नये नये आये हैं; जब कि पठानों के आठ-नौ खान्दान अिस देश में राज कर चुके हैं। पाँच सौ बरस की तारीख की जड़ों का यह शेरखाँ प्रतिनिधि है। अिन जड़-मूलों की वजह से ही शेरखाँ अितना जबर्दस्त है। अुसके खिलाफ अगर अुतनी ही मजबूत ताकत पैदा करनी हो, तो अुन हिन्दुओं के दिलों को जीतना चाहिअे जिनका कि असल में यह देश है। कर्मवती की बात का आदर कर के अगर बादशाह अिस समय रजपूतों की मदद करेगा तो बहादुर और कृतज्ञ रजपूत जाति पूरी तरह अुसकी होगी और फिर मुगल तख्त अितना मजबूत होगा कि दस शेरखाँ अुसके खिलाफ हो जायँ, तो भी हुमायूँ का बाल भी बाँका न हो सकेगा। अैसा मौका व्यक्ति की तो क्या, सारे वंश या साम्राज्य की आयु में दोबारा नहीं आता। महान अवसर पर जो व्यक्ति लोकोत्तर दीर्घदर्शिता और हिम्मत बता सके, और अपने सर्वस्व की बाजी लगाने को तैयार हो, अुसीके भाग्य में चक्रवर्ती या शहनशाह होना बदा होता है। आप जैसे मुरब्बी सेवकों की पक्की होशियारी की अपेक्षा बादशाह की अन्तःप्रेरणा अैसे अवसर पर अधिक सही और हितकर होती है। अिसलिअे यही अुचित है कि आप अुसका अनुसरण करें"।

हुमायूँ का पात्र अतिरंजित है अैसी टीका करनेवाले अिस बात पर जरा भी आश्चर्य नहीं व्यक्त करते कि मेवाड़ का राजा, अुसकी राजमाताअें और अुसके सरदार, चाँदखाँ को आश्रय दिया जाय या नहीं, अिसका विचार ही नहीं करते। मेवाड़ का राज आन्तरिक तथा बाह्य प्रतिकूलताओं के कारण ढीलाढाला हो गया है, अुसमें लड़ने की शक्ति नहीं है, यह सब जानते हुअे भी चाँदखाँ को निकाल बाहर करने की बात ही कोओी नहीं कहता। चाँदखाँ की जान खतरे में है और वह शरण माँगता है अिसके अलावा अुसके पक्ष में कहने जैसा कुछ भी नहीं है। अैसा भी कहीं नहीं बताया गया है कि अुसका सत्पक्ष है अथवा वह कोओी देशहित का कार्य करते हुअे बहादुरशाह के क्रोध का शिकार हो गया था।

बहादुरशाह को बैर भँजाना था, पुराने अप-मान का बदला लेना था, वह मेवाड़ के साथ झगड़ा करने की फिराक में था, अैसी हालत थी। अपने भाओी चाँदखाँ के साथ साजिश करके अूपर अूपर से शत्रुता दिखा कर, बहादुरशाह अुसे मेवाड़ के दरबार में भेज सकता था, और शर-णागत को शरण देने के राजपूतों के स्वभाव से लाभ अुठा सकता था। लेकिन मेवाड़ के राज-पुरुष अैसी शंका तक मन में न लाये!!

पौराणिक हरिश्चन्द्र अपनी प्रजा से पूछे बिना अपना राज विश्वामित्र को अर्पण करता है अिस में वचननिष्ठा चाहे जितनी हो, लेकिन प्रजा-निष्ठा का तो अभाव ही दिखाओी देता है। अिसी तरह जो कोओी शरण आये अुसे आश्रय देने में रजपूतों के क्षात्रधर्म की रक्षा भले ही होती हो, लेकिन राजधर्म की रक्षा होती है या नहीं यह अेक सवाल ही है। परन्तु यह हम न भूलें

कि नाटक तो राजपूतकाल का चित्र अुपस्थित करने के लिअे लिखा गया है; न कि शुद्ध राजधर्म के निरूपण के लिअे।

अेक अैतिहासिक बात लेखक ने अच्छी तरह स्पष्ट की है। पठान और मुगलकाल के मुसलमान राज्यकर्ता धर्म के प्रचार के लिअे नहीं लड़ते थे। अुन्हें तो राज प्राप्त करने और अुसको बढ़ाने की ही फिक्र थी। बीच बीच में जब धर्म की भावना को अुभाड़ कर लाभ अुठा सकते होंगे, तब वैसा करने में वह नहीं चूकते होंगे। लेकिन यह बात गौण थी।

हिंदू भी हिंदुओं का ही पक्ष लेते रहे हों, अैसी बात नहीं है। हर अवसर पर जिस तरह भी ठीक लगे अुस तरह वह संधि और विग्रह करते थे। अुस समय की सारी परिस्थिति स्वार्थ, अीर्षा, मत्सर, जोश तथा अैसे ही अनेक मनोविकारों की बड़ी खिचड़ी थी। और अिसलिअे पुराने अितिहास में से शुद्धि-संगठन या तंजीमतबलीग के सन्देश निकालना ठीक नहीं, यह बात नाटककार ने अच्छी तरह सूचित की है।

* * *

हरेक नाटक में विनोद के अंश होने ही चाहिअे। अुसके लिअे राजा के दरबार में राजा का कोअी दोस्त विदूषक का काम करता है। मूल में विदूषक का काम केवल हँसाने का ही नहीं रहा होगा। परन्तु अपनी गैरजिम्मेदार स्थिति से लाभ अुठा कर हरेक प्रसंग के हास्यास्पद तत्त्व की ओर ध्यान खींचना और दरबारी वायुमंडल में जहाँ सत्य दब जाता हो, वहाँ अुसका मार्ग खुला करना ही अुसका कार्य रहा होगा, वैसा जान पड़ता है। विदूषक राजा की ओट में सुरक्षित था और अिसलिअे वह बेधड़क राजा तथा दूसरे सरदारों वगैरह का मखौल कर सकता था। 'विदूषक'—'विशेषरूप से दूषक', नाम ही बताता है कि सुरक्षित ढंग से किसी की भी खिल्ली अुड़ाना ही अुसका काम है।

जहाँ राजा का कोअी साथी न हो, वहाँ परिस्थिति को ठीक ठीक पहचाननेवाले और भविष्य की भी कुछ झाँकी प्राप्त करने की शक्ति रखनेवाले किसी आध्यात्मिक व्यक्ति को पागल का वेष दे कर नाटकों में जोड़ दिया जा सकता है। अुसकी बात को कोअी गंभीरता से नहीं लेता, अुसे हास्य-विनोद समझ कर अुड़ा देता है। फिर भी हरेक के हृदय में अुसके वे वचन चुभते ही है। अैसे व्यक्ति का विनोद, विनोद भी होता है, वाक्‌बाण भी होते हैं, और कुछ अंश में आगाही भी होते हैं।

कभी कभी नाटकों में शराबखाने की या अैसी ही कोअी दूसरी तुच्छ और हलकी घटना ला कर अुसमें विनोद भरा जाता है। यह विनोद अुच्च कोटि का कैसे होगा?

संस्कृत में नर्मवचन और सुभाषित तो चाहे जितनी अुच्च कोटि के मिलते है, लेकिन हास्यरस के अुदाहरण अधिकतर हलके ही होते है। अुच्च परिहास तो हमारे यहाँ अभी अभी खिलना शुरू हुआ है।

'रक्षाबंधन' में विदूषक जैसा फालतू पात्र न डाल कर धनदास और अुसका लड़का मौजीराम अिन दोनों के द्वारा नाटक में विनोद दाखिल करने का प्रयत्न किया है। बड़ी तोंद की राजनीति के सम्बन्ध में जो परिहास आया है, वह ठीक है। हिन्दुस्तान के अितिहास में कुछ खास वैश्य लोगों का स्वार्थीपन और देशद्रोह सबको मालूम है। वह जमाना ही अैसा था कि स्वार्थ के कारण कोअी राष्ट्र-द्रोह करे तो समाज में वह निन्दा का पात्र नहीं होता था; जिस तरह कि जहर पिलानेवाले ग्राहक के हाथ जहर बेचनेवाला दूकानदार दोषी नहीं समझा जाता।

लेकिन अिस नाटक में मौजीराम, जिस ढंग से अपने पिता का मजाक अुड़ाता है, वह अच्छा नहीं लगता। सूम का बेटा अुड़ाअू ही होता है, यह न्याय लेखक ने पिता-पुत्र के नाम करण द्वारा ही व्यक्त किया है। पुत्र के मन में पिता के प्रति आदर न हो यह ठीक है; लेकिन कोअी लड़का अपने बाप की अिस हद तक दिल्लगी अुड़ाये, यह हमारे समाज के किसी भी विभाग में ठीक नहीं लगता। अिसके बजाय अगर धनदास को निपुत्रिक बताया होता और मौजीराम को अुसका वारिस, छोटा भाअी या दत्तक पुत्र बताया होता, तो कुछ ठीक लगता।

मेरे मत से विनोद को किसी अमुक ही प्रदेश में या अमुक ही व्यक्ति के मुँह से व्यक्त करके बाकी के नाटक को बोझल करने की अपेक्षा अुच्च विनोद सारे नाटक में स्थान-स्थान पर अनेक तरह से बिखेर दिया हो, तो वह अधिक अच्छा है।

* * *

सारे नाटक में दयापात्र व्यक्ति तो राजा विक्रमादित्य ही है। अुसकी कमजोरी में कहीं भी आरोह-अवरोह नहीं दिखाअी देता। नर्तकी का गायन अुसे सुनना है, दक्षिण की हवा में अुसे मस्त रहना है, माता के धमकाने पर समझदार बनते और अपना ताज अुतार देते अुसे देर नहीं लगती, बहादुरशाह के दूत को वह तेजस्वी जवाब देता तो है; लेकिन वह तो राजपूतों का जातिधर्म है, मेवाड़ की वंशपरंपरागत टेक है। विक्रम का ही अगर वह 'विक्रम' होता, तो युद्ध के समय वह भाग न जाता और आत्मनिन्दा के आँसू न बहाता। कहाँ वह श्यामा का वीरपुत्र विजय और कहाँ अपने पर ही तरस खानेवाला यह विक्रमादित्य।

और आखिर, जब हुमायूँ अुसे मेवाड़ की स्मशान-गद्दीपर बिठाता है, तब भी अुसके मुँह से अुपकार के दो-चार टूटे-फूटे वचनों के अलावा कुछ भी नहीं निकलता। अन्तिम क्षण में भी अगर वह कहता—केवल चार ही शब्द कहता—कि राखी की लाज रखने और मेवाड़ की गद्दी की रक्षा के लिअे तुमको अितनी कीमत चुकानी पड़ी, अतः हे बादशाह! अब जब शेरशाह के खिलाफ़ तुम लड़ने जाओगे, तब मेवाड़ की जो कुछ थोड़ीसी भी शक्ति बची होगी, अुसे ले कर में तुम्हारी सेवा में हाजिर हूंगा,' तो भी अन्त में अुसका व्यक्तित्व झलक अुठता। लेकिन सारी जिन्दगीभर जो साध्य न हुआ, वह आखिरी वक्त पर साध्य हुआ हो, अैसा बिरले ही होता है। विलासिता का अंत विफलता में ही होना अनिवार्य है।

* * *

विक्रमादित्य का पात्र जिस तरह दयापात्र है, अुस तरह चाँदखाँ भी केवल तिरस्कार ही अुत्पन्न करता है। रक्षा के लिअे वह मेवाड़ की शरण में गया यह तो ठीक है, लेकिन अुसके बाद कर्मवती, जवाहरबाअी और तमाम क्षत्राणियाँ जौहर करके प्राण अर्पण करती हैं, फिर भी अुसे कुछ नहीं सूझता। बल्कि किसी की सुरक्षित जड़ पूँजी की तरह चाँदखाँ जहाँ अुसे भेजा जाता है वहाँ पहुँच जाता है और अपना सिर बचाता है। अैसा पामर स्वभाव नाटक में भी असह्य हो जाता है। अच्छा हुआ कि लेखक अुसे फिर-से रंगभूमि पर लाया ही नहीं। वरना अुस पामर की शक्ल देखते ही प्रेक्षकों की भावनाअें अुब जातीं।

* * *

नाटक में अेक पोर्च्युगीज पात्र लाया गया है। अितिहास की दृष्टि से अिस कथानक में अितना

सूचन बस है। 'तलवार और तराजू, हाथ में लेनेवाले लोगों से सतर्क रहना चाहिअे', यह मुल्लूखाँ का वचन ध्यान खींचनेवाला है।

नाटक में पाश्चात्य लोगों के लिअे 'यूरोपियन' शब्द का प्रयोग किया है। यह ठीक नहीं लगता। मध्यकाल में हमारे यहाँ के लोग अुन्हें 'टोपीवाले' 'फिरंगी' 'गोरे' 'ताम्रमुख' अथवा 'जलचर' जैसे नामों से पुकारा करते थे। अुनमें से ही अेकाध नाम पसन्द करना चाहिअे था।

* * *

अिस नाटक में अेक तरफ शाह शेख औलिया और दूसरी तरफ वह चारणी, ये दो मंगल-मूर्तियाँ हैं। चारणी राजपूत जनता को यह समझाती है कि व्यक्तिगत लाभ-हानि तथा राग-द्वेष की अपेक्षा देश महान है और वह हरेक प्रकार के बलिदान के योग्य है। सभी तरह से परास्त हुअे समाज के लिअे यही सन्देश यथा-योग्य है। दूसरी तरफ देश के बाद देश जीतने-वाले बहादुर शाह और हुमायूं जैसे लोगों को राष्ट्र-रक्षण-धर्म नहीं, बल्कि मनुष्यधर्म ही बताना अुचित है। अिसलिअे शाहशेख अवलिया आप-पर-भाव छोड़ कर अिन्सानियत का ही समर्थन करता है। और अपने शिष्य की रक्षा की अपेक्षा अुसके कल्याण की ही अधीरता अधिक बताता है। ये दोनों पात्र नाटक की अधिक जगह नहीं रोकते। लेकिन सारे नाटक पर अपनी मंगल छाया अच्छी तरह फैलाते हैं।

* * *

सारे नाटक में अेक भी हलका स्त्री-पात्र नहीं है। कर्मवती हो या श्यामा, जवाहरबाअी हो या धनदास की पत्नी माया, सब में भलाअी और तेजस्विता का चित्रण किया गया है। और वह चारणी तो अैसी लगती है मानो भारतमाता की तपस्या ही मूर्तिमती हो अुठी हो। लेखक नारीपूजक है। अुसकी कलम से दूसरा कुछ निकलेगा ही नहीं। नाटक के प्रारंभ में अुसे अेक नर्तकी लानी पड़ी है; लेकिन वह तो अेक गीत गाने के अलावा अेक शब्द भी नहीं बोलती।

अेक नर्तकी अगर मेवाड़ के राजदरबार के वायुमंडल को खराब करती है, तो पाँच आर्य रमणियाँ मेवाड के चारित्र्य को सम्हालती है।

नाटचकार ने श्यामा का पात्र बड़ी शक्ति और कुशलता से चितेरा है। सारे नाटक में यह पात्र सबसे अधिक जिन्दा है। श्यामा राज-वंशी की पत्नी है, लेकिन चूंकि वह भीलनी है अिसलिअे अुसे रनिवास में प्रवेश नही मिलता। यह मानिनी अपने बेटे को ले कर जंगल में जाती है और वहीं अपनी साधना करती है।

मेवाड़ की राजपूतनियाँ जब अन्तिम जौहर करती है, तब श्यामा भी अुसमें शामिल होना चाहती है, लेकिन वहाँ भी—महाबलिदान देते समय भी—क्षत्राणियों का जाति-कुलाभिमान बाधक होता है और अुस अपमान में से ही श्यामा को जौहर की निराशा को पार कर के सेवाधर्म का विकास करने की सूझती है।

सचमुच, भारतीय नाटचजगत् में श्यामा की अपेक्षा अधिक अूंचा पात्र शायद ही कहीं होगा!

* * *

नाटक में जो दस-बारह गीत हैं, वे मेरी दृष्टि से अच्छे हैं। हरेक गीत का अपना व्यक्तित्त्व है, अपना वातावरण है, और अपने स्थान में वह अपना असर अच्छी तरह डालता है। यह सवाल जरूर अुठ सकता है कि नाटकों में अितने बड़े बड़े, और वह भी अितने भारी, गीत रखे जायँ या नहीं। लेकिन यह सवाल तो सारे नाटक की संभाषणशैली के बारे में भी अुठा सकते है। लेकिन जो अिस टीका से बच सकें, अैसे कितने नाटक हमारे पास हैं? और अगर

अिस नाटक के गद्य और पद्य की तुलना की जाय, तो कहना होगा कि ` गीत ही अधिक अच्छे हैं।

*   *   *

नाटककार ने अिस नाटक में राजपूत और मुगल काल के जीवन के कुछ खास प्रधान तत्त्वों का चित्रण किया है।

अुस समय की राजनीति किसी तत्त्व, सिद्धान्त या नीति को ले कर नहीं चलती थी। मौका देख कर अथवा तात्कालिक रागद्वेष के वशीभूत हो कर अुस जमाने के क्षत्रिय और वैश्य व्यवहार करते थे। नाटककार ने यह भली भाँति स्पष्ट किया है।

साथ ही, मनुष्य के हृदय को दहला देनेवाले और अुसे जबर्दस्त प्रेरणा प्रदान करनेवाले स्थायी तत्त्वों को भी अुसने सजीव किया है। बदला लेने की वृत्ति मनुष्य को कितना अंधा बना देती है, यह बहादुरशाह के पात्र द्वारा व्यक्त किया है। राखी का मान रखने के लिअे चाहे जैसी आफत झेलने को मनुष्य क्यों तैयार होता है, यह हुमायूं के पात्र में व्यक्त होता है। शरणागत को शरण देने के लिअे अेक व्यक्ति ही नहीं, बल्कि सारी जाति किस तरह आत्मोत्सर्ग कर सकती है, यह छोटे-बड़े मेवाडियों ने बताया है। जाति-कुलाभिमान का परंपरागत असर वाघसिंह और अर्जुनसिंह में देखने को मिलता है; जब कि वही खंडित हो जाता है तब अच्छे लोगों पर अुसका क्या असर होता है, यह भीलराज और श्यामा में देखने को मिलता है। निराशा के निर्धार में जौहर करनेवाली क्षत्राणियाँ श्यामा को अपने आत्मयज्ञ में शरीक होने नहीं देतीं—वहाँ अिस अभिमान का शुद्ध और असह्य रूप प्रकट होता है और अन्त में यह बोध प्रेक्षकों के हृदय पर अंकित हो जाता है कि अैसे जाति-कुलाभिमान की अपेक्षा अिन्सानियत ही सच्चा युगधर्म है। राजपूत-मुगलकाल के अितिहास का यह निचोड़ है। यह बोध अगर भारतवासी भूल न जाते, तो हिन्दुस्तान का अितिहास कुछ और ही तरीके से लिखा जाता—अैसा दुःखदायी विचार मन में स्थिर करके ही पाठक यह नाटक पूरा करता है।

३०:१:'४२

(अनुवादक—श्रीपाद रघुनाथ जोशी)

अेक अनोखी दरखास्त

मुनशी सर्दार अुद्दीन अहमद ने अेक अुदाहरण देते हुअे कहा— बेचारे जमीनदार के बहुत मनाने और गिड़गिड़ाने पर भी जब कॉलविन साहब जरा भी नहीं पसीजे, तो अुसने अेक दरखास्त दी जिसका मजमून कुछ अिस तरह था: 'मेरे जअीफ दादा मरते वक्त कह गये थे कि आगे अेक अैसा बन्दोबस्त अफसर आयगा जिसके जमाने में लोग अितने मुँहताज और गरीब हो जायँगे कि अुनके घरों में न तो चक्की की आवाज सुनायी देगी और न चिराग की रोशनी दिखायी देगी। जब अैसा हो तो तुम्हारे लिअे सब से बेहतर यह होगा कि तुम अपने गाँव के तमाम हक और हुकूक सरकार को दे दो और खुद फकीर हो जाओ।' अिसलिअे अुसने श्री कॉलविन से अर्ज की कि तमाम सरकारी कागजात में वह अुसकी जगह अपना नाम दाखिल करा लें।

—अैनी बेजण्ट

("हाअू अिण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम")
पृ० ८९

(पाँचवी कॉंग्रेस १८८९)

जीवन और मृत्यु

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

अन्तवन्त अिमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽ प्रमेयस्य ....॥

(आत्मा नित्य, अविनाशी, अप्रमेय है और ये शरीर नाशवान हैं।) —(गीता)

नाहं देहो जन्ममृत्यू कुतो मे।
नाहं चित्तं बन्धमोक्षौ कुतो मे॥

(मैं देह नहीं हूँ। मुझे जन्म मृत्यु कहाँ से हों? मैं चित्त नहीं हूँ; मुझे बन्धमोक्ष कहाँ से हों?)
—श्री शंकराचार्य

जो धर्मग्रंथ यह अुपदेश देते हैं कि आत्मा, अजर, अमर है और अेक ही नित्य आत्मा के ये सब शरीर हैं, तू आत्मा है, शरीर नहीं है अुन्हीं ग्रन्थों ने जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के दुःखों का निरन्तर ध्यान रखने को ज्ञान का और अुससे अुलटी वृत्ति को अज्ञान का लक्षण बतलाया है। सभी मजहबों के सन्तों ने भी मरण की अवश्य होनेवाली घटना से संसार के बारे में वैराग्य पैदा कराने के लिअे बहुत बड़ी मात्रा में लाभ अुठाया है।

"जाना है नर, जाना है घर छोड़ि।
अकेला जाना है"।
"अपने खातिर महल बनाया, आप ही
जा कर जंगल सोया।
"कहत कबीरा सुनो मेरे गुनिया,
आप मुअे पीछे डूब गयी दुनिया।"
"आखिर यह तन खाक मिलेगा
कहा फिरत मगरूरी में?"
"काल व्याल ज्यों पर्य डोलै,
मुख पसारे मीत।
आज कल पुनि तोहि ग्रसि है, समझ
राखो चीत।"
"बढ़त पल पल घटत छिन छिन
चलत न लागे बार।"
बिरछ के ज्यों पात टूटे,
लागें नहीं पुनि डार।"
"रैनि बसेरा कर ले डेरा,
अुठ चलना पर भात रे"
"ना कोअी तेरो सजन सनेही,
ना कोअी बेन न भाअी रे।"
"सुमरण बिना संग नहीं कोअी,
जीव अकेलो जाअी रे"
"गाफिल मत रहे चेत सबेरा,
मन में राख फिकर रे"।
जो कुछ करे बेग ही कर ले,
सिर पर काल जबर रे।"
"अै मुसाफिर कूच का सामान कर,
अिस जहाँ में है बसेरा चन्द रोज।"
पूछा लुकमा से, जिया तू कितने रोज?
दस्ते हसरत मलके बोला चन्दरोज
याद कर तू अै नजीर कबरों के रोज
जिन्दगी का है भरोसा चन्दरोज।"
"मिट्टी ओढावन मिट्टी बिछावन,
मिट्टी से मिल जाना होगा।"

वगैरा वगैरा, अिस आशय के सैंकडों सन्तों के—सैंकडों वचन निकाले जा सकते हैं।

आत्मतत्त्व के बारे में बहुत कुछ सोचने के बाद भी—या अुसके कारण ही?—और पुनर्जन्म के विषय में कुछ स्वतंत्र विचार रखते हुअे भी, मेरी मनोवृत्ति भी अबतक अिससे कुछ जुदी तरह की नहीं थी। किसी मनुष्य का मृत्यु तक संसार के कामों में दिलचस्पी लेते रहना मुझे अुचित नहीं मालूम होता था और मैं अुसे अज्ञान का

लक्षण ही समझता था। बल्कि हमेशा यह खयाल बना रहता था कि मौत से पहले ही मनुष्य को अपने काम निपटा कर अिस तरह तैयार रहना चाहिअे जिस तरह कोअी सावधान मुसाफिर ट्रेन के आने से पहले अपना सामान-असबाब सम्हाल कर तैयार रहता है। मेरी कुछ अैसी मनोवृत्ति हो गयी थी कि अपनी आयु की अुत्तरावस्था में दुनयवी कामों से अपने आपको हटा लेना, नयी जिम्मेदारियाँ नहीं अुठाना और शान्तिपूर्वक हलके हलके निवृत्त हो जाना ही अच्छा है।

श्री जमनालालजी और मेरे बन्धु की मृत्यु के बाद अेक दिन मेरी बुद्धि में अेकाअेक नया प्रकाश आया और मेरी दृष्टि पलट गयी।

जन्म और मृत्यु तथा बचपन, जवानी और बुढ़ापा आदि का सम्बन्ध शरीर से है, यह बात हर कोअी जानता है। तत्त्वज्ञों ने आत्मा को शरीर से अलग और अिन सब अवस्थाओं से परे बतलाया है। हजार प्रयत्न करने पर भी बहुत कम लोग अिसे समझ सकते हैं—'यततामपि सिद्धानां कश्चिन् मां वेत्ति तत्त्वतः'। लेकिन सभी का परिचित यह जीवन क्या चीज है? क्या प्राणवाला शरीर जीवन है? और शरीर के प्राणहीन हो जाने से क्या जीवन भी खत्म हो जाता है? क्या जीवन की आत्मा से कोअी अलग हस्ती है? हर कोअी जानता है कि कोअी शरीर कितना ही दीर्घायु क्यों न हो, मरे बिना नहीं रहा है और न रहेगा। फिर भी मनुष्यमात्र के हृदय में वह कौनसी प्रतीति है जिसके कारण अुसे अपने मरने के बाद की दुनिया की भी चिंता रहती है? अपने पीछे बच्चे, धन, यश या दूसरी कोअी मौल्यवान चीज छोड़ जाने की अिच्छा होती है? हिन्दुओं का पुनर्जन्म का सिद्धान्त यह विश्वास तो नहीं दिलाता कि मनुष्य फिर अुसी जगह जन्म ले कर अपनी कमाअी हुअी चीजों को अुपभोग करेगा। अुस मान्यता के अनुसार भी अुसका पहला मुकाम तो स्वर्ग या नरक में ही होना है। और जो लोग बाअिबिली या कुरानी पुनर्जन्म को मानते हैं, अुनका मरने के बाद अिस दुनिया से अितना ही ताल्लुक रहता है कि 'यहां पै सोते रहना चन्द रोज'। हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी, आस्तिक, नास्तिक या गोरा, काला, लाल, पीला, किसी भी तरह का आदमी क्यों न हो, हर अेक के दिल में मरण के बाद अिसी दुनिया के लिअे कुछ छोड़ जाने की अभिलाषा अक्सर होती ही है। सन्तों ने साधना करके अिस अभिलाषा को मिटाने का प्रयत्न किया है। पर जिसने ज्यादा जोरों की साधना की, वही अपने पीछे ज्यादा शिष्य, संप्रदाय या नाम छोड़ गया। पैदा होते ही मर जानेवाला बच्चा भी अपने माता-पिता के दिल में अपनी स्मृति छोड़ जाता है, तो फिर पुरुषार्थ-साधक भला कैसे बच सकते हैं?

तब यह विरोध क्यों? यह सवाल कभी किसी के मन में नहीं अुठता और न मेरे मन में ही कभी अुठा था। जब नव-प्रकाश प्राप्त हुआ अुस वक्त भी वह अुठा नहीं था। अुसने तो अितना ही दिखा दिया कि प्राणवान शरीर जीवन नहीं है। आत्मा ही जीवन है। अेक अेक व्यक्ति जीवन नहीं है। सारी समष्टि, विश्व, दुनिया का सारपसारा, ही जीवन है। शरीर पैदा होते हैं और मरते हैं, पर जीवन तो चलता ही है। जीवन ने शरीरों का निर्माण किया और करता रहता है। लेकिन किसी शरीर-विशेष के मरने से जीवन का अन्त नहीं होता। अपने शरीर के लिअे चाहे जितनी आसक्ति और चिंता क्यों न रहती हो, फिर भी, अज्ञान से अज्ञान प्राणी भी समझता है कि मैं वही जीवन

हूं जो मेरे शरीर के मिट जाने के बाद भी चलता रहनेवाला है और यहीं अिसी दुनिया में चलता रहनेवाला है—मेरे बच्चों में, मित्रों में, देश में, दुनिया में और जीव-जन्तुओं में चलता रहनेवाला है। मैं जो कुछ करता हूँ, अुसी जीवन के लिअे करता हूँ। कभी कभी प्राणी अपने शरीरस्थ जीवन तक ही जीवन की हद मान लेता है। लेकिन कोअी भी प्राणी जीवन को हमेशा अुतनी ही हद में मर्यादित नहीं मानता।

शास्त्रों के आधार पर वह स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि परलोक की प्राप्ति में विश्वास करने का प्रयत्न करता है। अुन्हींके आधार पर और स्वप्न, निद्रा, मूर्च्छा आदि शारीरिक अवस्थाओं के भेदों के कारण वह दुनिया को मिथ्या, माया, अिन्द्रजाल, आभास आदि मानने की कोशिश करता है। योग सीख कर समाधि भी लगा लेता है। लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव का विषय होनेवाले अिस विश्वव्यापी और सदा चलनेवाले जीवन को हमेशा के लिअे भूल जाने में वह कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। क्योंकि संसार के प्रति क्षण बदलते रहने पर भी भीतरी अनुभव से अुपजी हुअी प्रतीति अुसे निरन्तर यही कहा करती है कि तू जीवन है, विश्व जीवन है और यह जीवन अनादि, अनन्त तथा अनित्य रूपों के बीच नित्य है। वह तेरे भीतर भी है और बाहर भी है। लेकिन विश्व के बाहर नहीं है। तू जीवन है; अिसीलिअे विश्व के जीवन में से तेरी रुचि मिट नहीं सकती और न अुसे मिटाने का प्रयत्न करना ही अुचित है। तेरा दैहिक मूर्त रूप नैमित्तिक और चन्द रोज के लिअे है। लेकिन तू, जो कि जीवन है, नैमित्तिक और अल्पजीवी नहीं है। जीवन के मूर्त रूपों में शुभ, अशुभ, सद्गुण, दुर्गुण, हिंसा, अहिंसा, सुसंगति, असंगति वगैरा कअी तरह की बातें भले ही भरी हों। यह भी हो सकता है कि प्राणी की अल्प दृष्टि अेक छोटे-से दायरे में ही जीवन को देख सके और अुतने अंश को ही संपूर्ण मान ले। अिसमें भूल दृष्टि की मन्दता की है और अुसे सुधारा, शुद्ध किया तथा अुन्नत किया जा सकता है। परतु मन्द दृष्टि और दुर्गुणी विकारी प्राणी को भी अिस बात का निश्चय है कि वह मृत्यु नहीं है, जीवन है और जीवन से जुदा नहीं हो सकता; अुससे अलग हस्ती की कल्पना भी नहीं कर सकता। वह जीवन नित्य है, अुसके जन्म-मृत्यु नहीं हैं। पूर्वजन्म की स्मृति रखनेवाले मनुष्यों के सच या झूठे किस्से कभी कभी सुनने में आते हैं। लेकिन कभी यह नहीं सुना गया कि किसीको अपनी पूर्वमृत्यु की भी स्मृति हुअी हो। क्योंकि जिस तरह सूर्य ने रात को कभी देखा ही नहीं होता, अुसी तरह जीवन ने अपनी मृत्यु को कभी देखा ही नहीं है। शरीरों की मृत्यु अवश्य रोजमर्रा देखता है। और यह जानते हुअे भी कि 'मेरा' सर्वनाम से परिचित अमुक शरीर को अेक दिन मरना ही है, मनुष्य संसार का रस नहीं छोड़ सकता। क्योंकि आत्मा जीवन है, मृत्यु नहीं है और समग्र जीवन अेक और नित्य है। यह समझ में आने पर सन्त तुकाराम के अिस कथन का स्मरण होता है—

"मरण माझें मरोनी गेलें। मज केलें अमर"।

('मेरा मरण ही मर गया और मुझे अमर बना गया'।)

वह नेवला अगर होता !

[रमावल्लभ चतुर्वेदी]

महाभारत के नकुलोपाख्यान की कहानी है कि, "जब पांडव राजसूय यज्ञ कर रहे थे, तब कहीं से अेक नेवला यज्ञमंडप में आया। नेवले की आधी देह सोने की थी। वह यज्ञ के झूठे अन्न में लोटने लगा। लोगों ने अिस विचित्र नेवले के अिस विचित्र आचरण को देख पूछा कि तुम कौन हो और क्या कर रहे हो ? नेवले ने कहा वह तो अेक मामूली नेवला है पर अेक घटनावश अुसकी आधी देह सोने की हो गयी है : "अेक गरीब ब्राह्मण ने अेक बार यज्ञ किया। उस यज्ञ में अुस गरीब ने अपना सर्वस्व अुत्सर्ग कर दिया था। अुसका सर्वस्व क्या था ? कुछ थोड़ा-सा सत्तू। यही अुसकी अुमरभर की कमाअी थी। संयोग से वह नेवला अुस ब्राम्हण के यहाँ पहुँच गया और यज्ञ की जूठन में लोटने लगा। अिस पुण्य से अुसकी आधी देह सोने की हो गयी। तब से अुसकी यही चाह है कि अुसकी सारी देह ही सोने की हो जाय। अिससे जब किसी बड़े यज्ञ की खबर सुनता, वहाँ जा धमकता। पर अुसकी बाकी देह सोने की नहीं हुअी सो नहीं हुअी।"

मालूम नहीं वह नेवला अब है या नहीं। पर अुसे अपनी देह बिलकुल सोने की कर लेने का अेक मौका अभी ता० २५ फरवरी १९४२ को आया था।

दरभंगा जिले के मधुबनी सबडिविजन में (जहाँ चरखा संघ, बिहार शाखा, का प्रधान केन्द्र है) अेक गाँव है, बेलाही। अिस गाँव में अेक बूढ़ी मैथिल विधवा ब्राह्मणी रहती हैं, श्रीमती देवकीदेवी। मैथिलों में शिशु-विवाह की प्रथा है। अिससे शिशु विधवाअें अधिक बहुत हैं। अुनके कष्ट वर्णन की चीज नहीं है। देवकी भी अैसी ही विधवा हैं। बचपन से अुनकी जिन्दगी वैधव्य का कष्ट, अपमान और लाञ्छन अुठाते बीती। पर १६/१७ वर्ष पहले अुन्होंने चरखा चलाना शुरू किया। और अुन्हीं के शब्दों में, 'गान्धी बाबा के चरखे ने अुन्हें विपत्ति से अुबारा'। अब अपनी कितनी ही बहनों की तरह देवकी भी सूत कात कर अपना गुजारा कर रही हैं। चरखा संघ से सूत के दाम में अुन्हें ६/७ रुपये महीने मिल जाते हैं।

अपनी मेहनत की अिस पवित्र कमाअी से अिस ब्राह्मणी की भूख मिटी और अपमान के बदले अिज्जत की जिन्दगी शुरू हुअी। जो पहले दूसरों की मुँहताज थी अब चरखे की बदौलत दूसरों को कुछ देना चाहने लगी। अपना पेट काट कर देवकी ने धीरे धीरे कुछ पैसे जोड़े और पुण्य के लिअे सप्ताह की कथा सुनी; ब्राह्मण जिमाये। अिसके बाद फिर थोड़े रुपये अिकट्ठे हुअे। तब देवकी ने अपने गाँव के चमारों के लिअे कुआँ बनवा दिया। अिन चमारों को पानी पीने के लिअे कोअी कुआँ था ही नहीं। अुनके जल-कष्ट ने अिस ब्राह्मणी के हृदय को अपनी ओर खींच लिया था।

लेकिन शास्त्रों के अनुसार कुआँ आदि बनवा कर अुसे पवित्र करने को यज्ञ करते हैं। तब अुसे नर-नारायण के हेतु अुत्सर्ग कर देते हैं।

देवकी भी यह यज्ञ करना चाहती थीं। और अिसलिअे फिर चरखे की कमाअी में से धीरे धीरे अुन्होंने कुछ रुपये जमा कर ही लिये। और ता० २५–२–४२ को यह यज्ञ भी सफल हो गया।

देवकीजी का स्नेह मुझ पर बहुत है। अिस लिअे लक्ष्मीबाबू की मारफत मुझे भी न्यौता मिला था। यज्ञ के दिन हम लोग कितने ही बेलाही पहुँचे थे। अिस यज्ञ का दर्शन किया। पवित्र कुअें का जल पिया और पवित्र हुअे। हम लोग करीब ७०।८० भाअी-बहनों ने अिस अवसर पर सूत्र-यज्ञ भी किया था। स्वयं गान्धीजी ने अपने हाथ से लिख कर अिस अवसर पर अपना आशीर्वाद भेजा था। अगर यज्ञों और जलदान से देवता और पितर तृप्त होते हैं, तो अिस सर्वस्व-अुत्सर्ग से जरूर तृप्त होंगे। मुझे विश्वास है कि वह कहा हुआ नेवला अगर अिस अवसर पर होता, तो अुसकी सारी देह सोने की जरूर हो जाती।

(अूपर की घटना मार्मिक और हृदयंगम है। अपनी गाढ़ी कमाअी का अिस महिला ने जो विनियोग किया, वह दूसरों के लिअे अनुकरणीय है। यज्ञ की पूर्ति के लिअे ब्राह्मणभोजन आदि परंपरागत विधियाँ अनावश्यक ही नहीं, तो अप्रस्तुत हैं। सेवा के लिअे अपनी परिश्रम से अुपार्जित और त्याग से संचित सम्पत्ति का अुत्सर्ग ही यज्ञ है। —सं०)

अुन्नति का धर्म

जिस दिन लोग अिन सीमा से बाहर पहुँचे हुअे आचारों के क्रीतदास न रह कर स्वयं सोचना-विचारना सीखेंगे, जिस दिन अुनके भीतर भावों का स्रोत फिर से बहेगा; जिस दिन लोग जिसे अुचित और कर्तव्य समझेंगे अुसे निर्भय हो कर करते जायँगे—अिसमें किसी को प्रशंसा की या किसीके बिगड़ने या नाराज होने की अपेक्षा न रखेंगे—किसीकी टेढ़ी की हुअी भौंहों की जरा भी परवा न करेंगे और जिस दिन लोग युगों की पुरानी पोथियाँ फेंक कर नया धर्म ग्रहण करेंगे। ………।

अुस धर्म का नाम है प्रेम। जो कोअी अिस धर्म का अुपासक बनता है, अुसे अपने आपको छोड़ कर क्रमशः भाअी के साथ प्रेम करना सीखना पड़ता है। अिसके बाद अुसे स्वयं और कुछ नहीं करना पड़ता। अीश्वर का कोअी अज्ञेय नियम अुसके भविष्य को स्वयं ही सुधार देता है। बहिन, जातीय अुन्नति का मार्ग लहू की नदियों के बीच से हो कर नहीं है; बल्कि प्रेम-पूर्वक परस्पर आलिंगन के मध्य से हो कर है।

('मेवाड़पतन') —द्विजेन्द्रलाल राय

रचनात्मक कार्यक्रम

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

५

आर्थिक योजनाअें

अब रचनात्मक कार्यक्रम की भिन्न भिन्न बातों को लेता हूँ। अुनमें से आर्थिक कार्यक्रमों का विचार पहले किया जाता है। अिनमें नीचे लिखे कामों का समावेश हो सकता है :

१. खेती व्यवस्था।

२. गोसेवा— गोपालन, गोवंश-सुधार, गोचराअी, दुग्धालय, चर्मालय, आदि अुद्योग।

३. चरखा—कपास से ले कर तैयार कपड़ा अुपभोग करनेवाले के पास पहुँचाने तक के सारे काम।

४. हर तरह के देहाती (देहातों के) और कसबाती (कसबे के) अुद्योग।

५. रास्ते, कुअें वगैरा बनवाना, सवारियों का प्रबन्ध वगैरा।

६. सार्वजनिक आराम के काम, जैसे, सफाअी, दियाबत्ती, दवाखाने, आदि।

७. संकट निवारण—अुदाहरणार्थ, अकाल, बाढ़, लड़ाअी की हिजरत आदि के वक्त अन्न, वस्त्र और मुसाफिरखानों का अिन्तजाम।

अिन सात तरह के कामों में से पहले चार मनुष्य के काम की वस्तुओं (या प्राणियों) के अुत्पादन के धन्धे है। अिन्हें हम 'अुद्योग' 'अथवा 'हुनरी पेशे' कहेंगे। पाँचवीं और छठी किस्म के काम अुद्योग और जीवन की सहूलियतें बढ़ानेवाले हैं। अिनसे कोअी नयी चीज नहीं बनती; फिर भी अुन्हें करनेवालों को अुनमें से रोजगार या मजदूरी मिल जाती है। अिन्हें हम रोजगारी या नोकरी के पेशे कहेंगे। आखिर में सिर्फ आपत्ति-निवारण के काम हैं। अुनका हिसाब समाज के शुद्ध दान के मद मे लिखा जायगा। यद्यपि बहुत अंश में ये काम आर्थिक प्रबन्ध के ही हैं, तो भी अुनका पेशा नहीं बनाया जाता।

अिनकी योजना किस तरह बनायी जा सकती है, अिसका अब विचार करें। पहले तो हमें अपने क्षेत्र की साधारण आबादी का विचार कर लेना चाहिअे। फिर लड़ाअी के कारण कितनी आबादी बढ़ना या घटना संभव है, अिसे भी सोच लेना चाहिअे। हमारे क्षेत्र की अपेक्षा आसपास के क्षेत्रों में अगर आर्थिक रचना का काम ज्यादा होता हो, तो हमारी बस्ती के कअी लोगों का दूसरे भागों में चला जाना सभव है। हमारा विभाग यदि लड़ाअी के भयस्थान के नजदीक हो, तो भी यही बात होगी। अिससे अुलटी परिस्थिति में हमारी बस्ती बढ़ेगी। अिसका अन्दाजा करके देखना चाहिअे कि हमें अपने क्षेत्र में कितने अन्न-वस्त्र वगैरा का प्रबन्ध करना है। अुस हिसाब से पैदावार और संग्रह के लिअे प्रबन्ध तथा प्रचार करना चाहिअे।

फिर यह हिसाब लगाना चाहिअे कि हमारे क्षेत्र में, (१) कितने साधन-हीन मजदूर हैं। (२) कितने थोड़ेबहुत साधन रखनेवाले कारीगर है (अुदाहरण के लिअे, बढ़अी, राज अित्यादि)। (३) कितने साधनयुक्त स्वतंत्र धंधेवाले लोग हैं, (अुदा०—बुनकर, दरजी, तेली, चमार, सुनार, वगैरा देहाती या कसबाती अुद्योग करनेवाले)।

(४) कितने मुनशी-मुहर्रिरी का पेशा करनेवाले हैं। (५) कितने अैसे साधन-संपन्न है कि जिनके निर्वाह की आज चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। और, (६) कितने अैसे सम्पन्न हैं कि जो दूसरे कुछ लोगों को भी काम दे सकते हैं।

पहले तीन वर्गों को सदैव काम मिलता रहे यह देखना हमारा फर्ज है। अिस काम के प्रबन्ध में चौथे वर्ग के कुछ लोगों की मदद ली जा सकती है। अिसके कुछ लोग पाँचवे और छठे वर्गों की मातहत भी काम करते रहेंगे। फिर भी अुनके बेकारों का अेक वर्ग रह जाता है। अुन्हें दूसरे वर्ग के मजदूरों के बराबर मानना चाहिअे। याने वे कलम के औजार से काम कर सकनेवाले कारीगर-मजदूर हैं।

अगर हम पहले वर्ग के मजदूरों को साधन दे कर अुनसे काम ले सकें, तो अच्छा ही है। औरों के लिअे बगैर किसी साधन से किये जाने-वाले काम सोच रखने चाहिअे। अैसे कामों में खेती की मजदूरी, सूत कातने तक की कुछ क्रियाअें, रास्ते, कुअें, मकान वगैरा बनवाना, आदि का समावेश हो सकता है। हमारी अैसी तैयारी होनी चाहिअे कि ये काम हमेशा कराये जा सकें। ये सार्वजनिकरूप के भी हो सकते हैं। छठे वर्ग के लोगों से भी अैसे कामों के खानगी आयोजन कराने चाहिअे। ये अितने परिमाण में चलते रहने चाहिअे कि जबकभी किसी आदमी को काम की जरूरत हो, तो वह अुसे मिल ही सके। अिन्हींके साथ दूसरे और चौथे वर्ग के भी कुछ लोगों को काम मिल ही जायगा। जिन्हें न मिल सके, अुन्हें तीसरे वर्ग की तरह या तो कोअी स्वतन्त्र पेशा खोजने या अुनके साथ मिल कर सहयोग से कोअी अुद्योग करने के लिअे तैयार करना चाहिअे। तीसरे वर्ग के बारे में हमें यह देखना चाहिअे कि अुस वर्ग के लोग जो चीजें बना सकते हैं, अुनमें सुधार होता रहे और अुनकी खपत हमारे क्षेत्र में ही हो जाय और जो चीज वे बना सकते हैं, वह बाहर से न आने पावे।

लड़ाअी की परिस्थिति के कारण आज कअी लोगों के पास काफी बेकार पूंजी पड़ी हुअी है। वे नहीं जानते कि अुसे कहाँ लगाना सुरक्षित होगा। रचनात्मक समितियों में अगर प्रबन्ध करने की हिम्मत, अुद्योग, विज्ञान, अपने दूसरों के मन में आप के प्रति विश्वास पैदा करनेवाला चरित्र और अर्थशास्त्र का स्पष्ट ज्ञान हो, तो वे अिस तरह की पूंजी का अच्छी तरह अुपयोग कर सकते हैं।

हमारे देश में बुद्धि याने विचार करने की शक्ति की कमी नहीं है। लेकिन किसी काम को पूरा करने के लिअे जो सतत अुद्योग चाहिअे, अुसकी कमी है। अिसीसे हिम्मत नहीं होती और साधन-संपन्न लोगों का विश्वास भी प्राप्त नहीं कर सकते। अिसीलिअे हम आर्थिक कामों में सफाअी, दियाबत्ती, दवाखाना आदि सार्वजनिक आराम के तथा अकाल, बाढ़ आदि के वक्त संकट-निवारण का प्रबन्ध करने के कामों से आगे बढ़ नहीं सके हैं।

अिस लेख के शुरू में जो सात प्रकार गिनाये हैं, वे जीवन में आर्थिक दृष्टि से अुनके महत्त्व के क्रम से बताये गये हैं। फिर भी अूपर लिखे कारण से कम अनुभवी समितियों को ७, ६, ५, ३, ४, २, और १ के क्रम से काम करना संभवतः सुविधा-जनक होगा।

बड़े बनाम छोटे पैमाने पर अुत्पादन

[झवेरभाई पटेल]

लोगों की नाहक यह धारणा हो गयी है कि बड़े पैमाने पर अुत्पादन करनेवाली कलें हमेशा अधिक कार्यक्षम होती हैं। अिसीलिअे यंत्रों के अुपयोग के बारे में यन्त्रवादी और यन्त्र विरोधी व्यक्तियों के विचार अस्पष्ट और अुलझे हुअे हैं। दोनों पक्ष यह मान ही लेते हैं कि यन्त्र अधिक कुशल साधन हैं और अिस मान्यता के आधार पर यन्त्रों के पक्षपाती लोग रहन-सहन का तर्ज अधिक अुन्नत करने के लिअे अुनके प्रयोग की सिफारिश करते हैं। अिसके विपरीत, यन्त्र-विरोधी व्यक्ति केवल अर्थशास्त्र की दृष्टि से यन्त्रों के विषय में चर्चा करने से हिचकिचाते हैं। यहाँ कुछ तुलनात्मक अुदाहरण दिये जाते हैं। हिन्दुस्तान में आज प्रत्यक्ष चलनेवाले जिन बड़े बड़े यन्त्रोद्योगों और ग्रामोद्योगों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत लेखक ने किया है, अुन्हीके अुदाहरण यहाँ दिये गये हैं। अिनके द्वारा प्रस्तुत लेखक यह प्रमाणित करना चाहता है कि अिस विषय में अटकलपच्चू अनुमान निकालने की वृत्ति से बचना चाहिअे और सारे समाज की दृष्टि से हरअेक अुद्योग की प्रक्रियाओं और अुपकरणों की कुशलता की जाँच करनी चाहिअे।

अुद्योग को चलाने की आज जो कीमत लगती है, अुसीको अपनी कसौटी मान कर हम नीचे लिखे अुद्योगों की कुशलता की जाँच अूपर बतायी हुअी दृष्टि से करें :

(१) धान-कुटाअी (२) तेल पेरना और (३) गन्ना पेरना।

१. धान-कुटाअी

हाथ-कुटाअी बनाम मिल-कुटाअी का खर्च :

हाथ-कुटाअी और मिल-कुटाअी से धान साफ करने में जो खर्च आता है, अुसकी तुलना के लिअे हम नीचे दोनों तरीकों से २½ मन चावल तैयार करने के खर्च का कोष्टक देते हैं। हमने अेक ही अिलाके के आँकड़े लिये हैं। चावल की मिल बारडोली तालुके में है और हाथ-कुटाअी बारडोली से लगे हुअे अुसी जिले के बुलसर तालुके के हैं। यह जान लेना जरूरी है कि गुजरात में धान-कुटाअी का धंधा 'गोला' नाम की अेक खास जाति करती है। अिस जाति के लोग अिस काम में बड़े कुशल हैं और अुसे बड़ी सफाअी से करते हैं। अिसीलिअे, यद्यपि यह काम करनेवाली औरतों को ज्यादा मजदूरी (याने छह आने रोज) दी जाती है, तो भी खर्च अपेक्षाकृत कम ही आता है।

ढाअी मन धानकुटाअी के दाम

	पूरा चावल	चमकीले चावल
	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
मिल-कुटाअी	०—६—०	०— ८ —०
हाथ-कुटाअी	०—६—०	०—१५—९ अेक बार का
		१— ५ —० दो बार का

बगैर पॉलिशवाले चावल की कुटाअी के दाम मिल की कुटाअी और हाथ-कुटाअी में अेक ही-से हैं। अिसका अेक प्रमाण अहमदाबाद के पास के बरेजा नामक गाँव से मिलता है। जब वहाँ की मिल धानकुटाअी की माँग पूरी न कर सकी, तो मिलवालों ने अुसके लिअे मजदूर लगाये और तो भी अुन्हें घाटा नहीं आया। यह बात बड़े ही महत्त्व की है। अर्थात् अगर बगैर पॉलिश का या सिर्फ कुटा हुआ चावल ही काम में

लाया जाय, तो चावल की मिलें मुनाफे में नहीं चल सकतीं।

हाथकुटाअी और मिलकुटाअी में कुटाअी और पॉलिश की क्रियाओं के दामों में जो फर्क पड़ जाता है, वह विचारणीय है। मिल अगर सिर्फ धान का छिलका ही निकाले, तो ढाअी मन के छह आने लगते हैं। लेकिन अगर छिलके निकालने के साथ साथ वह पॉलिश देने का काम भी करे, तो सिर्फ दो ही आने ज्यादा लगते हैं। क्योंकि अुसके लिअे सिर्फ यंत्र का अेक दूसरा हिस्सा और चला देना पड़ता है, अिससे अधिक कुछ नहीं करना पड़ता। नौकर-चाकर, यंत्र चलाने के खर्च वगैरा में कोअी फर्क नहीं पड़ता। मतलब यह कि मिल में कुटाअी के दामों में २५% बढ़ा देने से पॉलिश हो जाता है। अिसके विपरीत हाथ-कुटाअी में कूटना और पॉलिश करना बिलकुल अलग अलग क्रियाअें हैं। चाहे वे साथ साथ की जायँ या अलग अलग वक्त पर, दोनों की पूरी पूरी कीमत देनी पड़ती है। अर्थात् मिल में कुटाअी और पॉलिश के दामों का अनुपात ३ : १ है। लेकिन हाथकुटाअी और हाथपॉलिश में अिससे अुलटा है, क्योंकि हाथकुटाअी में चावल को दो बार पॉलिश किया जाता है। अिसलिअे मिलपॉलिशवाले चावलों के मुकाबिलों में हाथपॉलिशवाले चावल महँगे हो जाते हैं। आंकड़ों पर से मालूम होता है कि दुबारा पॉलिश के दाम ही २½ मन पर ५ आने ज्यादा लग जाते हैं। अिसलिअे अगर कम पॉलिशवाला चावल अिस्तेमाल किया जाय, तो हाथकुटाअी के दाम कम करने की गुंजाअिश है। मिलों को कुटाअी के लिअे जितनी साधन-सामग्री, पूँजी और नौकर-चाकर रखने पड़ते हैं, अुसकी अपेक्षा पॉलिश के लिअे बहुत ही थोड़ा अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। अिसलिअे मिलें बहुत अधिक चमकीले चावलों का चलन बढ़ाना चाहती हैं। क्योंकि अिसी बात में वे हाथ-कुटाअी पर बाजी मार ले जा सकती हैं। लेकिन दुनियाभर के आहारशास्त्रविशारदों ने पौष्टिक द्रव्यों की कमी के कारण बहुत पॉलिशवाले चावल की अेक आवाज से निन्दा की है। अिसलिअे किसी भी सुज्ञ समाज में आअिन्दा कुशलता के नाम पर चावल की मिलें पनप नहीं सकेंगी।

साफ है कि मिलों ने सिर्फ पॉलिश में ही तरक्की की है। दूसरी जगह से जो जानकारी मिली है, अुससे भी यही बात प्रमाणित होती है। मध्यप्रान्त के तुमसर नामक कसबे में करीब सात बरस पहले तक लोग अपने घर पर ही धान कूट लेते थे और वह पूरा चावल पॉलिश के लिअे मिलों में ले जाते थे। लेकिन जब मिलों ने सिर्फ पॉलिश के लिअे और धान से पॉलिशवाले चावल बनाने के लिअे अेक ही दाम लेना शुरू किया, तब से घर पर कूटने की चाल बन्द हो गयी।

यह मिलवाला दो मन चावल के लिअे दस आने लेता है। अूपर के कोष्टक के अनुसार आठ आने तो अुसकी लागत होती है और अुसमें वह २ आने अपने मुनाफे के जोड़ देता है। अिस प्रकार मिल के चावलों में और हाथकुटाअी के चावलों में ढाअी मन पर करीब छह से ग्यारह आने तक का फर्क पड़ जाता है। याने प्रति मन २½ से ४½ आने तक।

लेकिन मशीन के चावलों के सस्तेपन को हम खालिस बचत नहीं मान सकते। मिल के चावलों की पौष्टिकता की चर्चा की जा चुकी है। टूटे हुअे छिलकों के भूसे के साथ मिल जाने से जो थोड़ा-सा नुकसान होता है, सो अलग। धान मिल तक ले जाने के लिअे और फिर वहाँ से चावल घर को लाने के लिअे गाड़ी का किराया

भी लगता है। लोग भूसा घर ले जाने की फिक्र नहीं करते; क्योंकि अुसके लिअे फिर गाड़ी-भाड़ा लगता है। अिसलिअे वे अुसे खाद या अींधन के रूप में काम में नहीं ला सकते। अिस तरह, कुल मिला कर, हाथकुटाअी के महँगेपन की कसर बहुत अच्छी तरह निकल जाती है।

२ तेल-पेरना

"नीचे के नक्शे में दिखाया गया है कि देहाती घानियों की अपेक्षा मिलों में अधिक क्षमता नहीं होती। उसमें घानी और मिल के अेक टन तेल पेरने का तुलनात्मक व्यय भी दिखाया गया है :

	मूँगफली	तिल	अलसी	अेरण्डी
बम्बअी की अेक मिल में	२१।।।=)।।	२४=)।।।	३५।।=)।।।	३२-)
मगनवाड़ी घानी में	४७)	४७)	८३।≢)।।।	४७)
पेरने में अंतर—	२५-)।।	२२।।।-)।	४७।।।-)	१४।।।=)
घानी में तेल कम मात्रा में पेराअी के कारण अंतर	७।।	७।।)	२२।-)	१५)
अंतर का योग	३२।।-)।।	३०।-)।	७०≢)	२९।।।=)
अेक पौण्ड पर अंतर	)।	)२$\frac{3}{5}$	)।।	)२$\frac{1}{2}$
कमीशन	)२	)४	?	?

यह ध्यान रखना चाहिअे कि मिल की पेराअी का खर्च लगाने में चार लाख की ऋण-परिशोध पूँजी और मशीनरी के ह्रास का मूल्य नहीं लगाया गया। अगर वह भी हिसाब में लाया जाय, जैसा कि होना चाहिअे, तो मिल द्वारा पेराअी का, अगर अधिक नहीं तो अुतना ही खर्च पड़ेगा, जितना घानी द्वारा पेराअी का।

घानी की पेराअी के खर्च में आठ आने प्रतिदिन के हिसाब से तेली की मजदूरी आ जाती है। अिसका अर्थ यह है कि वह मिल के फुटकर भाव पर तेल बेच सकता है और मिल के थोक भाव पर खली। यदि वह ग्राहक को खली सीधे बेचे, तो अुसे फुटकर बेचनेवाले के कमीशन के बराबर और पैसा मिल जायगा।

यह भी है कि देश के विभिन्न भागों में स्थित तेल की सब मिलों की स्थिति समान नहीं है। बंदरगाहों की मिलों को अंतर्भाग की मिलों की अपेक्षा अधिक सुविधाअें होती हैं। रेलवे की भाड़े की नीति से अैसी मिलों को तेल के बीज सस्ते भाव में और वर्षभर मिलने में मदद मिलती है। अिसलिअे लगातार साल-भर वे अपनी पूरी शक्ति से चलती हैं। अिसीसे अन्तर्भाग में स्थित मिलों की अपेक्षा अुनकी पेराअी कम पड़ती है। चूँकि मिलें अधिकांश खली बाहर भेजती हैं, अतअेव अन्तर्भाग की मिलों को पास के बंदरगाह तक खली भेजने का रेल-भाड़ा अधिक देना पड़ता है और अुतना ही अुन्हें कम मिलता है। अिस सबका अर्थ यह है कि अन्तर्भाग में स्थित मिलों को तेल बंदरगाहों पर स्थित मिलों की अपेक्षा अूँचे भाव पर बेचना पड़ता है।

नक्शे में दी हुअी मिल चूँकि अलसी और अेरंडी के तेल से वार्निश और दवाअियों के तेल बनाती है, अिसलिअे कच्चे तेलों के ठीक कमीशन प्राप्य नहीं है। लेकिन दूसरी जगह वे घानी और मिल के अंतर की पूर्ति निश्चित ही करती है। अिस संबंध में यह स्मरण रखना महत्त्वपूर्ण है कि कमीशन की दर जो मिल की जगह पर कम है, वही बहुत ज्यादा हो जाती है, जब तेल दूर के गाँवों में पहुँचता है।

अिस प्रकार हम अिस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अधिक मात्रा में अुत्पादन करनेवाली तेल-मिलें बैल-घानियों की अपेक्षा जितना पेराअी के कम खर्च और तेल अधिक निकालने से बचा लेती हैं, अुतना ही फुटकर बिक्री के लिअे अुनके दलालों को कमीशन देने में निकल जाता है, और अिस कारण से अुनकी क्षमता बैल-घानियों की अपेक्षा अधिक नहीं है, अर्थात् जहाँ तक अुपभोक्ता का संबंध है, वहाँ तक मिल द्वारा तेल की पेराअी—जिसमें दलालों का अवश्यक कमीशन भी सम्मिलित है—अुतनी ही पड़ती है, जितनी कि देशी घानी की। दूसरे शब्दों में, ग्राहकों को बड़ी तेल-मिलों की तथा-कथित क्षमता से कोअी लाभ नहीं होता। अब हम देखेंगे कि तेल-मिलें अन्य कोअी दूसरा अुपयोगी काम पूरा करती हैं या नहीं।

अुदाहरण के लिअे, हम सरसों का तेल ले कर शक्ति (पॉवर) से चलनेवाली घानियों और अेक्सपेलरोंवाली तेल-मिल की कार्यशीलता पर विचार करेंगे। अेक मिल २४ घंटे काम कर के २०० मन सरसों अेक दिन में पेरती है, और महीने में २५ दिन काम करके प्रतिमास १७५० मन तेल निकाल लेती है। नीचे दिये नक्शे में मिल और अुतने ही अुत्पादन के लिअे अवश्य संख्या मगनवाड़ी-घानियाँ चलाने के खर्च के विभिन्न मद दिये हैं। साथ में यह भी ध्यान रक्खा जाय कि मिल प्रतिदिन चौबीस घंटे काम करती हैं, जब कि घानी अेक दिन में केवल ८ घंटे। अेक घानी का दाम मय बैल के १२५ रुपया है। साधारणतया यद्यपि अेक आदमी दो घानी चला सकता है, पर काम और बिक्री की सुविधा के लिअे नीचे दिया हिसाब दो घानियों पर अेक आदमी और अेक लड़के के हिसाब से लगाया गया है :

	सामान के लिये पूँजी	पेराअी के खर्च का विश्लेषण					
		मजदूरी		पावर	मरम्मत	ब्याज और छीजन	योग
		मजदूरों की संख्या	रुपये				
मिल	रु. ३०,०००	१९	रु. ५००	रु. ८००	रु. २५०	रु. ३५०	रु. १,९००
मगनवाड़ी घानी	२६,९००	१४०	२,१००	२,१२०	२६५	२३५	४,७२०

१७५० मन तेल निकालने के लिअे मिल को ५,००० मन सरसों की आवश्यकता होती है। चूँकि घानी लगभग दो प्रतिशित कम तेल निकालती है। अिसलिअे मिल के बराबर तेल

निकालने के लिअे अुसे १३० मन सरसों की और अधिक आवश्यकता होती है, जिसमें ६ रुपया प्रति मन के हिसाब से ७८० रुपये और लगते हैं। तेल के अिधर-अुधर पहुँचाने में मिल को कमीशन १२½ प्रतिशत या २) प्रति मन के हिसाब से ३,५००) देना होता है। वह तेल १६ रुपया प्रति मन के हिसाब से बिकता है। अिसी आधार पर १७५० मन तेल का यौगिक मूल्य अिस प्रकार निकाला गया:—

	खर्च मय पेराअी के	अतिरिक्त बीज का दाम	कमीशन	योग
	रु०	रु०	रु०	रु०
मिल	३१,९००	×	३,५००	३५,४००
मगनवाड़ी-घानी	३४,७२०	७८०	×	३५,०००

अिसके अतिरिक्त मिलों को बीज, तेल और खली पर रेल-भाड़ा और खर्च लगाना पड़ता है और यह अतिरिक्त खर्च आसानी से अूपर के नक्शे में दिये हुअे मिल और घानी के तेल के बीच के प्रत्यक्ष मूल्य से कअी गुना हो जाता है। चूँकि तेली स्वयं ही तेल पेरता है अिसलिअे अुसे कमीशन में कुछ भी नहीं देना पड़ता। चूँकि वह स्थानीय बीज ले कर पेरता है, अिसलिअे अुसका रेल-भाड़ा भी बच जाता है। अिस प्रकार अुपभोक्ता के दृष्टिकोण से मिलें घानियों की अपेक्षा तेल सस्ता नहीं दे पातीं। मिल को घानी की अपेक्षा सामान के लिअे पूँजी की भी अधिक आवश्यकता होती है। मिल सातवें हिस्से से भी कम आदमियों को काम देती है। वेतन के रूप में वह चौथाअी से भी कम सम्पत्ति का वितरण करती है। मिल पॉवर भी गलत अिस्तेमाल करती है; क्योंकि बैल आदि जानवरों से वह काम नहीं लेती और न अुन बढ़अियों को ही काम पर लगाती है, जो आसपास के गाँवों में बसते हैं। अुनकी जगह मिल बाहर से आयी मशीनें अिस्तेमाल करती हैं और आखिर ग्राहकों को सस्ता तेल नहीं दे पाती।

३. अीख पेरना

अीख पेरने के विषय में हम युक्त प्रान्त की सरकार द्वारा प्रकाशित 'गुड़-मेकिंग रिव्यू' के जुलाअी १९४१ के अंक में से निम्न लिखित अंश अुद्धृत करते हैं:—

"देहातों में अनादि काल से ही गन्ना बैलों द्वारा चलनेवाले कोल्हू में पेरा जाता है। यह क्रिया बहुत मन्द और थकानेवाली है। लेकिन है बहुत सस्ती। क्योंकि कोल्हू चलाने का काम तो बैल कर लेते हैं, जिन्हें खेती के काम के लिअे पालना ही पड़ता है। अकसर यह सुझाव किया जाता है कि बैल के कोल्हुओं की जगह यंत्र-कोल्हू दाखिल किया जाय। यह यांत्रिक कोल्हू या तो सरकार रखे या कोअी सहकारी समिति। और गन्ने की खेती करनेवाले किसानों से बराबर हिसाब से गन्ने पेरने के दाम वसूल कर लिये जायँ।

दावा यह है कि अिस व्यवस्था से नीचे लिखे फायदे होंगे :

(१) ज्यादा रस निकलेगा। (२) काम जल्दी होगा। (३) गन्ना बोनेवाले को और अुसके बैलों को आराम मिलेगा।

यंत्र-कोल्हू से ज्यादा रस निकलेगा, यह दलील सही नहीं है। क्योंकि असलियत वैसी नहीं है। जहाँ तीन बेलनवाले यंत्र-कोल्हूओं से ६०% से ६२% रस निकल सकता है, वहाँ अच्छे बैलों के कोल्हू से ६५% से ७०% तक रस निकाला जा सकता है। याने कोल्हू से ३% से ८% तक ज्यादा रस निकलता है। अर्थात् कोल्हू से दिनभर में १ से ले कर २ मन तक अधिक रस निकल सकता है।

यान्त्रिक कोल्हू में दो सौ से ले कर तीन सौ मन तक गन्ना पेरा जा सकता है,जहाँ बैल-कोल्हू में सिर्फ तीन मन रोज पेरा जा सकता है। अिससे अैसा भ्रम होता है कि यान्त्रिक कोल्हू से काम जलदी हो सकता है। लेकिन अीख की खेती करनेवाले किसान की व्यक्तिगत दृष्टि से गुड़ बनाने की सारी क्रियाअें जलदी नहीं होतीं। अगर रस अुबालने की क्रिया दिन डूबे ही खत्म होती हो, तो गन्ने का रस बैलकोल्हू से दिन भर में निकाला जाय या यन्त्रकोल्हू से घण्टे दो घण्टे में निकाल लिया जाय, गन्ना बोनेवाले किसान की दृष्टि से समय की कोअी बचत नहीं होती। अुलटे थोड़ा नुकसान ही होता है, क्योंकि रस निकालते ही अगर जल्दी से अुबाला न जाय तो वह बिगड़ने लगता है। अिसके अलावा, अगर अेक ही यन्त्र से बहुत-से किसानों का गन्ना पेरा जाय, तो जिन लोगों की बारी शाम को या रात को आयेगी, अुन्हें रात में रस अुबालने में बड़ी दिक्कत होगी। अिसलिअे यह हो नहीं सकता कि रस तो शराकत में निकाला जाय और अुसे अुबालने की क्रिया हरअेक अलग अलग कर ले। अिसके विपरीत, रस अुबालना भी सम्मिलितरूप से किया जाय, तो गुड़ बनाने का अुद्योग घरेलू धंधा नहीं रह जाता और आर्थिक दृष्टि से सस्ता नहीं पड़ता।

अब रही यह दलील कि बैलों को और किसानों को आराम मिलेगा। यह दलील भी लचर है। क्योंकि गन्ने के कोल्हू अुन दिनों में चलते हैं जब कि बैलों को और किसानों को खेती-बारी के दूसरे काम बहुत कम होते हैं। अिसके अलावा बैलों को बीच बीच में आराम की अुतनी जरूरत नहीं है, जितनी कि अच्छी खुराक की है। अिसलिअे यह तजवीज आर्थिक दृष्टि से बिलकुल संगीन है।

देहातों में जो यन्त्र-कोल्हू काम आ सकता है, अुससे गन्ने का रस निकलवाने के दाम फी मन अेक आना होंगे, अैसा अन्दाज है। यह कीमत बहुत जबरदस्त है, क्योंकि किसान को अेक मन गन्ने के दाम सिर्फ तीन या चार आने मिलते हैं। अर्थात् अुसे अपनी पूरी आमदनी का चौथाअी हिस्सा रस निकलवाने के लिअे देना पड़ेगा। दिन में अकसर बत्तीस मन गन्ना पेरा जा सकता है; याने किसान को प्रतिदिन दो रुपये देने पड़ेंगे। अब, अगर अुसका मौसम सौ दिन का हो, तो अुसे दो सौ रुपये देने पड़ेंगे। अिससे स्पष्ट है कि यान्त्रिक कोल्हू दाखिल करने से शायद कअी जगह गन्ने की खेती करना ही महँगा पड़ने लगे, खास कर अुन स्थानों में जहाँ कि गुड़ सस्ता बिकता है।

खुली कढ़ाअी वाले कारखानों में भी किसानों की दृष्टि से गन्ना पेरने का काम बैलों द्वारा कराना ही फायदेमन्द होगा। खँडसाली भी गन्ने के बदले रस खरीद ले। सच तो यह है कि रोहिलखंड के अिलाके में रस खरीदने का तरीका बेहतर साबित हो चुका है और शक्कर का भाव बहुत ज्यादा गिर जाने के कारण जिस तीव्र आर्थिक

संकट का सामना करना पड़ा, अुसमें भी खुली कढ़ाओवाले और रस मोल लेनेवाले कारखानों का हाल यान्त्रिक कोल्हूवाले कारखानों की बनिस्बत कुछ कम बुरा रहा।"

अिन अुदाहरणों से बृहत् यान्त्रिक अुत्पादन का कार्य-कुशलता का दावा मौजूदा परिस्थिति मे भी साबित नहीं होता। जब कि मजदूर ज्यादा घण्टों तक काम करते हैं तब अगर यह हाल है, तो अधिक न्यायपूर्ण साम्पत्तिक विभाजन के लिअे जब काम के घण्टे कम कर दिये जायँगे, तब क्या होगा? क्योंकि यंत्रों के अुपयोग के कारण सम्पत्ति के विभाजन की जो समस्या अुपस्थित होती है, अुसके समाधान के लिअे यंत्रों के हिमायती यही अुपाय सुझाते हैं।

अूपर बतलाये हुअे अुद्योगों में और अुन्हींके समान दूसरे अुद्योगों में, बड़े पैमाने पर अुत्पादन करनेवाले यंत्रों से लाभ क्यों नहीं होता, अिसके कारणों की ओर ध्यान दिलाना जरूरी है। अिन अुद्योगों में जिन क्रियाओं की जरूरत होती है, वे बिलकुल सीधी-सादी हैं और सब मिला कर अेक या दो ही क्रियाअें करनी पड़ती हैं। यंत्र कितना ही कुशल क्यों न हो, अेक या दो क्रियाओं में वह बहुत अधिक गति नहीं दिखा सकता। अुलटे, यंत्रोद्योग में माल लाने-लेजाने के लिअे,अुसके वितरण के लिअे, अिश्तिहारों मे, बीमें में, करों में, ब्याज के रूप में, मरम्मत के लिअे और अिसी तरह की दूसरी कअी बातों में जो खर्च होता है, अुसके कारण यंत्रों की कुशलता से होनेवाली बचत की कसर निकल जाती है। अर्थात् यंत्रोद्योगों से जो लाभ होता है, वह अुनकी जटिलता के कारण विफल हो जाता है। या दूसरे शब्दों में, खरीदारों की दृष्टि से कारखाने सस्ती चीजें बेच कर अुनकी अधिक सेवा नहीं कर सकते। आर्थिक संयोजना की दृष्टि से भी विभिन्न जगहों से कच्चा माल अिकट्ठा कर के, अुसपर अेक मामूली और सीधासादा संस्कार करने के लिअे बड़े बड़े कारखाने स्थापित कर अुस माल का वितरण फिर अुन्हीं स्थानों में करना बहुत ही असंगत जान पड़ता है।

कारखाने में तीन बातें होती हैं: (१) बड़े पैमाने पर अुत्पादन, (२) अुपकरण, (३) प्राकृतिक शक्ति। विराट् अुत्पादन और प्राकृतिक शक्ति घरेलू धंधों मे दाखिल नहीं की जा सकती। लेकिन कारखानों में बरते जानेवाले सुधरे हुअे अुपकरणों के प्रयोग से घरेलू धंधे भी लाभ अुठा सकते हैं। अिस दिशा में बहुत-कुछ अुन्नति की गुंजाअिश है और अगर सही तरीके से काम लिया जाय, तो कारखानों की कुशलता घरेलू अुद्योगों में आ सकती है।

अिस सिलसिले में और भी अेक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। खाने की चीजों के कारखानों में अगर यंत्रों के प्रयोग से, या माल के संग्रह और वितरण की प्रक्रिया में, आहार की दृष्टि से अुन पदार्थों का गुण कम हो जाता हो, तो अैसे यंत्रों का त्याग ही करना होगा।

लेकिन यहाँ अेक सूक्ष्म भेद का, याने अुच्च रहन-सहन और विवेकी रहन-सहन के भेद का विचार प्रस्तुत है। अुदाहरण के लिअे, चावलों को सफेद बनाने के लिअे अुन्हें खूब पॉलिश दे कर अुनके भूसे के बिस्किट बना कर पौष्टिक खुराक प्राप्त करने को अुच्च जीवन भले ही कह लीजिये, लेकिन वह विवेकी जीवन तो हरगिज नहीं है। क्योंकि अुसके बदले पूरे चावल खाने से काम चल सकता है। यह अभिरुचि का सवाल है। क्योंकि जिन लोगों को जीवन की आवश्यकताअें पूरी करनेके साधन भी अुपलब्ध नहीं हैं, अुनके लिअे अधिक अच्छे जीवन का प्रतिपादन करना अेक चीज है और अुच्च जीवन के नाम पर तुनुकमिजाजी बढ़ाते जाना बिलकुल दूसरी बात है।

सर्वोदय की दृष्टि

अन्सारी-वृत्ति की जरूरत

" 'अिवैक्यूअी' के लिअे हम कौनसा शब्द अिस्तेमाल करें ?"—आसाम के अेक कार्यकर्ता से पूछा। अुन्होंने कहा, 'भगनिया' अथवा 'रण-भगनिया'। मुझे वह शब्द पसन्द नहीं आया। युद्ध में लड़ने का वचन दे कर जो लोग डर के मारे रणभूमि से भाग आते हैं, जिन्हें अंग्रेजी में 'डेजटर्स' कहते हैं, अुनके लिअे 'रणभगनिया' शब्द ठीक हो सकता है। बंगाल में 'अिवैक्यूअीज' के लिअे 'शरणार्थी' शब्द व्यवहार किया जा रहा है। यह कुछ अच्छा है। अिस तरफ अुन्हें 'देशत्यागी' कहते हैं।

अिस्लाम के प्रारंभिक अितिहास में 'हिजरत' का प्रकरण आता है। 'हिजरती' लोग डर के मारे देश नहीं छोड़ते थे; किन्तु प्रतीकार करने की अपनी तैयारी न देख कर प्रतिकूल स्थान छोड़ कर अनुकूल स्थान में जानेवाले और वहाँ पूरी तैयारी कर के फिर से लड़ने के लिअे आने का संकल्प करने वाले लोगों को 'हिजरती' कहते थे। कम-से-कम बाद का अितिहास देखते 'हिजरती' का यही अर्थ हुआ है। मुहंमद पैगंबर के जो अनुयायी मक्का छोड़ कर मदीना गये, अुन्हें 'हिजरती' कहते हैं और मदीना के जिन हम-मजहबियों ने अिन्हें आश्रय दिया, अुन्हें 'अन्सारी' कहते हैं। मुस्लिम समाज में अिसी कारण अन्सारियों की प्रतिष्ठा विशेष है।

बर्मा से जो लोग अनेक कष्ट सह कर स्वदेश आ रहे हैं, अुन्हें न तो हम 'देशत्यागी' कह सकते हैं, न 'हिजरती'। अुन्हें 'शरणार्थी' कहने की अपेक्षा 'रक्षणार्थी' कहना चाहिअे। बर्मा में जानमाल की सलामती नहीं है, यह देख कर और वहाँ का समाज स्वकीय नहीं है, अैसा अनुभव कर, रक्षण पाने के लिअे वे स्वजनों के पास आ रहे हैं।

सिंध में जब हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े होने लगे, तो गाँव में रहनेवाले हिन्दू वहाँ अपनी जान का खतरा देख कर शहर में आ कर रहने लगे। वहाँ के गाँवों में अधिकांश लोग मुसलमान ही हैं। हिन्दू बहुत कम होते हैं। अितना होते हुअे भी मैं वहाँ के लोगों को कह सका कि गाँव छोड़ कर जाना ठीक नहीं है। धर्मभेद होते हुअे भी सिंध के हिन्दू और मुसलमानों का अेक ही समाज है। गाँव से डर कर जो शहर में आये, अुन्हें शहर भी छोड़ कर सिंध के ही बाहर जाना पड़ेगा। हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा अेक कृत्रिम परिस्थिति है। सिंध के सिंधियों को हमेशा के लिअे अेकत्र ही रहना है। धर्मभेद अुन्हें अेक-दूसरे से जुदा नहीं कर सकता।

बर्मा की बात अैसी नहीं है। बर्मा का समाज अलग है। वहाँ का राज अलग है। बर्मी लोगों के साथ हमारी हमेशा से दोस्ती भले ही हो, किन्तु हम अुनके साथ अेकजीव नहीं हुअे हैं। अंग्रेजों ने अुनके और हमारे बीच झगड़े भी पैदा किये हैं। अैसी हालत में अराजकता के दिनों में हमारे लोगों के हक में बर्मा में रहना अच्छा नहीं था। वहाँ से वापस आना स्वाभाविक था। हिन्दुस्तान सरकार अगर सभ्य होती, समर्थ होती और प्रजावत्सल होती, तो वह ब्रह्मदेश के भारतवासियों की स्थिति पहले ही से शुद्ध और मजबूत बना लेती। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य में भारतवासियों की स्थिति शिकारी के कुत्ते के जैसी रही है। अंग्रेज लोग जहाँ किसी देश के लोगों को निचोने गये, वहाँ पर भद्दा और कठिन काम करने

के लिअे भारतवासियों को ले गये। अपना मतलब पूरा होते ही अंग्रेजों ने भारतीयों को निकाल देने की कोशिश की है और अुस कोशिश में स्थानीय लोगों में और भारतीयों में झगड़ा लगा देना तो हमेशा की चाल है। अंग्रेज सिलोन और बर्मा के लोगों को सिखाते हैं कि ये हिन्दुस्तानी लोग तुम्हें लूटने आये हैं, ये 'विदेशी' हैं। मानो अंग्रेज तो सिलोन और बर्मा के अुद्धारक देवतापुरुष ही हैं।

जो हो। हमारे लोगों का बर्मा छोड़ कर आना बिलकुल स्वाभाविक था। अुन्हें यह कहना, कि तुम कायर हो, अपनी स्वीकृत मातृभूमि के प्रति बेवफा हो—कहनेवाले को शोभा नहीं देता। अिन कहनेवालों ने कभी अिन तीस बरसों में ब्रह्मी लोगों और भारतीयों के बीच अेकता स्थापित करने का प्रयास भी किया था?

जिस समाज में लोगों को अुनका कर्तव्य समझाने वाले और अुनकी कठिनाअियाँ दूर करनेवाले दीर्घदर्शी नेता नहीं होते, वह समाज अनाथ है। बर्मा के भारतवासियों को सनाथ बनाने की भरसक कोशिश आज तक जिन्होंने की हो, अुन्हींको अुन्हें भला-बुरा कहनेका कुछ अधिकार है।

जहाँ अपनी स्थिति अशक्य-सी हो गयी है, अुस स्थान को छोड़ देना मनुष्य के लिअे स्वाभाविक है। सरकार और लोक-नेताओं का यह कि वे समय पर जाग्रत हो कर, अुन्हें रक्षणार्थ स्थानान्तर करने में अुचित सलाह और सहायता दें।

आज अंग्रेज लोग और अंग्रेज सरकार अपने जातभाअियों के लिअे, गोरी चमड़ीवालों के लिअे और पतलून-धारियों के लिअे अिस कर्तव्य का सन्तोषकारक पालन कर रही है—हमारे लिअे सन्तोषकारक नहीं; किन्तु अुस जाति के निर्लज्ज स्वार्थ के लिअे सन्तोषकारक पालन हो रहा है। जब किसी किले से फौज हटानी पड़ती है, तब आदमियों को भी हटाना पड़ता है और घोड़े, गधे, खच्चरों को भी हटाना पड़ता है। लेकिन दोनों के प्रति अेक-सी वृत्ति नहीं रक्खी जाती।

बर्मा से निकले हुअे जिन लोगों को कहीं-न-कहीं रक्षण मिल गया, वे वहाँ पहुँच गये। लेकिन जिनका स्वदेश में कोअी रहा नहीं है, और परदेश भी जिनका स्वदेश नहीं बना है, अैसे दुर्दैवी लोगों को अपनानेवाला कोअी स्वदेशी 'अन्सारी वर्ग' तैयार करना चाहिअे। जिसकी जो भाषा हो, अुसी प्रान्त में अुसे भेजना चाहिअे। अैसा करने के लिअे प्रान्त प्रान्त में 'अन्सारी संघ' स्थापित होना जरूरी है। अमेरिकन कैनडा ने अंग्रेजों के बच्चों को अपना लिया, अुसी तरह हमें भी अपने अपने प्रान्त के बर्मावासियों को अपने समाज में ले लेने की तैयारी करनी चाहिअे।

जब युद्ध बंद होगा और ब्रह्मदेश के साथ हमारा पूर्ववत् परस्पर सहयोग का संबंध कायम होगा, तब भारत और बर्मा के नेताओं और सरकारों को आगे-पीछे की सारी बातें सोच कर दोनों के बीच शुद्ध संबंध कायम करना होगा।

आज अपने लोगों को असहाय छोड़ देने से काम नहीं चलेगा।

२८.४.'४२ का० का०

आश्रय और रक्षणदान

जो लोग अिस वक्त कलकत्ता, मद्रास तथा पुरी का किनारा और बम्बअी, कराची आदि शहर छोड़ छोड़ कर भाग रहे हैं, अुनका सवाल अलग है। अिन शहरों पर जापान या जर्मनी

द्वारा आक्रमण होने की सम्भावना बहुत कम है। अिन शहरों का रक्षण गांधीजी के अहिंसक तरीके से नहीं, किन्तु ब्रिटिश सरकार की युद्ध-नीति से होनेवाला है। सारी दुनिया का यह दस्तूर है कि जिस शहर को अिस तरह लड़ना पड़ता है, अुस शहर की संरक्षक सेना का बोझ कम करने के लिअे और वहाँ आ कर रहनेवाले युद्ध्यमान लोगों की अन्न-सामग्री खा कर कम करने के दोष से बचने के लिअे, फालतू लोग अैसे स्थानों को आक्रमण के पहले व्यवस्थित-रूप से छोड़ देते हैं।

आज अिन शहरों में अैसा नहीं हो रहा है। जहाँ खतरा नहीं है, वहाँ से भी लोग भागते हैं और जहाँ खतरा पैदा हुआ है, वहाँ से संरक्षकों का बोझ कम करने की दृष्टि से लोग जा रहे हैं, अैसा भी देख नहीं पड़ता। अगर हमारी अपनी सरकार होती और वह बुद्धिशाली होती, तो बात अलग थी। तब तो राजा और प्रजा का भेद ही नहीं रहता। दोनों परस्पर-विश्वास से काम ले सकते। लेकिन यहाँ पर अंग्रेज सरकार राजधर्म को पूरी तरह जानती ही नहीं। और जनता के लिअे तो पुराने आक्रमणकारी से नये आक्रमणकारियों के खिलाफ कितनी मदद मिलने की सम्भावना है, यही सोचने के दिन आ गये हैं। कलकत्ता, बम्बअी, मद्रास आदि शहरों में बंगाली, गुजराती, मराठी, तमिळ, आंध्र, लोग तो हैं ही। अिनके अलावा अन्य प्रान्तों के लोग भी अिन शहरों में बसे हुअे हैं। ये कोअी परदेशी लोग नहीं हैं। हमारे ही देश के लोग हैं। किन्तु अुन्हें भी स्थान-त्याग करना जरूरी हो जाता है। जिन्हें जाने के लिअे कोअी स्थान है, वे तो अपनी अपनी जगह पहुँच ही गये हैं। लेकिन अैसे हजारों लोग हैं, जो अपने अपने प्रान्त में जाना तो चाहते हैं, लेकिन अिसलिअे नहीं जा सकते कि अुन्हें अपनानेवाला वहाँ कोअी नहीं है और जाने के लिअे जो धन चाहिअे वह भी अुनके पास नहीं है।

अैसे लोगों को मदद पहुँचाना अिन बड़े शहर के लोगों का भी कर्तव्य है और अुन प्रान्तों का भी है, जहाँ से वे आये हैं।

शहर में स्थायीरूप से बसे हुअे अिन लोगों की धनोपार्जन-शक्ति और कार्यकुशलता मामूली-से कुछ अधिक होती है। अैसे लोगों को अपनाने में प्रान्त का नुकसान नहीं है, किन्तु फायदा ही है। प्रान्तों को अिस सवाल की तरफ स्वार्थी दृष्टि से देख कर ही अुत्साहपूर्वक अिन्हें रक्षण और आश्रय देना चाहिअे और अिसी दृष्टि से प्रान्त प्रान्त में आश्रय-समितियाँ खोलनी चाहिअें। और खतरे में आये हुअे बड़े शहरों को चाहिअे कि वे रक्षणार्थी लोगों की पूरी जानकारी देनेवाली वर्गीकृत फेहरिस्तें तैयार करें और अुन्हें प्रान्तीय आश्रयसमितियों के पास भेज दें। हमें ध्यान में रखना चाहिअे कि शहरों को खाली कर के गाँवों में चले जाने की बात दो दिन का खेल नहीं है। जो शहरों से झट भाग जाते हैं, फिर चले आते हैं, फिर भाग जाते हैं, अैसे लोगों को तनिक भी मदद नहीं करनी चाहिअे। अुल्टे अगर हो सका, तो अुनको अैसा करने से रोकना चाहिअे।

फेहरिस्तें बनाना सब से महत्त्व की बात है। अिसमें लोक-सेवकों को अच्छा काम मिलेगा और हमारी स्वराज्य-शक्ति भी बढ़ेगी।

२८:४:'४२ का० का०

चिल्ला अुठने का फर्ज

खुद को कितनी पीड़ा हो रही है, अिसका किसी को पता भी न चले अिस तरह अपना दर्द चुपचाप सहन करना अेक बड़ा गुण है। लेकिन

वह आम—निरपवाद—नहीं है। अुदाहरणार्थ, जब दूसरा आदमी हमारा कोअी अंग सेकता हो या अुसमें गरम लेप लगाता हो, तब यदि वह बहुत अधिक गरम हो गया हो, तो हमारा फर्ज है कि हम चिल्ला अुठें। अुस वक्त चुपचाप बरदाश्त कर लेना न हमारे लिअे अच्छा है और न अुसमें हमारे मित्र के साथ न्याय है। क्योंकि बाद में जब फफोला अुठेगा, तब हमारी पीड़ा बढ़ जायगी और हमारा मित्र शरमायगा या खिसियायगा।

अिसी तरह सार्वजनिक कामों में जब हमारी राय में कोअी भूल हो रही हो, बुराअी पैदा हो रही हो, खतरनाक नीति अखतियार की जा रही हो, तब हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम चिल्ला अुठें। चाहे हमारे दूसरे साथी साथ दें या न दें, चाहे वे मना भी करें, हमारे बुजुर्ग भी हमें खामोश रहने को कहें, तो भी अगर हमें वह चीज निभाने योग्य मालूम न होती हो, तो अकेले भी चिल्ला अुठना हमारा फर्ज है। और क्योंकि हम अकेले हैं, अिसलिअे हमें अपनी पूरी ताकत लगा कर चिल्लाना चाहिअे। अैसे वक्त किसीके लिहाज के लिअे गुंजाअिश नहीं है।

हिंदुस्तान के राजनैतिक कामों में मैं कोई हैसियत नहीं रखता। लेकिन फिर भी अेक सार्वजनिक सेवक के नाते आमरूप से मनुष्य जाति के अुत्कर्ष और विशेष तौर पर हिन्दुस्तान की आजादी और अुन्नति का विचार करता हूँ। अिसलिअे जब मुझे देश को अुलटे रास्ते ले जाने वाली नीति की बू आती है, तब बिना चिल्ला अुठे मुझसे रहा ही नहीं जाता। अिस तरह चिल्ला अुठने के लिअे मुझे किसीकी प्रेरणा की जरूरत नहीं होती, और न किसी को नाराज करने का डर ही मुझे रोकने में समर्थ होता है। क्यों कि मैं अपनी ही पीड़ा से चिल्ला अुठता हूँ, किसी पक्ष को मजबूत या कमजोर करने के लिअे नहीं।

अिस कारण से सन् १९३९ से, जब पहली बार कॉंग्रेस की वर्किंग कमिटी और कॉंग्रेस-महासमिति ने अहिंसा को ठुकराने और यूरोप के रणगीतों से पागल बनने की नीति का आरंभ कर दिया, तब से देश का जहाज खेने की वर्किंग कमिटी के नेताओं की ताकत पर से मेरा विश्वास अुठ गया है। जो अेक पतवारवाला था, अुसे अुन्होंने खारिज कर दिया और अब जिस समुद्र में जहाज आ पहुँचा है, न तो अुन्हें अुसके नकशे का ज्ञान है, न वे दिशा खोजना जानते हैं, और न तो गहराअी नापने की काबिलियत रखते हैं। सच्ची जमीन और दिखाअू जमीन * का भेद तक नहीं जानते। यह भी नहीं समझते कि वे आज सब घबराये हुअे हैं और शांति में दिमाग चलाने की ताकद खो बैठे हैं। अपनी घबराहट को ही वे अपनी समझदारी मान रहे हैं।

अैसी परिस्थिति के लिअे मैं वर्किंग कमिटी के गांधीभक्त मेंबरों की कमजोरी को भी जिम्मेदार समझता हूँ। १९३९ में गांधीजी को कॉंग्रेस की खिदमत से मुक्त करने में अिनमें से भी कअी शामिल थे। अुस वक्त भी जो गांधीजी के विचार के थे, वे चिल्ला नहीं अुठे। जब आदमी को असह्य पीड़ा होती हो, तब वह रोम रोम से अुसे प्रकट करेगा। वह दबी आवाज से बोल ही नहीं सकता। जितना ज्यादा अकेला हो, अुतने ही अधिक जोर से पुकारेगा। मेरी शुरू से यह शिकायत रही है कि ये सदस्य

* जिस तरह गर्मी के दिनों में मैदानों में दिखाअू तालाब (मृगजल) नजर आता है, और अुससे हरिण भुलावे में पड़ते हैं, अुसी तरह समुद्र में दिखाअू जमीन (पंछी-भूमि) नजर आती है।

अपनी कमजोरी या, संदेहवृत्ति या अस्पष्ट दर्शन के कारण शुरू में ही नहीं बल्कि बार बार मौके आनेपर भी, खामोश रहे। हरेक ने चिल्लाने की अिच्छा की; लेकिन दूसरों का साथ या गांधीजी की आज्ञा खोजते रहे। मेरी राय में अैसी आज्ञा मांगने में और अुसके न मिलने के कारण रुक जाने में अुनकी अपनी ही कमजोरी थी। अगर किसी घर में आग लगी हो और अुसके अंदर ४-५ बच्चे बंद रह गये हों, तो क्या वे चिल्लाने के लिअे अेक-दूसरेकी राह देखेंगे, या अपनी माँ से पूछने जायेंगे कि हम चिल्लाअें या खामोश रहें? और माँ खामोश रहने की सलाह दे, तो भी वे खामोश कैसे और कब तक रह सकते हैं?

कम-से-कम मेरे स्वभाव में यह चीज नहीं है, और न मैं अैसी खामोशी को अच्छा ही समझता हूँ। अिसलिअे मैं न तो हुदली में अकेले विरोध करने से और न सन् १९३९ और १९४० की वर्धा और पूना की महासमितियों के वक्त अपनी आवाज अुठाने से अपने को रोक सका। अैसे समय भी गांधीजी को पूछ कर बयान निकालने की मुझे सूझ ही नहीं सकती। अुन्हें पूछूं और वह इजाजत भी दें, तो भी वह अपने ढंग से बोलने के लिअे कहेंगे। पर वह मेरी चिल्लाहट नहीं हो सकती। और यदि मुझे मेरा दुःख प्रकट करना हो, तो अपने ही ढंग से और जोर से करना चाहिअे।

मैं नहीं जानता कि अिस सप्ताह में होनेवाली वर्किंग कमिटी और महासमिति की बैठक में क्या होनेवाला है। लेकिन मैं अितना जानता हूँ कि जिनके दिल में यह विचार भरा है कि हिंदुस्तान को अिस लड़ाअी को चलाने में अुसी तरह का जोश महसूस कराना चाहिअे जैसा कि चर्चिल, रुजवेल्ट, हिट्लर और जापान *करता है, अुनका और हमारा मार्ग अेक नहीं है और कॉंग्रेस वर्किंग कमिटी को या तो अेक का प्रतिनिधि बनना चाहिअे अथवा दूसरे का। जो अुस मत के है, वे चाहे सरकार से विनाशर्त या किसी खास शर्त पर, सहयोग की नीति ग्रहण* करें, दूसरे राजकीय पक्षों से चाहे जैसा समझौता करें, अुससे हमारा कोअी संबंध नहीं है। हिंदुस्तान की जनता की भलाअी की दृष्टि से हमारा पक्ष अिस लड़ाअी को अेकदम रोकने का ही हो सकता है। नाजीजम्, फासीजम्, काम्युनिजम् से हमारा कोअी सीधा संबंध नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य के अलावा किसी देश या सिद्धान्त से हमारा अिस वक्त स्वतंत्र झगड़ा नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य से जरूर हमारा विरोध है। लेकिन अुसके लिअे हम किसी बाह्य शक्ति की दखल नहीं चाहते—न जापान और जर्मनी की और न चीन, रूस या अमेरिका की। हमारा अुद्धार करनेवाले विदेशी राष्ट्र मेहरबानी करके हमारा देश छोड़ कर चले जायें, तो गनीमत है। हम अुन्हें धन्यवाद देंगे। जापान आवेगा तो हम देख लेंगे।

अिस प्रकार युद्धवाद और युद्ध-विरोध जैसी दो परस्पर विरोधी विचारधाराअें रखनेवाले सदस्य होते हुअे भी, करीब तीन साल से वर्किंग कमिटी में अेकता का देखावा किया जा रहा है। मैं नहीं जानता कि स्वयं नेताओं के अलावा, अिस देखावे से और कौन भुलावे में पड़ा है? क्या मैं आशा करूं कि अिस कष्टप्रद माया का अब अंत आवेगा?

२७:४:'४२ कि० घ० म०

'पाकिस्तान' का सही अिलाज

पाकिस्तान की चर्चा ही नहीं करनी अैसा हमने निश्चय किया था। लेकिन 'बाबा-कंबल-

न्याय' से पाकिस्तान फिर से हमारे सामने खड़ा है। सवाल सिर्फ राजनैतिक नहीं है। हिन्दुस्तान को अपना मिशन संभालना है या अुसे छोड़ देना है, यही असली सवाल है।

अरबस्तान में गैर-मुस्लिमों को रहने ही नहीं दिया जाता। अमेरिका में अैसे लोगों को नागरिक नहीं बनने देते जो अमेरिकन ढंग से रहने को तैयार नहीं हैं; याने जिन्हें अमेरिकन लोग अपनाने को तैयार नहीं हैं। क्या हिन्दुस्तान में अैसी ही हालत पैदा करनी है कि हिन्दू और मुसलमान अेक घर के, अेक हो कर, रह ही न सकें? अगर मुसलमान यह कहें कि हम अपना अलग राज बना कर अच्छे और सच्चे पड़ौसी बन कर रहेंगे, लेकिन अेक घर के हो कर नहीं रह सकते, तो यह सूत्र हमें किस हद तक ले जाने वाला है, यह देखना चाहिअे। सारे देश में मुसलमानों की संख्या कम है। अिसलिअे देश के टुकड़े कर के जितने हिस्से में मुसलमानों की संख्या ज्यादा है अुतना भाग अलग कर के, अुसका राज अुन्हें दे देने की बात अगर चली, तो जिस शहर में मुसलमानों की संख्या काफी तादाद में है लेकिन अुनका बहुमत नहीं है, वहाँ पर भी अिसी न्याय से शहर के दो टुकडे करने होंगे और दो अलग अलग म्युनिसिपालिटियाँ बनानी होंगी।

जहाँतक प्राथमिक शिक्षा का ताल्लुक है अैसे दो अलग अलग विभाग किये भी गये हैं। यह स्थिति तभी चल सकती है, जब दोनों गुलाम रहें और दोनों के सिर पर अैसी सल्तनत सवार रहे कि जो दोनों को अलग अलग और आपस में लड़ते रखने में ही अपनी भलाअी देखती है। अगर अंग्रेज हार कर यहाँ से चले गये, तो हम दोनों को मिल कर और किसी को बुला कर अपने सिरपर बिठाना होगा।

तो क्या देश के टुकडे करने के अिस संकट से हम अपने को बचा ही नहीं सकते?

अंग्रजों ने हिन्दू समाज के दो टुकड़े करना चाहा। लेकिन गांधीजी के ब्रह्मास्त्र के कारण हिन्दू समाज बच गया और हरिजन हिन्दू समाज के अन्दर ही रहे।

अब हिन्दू-मुसलमानों को सदा के लिअे अलग कर के हिन्दुस्तान को कमजोर करने की नीति आजमायी जा रही है। अितना ही नहीं, किन्तु खालसा मुल्क [ब्रिटिश अिण्डिया] हाथ से चला जाय, तो भी जिसे (अिण्डियन अिण्डिया) देशी राज कहते हैं, अुसे 'युक्ति-प्रयुक्ति' से अपने हाथ में रख कर और वहाँ अपनी फौज रख कर, अिस देश पर अपना कब्जा कायम रखने की नीति ब्रिटिश सरकार अब बरत रही है। यह देख कर अेक अंग्रेजी कवि की अेक पंक्ति याद आती है कि प्रायश्चित्त में भी ये लोग नये नये पापों के मंसूबे बाँधते जाते हैं:

Even in penance planning sins anew

सचमुच स्वभाव दुरतिक्रम है। अंग्रेजों को मर मिटना मंजूर है। लेकिन अपनी यह स्वाभाविक दुर्जनता छोड़ने को वे तैयार नहीं है। 'ब्रिटिश अिण्डिया' जब 'अिण्डियन अिण्डिया' होगा, तब 'अिण्डियन अिण्डिया' को 'ब्रिटिश अिण्डिया' बनाने की अभी से कोशिश हो रही है। और जो हालत यूरोप में बालकन-राज्यों की है, वही हिन्दुस्तान के हरअेक सूबे की हालत वे करने जा रहे हैं।

अंग्रेजों की कुटिलनीति समझने की बुद्धि अब हममें आ गयी है। लेकिन अुस नीति का अिलाज करने की अक्ल हमे सूझती नहीं है।

अंग्रेज हमारे बीच झगड़ा पैदा करने के लिअे तैयार हैं। लेकिन हम अपनी ओर से अुस नीति का शिकार होने को तैयार क्यों होते हैं? अभी अेक मित्र से चर्चा करते मैंने कहा कि दक्षिण में ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर का झगड़ा चल सकता है, लेकिन लाख कोशिश करने पर भी क्या गुजरात में अंग्रेज ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर का झगड़ा पैदा कर सकते है? जहां सामाजिक संगठन मजबूत है, जहां समाज के भिन्न भिन्न अवयव अेकजीव, अेक-शरीर, बन गये हैं, वहाँ पर कोअी भी बैरूनी शक्ति टुकड़े टुकड़े नहीं कर सकती। जहाँ अिस बारे में हमारी कमजोरी दीख पड़े, वहाँ पर हमें अपनी शक्ति बढ़ा कर

और आवश्यक बलिदान दे कर पुनः सामाजिक अेकता फिरसे स्थापित करनी होगी। जैसे हम हरिजन और सवर्णों के बीच की अेकता और अभिन्नता सम्हालने के लिअे कोशिश करते हैं, वैसे ही हिन्दू-मुसलमानों के बीच मेल स्थापित करने के लिअे हमें कोशिश करनी चाहिअे। दूसरा अिलाज नहीं है।

जल्दबाज और अश्रद्धालू लोग कहते हैं कि अेक हाथ से जैसे ताली नहीं बज सकती, अुसी तरह अेक ही तरफ से अेकता करने की कोशिश सफल नहीं हो सकती; अक तरफ की अुदारता कमजोरी मानी जाती है और दूसरे पक्ष का मिजाज आसमान में चढ़ने लगता है। समझौते की बात अलग है। समझौता तो दुश्मन से भी हो सकता है। बाजार में जब सौदा चलता है, तब दोनों पक्ष अपना अपना लाभ ही देखते हैं। जहाँ तक हो सके हर अेक पक्ष अपनी ओर खींचता है। अिसी तरह हिन्दू सभा और मुस्लिम लीग को खींचातानी करने दीजिये। कोअी-न-कोअी रास्ता निकल ही आयगा। क्या बंगाल में समझौता नहीं हुआ है?

दीर्घदर्शी लोग सिर हिला कर कहते हैं कि अैसा संघ यात्रा के आखिर तक टिक नहीं सकता। परस्पर अविश्वास की यारी अैन मौके पर धोखा ही देगी। अविश्वास की बुनियाद पर रचा हुआ समझौता स्थायी हो ही नहीं सकता। रोज अुठ कर अविश्वासी संगठन करते रहना और रोज समझौता ढूंढ़ते रहना, यह नीति राष्ट्रीय चारित्र्य को मिटियामेट कर देगी।

हमें यह विश्वास रखना चाहिअे कि मनुष्य-स्वभाव में दुर्जनता भी है और सज्जनता भी है। ये दोनों बातें हरअेक आदमी में होती ही हैं। व्यक्ति अपने हृदय में जिस तरह दुर्जनता को दबा कर सज्जनता को विजयी बनाने की कोशिश करता है, अुसी तरह समाज में भी अविश्वास की वृत्ति को दबा कर अेकता की वृत्ति बढ़ाने की कोशिश करनी होगी। सत्ययुग का मार्ग समझौते का मार्ग नहीं है। अेकता के लिअे जो कुछ करना आवश्यक है वह सब कुछ हम अपनी ओर से करते जायँ और अिस विश्वास से कि सदाचार का फल मीठा ही होगा, अच्छे दिन की राह देखते रहें, यही शुद्ध नीति है।

जबतक हिन्दू और मुसलमान अेक-हृदय नहीं हुअे हैं, तब तक दोनों के लिअे खतरा है ही। जो अिस खतरे को पहचान सका है, अुसका कर्तव्य है कि आवश्यक बलिदान दे कर अुसे टालने की कोशिश करे।

अेक दूसरे से परिचय और परस्पर-सेवा ही अिसकी साधना है। अेक ही समाज के दो हिस्से जब आपस में अविश्वास करने लगते हैं, तब हर-अेक हिस्से का यह कर्तव्य है कि वह दूसरे हिस्से से परिचय बढ़ावे और अुसकी सेवा करे और जब-तक संबंध की शुद्धता कायम नहीं होती है, तब तक समझौते का प्रयत्न न करे। अशुद्ध भूमिका पर रह कर समझौते की कोशिश करने से मामला बिगड़ जाता है। बलिदान, त्याग, और सेवा में हम चाहे जितनी जल्दबाजी करें, वह हमारे हक में होगी। समझौता तो शुद्ध भूमिका का मुहूर्त आने पर ही हो सकता है।

धर्मभेद होते हुअे भी हम खून से, जाति से, संस्कृति से, अितिहास से और भाग्य से अेक ही हैं, यह अनुभव जब जीवित और प्रभावशाली होगा, तभी पाकिस्तान का भूत दफनाया जा सकेगा।

२९ : ४ : '४२ का० का०

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जून, १९४२
वर्ष४

प्रजाक्षोभ की अग्नि

[काका कालेलकर]

प्रजापीड़न-संतापात् समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान् नादग्ध्वा विनिवर्तते ॥

प्रजा की, याने जनता की, परेशानी से जो प्रजाक्षोभ अथवा अग्नि पैदा होती है, वह जबतक अुस राजा के सारे खानदान का और अुसकी संपत्ति और कीर्ति का और अुसकी हस्ती का ही नाश नहीं कर डालती, तब तक शांत नहीं होती ।

यह अन्याय के कारण चिढ़े हुअे किसी दुर्बल की शापवाणी नहीं है । किन्तु राजा और प्रजा दोनों के जीवन का और स्वभाव का पूरा निरीक्षण करने के बाद और सदियों के अितिहास का अध्ययन करने के बाद पाया हुआ सनातन सत्य है ।

राजा का अधिकार कितना और प्रजा का कितना, अिसकी चर्चा या बँटवारा करने के वे दिन नहीं थे । अुन दिनों प्रजा को परदेशी राजा का शायद ही अनुभव होता होगा । स्वकीय राजा का अपनी प्रजा के कल्याण और अनुरञ्जन के लिअे सदा तत्पर रहना स्वाभाविक ही था । कोअी बेवकूफ राजा ही प्रजापीड़न जैसी आत्मघाती प्रवृत्ति पसन्द करता होगा। तो भी, जब कभी परदेशी होने के कारण, बेवकूफ होने के कारण, या दोनों कारणों से, राजा प्रजापीड़क बनता था, तब प्रजा जहाँ हो सके, सहन करती थी; और जब पीड़ा असह्य हो जाती थी, तब प्रजा जिन्दा होने के कारण, जल अुठती थी । फिर तो राजा को अुस प्रजाक्षोभ की अग्नि में अपने प्राण, अपना खानदान, अपना अैश्वर्य, सब कुछ आहुति के रूप में अर्पण करना पड़ता था । यह केवल पौराणिक कथा नहीं है । रूस में यही होता हुआ हमने अपने जमाने में देखा है ।

रूस में जबतक प्रजा का संगठन नहीं हुआ था, तबतक प्रजा को राजा की ओर से, याने अुसकी नौकरशाही की ओर से, असह्य पीड़ा सहन करनी पड़ी । जब वह प्रजा पूर्णरूप से संगठित हुअी, तब अुसे अपने अुद्धार का रास्ता मिला और रूसी राजवंश अपने दीर्घकालीन प्रजाद्रोह से ही नष्ट हो गया । अिसपर से अेक सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है कि प्रजा-संगठन में जितनी देर हो जाती है, अुतना ही पाप बढ़ता है, और प्रजा का दुःख भी बढ़ता है । प्रजासंगठन करने की शक्ति होते हुअे भी जो अिस बात की ओर अुदासीन रहते हैं, अुनके सिर पर यह सारा पाप है ।

और जब अैसे दिन आते हैं कि किसी-न-किसी कारण सब के सब राजा और सब की सब सरकारें प्रजा-पीड़न करने लगती हैं, और जहाँ देखिये वहाँ आतंक का ही राज्य चलता है, तब समस्त प्रजा प्रक्षुब्ध होकर प्रथम राजवंश का नाश करती है और बाद में राजसंस्था का ही नाश करती है। यदि अेक राजा गया; तो अुसके बाद, भला या बुरा, दूसरा राजा आ सकता है। परन्तु राजपद का ही विच्छेद करने के बाद सिर्फ प्रजातंत्र ही रह जाता है। प्राचीन रोमन लोगों ने यही किया, स्पेन ने यही किया, रूसी लोगों ने भी यही किया। अब आज की दुनिया विश्वयुद्ध से परेशान होकर राज्यतंत्र, अर्थतंत्र (अेकॉनॉमिक ऑर्डर) और धर्मतंत्र, तीनों की बलि लेना चाहती है। मानवीय अितिहास में आज तक कभी नहीं हुआ था, जितना मानव-संहार आज चल रहा है। अिसके अंत में मनुष्य-हृदय की अदालत के सामने ये तीनों तंत्र (राज्य-धर्म-और-अर्थ) अभियुक्त होकर खड़े रहेंगे और अिन्हें अपना अपना अधिकार छोड़ देना पड़ेगा। अिन तीनों का दाह किये बिना क्षोभाग्नि शान्त होने की नहीं। अुसके बाद जीवनव्यवस्था और समाजव्यवस्था कैसी होगी, अिसका चित्र जनता माँग रही है। मनुष्यजाति के नेताओं की विधायक बुद्धि अुस चित्र को खींचने के प्रयास में व्यस्त है। सबके मन में अेक ही विचार है—

'सर्वोदय किस तरह सिद्ध किया जाय' ?

२

अितिहास ने पुराना अनुभव संचित करके कहा कि राजा का नहीं; किन्तु राजपद का ही नाश करो। लोगों ने राजपद का नाश किया; लेकिन राज्यतंत्र चलाया। प्रजा को ही राजा के अधिकार दिये; लेकिन राज्य-सत्ता का संगठन जैसा का तैसा रक्खा।

अब अनुभव होने लगा है कि सत्ता ही खतरे की जड है; फिर वह अेक राजा के हाथ में हो या प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में हो। सत्ता का स्वरूप ही पीड़नात्मक है। अिसलिअे अब प्रजा को सत्ता के बिना केवल सत्य, सज्जनता तेजस्विता और सत्याग्रह के आधार पर अपना जीवन संगठित करना होगा।

आज प्रजाजन व्यक्तियों का झगड़ा आपस में लड़ कर तय नहीं करते; किन्तु अुसे सत्ताधीश द्वारा नियुक्त किये गये न्यायाधीश के सुपुर्द करते हैं। अिस व्यवस्था से प्रजाजनों का चारित्र्य सुधरा सही; अुनमें आदमियत आयी है सही; लेकिन जब तक न्यायाधीश की नियुक्ति सत्ताधीशों के द्वारा होती है, तब तक मनुष्य-समाज का संगठन न्यायमूलक है, अैसा नहीं कहा जा सकता। वह सत्ता-मूलक ही है। क्यों कि अंतिम आधार सत्ता, याने पीड़नशक्ति, ही है।

जब राजसत्ता को और सत्तामात्र को हम छोड़ देंगे, पीड़न-शक्ति को तिलाञ्जलि दे देंगे और लोगों की कल्याण-बुद्धि का ही आश्रय लेंगे; और जरूरत पड़ने पर व्यक्ति की अेवं समाज की सहनशक्ति की तेजस्विता का ही आधार लेंगे, तब सत्तामात्र का नाश होगा, पीड़न-शक्ति की प्रतिष्ठा ही जाती रहेगी और फिर प्रजा-क्षोभ को कभी भी जाग्रत नहीं करना पड़ेगा।

सत्ता का नाश किये बिना सत्य का पूर्णोदय नहीं होगा। और सत्य के पूर्णोदय बिना सर्वोदय हो ही नहीं सकता। अिसलिअे सत्य को सत्ता का सहारा छोड़ देना चाहिअे। सत्ता की मदद लेते ही सत्य अपमानित होता है और दुर्बल भी हो जाता है।

२१।५।'४२

रचनात्मक कार्यक्रम

[किशोरलाल घ० मशरूवाला]

६

अकस्माती योजनाअें

अिस लेख में अकस्माती योजनाओं का विचार करेंगे। याने अैसे काम जिनका करना समाज पर बड़े पैमाने पर किसी आकस्मिक दुःख के प्रसंग के आने पर जरूरी होता है। रचनात्मक कामों की फेहरिस्त में ये नीचे लिखे नामों से गिनाये गये हैं:—

१. शांतिस्थापना (दंगे, लड़ाअी, अंधाधुंधी आदि में)

२. अुपचार-सहायता (हैजे जैसी छूत की बीमारियों के तथा दंगे, लड़ाअी आदि के वक्त)

३. संरक्षण (चौकी, पहरा आदि)

४. व्यवस्था (जलसे, जुलूस, यात्रा आदि में सेवादल वगैरा की)

५. सहजीवन (शिविर, छावनी वगैरा की योजना करके)

रोज के साधारण व्यवहार में किसी व्यक्ति या परिवार पर अेकाअेक मुसीबत आ जाय तो गाँव या शहर की पुलीस, खानगी या धर्मार्थ दवाखाने, धर्मशाला, सराय, मंदिर, अड़ोसी-पड़ोसी वगैरा ये काम करते हैं। लेकिन जब जनता के बहुत बड़े हिस्से पर अैसे संकट आ पड़ते हैं और थोड़े ही लोग अुनसे बचे रहते हैं, तब ये काम खास स्वयंसेवकों की मारफत कराने की जरूरत होती है। अिस कार्य में लोगों को तरह तरह की मदद पहुँचानी पड़ती है, हिम्मत भी देनी पड़ती है, आपबल, (स्वाश्रय) पर भी अुन्हें छोड़ना और सुझाना पड़ता है, मुसीबतों के लिअे अुन्हें तैयार भी करना पड़ता है और जो मालदार हों, अुन्हें दूसरों की मदद करने के लिअे खींचना पड़ता है; तथा जो स्वार्थी या गिरे हुअे हों और जो चोर, डाकू, बदमाश, धूर्त या शत्रु से मिले हुअे हों और जाहिर या छिपे समाज-द्रोही हों, अुन्हें भी वश में लाने की जरूरत होती है। यह आखिरी काम —याने स्वार्थी तथा समाजद्रोही लोगों को वश में लाना—अुतनी ही हद में बढ़ा हुआ होता है जितनी कि लोगों की साधारण आर्थिक हालत खराब होती है और समाजरचना आदमी-आदमी या जाति-जाति के बीच पैसा, प्रतिष्ठा, सार्वजनिक हक और सुविधाओं में बहुत बड़ा फर्क कायम करनेवाली होती है। सबकी बिलकुल अेकसी आर्थिक हालत न होने पर भी अगर खानपान कपड़ा, घर वगैरा की किसीको तकलीफ न हो; अुसकी प्रगति में रुकावट डालनेवाली कोअी अन्यायी समाजरचना न हो, तो यह काम अितना भारी न होगा। और यह बात दूसरे रचनात्मक कामों की सफलता पर ही आधार रखती है। बगैर अुन्हें अच्छी तरह चलाये सिर्फ पुलीस, जेल, फौज या स्वयंसेवकों द्वारा अिन लोगों को लम्बे अर्से तक वश में रखना सम्भव नहीं है और समाज पर अकस्मात् मुसीबत आ जाने पर अिनका डर मौजूद रहेगा ही।

हमारे देश में अकस्मात् संकट का प्रसंग भी तो करीब करीब रोज की चीज बन गयी है। कभी

वर्षों से शायद ही अैसा मौसम गुजरता हो, जब देशभर में कहीं-न-कहीं बड़ी आपत्ति न हो। देश की आर्थिक हालत अितनी विषम— याने गरीबी की तथा गरीब-धनी के बीच का फर्क बढ़ाने-वाली—है कि अकाल-सी स्थिति कायमी-सी बनती है। अिसकी जड़ में देश के धार्मिक खयाल, समाज-रचना और राजकीय परतंत्रता—तीनों हैं। धार्मिक खयाल और समाज-रचना में से पैदा हुअे दोषों के लिअे हम ही जिम्मेदार हैं। वह हमारी परतंत्रता, अज्ञान, आपसी फूट, खेती तथा अुद्योग की पिछड़ी अवस्था, गंदगी, रोग आदि का मूल है। राजकीय परतंत्रता अिसका कारण नहीं; बल्कि फल है। लेकिन देश और परतंत्रता का संबंध शरीर और रोग के जैसा है। शरीर में कुछ विषमता पैदा होने के कारण ही रोग पैदा होता है। लेकिन जैसे जैसे वह बढ़ता है, विषमता को मजबूत करता जाता है और परिणाम में शरीर को घटाता है तथा आखिर में अुसका नाश करता है। अिसी तरह देश की समाज-रचना में विषमता पैदा होने से परतंत्रता (चाहे वह विदेशी हो या स्वदेशी) आती है और वह अुन विषमताओं को बढ़ाती है तथा अन्त में समाज का नाश भी करती है।

आज अगर हमारे देश का कोअी बड़े-से-बड़ा रोग हो, तो वह परतंत्रता ही है। कअी जमानों से यह रोग अैसी हालत में आ गया है कि अुसका अिलाज करने में जितनी ही ढील हुअी है, अुतना ही खतरा बढ़ता गया है। अिलाज के अभाव में हमारा नाश निश्चित है। लेकिन रोग की अैसी हालत में जो अिलाज आजमाया जाता है वह बेखतरे का नहीं होता। अगर वह सफल हुआ तो हम बच जाते हैं और नीरोगी बन जाते हैं। अन्यथा अिलाज ही हमारे शीघ्र नाश का कारण हो जाता है।

वर्तमान युद्ध ने हमारी परतंत्रता के रोग की तीव्रता प्रकट कर दी है। हमारे राष्ट्रीय जीवन के सब अंगों को अुसने अुनके खुले स्वरूप में दिखा दिया है। अमेरिका और जापान के लड़ाअी में शामिल होने के बाद और सिंगापुर, बर्मा आदि के पराजय ने रोग की भयंकरता प्रत्यक्ष कर दी है। हमारी परतंत्रता हमारी अपने ही देश में किस हद तक कुत्ते के जैसी स्थिति कर सकती है, यह हमें दीख रहा है। हमारे देश पर कब्जा कायम रखने के लिअे अिंग्लैंड का ही थोड़ा-सा विदेशी लष्कर था। अब हमारे देश में अमेरिका और चीन की फौजें भी आ गयी हैं। वे अिस देश में जापान से मुकाबिला करेंगी और अुनकी टूर्नामेण्ट (होड़) हमें फुटबाल बना कर खेली जायगी। हमारे देश में जगह जगह पानीपत के मैदान तैयार किये जायँगे। पहले सरकार कुछ गाँवों और शहरों की जनता और मिलकियत पर जबरदस्ती गुजारेगी। बाद जापान। और जहाँ जापान के सामने अिन फौजों को पीछेहट करनी पड़ेगी, वहाँ जाते जाते ये फौजें हमारा नाश करेंगी। और अगर किसी हिस्से पर जापान का कब्जा हो गया, तो अुस हिस्से में जापानियों को परेशान करने के लिअे सरकार के विमान बम फेंकेंगे जो हमारे ही देश की जमीन और मिलकि-यत पर गिरेंगे। और अगर कुछ हिस्से में से जापानियों को हट जाने का मौका आ जाय, तो वे भी हमारे ही देहातों में आग लगाते लगाते वहाँ से हटेंगे। और अिन सब बातों को हमें केवल अुस तरह देखते रहना होगा, जैसे अेक बँधी हुअी गाय अपने बछड़े को कत्ल होते देखती रहे।

अिस भाग्य के लिअे हम खुद ही जिम्मे-दार हैं। स्वतंत्रता की लापरवाही का

दूसरा कोअी फल नहीं हो सकता। अब बात अितनी बिगड़ी हुअी है कि बगैर बहुत भारी खतरे अुठाये और जबरदस्त अिलाज किये और पूरी कीमत दिये, देश की बाजी सुधरने का कोअी मार्ग ही नहीं है।

और वह जबरदस्त अिलाज है विदेशी सरकार को तुरन्त ही यहाँ से विदा करने के अुपाय काम में लाना। यह अिलाज आसान भी नहीं है और बे-जोखिम का भी नहीं है। हमारा बहुत विशाल देश, आपस में झगड़नेवाली बड़ी बड़ी कौमें, देश की भलाअी के मार्ग में सिर्फ रोड़े अटकाने का काम करनेवाले हमारे देशी राजा, जागीरदार, अमलदार वगैरा, अधिकार और धन तथा जातिपूजा पर खड़ी हुअी हमारी समाज-रचना और अुसे योग्य करार देनेवाली हमारी रूढ़ियाँ—ये सब चीजें अुपाय को सिर्फ खतरनाक ही नहीं, सफलता से आजमाना मुश्किल कर देती हैं। और अिसी कारण हमारे कुछ नेता अिसमें संमत नहीं हो सकते अिसमें आश्चर्य नहीं है। यह मतभेद अिस प्रकार का है जैसे कि किसी वृद्ध रोगी का ऑपरेशन किया जाय या नही अिस विषय मे डॉक्टर और रिश्तेदारों में हो जाता है। डॉक्टर मानते है कि जोखिम अुठा कर भी ऑपरेशन किया जाय। प्रेमी रिश्तेदारों और कदाचित् कुछ डॉक्टरों की राय होती है कि नैसर्गिक और मामूली अुपचारों से संतोष माना जाय।

कहा नहीं जा सकता कि हिन्दुस्तान अपनी परतंत्रता का नाश करने के लिअे तीव्र और फौरन अुपाय काम में लाने का मार्ग अखत्यार करेगा या अिंग्लैंड और अुसके दोस्त तथा जापान के झगड़ों का लाचार साक्षी बन कर नसीब के आसरे बैठेगा। लेकिन दोनों परिस्थितियों में अिस लेख में बताये हुअे अकस्माती कामों का प्रबन्ध करना महत्त्व का होगा। अेक या दूसरे प्रकार के दंगे, लड़ाअी अंधाधुंधी के लिअे लोक-सेवकों को तैयार रहना होगा। और जनता को भी तैयार रखना होगा बार बार लोग बड़ी संख्या में अेक स्थान से दूसरे स्थान में—दूर या नजदीक—भागेंगे; कभी सरकार के हुक्म से और कभी डर से। अुस वक्त अकाल, बीमारी, लूटपाट, आदि की परिस्थिति पैदा होगी। अंधाधुंधी का मौका देख कर कअी राजाओं, जागीरदारों, धनिकों अथवा जातिनिष्ठ या राष्ट्रीय नेताओं के खून भी होंगे। नये नये टोलीपति, सरदार, वगैरा निकल आयेंगे। कोअी अपना अधिकार छोटे-से क्षेत्र में जमा लेंगे, कोअी बड़े क्षेत्र पर। ये दो तरह के होंगे—खुदगरज़ (स्वार्थी) और परगरज़ (देशाभिमानी)। परगरज़ नायक भी दो प्रकार के होंगे—शुद्ध अहिंसावादी और अहिंसा-हिंसा दोनों का आश्रय लेनेवाले। शांति-संघ के नाम से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं में से भी अिन तीनों तरह के नायक निकलना संभव है। पर जो खुदगरज़ होंगे, वे जल्दी ही अलग हो जायेंगे, और लूट-पाट आदि की प्रवृत्ति में पड़ेंगे। लेकिन, जो पर-गरज़ होंगे, अुनमें हिंसा का पूरा निषेध करनेवाले और अेक हद तक अुसका आश्रय लेनेवाले कार्यकर्ता, परस्पर सहयोग करेंगे, या अेक दूसरे से अलग हो जायेंगे, या कुछ क्रियात्मक काम न करते हुअे सिर्फ बहस करते रहेंगे, अिसपर काम की सफलता और निष्फलता का बहुत आधार रहेगा।

'सोलह आने' अहिंसा में विश्वास रखनेवाले कार्यकर्ताओं का भी लोक-स्वभाव और लोक-हित की कुछ बातें समझ लेना जरूरी है। लोक-स्वभाव हिंसा-परस्त नहीं होता। लेकिन, वह हमेशा अहिंसा-चुस्त भी नहीं रहता। तत्काल

और विशाल परिणाम पर अुसकी दृष्टि रहती है। परोपकारवृत्तिवाला अेकाध मजबूत नेता आम लोगों के हित में चोर-डाकू तथा दूसरे समाज या देशद्रोही लोगों को डंडेबाजी से वश में लावे, तो लोग अुसकी हिंसावृत्ति की भी पूजा करेंगे। वह लोकप्रिय होगा। अुस वक्त अगर कोई अहिंसा-चुस्त कार्यकर्ता खुद-गरज और दुष्ट लोगों के साथ हिंसा से काम लेनेवाले का सिर्फ निषेध करेगा, लेकिन अुनसे बचने का कोअी निश्चित तरीका निकाल न सकेगा, तो लोग अुसका आदर करते हुअे भी प्रत्यक्षरूप में अुसके सदुपदेश को मानेंगे नहीं। अुसके सिद्धांत सिर्फ पाठ-पूजा और कथा-कीर्तन का विषय रह जायेंगे।

हिंसा के प्रयोग में जो बुराअी है, वह अिस प्रकार की है। शुरू में परोपकारवृत्ति से हिंसा का आश्रय ले कर खराब लोगों को दबानेवाला नेता अपने क्षेत्र में व्यवस्था लाने के लिअे अेक के बाद अेक कड़ा अिलाज लेता जाता है। लोगों में अपनी रक्षा करने की ताकत या वृत्ति न होने के कारण और दुष्ट आदमियों का डर होने के कारण, वे अिन अिलाजों को मानते जाते हैं। अिसमें से अुस नेता की और अुसके मददनीसों (मददगारों) की ताकत जमती जाती है। फिर या तो स्वयं वह अथवा अुसके पीछे आनेवाले अुसके अनुयायी अपना नेतृत्व पक्का करने के लिअे खुद-गरज और दुष्ट वृत्तिवाले लोगों के ही सारे मार्ग अमल में लाते हैं। परिणाम में आम लोग जैसे थे वैसे ही—याने निर्बल तथा सत्ताधीशों द्वारा दबाये और कुचले हुअे—रहते हैं। यही छोटे-मोटे राज्य, जागीर, देशमुखी आदि की अुत्पत्ति और अितिहास का सामान्य सिलसिला है। हिंदुस्तान की थोड़े में यही तवारीख है। पहले लोग नेता को बादशाह, सरदार, सिंह, शेर, महान्, विजयी आदि अुपाधियों से आप ही कर बड़े चाव से विभूषित करते हैं। लेकिन, आगे जाते वह या अुसके अनुयायी जुल्मी, असुर, राक्षस वगैरा कहलाने योग्य बनते हैं। अच्छी नीयत से भी हिंसा का प्रयोग करने का यह परिणाम आता है। लेकिन, समाज में जल्दी से व्यवस्था लाने की अिच्छा से भविष्य का यह खतरा अुठाने के लिअे लोग तैयार रहते हैं, और रहेंगे। अिसमें साधारण अहिंसावादी कार्यकर्ता की बात बहुत न चलना संभवनीय है।

अैसे समय अहिंसक कार्यकर्ता क्या करे? क्या वह अुस क्षेत्र से हट जाय? तो तो वह और भी निकम्मा हो जायगा। क्या सिर्फ हरिजन सेवा, खादी और ग्रामोद्योग करे? वह भी कुछ अंश में क्षेत्र से हट जाने के बराबर ही होगा। हिंसा का आश्रय लेते हुअे भी अुस वक्त लोगों की खिदमत करने की वृत्ति से बने हुअे नेता की प्रतिष्ठा तोड़ने और विरोध करने का क्या वह काम करे? अिससे या तो लोग अुसकी न सुनेंगे, अथवा अुसी जनहित के नाम पर वह लोकरक्षक नेता अुस अहिंसावादी कार्यकर्ता को बंधन में रख देगा, और लोग अुसे चुपचाप सहन कर लेंगे। प्रत्यक्ष परिणाम की दृष्टि से वह भी क्षेत्र से हट जाने के बराबर ही होगा।

मेरी राय में अैसे समय में अहिंसक कार्यकर्ता की भूमिका यह होनी चाहिअे:—अगरचे समाज को हिंसा मंजूर कराने या अुसकी ओर झुकानेवाले प्रवाह को अहिंसक कार्यकर्ता अेकदम रोक या बदल न सके, तो भी वह स्वयं अुसमें बह न जाय, और खास मौके पर अुसका विरोध भी करे। अिस हेतु से वह राजकीय, सामाजिक, आर्थिक वगैरा, सब प्रकार के कामों में शरीक हो, अच्छे कामों में सहयोग भी दे। लेकिन

जिसमें हिंसा को कुछ अनुमोदन देना अनिवार्य-सा हो जाता हो, वैसी किसी संस्था में अधिकार का स्वीकार न करे। जब किसी बुराई को हटाने का अहिंसात्मक अिलाज वह बता सके, तब अुसका प्रयोग करने के लिअे वह आगे बढ़े। अुस वक्त किसी अधिकार का स्वीकार करना पड़े, तो अुतना काम पूरा कर देने के लिअे वह अधिकार भी लेले। बाद में फिर अुसे छोड़ दे। विश्वास रक्खा जाय कि अुच्च चरित्र, बुद्धि, व्यवहारकुशलता और अपने क्षेत्र का अच्छा ज्ञान, रखनेवाला सत्याग्रही, बिना अधिकार लिये और और बिना अहिंसा को छोड़े ही, अपनी अितनी प्रतिष्ठा जमा सकता है, कि यदि वह किसी विषय पर अपनी आवाज अुठावे, तो वहाँ की दुनिया को अुसे सुनना ही पड़ेगा। और यदि सुन कर के भी अुसकी राय न मानी गयी, और अुसे दुबारा अपनी आवाज निकालनी पड़ी, तो न सुननेवालों को अुसके सत्याग्रह से मुकाबिला करना पड़ेगा। अुसका कर्तृत्व अुसके अनुयायियों की संख्या या अपनी धाक बिठाने की ताकत पर नहीं होता; लेकिन अपनी प्रेमभरी सेवा के साथ और कर्तव्य को आचरण द्वारा महत्त्व देने की शक्ति में है। और अिस शक्ति का मूल अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने सिद्धान्तों के अनुरूप तुरन्त फेरफार करने की ताकत में है। वह खुद अपने जीवन में जितनी हद में क्रान्ति करने की, परिस्थिति से अूपर अुठने की, अयोग्य या अन्याय पोसनेवाली आदतों, रूढियों, आचार-विचारों, भावनाओं और सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ने की, अपने दोषों और भूलों का स्वीकार और सुधार करने की, शक्ति बतायेगा, अुतनी ही हद में वह अहिंसक होते हुअे भी अपनी आवाज को सुनने के लिअे समाज और दूसरे प्रकार के नेताओं को मजबूर कर सकेगा। वरना बिकट परिस्थिति में कुछ अंश में नीचे का नंबर लेना अुसे अनिवार्य हो जायगा।

प्रतिपक्षी या अन्य नेता या जनता के अूपर जब वह अपना असर नहीं डाल सकता है, तब कभी बार अहिंसक कार्यकर्ता का कोओी तीव्र अिलाज काम में लाने का दिल हो जाता है। अिसमें बहुत विवेक की जरूरत है। गांधीजी ने अपने जीवन में बार बार अनशन का प्रयोग किया है, अिसके कारण प्रायः अहिंसक कार्यकर्ताओं का अनशन के प्रति झुकाव हो जाता है। समाज की हानि देखी नहीं जा सकती, अिसलिअे अनशन करना आमतौर पर कोओी अिलाज नहीं कहा जा सकता। समाज का हित करने के लिअे समाज की अिच्छाशक्ति और कर्तृत्वशक्ति बदलनी और बढ़ानी चाहिअे। अेक दोष दूर करने या गुण प्राप्त करने के लिअे अुसे मजबूर नहीं, लेकिन शरीर, मन और बुद्धि से सम्मत करना चाहिअे। अेक आदरणीय व्यक्ति मर जायगा, अिस कष्ट से अथवा अुसके होनेवाले परिणामों के डर से, अेक प्रतिपक्षी या समाज जिस चीज को वह ठीक समझता है, या जिसकी बुराअी का पूरा खयाल नहीं कर सकता है, अुसे छोड़ दे, तो वह त्याग स्थायी लाभ न ला सकेगा। अेकाध अकस्मात् के समय अेक अच्छा तारू (तैराक) डूबते आदमियों को बचा ले, तो अुसकी तारकशक्ति समाज के लिअे लाभदायी है। अैसे अकस्मात् रोज नहीं होते, और वह क्षण अैसा नहीं जब कि डूबनेवालों को तैरने की कला सिखायी जा सके। लेकिन अेक अच्छा तारू अपने गाँव में रहता है और वह चाहे जब सबको बचाने के लिअे तैयार है, अिसलिअे अगर लोग खुद तैरना सीखने की लापरवाही करें, और वह तारू भी अुसे जरूरी न समझे, तो आखिर अंजाम में अुसकी तारक-

शक्ति लाभदायी न होगी; वह लोगों को पंगु बनानेवाली होगी।

यहूदियों और हिंदुओं को कोओी पैगंबर या अवतार आ करके अुनका अुद्धार कर जायगा, अैसी आशा करने की आदत हो गयी है। अैसे समाज में अपने ही व्यक्तिगत तीव्र तप से अेक बुराअी को निकालने या अेक अच्छा काम करा लेने की वृत्ति में बहुत अिष्ट नहीं समझता। अैसे तप से होनेवाला सुधार कायमी नहीं होता। चाहे आत्म-बलिदान का हो या दूसरे प्रकार का, तीव्र अिलाज का ढंग अैसा होना चाहिअे जिससे लोगों का आत्मविश्वास, पुरुषार्थ और अुत्साह बढ़े, और अुन्हें अपना दूसरा कदम क्या होना चाहिअे, अिसका मार्गदर्शन हो। अिसके बदले अगर अुनमें केवल भक्ति और आश्चर्य में डूब जा कर नेता जो कर रहा है अुसकी ओर असहाय हो कर देखते रहने का ही असर होता हो, तो वह अिलाज योग्य नहीं होगा।

अैसे वक्त में हिंसा के प्रयोग से भी अेक आदमी या टोली बहुत लोगों की रक्षा कर दे, और लोग केवल देखते रहें और अुसका लाभ उठावें, अिसकी अपेक्षा लोगों में अपनी रक्षा करने का जोश आ जाय, तो वह लोगों की शक्ति बढ़ायेगी। वरना, वैसी हिंसा की मदद भी लोगों को दबा देनेवाली होगी। खास करके जब अत्याचार करनेवाला अेक राज्य अथवा बड़ा सरदार हो। हिंसा के अेकाध अैसे प्रयोग से जनता की रक्षा करने से पायी हुअी सत्ता के परिणामरूप अुसकी तरफ से होनेवाले दमन की गर्मी सहन करना, खुद सजग न हुअे लोगों के लिअे मुश्किल है।

चलती बात पर फिर आता हूं। जब तक अहिंसा से काम करने का व्यवहार्य तरीका कार्यकर्ताओं और लोगों को स्पष्ट नहीं दिखायी देता, तब तक अहिंसा में हिंसा का कुछ मिश्रण होना अनिवार्य है। खास करके अकस्माती मौकों पर, जब अेक बुराअी को तुरन्त रोकना जरूरी हो, जैसे कि, अेक आततायी—याने, चोर, डाकू, आग लगानेवाले, शस्त्र के साथ अेकाअेक हमला करनेवाले, स्त्री पर हमला करनेवाले वगैरा—के सामने। अहिंसा में अिस तरह हिंसा का मिश्रण होने के मानी होते हैं कि अैसी परिस्थिति में अहिंसा को हिंसा के साथ चलना होगा। अहिंसक कार्यकर्ता को अिससे निराश होने की जरूरत नहीं है। जनता में अपनी रक्षा के लिअे अेक-तन (अैज़ अे बॉडी) हो कर अुठने की वृत्ति पैदा होना, लोगों के आपस में सहयोग का चिन्ह है। और सहयोग शुद्ध हो या अशुद्ध, अहिंसा का फल है; न कि हिंसा का।

अिसलिअे अहिंसक कार्यकर्ता लोगों में परस्पर सहयोग बढ़ानेवाली प्रवृत्तियों (अैक्टिविटीज़) में कभी कभी हिंसा का मिश्रण होता हुआ देख कर, अपना काम खत्म हुआ या अपने पर विरोध या निषेध करने का ही कर्तव्य पैदा हुआ, अैसा न समझे। वह हिंसा की प्रवृत्ति का परीक्षण करे :– (१) क्या वह राजकीय या सांप्रदायिक दलबन्दी के स्वरूप की है? (२) क्या वह धन-मद, अधिकार-मद, वर्ण-मद या सांप्रदायिक मद को प्रकट करने वाली है? (३) क्या वह जिसे गुनहगार या समाज और देश का 'शत्रु' ही माना जाय अैसा कोअी व्यक्ति या जूथ कब्जे में आने के बाद अुसे 'लिंच' करने (याने अुसे मारने, पीटने, जलाने, या अधमुआ करने) के लिअे है? (४) क्या वह कत्ले-आम के और दंगे के रूप की है? (५) क्या वह गुनहगार या शत्रु से अपनी और जनता की रक्षा करने के प्रयत्न में से पैदा हुअी है?

साफ है कि पहले चार प्रकार की और पांचवे प्रकार की हिंसा में बहुत फर्क है, यद्यपि अुसका भी आगे जाते पहले चार प्रकार की प्रवृत्ति में रूपांतर हो सकता है। पहले चार प्रकारों में और पांचवे का अुन प्रकारों में रूपांतर होने का चिन्ह दीखे, तब अपनी जान को खतरे में डाल कर भी सक्रिय विरोध करने तक अहिंसक का कर्तव्य हो सकता है। लेकिन, जब तक अैसा कोअी चिन्ह नजर नहीं आता, तब तक अहिंसक कार्यकर्ता बिना किसी मार्ग को बनाये विरोध या निषेध करके जनता का बुद्धिभेद न करे।

असहयोग का अहिंसा की नीति में निषेध नहीं किया गया है। लेकिन, हिंसा के मिश्रण के लिअे अुसमें काफी गुंजाअिश है। क्योंकि असहयोग की वृत्ति अपने आप में तो अेक छुरी ही है। अुसका काम काटना-चीरना है। अहिंसा में अुसका अुपयोग अुतनी हद तक ही योग्य है जितनी हद तक डॉक्टर के हाथ में छुरी का, याने जरूरी ऑपरेशन के लिअे। अहिंसा का असली तत्त्व असहयोग में नहीं, बल्कि सहयोग की वृत्ति में है। वहाँ अुसका क्षेत्र अमर्याद है। असहयोग में हमेशा मर्यादा है। लेकिन, क्योंकि असहयोग को अहिंसकों ने भी माना है और अुसकी हिंसा सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष होती है, अहिंसक का अुसमें बह न जाना और अुसे रोकने की कोशिश करना और भी मुश्किल है। फिर, असहयोग की वृत्ति तो हिंदुस्तान की रगरग में भरी हुअी है। धर्म, जाति, कुलाचार आदि ने अुसका जनता में बीज पेरा (बोया) है। अज्ञान ने अुसको सहारा दिया है, और बड़े बड़े पंडित, मौलवी आदि अुसके रखवाले रहे हैं। जो ज़हर उसे मारने में सफल हुआ है, वह है धन और राजसत्ता। याने, उसको रोकनेवाली चीज भी बहुत बुरे प्रकार की है। अिसलिअे यह डर रहता है कि असहयोग के बीज को फिर से अेक बार बोने का प्रयत्न कुछ अैसा न हो जाय कि वह धन और राजसत्ता के आगे निष्फल, और आपस में बैर और फूट कराने में सफल हो जाय। वास्तव में अुसका योग्य क्षेत्र धन और राज्य सत्ता को बेकार करने का ही है। याने, दुश्मन की मदद न करने और अुसकी धन और राजसत्ता की जाल में फँस कर राष्ट्र की हानि करने का जो प्रयत्न करें अुन्हें रोकना, यह असहयोग का काम है। अहिंसा की मर्यादा में रहना और सफलता से रोक करना आसान बात नहीं है। पर यह जोखिम अुठाना ही होगा।

आज तक गांधीजी की यह नीति रही थी कि वे अहिंसा के प्रयोग अनुकूल वायुमंडल में ही करते थे। हिंसा के वायुमंडल में वे अपना कार्यक्रम रोक लेना लाजिमी-सा समझते थे। अब की परिस्थिति में अैसा नियम नहीं चल सकेगा। चारों ओर हिंसा होते हुअे भी, अहिंसा को चलाना होगा, और अहिंसा और हिंसा दोनों के कुछ तरीके और हेतु समान हे, अैसा दृश्य नजर आवेगा। *

* युद्ध-प्रयत्न को बढ़ाने के लिअे सरकार के द्वारा आज जो प्रचार चल रहा है, अुसमें और अहिंसा के कार्यक्रम में कितनी समानता है यह पाठकों ने देखा होगा। अुदाहरणार्थ—आज सरकार भी लोगों को कह रही है कि (१) सिर्फ बातों से शत्रु को नहीं भगाया जा सकता। काम करना होगा, और अुसके लिअे (२) अन्न ज्यादा पैदा करो, (३) शहरों की आबादी कम करो, (४) रेल का प्रवास कम करो और प्रवास के पुराने साधन फिर अिस्तेमाल करो, (५) बिजली वगैरे का कम अुपयोग करो, (६) ना-हिम्मत की बातें न करो, (७) धन के अुपयोग, (८) खूब परिश्रम, (९) शत्रु से और शत्रु से मिले हुअे आदमियों से असहयोग करने के बारे में भी हिंसा और अहिंसा की भाषा बाह्यरूप में अेकसी होती है। पर, बेशक, तरीके बताने में फर्क हो जाता है। लेकिन, सहयोग और असहयोग ये दो चीजें अैसी हैं कि हिंसा और अहिंसा दोनों से दोनों का संबंध है और अुनके कारण हिंसा-अहिंसा दोनों अेक हद तक अेक ही रास्ता लेती है।

अगर हम अहिंसा के मिशन को अच्छी तरह समझ लें, तो अिससे ना-अुम्मेद होने की जरूरत नहीं है। हिंसा को जगत से बिलकुल मिटा देना, अैसी यदि अहिंसक की महत्त्वाकांक्षा और आशा हो, तो अुसे निराश होना पड़ेगा। जैसा प्राणी-जीवन आज नजर आता है, अुसमें यह आशा दुराशा है। अीश्वर ने हिंसा-वृत्ति को भी जीवन के समुचित निर्वाह के लिअे ही बनाया है, और वह निःशेष नहीं हो सकती। पर अहिंसा सर्जक और पालक है; हिंसा संहारक शक्ति है। मानव-जीवन को अहिंसा-परायण करना, रोग के समान फूट अुठने-वाली हिंसा को और अुसको संगठित करने की वृत्ति को रोक लेने की सदैव ताकत हो अितनी हद तक अहिंसा-शक्ति का विकास करना, यह अहिंसा का मिशन है।

अकस्माती योजनाओं की पहली तीन बाबों (बाबतों) में (शांति स्थापना, अुपचार-सहायता, और संरक्षण) अहिंसा की पालन-शक्ति और हिंसा का संयम करने की शक्ति का विकास होता है। अुसकी तालीम दूसरी दो बाबों (सभा, जुलूस आदि की व्यवस्था और छावनी) द्वारा मिलती है।

व्यवस्था-कार्य का अनुभव काफी मिल गया है, और अुसके काफी अुस्ताद भी हैं। अिस-लिअे अुसपर अधिक लिखने की जरूरत नहीं है।

छावनी के कार्यक्रम भी जगह जगह चलते हैं। ये जरूरी हैं। पैसा, जाति, धर्म, अधिकार आदि के भेदों से मनुष्य-मनुष्य के बीच पड़े हुअे अंतरों को जोड़ने और सहजीवन द्वारा सहयोग, और सहकार्य की वृत्ति और शक्ति को बढ़ाने के ये अच्छे साधन हैं। अभी यह अेक नयी चीज होने के कारण, अुसमें अभी काफी त्रुटियाँ हैं। मधुमक्खी या चींटी, या दीमक जिस तरह अेक-तन और अेकमन हो कर कम से कम व्यय और बाह्य नियंत्रण तथा अधिक से अधिक सहकार्य से अपना मधपुड़ा (शहद का छत्ता) या राफ़ड़ा (बँबीठा) बढ़ाती हैं। अुसका अभी हिन्दुस्तान की जनता में पूरा विकास नहीं हुआ है। पच्चीस आदमियों के परिवार में जितनी कोरकसर होती है, अुतनी पच्चीस आदमी के शिविर में नहीं होती। कप्तान और मंत्री को हुक्मों द्वारा काम करा लेना पड़ता है। सूरज जैसा निकलता है, और लोग अपने २ कामों में लग जाते हैं, अुस तरह शिबिर-वासी अपने २ कामों को सम्हाल ले नहीं सकते। हमारा चारित्र्य भी अभी अितना अूँचा नहीं अुठा है कि वहाँ स्वार्थ-वृत्ति, झगड़े-खोर वृत्ति और विषयवृत्ति के अैब दीख न पड़ें। ये छावनियाँ कभी कभी दलबन्दियों और काप-विकार का बीज भी बो देती हैं। लेकिन, अिसीमें से राष्ट्रजीवन को आगे बढ़ना होगा। जितने सचेत होंगे, अुतने जल्दी दोषों को लांघ कर आगे बढ़ेंगे।

स्वतंत्रता की प्रसव-वेदना

[काका कालेलकर]

जब अण्डा फूटता है, तभी बच्चा बहार आता है। अब भारतीय स्वातन्त्र्य का मुहूर्त आगया है; कुछ हमारी कोशिश से और बहुत-कुछ अण्डा पुराना हो गया अिसलिअे। अण्डे को टुकड़े टुकड़े होते हुअे हम अपनी नजर से देख रहे हैं। अगर अन्दर के बच्चे में जान हो, तो वह अब खुली हवा की पहली सांस ले कर अपने फेफड़े को प्राणवान बनायेगा और अपने पंख फड़फड़ा कर खुली और विशाल दुनिया में प्रवेश करेगा। अैसे समय पर बच्चा कभी चिल्लाता और रोता नहीं पाया गया है। वह यह नहीं कहता, 'हाय रे हाय! मेरी रक्षणकर्त्री दीवार टूट गयी; अब मेरा कैसा होगा? मैं दशदिश अरक्षित हो गया।' वह जानता है कि दुनियाभर के पक्षी अिसी तरह अरक्षित ही होते हैं। दीवार में अगर रक्षा करने की स्थायी शक्ति होती, तो वह क्यों कर अिस तरह टूट जाती? दीवार का टूट जाना और दशदिशाओं की आजादी मिल जाना, यह कोअी आफत नही है, बदकिस्मती नही है। यह तो परमात्मा की सबसे बड़ी कृपा है।

पहले दिन शरीर को जब खुली हवा लगती है, तब आदत न होने के कारण वह बेशक असह्य हो अुठती है। शरीर अैसी हवा को बरदाश्त नहीं कर सकता। अब शरीर कैसे निभेगा, अिस शंका से हृदय व्याकुल हो अुठता है। लेकिन, जब वही आजादी की खुली ठंढी हवा हृदय में घुस जाती है, तब हृदय को और सारे शरीर को अुसका नया आनंद महसूस होने लगता है और फिर पंखों में शक्ति, आंखों में महत्वाकांक्षा और हृदय में आत्मविश्वास जाग्रत हो जाता है। फिर तो अुसे विश्वास हो जाता है कि छोटा-सा अंडा नहीं, बल्कि सारा का सारा विशाल विश्व अुसका क्षेत्र है। और जब बच्चा देखता है कि यह हालत अुसकी अकेले की नहीं है; जहाँ देखो वहाँ अैसे ही आजादी के हकदार अनेक पक्षी अुड़ते दिखाअी देते हैं और मौत का खतरा हर क्षण सिर पर धारण करते हुअे अुसीमें आनंद लेते हैं और आनंद से गाते हैं, तब बच्चे को खयाल आ जाता है कि यही तो जीवन है; रक्षा कोअी चीज ही नही है। रक्षा सलामती को भी कहते हैं और खाक को भी कहते है। जो पामर जीव और जो राष्ट्र रक्षा की ही चिंता में पड़ता है, अुसके जीवन की खाक ही होती है। जीवन का दूसरा नाम है निर्भयता। हम किसीसे न डरें, यह है जीवन और हमसे किसीको डर न रहे यह है, जीवन की कृतार्थता।

आज यदि हम मनुष्य की दुनिया में देखें, तो अेक भी राष्ट्र अैसा नही है जिसके पास यह द्विविध निर्भयता हो। जो स्वयं निर्भय हैं, वे औरोंको डराते हैं और जिनमें किसी को डराने की ताकत नहीं है, वे डर के मारे अखण्ड मृत्यु की हालत में जीते है।

भारत ही अेक अैसा राष्ट्र है कि जो स्वयं निर्भय रह कर दुनिया को अभयदान दे सकता है।

लेकिन, हिन्दुस्तान में आज अुसके अनुरूप सरकार नहीं है। जो सरकार आज तक हमने बरदाश्त की, अुसमें अब मानवता के तत्त्व बहुत कम रह गये हैं। अुसने आज तक दुनिया को डराया। अुसे पता नहीं कि अुसने हरअेक राष्ट्र को डरा डरा कर मजबूत किया है। अिग्लैण्ड के डर से जर्मनी जाग्रत हुआ, अिग्लैंड की सामर्थ्य को देख कर ही जर्मनी ने शक्ति की अुपासना की है। अिग्लैंड से दीक्षा पा कर ही जापान ने अपना साम्राज्यवाद बढ़ाया। अिग्लैण्ड की नाविक शक्ति का हिसाब करके ही जापानियों ने सवाअी ब्रिटन बनने का निश्चय किया। फरान्स में, और स्कॅण्डिनेविया में; सिंगापुर में और मलाया में ब्रिटिश सत्ता आत्मविश्वास का खात्मा हो गया। अब अुसे रूस के और चीन के स्तोत्र गाने

पड़ते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य ने न जाने कितनी लालच या घूस अमेरिका को दी है। अमेरिका की साधन-संपत्ति, रूस का मनुष्य-बल और चीन की स्वातन्त्र्यनिष्ठा—अिन्हीकी दुहाअी दे कर और पिछड़े हुअे अीरान को और हारे हुअे परान्स को दबा कर अिग्लैण्ड अपने टापुओं की रक्षा कर रहा है। आफिराका के रण-मैदान पर कभी किसीकी तो कभी किसीको जीत और हार हो जाती है। अब तो मुसोलिनी की कही जरा-सी हार हो गयी, तो अुसका भी महोत्सव मनाने के दिन ब्रिटिश साम्राज्य पर आ रहे हैं। पुराने अनुभवियों ने कहा था—

अति विस्तर-विस्तीर्ण न तत् भवेत् चिरायुषम्।

'जो चीज बेहद फैल गयी है, वह दीर्घायु नहीं हो सकती'। अगर अैसा न होता तो, दुनियाभर में लोभ का ही साम्राज्य स्थिर हो जाता। अनुभवियों ने यह भी कहा है कि अेक यमधर्म को छोड़ कर यानी न्याय और सदाचार को छोड़ कर और किसीका अेक-छत्री साम्राज्य अिस दुनिया पर हो ही नहीं सकता।

अिस घड़ी अिग्लैंड के सामने अेक ही नीति रही है—जापान और जर्मनी की ओरसे निश्चिंत रहना और अीरान के जैसे अपने पड़ोसी को और बर्मा और भारतवर्ष के जैसे अपने प्रजाजनों को दबाते या चूसते रहना।

भारतवर्ष के हित के लिअे, भारतीय संस्कृति के विकास के लिअे और भारत के भावी मिशन के लिअे अब यह सरकार हमारे काम की नहीं रही है। अिसे यहाँ से जाना ही है। अिसलिअे हमें सोचना चाहिअे कि समय रहते हम अपने घर को कैसे सम्भालें।

जब सरकार चली जायगी, तब कुछ समय के लिअे जो लूटपाट होगी। अुससे प्रजा अपने को कैसे बचावे, यह सवाल लोगों को अितना चिंतित नहीं करता कि जितना दूसरा सवाल कि यह सरकार जाते जाते सब कुछ जला देना चाहती है अुससे जनता को कैसे बचाया जाय? आज लाखों और करोड़ों हृदयों में जो मूक प्रार्थना चल रही है वह केवल यह नहीं है कि 'भगवान हमें बाहरी आक्रमण-कारियों से बचावें'। लेकिन हर हृदय प्रधानतया यही कहता है कि 'भगवान, ब्रिटिश सरकार की सोची हुअी निर्दय और अन्धी नीति से हमें बचावें'। जर्मनों और जापानियों के तो हमने अभी दर्शन ही नहीं किये हैं। लेकिन ब्रिटिश फौजों का हमें जो अनुभव हो रहा है, वह अिस मौसम की गर्मी से भी ज्यादा परेशान करनेवाला है।

और अब तो हम सुनते हैं कि अंग्रेज लोग अपनी अिस अेशियायी मिलकियत को अकेले सम्भाल सकने के कारण अमेरिका से कुछ अिस तरह का समझौता कर चुके हैं कि दोनों मिल कर भारतवर्ष को सम्भालें। पाश्चात्य लोगों की भाषा में सम्भालने का अर्थ क्या होता है, यह हम अच्छी तरह समझ गये हैं।

जहाँ अंग्रेजों का स्वार्थ न हो, वहाँ तो वे धर्मावतार बन सकते हैं। अमेरिका की भी यही हालत है। हमारे देश के जो भोले-भाले लोग अमेरिका पर विश्वास रख रहे हैं, अुनको समझना चाहिअे कि निःस्वार्थी अमेरिका और चीज है और सूदखोर अमेरिका कुछ और। निःस्वार्थी अमेरिका तो पृथ्वी की अुस तरफ है। लेकिन सूदखोर अमेरिका अपने धन-जन के साथ हिन्दुस्तान में पहुँच गयी है।

अब भारत को अपनी नींद छोड़ कर जाग्रत होना चाहिअे। अब अैसे दिन आ गये हैं कि या तो हम सर्वस्व का मोह छोड़ कर आजाद बन जायँ और आजाद हिन्द की रक्षा करें; या सर्वस्व के लोभ से पामर बनें और अपना सर्वस्व पराये हाथों में सौंप कर दूसरों के मुँहताज तथा गुलाम बने रहें।

जो कोअी सोच सकता है, अुसे सोच कर अपने हरअेक देशभाअी को और देश-भगिनी को जगाना चाहिअे और निःस्वार्थ सेवा से राष्ट्र को संगठित करना चाहिअे।

अंग्रेज तो जा ही रहे हैं। अुनके पीछे हम देश की राख होने दें या संगठित हो कर अुसकी रक्षा करें, यही हमारे सामने अेकमात्र सवाल है।

स्वतंत्रता की तुरन्त आवश्यकता

[चार्ल्स फ्रीअर अैंड्रूज़]

(दीनबंधु ने अिस विषय पर १९२१ में चार बड़े ही ओजस्वी और विचारप्रेरक लेख लिखे थे। वे आज की परिस्थिति के लिअे भी ठीक ठीक लागू हैं। अिसलिअे अुन्हें क्रमशः दे रहे हैं—सं०)

—१—

हम बड़े बिकट समय में से गुजर रहे हैं। पौरुष और आत्ममर्यादा का नाश करनेवाली परिस्थिति के सामने चुपचाप माथा झुकाने के बदले, आज का जमाना हमें त्याग और बलिदान के जरिये वस्तुस्थिति का सामना करना सिखा रहा है।

आज हम ठकुरसुहाती सुनना नहीं चाहते; सत्य सुनना चाहते हैं। वर्तमान जागृति की दृष्टि से और वस्तुस्थिति का दृढ़ता के साथ सामना करने की दृष्टि से मैं आज—जब कि लिखना बहुत मुश्किल है—कुछ लिखने की कोशिश करूंगा। मैं बिलकुल तह तक जाना चाहता हूँ; मूलभूत प्रश्न अुठाना चाहता हूँ—" आज हम अेका अेक अितनी अुत्कटता से और अितनी भयंकर अधीरता से अपनी आजादी हासिल करने को क्यों अुद्यत हो गये हैं? आज हम क्यों महसूस करने लगे हैं—जैसा कि हमने पहले कभी नहीं महसूस किया था—कि दूसरी सारी चीजें तो मुलतवी रक्खी जा सकती हैं, लेकिन स्वतंत्रता की यह लड़ाअी घड़ीभर के लिअे भी स्थगित नहीं की जा सकती?" अिन प्रश्नों के मैं कअी जवाब दे सकता हूं। लेकिन अेक ही जवाब दूंगा; जो आज कअी वर्षों से मुझे जँचा है और जिसने हिन्दुस्तान के बारे में मेरी विचारधारा को प्रभावित किया है। मेरी समझ में वह जवाब सारी समस्या की तह तक जाता है।

सर जॉन सीली की 'अेक्सपॅन्शन आव् अिंग्लैंड' नाम की अेक पुस्तक है। सम्भव हो तो हर अेक हिंदुस्तानी विद्यार्थी को अुसे पढ़ना चाहिअे। पहले किताब के नाम पर ही गौर कीजिये—'अेक्सपॅन्शन आव अिंग्लैंड' याने अिंग्लैंड का विस्तार। किताब में अिंग्लैंड के विस्तार का बयान है। मगर फिर भी, आधी से ज्यादा किताब हिन्दुस्तान के बारे में लिखी गयी है। यह अेक बात भी हमें जरा ठहर कर विचार करने को बाध्य करने के लिअे काफी है। सर जॉन सीली की राय में अठारहवीं और अुन्नीसवीं सदी में हिन्दुस्तान अिंग्लैंड के विस्तार का अेक औजार समझा जाता था। हिंदुस्तान वह मुलायम और सहज अुपलब्ध अुपादान था जिसके द्वारा अिंग्लैंड अपना साम्राज्य सारे संसार में फैला सका। यह कैसा दुर्भाग्य है! कैसी अशुभ गति है!! तीस करोड़ मनुष्यों के लिअे अिंग्लैंड नाम के अेक नन्हे-से टापू के विस्तार का महज ओजार बनना, कैसी तौहीन की बात है?

सर जॉन सीली की यह किताब स्पष्ट और मुँहफट किताब है। वरना मैं अुसकी पर्वाह न करता और न हिन्दुस्तानियों से अुसे पढ़ने को ही कहता। अुस किताब के अेक बड़े प्रसिद्ध परिच्छेद में नीचे लिखी बात कही गयी है। मैं अुसे ज्यों-की-त्यों यहाँ देता हूं। याद रहे कि वह अठारह सौ ब्यासी में लिख रहे हैं; याने करीब चालीस साल पहले। अुन्होंने बीसवीं शताब्दी की संसार को गद्गद हिलानेवाली घटनाअें नहीं देखी थीं।

वह लिखते हैं—"हाँ, तो भारतीय राष्ट्रीयता जैसी कोअी चीज नहीं है। कुछ बीज अलबत्ते मौजूद हैं जिनमें से भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कल्पना की जा सकती है। यही वजह है, न कि अंग्रेज जाति की कोअी जबरदस्त श्रेष्ठता, जिसकी बदौलत हिन्दुस्तान में हमारा साम्राज्य निभ रहा है। अगर कही हिन्दुस्तान में भी अुस तरह का राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हो गया, जैसा कि हम अिटली में देख चुके है, तो अिटली का ऑस्ट्रिया ने जितना प्रतिकार किया, अुतना भी अंग्रेजी सत्ता नही कर सकेगी; बरन फौरन नष्ट हो जायगी। क्योंकि अिंग्लेंड के पास—जो कि अेक फौजी राष्ट्र नहीं है—पच्चीस करोड़ जनता की बगावत का मुकाबिला करने के लिअे कौन-से साधन हो सकते है? क्या आप यह कहते है कि जिस तरह हमने अुन्हें पहले जीता अुसी तरह अब भी जीत लेंगे? लेकिन मैंने समझा दिया है कि हमने कभी अुन्हे जीता ही नहीं। मैंने आपको दिखा दिया है कि जिन सेनाओं ने हमें विजय प्राप्त करा दी, वे अुं हिन्दुस्तानियों की बनी थीं। हम ये हिन्दुस्तानी पलटनें हिन्दुस्तान में ही लड़ने के लिअे किराये से ले सके, अिसका कारण यह है कि अुस वक्त राष्ट्रीयता की वृत्ति का अभाव था। अब अगर वहाँ पर, बिलकुल मन्द ही क्यों न हो, राष्ट्रीय भावना पैदा हो जाय, विदेशियों को भगा देने की प्रत्यक्ष अिच्छा वह भले ही जाग्रत न करे, तो भी अगर वह यह धारणा पैदा कर दे कि विदेशियों को यहाँ पर अपनी हुकूमत कायम रखने में मदद पहुँचाना शर्मनाक है, तो भी लगभग अुसी दिन से हिन्दुस्तान से हमारा साम्राज्य मिटने लगेगा। क्योंकि जिस फौज के द्वारा अुसकी रक्षा की जाती है, अुसमें दो-तिहाअी देशी सिपाही हैं। अब फर्ज कीजिये कि अगर अिटली की ऑस्ट्रियन सरकार, जिसे अिटली भगाना चाहता था, ऑस्ट्रियन सिपाहियों के बदले अिटॅलियन सिपाहियों के बल टिकी होती, तो अिटॅलियन देशभक्तों का काम कितना आसान हो जाता? आपको यह भी कल्पना करने की जरूरत नही कि देशी सेना बागी हो गयी। सिर्फ अितना ही मान लीजिये कि अब देशी सिपाही भर्ती नही किये जा सकते, तो भी हिन्दुस्तान को अपने कब्जे में रखने की अशक्यता हम पर अेक क्षण में प्रकट हो जायगी। क्योंकि हमारे भारतीय साम्राज्य की यह शर्त है कि वह अधिक प्रयास के बिना कायम रक्खा जा सके। अिंग्लेंड की सरकार ने जिस प्रकार अुसे विशेष प्रयास के बिना प्राप्त किया, अुसी प्रकार से अुसे कायम रखना जरूरी है। हम अपनी अिस जायदाद की रक्षा के लिअे करोड़ों रुपया और आदमी खपाने को तैयार नहीं है। आज हम हिन्दुस्तान को ख्वाह-मख्वाह ही अेक 'जित राष्ट्र' मान लेते हैं। लेकिन जिस क्षण हिन्दुस्तान दर असल अपने आपको 'अेक जित राष्ट्र' साबित करेगा, अुसी क्षण हमें लाचार हो कर यह महसूस करना पड़ेगा कि अुसपर अपनी हुकूमत बनाये रखना असम्भव है।"

मैं अिस अुद्धरण की कोअी व्याख्या नहीं करूंगा। वह अपनी व्याख्या आप कर लेगा। क्या वह मौजूदा आन्दोलन की मनोवृत्ति पर प्रकाश नही डालता? क्योंकि, जब महात्मा गांधी अेक जगह से दूसरी जगह और अेक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में घूमे, तब हमने चारों तरफ क्या देखा? क्या वही सामान्य राष्ट्रीयता का भाव नहीं देखा, जिसपर सर जॉन सीली जिलना जोर देते हैं? क्या हमने, सर जॉन सीली के शब्दों में, यह धारणा पैदा होते नहीं देखी कि विदेशी को अपनी हुकूमत कायम रखने में मदद करना शर्म-

की बात है? आज की अपनी अपमानित अवस्था में क्या हमने यह अनुभव नहीं किया है कि हम अेक भिन्न राष्ट्र समझे जाते हैं? बेशक ये सारी बातें हो रही हैं। तो फिर क्या हम यह आशा न करें कि अब हमारा मकसद बहुत दूर नहीं है? शायद स्वराज्य अन्दर आने के लिअे हमारा दरवाजा भी खटखटा रहा हो और शायद हम ही खुद—न कि ब्रिटिश लोग—अुसे अन्दर आने से रोक रहे हों।

अन्त में मैं दूसरा अेक परिच्छेद लूंगा, जो करीब करीब अुतना ही प्रसिद्ध है। सर जॉन सीली अिस सुप्रसिद्ध अैतिहासिक नियम का विवेचन कर रहे हैं कि जब लोगों के दुःख और पतन की पराकाष्ठा हो जाती है, अुस वक्त क्रान्ति नहीं होती। क्रान्ति तब होती है जब कि लोग फिर आशा करने लगते हैं और गरदन अूंची अुठाने लगते हैं।

अिसके बाद वह लिखते हैं—"लेकिन अगर हिन्दुस्तान दर असल अेक समग्र राष्ट्र के रूप में परिणत हो जाय—और शायद पहले की किसी भी हुकूमत की अपेक्षा हमारा राज अुसे अेक राष्ट्र बनाने में अधिक मदद पहुंचा रहा है—तो राष्ट्रीय निराशा के अिस प्रकार के स्फोट की जरूरत ही नहीं रहेगी; चाहे अुसके लिअे भरपूर वजह भले ही हो। क्योंकि अुस हालत में राष्ट्रीयता की भावना देशी फौज में भी दाखिल हुआी होगी। और आखिर देशी फौज पर ही हमारा दारमदार है। अठारह सौ सत्तावन का गदर भयंकर था सही। लेकिन हम अुसको दबा सके, क्योंकि वह सेना के अेक हिस्से तक ही फैल पाया था; क्योंकि लोग सक्रियरूप से अुसके साथ सहानुभूति नहीं रखते थे और क्योंकि हमारी तरफ से लड़ने के लिअे कुछ देशी जातियाँ मिल सकती थीं। लेकिन जिस दिन अैसे गदर का अन्देशा रहेगा जो सिर्फ गदर नहीं होगा; बल्कि राष्ट्रीयता की देशव्यापी भावना का व्यक्त स्वरूप होगा, अुसी क्षण हमारे साम्राज्य की रक्षा की सारी आशा का अन्त हो जायगा। और अुसकी रक्षा करने की अिच्छा अुस हालत में हमे छोड़ भी देनी चाहिअे। क्योंकि हम दर असल हिन्दुस्तान के विजेता नहीं हैं और विजेताओं के नाते हम वहाँ राज्य भी नहीं कर सकते। अगर हम वैसा करने का दम भरें भी, तो यह पूछने की जरूरत नहीं कि हम कहाँ तक सफल होंगे। क्योंकि अुस प्रयास में ही हम आर्थिक दृष्टि से चौपट हो जायँगे।"

अिन दो मार्मिक परिच्छेदों का हर अेक विद्यार्थी को मनन करना चाहिअे। मैं समझता हूँ अेक निष्कर्ष स्पष्ट है—हिन्दुस्तान की आजादी शस्त्रों से या हिंसा से नहीं, बल्कि सारी जनता में भारतीय राष्ट्रीयता की भावना के विकास से प्राप्त होगी।

अिस दृष्टि से आज-कल हमारे बीच महात्मा गांधी का होना क्या दर असल अीश्वरीय वरदान नहीं है?

अपने दूसरे लेख में मैं सर जॉन सीली की पुस्तक के आधार पर स्वतंत्रता की तुरन्त आवश्यकता और भी अधिक साबित करने की कोशिश करूंगा।

२

अिस लेख में मैं सर जॉन सीली के दो अैतिहासिक नियमों का विचार करूँगा, जिनका भारत की स्वतंत्रता से गहरा संबंध है और जिनका मेरे दिल पर बहुत पहले गहरा असर हुआ है। जितना ही मैं अिन नियमों के बारे में सोचता हूँ, अुतना ही वे मुझे अधिक बेचैन करते हैं। अुनकी बदौलत मुझे यह पता चला है

है कि परतंत्रता का जहर कितना गहरा पैठा है और अुसका निवारण करना कितना मुश्किल है।

पहला नियम, सर जॉन सीली के ही शब्दों में, अिस प्रकार है—"बहुत समय तक किसी विदेशी सत्ता की गुलामी में रहना राष्ट्रीय पतन का अेक जबरदस्त कारण है।"

मैं चाहता हूँ कि अिस वाक्य के प्रत्येक शब्द पर ध्यान दिया जाय। सभी तरह की पराधीनता नहीं, बल्कि दीर्घकालीन पराधीनता, राष्ट्रीय पतन का जबरदस्त कारण है। हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी में रहते आज अेक सौ साठ साल बीत चुके हैं। निःसन्देह यह अवधि बहुत दीर्घकालीन है। अिसलिअे अगर सीली का सिद्धान्त सही है, तो अिंग्लैंड की गुलामी में बीतनेवाला हिन्दुस्तान का हर अेक वर्ष अुसके राष्ट्रीय पतन की गहराअी को बढ़ाता जाता है। अिस गुलामी की हालत में भारत और कितने दिन रहेगा? प्रत्येक वर्ष जो बीतता है, क्या वह राष्ट्रीय पतन को नहीं बढाता?

तो लीजिये, यह अेक भीषण अैतिहासिक सत्य है जिसका हमें मुकाबिला करना है। अब अधिक देर तक ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी में रहने का मतलब राष्ट्रीय पतन की मात्रा को बढ़ाना है। अिसलिअे हमें तुरन्त जाग अुठना चाहिअे और आजाद होना चाहिअे।

सर जॉन सीली ने जो दूसरा सिद्धान्त अुपस्थित किया है वह हमें अैसी अुलझन में डालता है, जिसे सुलझाने का कोअी रास्ता नहीं सूझता। वह ब्रिटिश सरकार के हिन्दुस्तान से चलते होने का अन्तिम सवाल छोड़ते हैं। अिस सिलसिले में वे नीचे लिखा शब्द-प्रयोग करते हैं जिसका अुल्लेख अक्सर किया जाता है:—

'हिन्दुस्तान जैसे देश से, जो कि ब्रिटिश सरकार के भरोसे जीता है और जिसे हमने दूसरी किसी भी शक्ति के भरोसे जीने के लिअे अक्षम बना दिया है, अुस सरकार का निकल जाना दूसरे सब अपराधों से अधिक अक्षम्य अपराध होगा और शायद अुसकी बदौलत बहुत भयानक संकट आयगा'।

अिस वाक्य को मैंने रेखांकित किया है। अुसका अेक ही अर्थ हो सकता है। अुसका यह मतलब है कि अिस मुसीबत में से हिन्दुस्तान के लिअे कोअी चारा ही नहीं है। यह अितिहासकार अैसे किसी समय की कल्पना ही नहीं कर सकता जब भारत अपने बल अपनी रक्षा कर सकेगा। हिन्दुस्तान के ब्रिटिश राज्य की तुलना पुराने जमाने के ब्रिटन की रोमन सल्तनत से की जाती है। जब रोमन लोग ब्रिटानिया छोड़ कर जाने लगे, तो, कहा जाता है कि, नादान ब्रिटन-निवासी अुनकी तरफ आशाभरी निगाहों से देखते थे; क्यों कि विदेशी राज्य की बदौलत अुनमें आत्मरक्षा का माद्दा नहीं रह गया था। अिसी तरह से शायद सर जॉन सीली भी सोचते हैं कि हिन्दुस्तान ने आत्मशासन और आत्मरक्षा की शक्ति अितनी गवाँ दी है कि अब हिन्दुस्तानियों को अुनके अपने भरोसे छोड़ देना गुनाह है। सारी किताब में बार बार अिसी दृष्टि-बिन्दु पर जोर दिया जाता है। हम अुसे अैतिहासिक दृष्टि से नगण्य समझ कर अुसकी अुपेक्षा नहीं कर सकते।

मैं अेक परिच्छेद और देता हूँ—

सर जान सीली कहते हैं—"दूसरे सारे देशों की अपेक्षा हिन्दुस्तान में अपने आप अेक स्थायी राज्य का विकास करने की क्षमता बिलकुल ही नहीं है। और यह डर है कि पहले अिस

प्रकार की जो कुछ वषमता हिन्दुस्तान में रही हो, असे शायद ब्रिटिश राज्य ने और भी कम कर दिया है।"

अेक अंग्रेज के लिअे यह स्वीकार करना कितना भयंकर है। हिन्दुस्तान के लिअे यह परिस्थिति कितनी अुद्वेगजनक है! अैसा मालूम पड़ता है मानो हमारे भाग्य में हमेशा के लिअे गुलामी ही लिखी है।

सर जॉन सीली के चुस्त तर्क के अनुसार हमारे सामने अेक बड़ी बिकट पहेली अुपस्थित हो जाती है, जिसका समाधान असंभव प्रतीत होता है। परिस्थिति अिस प्रकार है:—अगर ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी और अधीनता कायम रही, तो राष्ट्रीय पतन की मात्रा बढ़ने की संभावना है। लेकिन, साथ ही, हिन्दुस्तान से ब्रिटिश लोगों का हट जाना भी असंभव होता जा रहा है, क्योंकि सुरक्षा और सहायता के लिअे हिन्दुस्तानियों का ब्रिटिश साम्राज्य पर निर्भर रहना अुत्तरोत्तर अधिक अनिवार्य हो रहा है।

यहां हम सहज ही अेक तरह के दुष्टचक्र में फँस जाते हैं। हम चाहे जिस तरफ़ मुड़ें, वह चक्र हमें सब तरफ़ से घेरे हुअे है। मैंने कअी वर्षों तक, रात दिन, अिस समस्या पर विचार किया है और मुझे कबूल करना चाहिअे कि अब तक मैं अुसका कोअी हल नहीं खोज सका।

लेकिन अिस महा जटिल समस्या के समाधान का अेक रास्ता अभी अभी खुला है। वह यह है—अगर अीश्वर हिन्दुस्तान में किसी अैसे प्रतिभाशाली पुरुष को भेज दे, जो केवल किसी अेक ही प्रान्त में नहीं; अपितु समस्त भारत में स्वतन्त्रता की वृत्ति जगा दे, तो आशा के लिअे गुंजाअिश हो सकती है। अगर हिन्दुस्तान अपनी निजकी सामग्री में से अैसा प्रेरणादायी और अेकता निर्माण करनेवाला व्यक्ति प्रस्तुत कर सके, तो सब कुशल-मंगल ही होगा।

और अिसमें शक नहीं कि आज हमारी आँखों के सामने यही हो रहा है। अितिहास की अिस नाज़ुक घड़ी में, जब कि गुलामी और पराधीनता असह्य और दुर्वह हो रही थीं, हमारे बीच अेक अैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति भेजा गया जिसने हमारी अति प्राचीन रूढ़ियों की जड़ें हिला कर हमें यह मन्त्र दिया कि "स्वतन्त्र हो जाओ। अब गुलाम न रहो।"

यह सच है कि महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अेक जीवित ज्वालामुखी के समान है। अिसलिअे अुसके कारण बहुत संहार होगा। नये मन्दिर के निर्माण के पहले, बहुत विध्वंस दिखायी देगा। लेकिन असली चीज़ वह नया वायुमण्डल है, वह नयी वृत्ति है; जीवन की वह नयी प्रेरणा है, जो तल से अूपर अुठ कर सतह पर आ पहुँची है। वह अन्त में विध्वंसक नहीं, बल्कि विधायक ठहरेगी। और यह नया रास्ता लेने के बाद, जब तक सारी जनता में राष्ट्रीयता की भावना पूर्णरूप से जाग्रत नहीं होगी तब तक, नव-निर्माण का यह कार्य चलता ही रहेगा।

मैंने भविष्य के जिस चित्र की रूपरेखा खींची है, अुसमें मुझे आशा और प्रोत्साहन की गुंजाअिश देख पड़ती है। लेकिन तिसपर भी, कुछ अत्यन्त विचारशील और देशप्रेमी हिन्दुस्तानियों को क्रमविकास के चित्र के प्रति जो आकर्षण है, अुसे मैं समझ सकता हूँ। अिस शुद्ध क्रम-विकास के आदर्श की तरफ़ पहले मेरा भी ज़बरदस्त झुकाव रह चुका है।

लेकिन जो अुसके कायल हैं, अुनसे मैं पूछूंगा। "अगर ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता जारी रही, तो बढ़ती हुअी परतंत्रता के साथ साथ राष्ट्रीय पतन भी लगातार बढ़ता जायगा, अिस अैति-

हासिक तथ्य का निराकरण आप कैसे करेंगे ? आप सर जॉन सीली के अुपर्युक्त वाक्यों का सामना कैसे करेंगे ? मान लीजिये कि शासन-सुधार कानून से हमें थोड़ी-बहुत जिम्मेवारी मिली है। तो भी क्या अुसके पीछे वही अिंग्लैंड की पुरानी गुलामी छिपी हुअी नहीं है ? निश्चितरूप से स्वतंत्रता के पक्ष में खड़े होने के सिवा, गुलामी की अिस वृत्ति से छुटकारा पाने का दूसरा कोअी अुपाय है ? हमारे राज्य-कर्ताओं की मर्जी के अनुसार बड़ी सावधानी से दिये गये स्वराज्य के टुकड़ों से क्या कभी नयी आन्तरिक जीवनदायी शक्ति का निर्माण हो सकता है ? ब्रिटिश अितिहासकार भी अैसे किसी परिणाम की कल्पना मुश्किल से कर सकता है।"

क्रमविकास की प्रक्रिया के विषय में मैं अपने आपसे अिसी प्रकार के प्रश्न पूछूंगा। अिसके बारे में मेरे मन में अितना ज़बरदस्त सन्देह है कि मै दूसरे दृश्य की तरफ़ बड़ी खुशी से मुड़ा हूँ। महात्मा गांधी के रूप में हमें अेक ज्वाला-मुखी-सदृश व्यक्ति, अेक प्रथम कोटि का नैतिक प्रतिभावान् पुरुष, प्राप्त हुआ है। अुन्होंने हमें हमारे अभ्यन्तर से प्रकट होनेवाली स्वतन्त्रता की गुप्त शक्ति का साक्षात्कार कराया है। अुन्होंने हमें किन्हीं बाह्य साधनों के बदले अपने आपपर भरोसा करना सिखाया है। मेरा सारा हृदय अुनकी आवाज़ सुन कर अुनके प्रति आकृष्ट होता है। मुझे बहुत बड़ी आशा है कि अन्त मे अिसी मार्ग से स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

अेकमात्र अुपाय

मुझे अिस नतीजे पर पहुँचने में काफ़ी कष्ट हुआ है कि अंग्रेजों को हिन्दुस्तान छोड़ कर चले जाना चाहिअे, और अुस पर अमल कराने का जितना ही मै विचार करता हूँ, अुतना ही मुझे अधिक कष्ट होता है। अपने प्रियजनो को अपने से दूर जाने के लिअे कहने में जो कष्ट है, वही अिसमें है; लेकिन आज तो वह अेक परम धर्म बन गया है। अिसकी खरी खूबी और जरूरत अिस बात में है कि यह काम फौरन हो, यानी अंग्रेज़ जल्दी-से-जल्दी यहाँ से चले जायें। क्या अंग्रेज़ और क्या हिन्दुस्तानी, दोनों अिस वक्त आग के बीचोंबीच घिरे हैं। अगर अंग्रेज़ चले गये, तो मुमकिन है कि वे भी बच जायें, और हम भी बच जायें। अगर वे नहीं गये, तो भगवान् ही जाने कि क्या होगा। मै साफ़ शब्दों में यह कह चुका हूँ कि मेरे अिस प्रस्ताव में किसी व्यक्ति या दल के हाथों में हुकूमत सौंपने की कोअी बात ही नहीं है। अगर अंग्रेज़ किसी समझौते के फलस्वरूप हिन्दुस्तान छोड़ने को तैयार होते, तो अिस सवाल पर विचार करना ज़रूरी हो जाता। लेकिन मेरे अिस प्रस्ताव के अनुसार तो अुन्हें हिन्दुस्तान को भगवान् भरोसे छोड़ जाना है—आज कल की भाषा में अिसी को अराजकता कहते हैं—अिस अराजकता के फल स्वरूप देश में कुछ समय के लिअे यादवी मच सकती है, या बेलगाम लूटमार फैल सकती है। लेकिन अिसीमें से आज के अिस झूठे हिन्दुस्तान की जगह अेक सच्चे हिन्दुस्तान का जन्म होगा।

'हरिजन सेवक'
ता. २४ : ५ : '४२

—गांधीजी

राष्ट्रभाषा के बारे में हमारी भूमिका

[काका कालेलकर]

राष्ट्रभाषा की चर्चा टाली नहीं जाती है। कंबल को छोड़ने के लिअे बाबा तो तैयार है; लेकिन कंबल बाबा को नहीं छोड़ता—यह 'बाबा कंबल न्याय' सब साहित्यिक जानते है। मेरी भी कुछ अैसी ही हालत हो गयी है। चर्चा मुझे छोड़ती ही नहीं। मै काम करना जानता हूँ; पक्षापक्षी की चर्चा से अूब जाता हूँ। यहाँ तक कि यदि चर्चा ही करनी पड़े, तो मैं काम छोड़ कर भी चर्चा टालने की कोशिश करता हूँ। मतभेद की थोड़ी-सी सभावना देखते ही मैंने स्वेच्छा से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से त्यागपत्र दिया। अुसे अब करीब दो बरस हो गये। अुसके बाद कही भी पदग्रहण करने की कोशिश नहीं की। कुछ चर्चा चलायी सही, लेकिन जब से महात्माजी ने अिस विषय पर लिखना शुरू किया, तब से मैने चुप्पी ही साधी है। लेकिन चन्द मित्र मुझसे ही कुछ सफाअी चाहते हैं और राष्ट्रभाषा प्रचार का क्या हो रहा है, और अब हमारी भूमिका क्या है, यह मुझसे ही पूछते हैं।

चन्द लोग मुझसे 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी' शब्द का और अुनके साहित्य का अितिहास मांगते हैं। अितिहास-संशोधन में मुझे दिलचस्पी है; लेकिन जब लोग भावनावश हो जाते हैं, तब अितिहास-संशोधन भी खतरनाक चीज हो जाती है, यह मैं अनुभव से जानता हूँ। अिसलिअे मै, जहाँतक हो सके, संशोधन की बात मे नहीं पड़ता। कम-से-कम अपनी ओर से अुसे नहीं छेड़ता।

मित्रों के संतोष के लिअे थोड़ी-सी आवश्यक और निर्विवाद बातें मैं नीचे लिख देता हूँ।

हमारी भूमिका कार्यकर्ता की है। हमारा अुद्देश्य स्वराज्य-प्राप्ति और राष्ट्र-संगठन है। अैतिहासिक और सामाजिक विविधता होते हुअे भी हिन्दुस्तान अेक है, अखण्ड है; और वैसा ही रहेगा, यह हमारा विश्वास है। यह अेकता हृदय की अेकता है, जीवनदृष्टि की अेकता है, प्रेम और अुदारता की अेकता है, कौटुंबिक भावना की अेकता है। त्याग, बलिदान और अहिंसा की बुनियाद पर ही यह अेकता टिक सकती है।

हमें तो देश जिस भूमिका को स्वीकार करे, अुसके अंदर रह कर काम करने की आदत है। पहले गांधीजी ने कहा देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है, अुसीके पेट में अुर्दू आ जाती है। हमने अिस भूमिका का स्वीकार किया और जैसा बन सका, अुसका प्रचार किया।

बाद में कॉंग्रेस ने कहा कि राष्ट्र के तमाम अखिल भारतीय व्यवहार की भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिअे। हमने अुस नाम का भी स्वीकार किया और अुस नाम को भी सामने रख कर तरक्की करने लगे। जब लोग पूछने लगे कि ये दो नाम क्यो, तब हमने कहा कि दोनों की व्याख्याअें अेक ही है; दोनों नाम पर्यायवाची हैं। लोग कहने लगे, हिन्दुस्तानी तो अुर्दू का ही दूसरा नाम है। हमने कहा, हो सकता है; लेकिन, हमारी व्याख्या की हिन्दी का भी वह दूसरा नाम है। अिस पर चर्चा चली। मन-मुटाव भी हुआ।

आखिरकार अबोहर में श्री टण्डनजी ने फैसला दिया कि 'हिन्दुस्तानी' का अर्थ है 'हिन्दी और अुर्दू'। सम्मेलन ने अिसके साथ अपनी भूमिका भी स्पष्ट कर दी कि हिन्दुस्तानी का यह

अर्थ सम्मेलन को मान्य है। सम्मेलन को अुर्दू से द्वेष या विरोध नहीं है। सम्मेलन राष्ट्रभाषा के तौर पर हिन्दी शैली और नागरी लिपि का ही प्रचार करता है; लेकिन सम्मेलन ने आज तक अुर्दू का कभी भी विरोध नही किया है। सम्मेलन की अरायज-नवीसी की परीक्षा में वर्षों से अुर्दू को स्थान है ही। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की कोविद परीक्षा में अुर्दू का अेक अतिरिक्त प्रश्नपत्र रहता है। अुसके अध्यापन मंदिर में अुर्दू को स्थान था। अितना होते हुअे भी सम्मेलन को अुर्दू के प्रति विशेष अुत्साह नही है। कहीं कहीं पर अुर्दू हिन्दी को हटाती है, यह देख कर अुर्दू से कुछ डर भी है।

हमने अबोहर की भूमिका का स्वीकार किया। फलतः अब, हमें यह भूमिका छोडनी पडी कि "चूकि हिन्दी के पेट मे अुर्दू है, अिस वास्ते दोनों को मिला कर ही हम अुसे हिन्दी कहते हैं।" अब हम समझ गये हैं कि अगर साम्राज्य-भाषा अंग्रेजी को हटाना है, तो हिन्दी और अुर्दू दोनों को कुछ स्वतन्त्र समझ कर अेक साथ अपनाना होगा। सम्मेलन के प्रधान लोग कहते हैं कि 'अुर्दू से हमें नफ़रत नही है; किन्तु हिन्दुस्तानी के नाम से जो खिचड़ी भाषा चलायी जाती है, अुसे न तो हिन्दीवाले पसन्द करते हैं और न अुर्दूवाले ही। यह खिचड़ी भाषा अुर्दू की जगह नहीं ले सकती। क्योंकि अुर्दूवाले अुसे अपने पास भी फटकने नहीं देते। राष्ट्रीय अेकता की लोभी हिन्दी पर ही यह हिन्दुस्तानी लादी जाती हैं; अिसलिअे हम अिसका विरोध करते हैं।'

अिस बारे में भी हमारी भूमिका सीधी और स्पष्ट है। खिचड़ी पसंद न हो तो न सही। चावल और दाल दोनों पका कर थाली में हम परोस देंगे; फिर खानेवाला, जी चाहे जैसी मिलावट कर खावे। जी चाहे तो अलग अलग खावे।

अब हम अपनी नयी संस्था 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' के द्वारा हिन्दी और अुर्दू दोनों का—दोनों लिपियों और शैलियों का—अेक साथ प्रचार करेंगे, दोनों की अेक साथ परीक्षा लेंगे, दोनों का साहित्य प्रकाशित करेंगे। फिर दोनों का अच्छा ज्ञान होने पर लोग अिनका अच्छा मिश्रण अपने आप ही करने वाले हैं। हम अपनी ओरसे अिन दोनों को अेक नहीं करेंगे; लेकिन पास पास लाने की पूरी कोशिश अवश्य करेंगे। जबरदस्ती तनिक भी नहीं करनी है।

अब, मित्र पूछते हैं कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का संबंध कैसा रहेगा?

मै तो अिस वक्त दोनों मे से अेक का भी कोअी विशेष पदाधिकारी नहीं हूँ। तो भी अितना कह सकता हूँ कि हिन्दुस्तानी प्रचार सभा में हिन्दी के कोअी शत्रु नही है। अुत्साह के साथ अुर्दू का अध्ययन और प्रचार करने के कारण हिंदी को हम छोड़ने वाले नहीं है। अब सम्मेलन में जा कर राष्ट्रभाषा के लिअे 'हिन्दुस्तानी' शब्द का भी व्यवहार करने का आग्रह हमें नहीं करना है। सम्मेलन के लिअे तो अब सिर्फ हिन्दी और नागरी ही रहती है। सम्मेलन की ओरसे जो कोअी काम करेंगे वे अिस मर्यादा के अन्दर रह कर ही करेंगे।

हमें हिन्दी भी प्यारी है और अुर्दू भी प्यारी है। हमारा हिन्दी-प्रेम सम्मेलन के हिन्दी-प्रेम से कम नहीं है। हमारे अुर्दू-प्रचार के कारण हमारा हिन्दी-प्रचार सम्मेलन से कम नहीं होगा; बल्कि अधिक, समृद्ध ही होगा। हम आशा करते है कि अुर्दू के स्वीकार और प्रचार के कारण हमारा हिन्दी का प्रचार ज्यादा आसान होगा। और अुर्दू वाले भी देख लेंगे कि अुर्दू को हिन्दी के साथ साथ रखने से अुर्दू की मुखालिफत भी

देश में कम हो जायगी। बेशक कुछ दिन के लिअे दोनों तरफ के कट्टर-पंथियों को बेचैनी होगी। विरोध के बिना जो चल ही नहीं सकते हैं, अुनको यह सीधा मामला बेशक पेंचीदा-सा दीख पड़ेगा। किंतु जब अनुभव होगा कि हम हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा हिन्दी का प्रचार तनिक भी कम नहीं करते हैं तब सम्मेलन को शिकायत के लिअे कोअी वजह ही नहीं रहेगी। हाँ, हम साथ साथ अुर्दू का भी पूरा प्रचार करेंगे; किन्तु सम्मेलन के नेताओं ने बार बार कहा है कि हिन्दी को निर्भय रख कर अगर अुर्दू का प्रचार कहीं होता हो, तो अुसमें सम्मेलन को अेतराज नहीं है।

सम्मेलन का हम पर अितना विश्वास है कि हम अगर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा दोनों में रहें, तो सम्मेलन को कोअी हर्ज नहीं है। यह विश्वास गांधीजी की हिन्दी सेवा और सर्व-समन्वयकारी वृत्ति के कारण और श्री टण्डनजी जैसे सम्मेलन के अनन्य सेवकों की राष्ट्रीयता के कारण ही पैदा हुआ है।

साथ साथ गिन्नी में जिस तरह सोने के साथ थोडा-सा तांबा मिला देते हैं, अुसी तरह सम्मेलन ने अपने विश्वास में थोड़ी-सी शंकाशीलता मिला दी है और यह आदेश दिया है कि समिति और सभा के अधिकांश सदस्य वही के वही रहे तो भी दोनों के पदाधिकारी अलग अलग ही होने चाहिअे।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा कायम करते समय गान्धीजी ने अुसके लिअे अैसे पदाधिकारी चुने हैं कि जिनकी हिन्दी-सेवा के लिअे सम्मेलन में पूर्ण आदर और विश्वास है और जिनकी हिन्दी-भक्ति सब तरह से निर्विवाद्य है। बाबू राजेन्द्रप्रसादजी और श्री श्रीमन्नारायणजी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष और मंत्री पहले से हैं। अिनकी हिन्दी-सेवा और हिन्दी-निष्ठा के बारे मे किसी को भी अविश्वास नहीं है। अिनके मन में अुर्दू का तनिक भी विरोध नहीं है यह बात सही है। लेकिन अुर्दू का विरोध यह कोअी हिन्दी-निष्ठा का प्रमाण थोड़े ही है?

जब सम्मेलन देखेगा कि अिनके हाथों हिन्दी की सेवा तनिक भी कम नहीं हो रही है, तब सम्मेलन अधिक क्या कह सकेगा? जहाँ अिनका हिन्दी-अुर्दू का प्रचार चल रहा हो, वहाँ जा कर सम्मेलन लोगों से अधिक क्या कह सकेगा? 'अुर्दू का नाम तक न लीजिये; और अगर आप अुर्दू सीखें भी तो भी अुर्दू को राष्ट्रभाषा का अंग न कहिये'; अितना ही कहना बाकी रहेगा न? अितने जरा-से काम के लिअे—और सो भी निषेधात्मक काम के लिअे—अलग प्रवृत्ति थोड़े ही चलायी जा सकती है?

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का हिन्दी से तनिक भी विरोध नहीं है। अुसके प्रचार के कारण न देवनागरी जाननेवालों की संख्या कम होनेवाली है और न हिन्दी का शब्दभण्डार ही कम होनेवाला है। हमें कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा यदि अनुभव के बाद सम्मेलन अिन दोनों प्रवृत्तियों को अेक ही धारा में बहाना पसन्द करे। आज भी श्री राजेन्द्रबाबू और श्री श्रीमनजी हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के अध्यक्ष और मंत्री हुअे, अिसी कारण राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लिअे सम्मेलन अलग पदाधिकारी ढूंढ़ने जाय, यह कितना विचित्र-सा लगता है? अगर अिन्हीं को पहले के जैसे समिति के भी पदाधिकारी रक्खा जाता, तो देश के वायुमण्डल में कितनी स्वाभाविकता पैदा हो जाती?

किन्तु यहीं पर विवाद शुरू हो जाता है। अिस लिअे मैं अपना निवेदन यहीं पर छोड़ देता हूँ।

१६ : ५ : '४२

ग्राम-सेवा का तंत्र

[विनोबा]

(मगनवाड़ी, वर्धा, में ता० २९:४:'४२ को ग्रामसेवक विद्यालय के पदवीदान के अवसर पर दिया हुआ अध्यक्षीय भाषण)

परीक्षा और प्रमाणपत्र

मैंने आज मुख्यत: मगनवाड़ी के विद्यार्थियों के दर्शन के लोभ से यहाँ आना स्वीकार किया। मैं प्रमाणपत्र देने आया ही नहीं हूँ। क्योंकि प्रमाणपत्र में मुझे श्रद्धा नहीं है। जिन विषयों में मुझे प्रमाणपत्र मिले, अुनका मेरा ज्ञान नहीं के बराबर है और जिन विषयों में मैंने परीक्षा ही नहीं दी, अुनका मुझे अच्छा ज्ञान है। लेकिन यहाँ दिये गये प्रमाणपत्र परीक्षा के नहीं हैं; अिसलिअे मैं आशा करता हूँ कि वे निरर्थक नहीं ठहरेंगे।

अतंद्रित अुद्योग की जरूरत

यहाँ से ये विद्यार्थी देहात में जायेंगे। अुन्होंने देहात की सेवा के लिअे ही शिक्षण पाया है। अिस समय देहात में कार्य करने की काफी गुंजाअिश है। और मैं समझता हूँ कि आप सब लोग गाँवों में जा कर किसी-न-किसी अुद्योग को शुरू करेंगे। लेकिन आपको वहाँ बहुत सावधानी से रहना होगा। देहातियों के जीवन का मान (दर्जा) बहुत-कुछ नीचा है। लेकिन अुनका सेवा का मान बहुत अूँचा है। अिसलिअे आज तक केवल सन्तों ने ही देहातों की सेवा की है। दूसरों ने तो अुन्हें अपने फायदे के लिअे चूसा ही है। अिसलिअे वहाँ सेवा का प्रमाण-पत्र आसानी से नहीं मिलता। वहाँ हमें रातदिन अतंद्रित रह कर काम करना होगा। देहात के लोग अपढ़ हैं; अिसलिअे हमें यह न समझना चाहिअे कि हमारी अल्पस्वल्प विद्या से काम चल जायगा। यह सही है कि देहातियों में अिल्म और हुनर की कमी है। लेकिन वे अपने काम से वाकिफ हैं। जो काम करते हैं, सो ठीक ठीक करते हैं। उदाहरण के लिअे खेती के काम को ही ले लीजिये। अुस अुद्योग में वे काफी होशियार होते हैं। अिसलिअे यह नहीं समझना चाहिअे कि हमारे अधकचरे ज्ञान से काम चल जायगा। हमारे ज्ञान की कसौटी होगी। अिसलिअे हमें अतंद्रित रहना होगा। यह कहने का रिवाज-सा पड़ गया है कि देहाती लोग आलसी होते हैं। यह आक्षेप बिलकुल ही बे-बुनियाद हो, सो बात नहीं। लेकिन बहुत बड़े अंश में वह दन्तकथा ही है। शहरों की तरह देहातों में भी कुछ लोग निठल्ले होते हैं। लेकिन जिस काम को वे करते हैं, अुसे अितना करते हैं कि अुससे अधिक की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अैसी स्थिति में देहात में अगर हमारी अुद्योग-शीलता अपर्याप्त साबित हुअी, तो हमें परीक्षा में फेल हुअे समझना चाहिअे।

गुणग्राहक वृत्ति

जब हम देहातों में जायेंगे, तो हमारे सामने अेक विराट जगत खुलेगा। कअी स्त्री-पुरुषों से संपर्क होगा। हमारा ध्यान अचूक अुनके गुणों की तरफ ही जाना चाहिअे। दोषों की तरफ प्रवृत्ति हरगिज नहीं होनी चाहिअे। मैं मनुष्य के चित्त को घर की अुपमा दिया करता हूँ। घर में दीवारें होती हैं और दरवाजे होते हैं। मनुष्य के गुण अुसके चित्त के दरवाजे हैं और

दोष दीवारें। बिलकुल गरीब से गरीब के मकान में भी अेकाध दरवाजा तो होता ही है। गुण के दरवाजे में से ही मनुष्य के चित्त में प्रवेश करना चाहिअे। दरवाजे में से अन्दर जाना सरल है। दीवार में से घुसने की कोशिश की जाय, तो सिर फूटेगा। दोषों में से जो किसी के चित्त में प्रवेश करने की चेष्टा करेगा, अुसकी यही हालत होगी। अिसलिअे गुणग्राहक वृत्ति होनी चाहिअे। दर असल हमें सभी स्त्री-पुरुषों में भगवान की मूर्तियाँ दिखायी देनी चाहिअें। जब अैसा होगा, तब हमारा कार्य सुकर होगा।

सेव्य-सेवक भाव

हम संसार में नाना वादों की चर्चा सुनते हैं। अनेक पक्ष देखते हैं। लेकिन सेवकों को सभी वादों और पक्षों से अलग रहना चाहिअे। हमारे लिअे सारे संसार में दो ही पक्ष हैं—अेक सेवक और दूसरा सेव्य या स्वामी। हम खुद सेवक हैं और दूसरे सब स्वामी। हमें स्वामी की सेवा से ही सन्तोष मानना है। यही सेवक का धर्म है। सेवक को दलबन्दियों से क्या मतलब? देहात में गुटबन्दियाँ भरपूर होती हैं। यह भी नहीं कि अुनके पीछे कोअी सिद्धांत होता हो। प्राय: द्वेष और स्वार्थ होता है। सेवक को अिस तरह के किसी भी दल में नहीं पड़ना चाहिअे। अुसे निष्पक्ष रह कर सेवा करनी चाहिअे। सेवा करना ही अुसका काम है। हमारी सेवा से कौन खुश होता है और कौन नाराज, अिससे हमें क्या करना है? हृदयस्थ भगवान प्रसन्न हों, अितना काफी है।

अुद्योग और विद्या का समन्वय

अुद्योग और विद्या अलग अलग नहीं हैं। जहाँ अिन्हें अलग कर दिया जाता है, वहाँ दोनों बेकार हो जाते हैं। विद्या को अगर सिर कहा जाय, तो अुद्योग अुसका धड़ कहलायेगा। दोनों को अलग करना, दोनों को मार डालना है। अर्थात् राहु के जैसी हालत होगी। लेकिन यहाँ तुम्हें विद्या और अुद्योग का लाभ अेकत्र हुआ है। तुम्हें अुद्योग के साथ साथ ही विद्या दी गयी है। अत: तुम्हारी विद्या वीर्यहीन नहीं होगी। तो भी अब देहात में जाने पर तुम्हें कअी भिन्न भिन्न काम करने पड़ेंगे। प्रबंध देखना, हिसाब लिखना, पढ़ाना, प्रसंगवश व्याख्यान देना, आदि कअी बातें ग्राम-सेवा के सिलसिले में करनी ही पड़ती हैं। लेकिन मैं कहूँगा कि अिन सब कामों को करते हुअे भी तुम्हें रोज कुछ समय प्रत्यक्ष अुद्योग में बिताना चाहिअे। अिससे तुम्हारी विद्या ताजी रहेगी, तुम्हें नये नये शोधों का ज्ञान रहेगा और तुम्हें भी नये शोध सूझते रहेंगे। कअी बार अैसा पाया जाता है कि अच्छे अच्छे अुद्योग में निपुण लोग भी जब सेवा-कार्य करने लगते हैं, तो शरीरश्रम करना भूल जाते हैं। कहते हैं 'वक्त ही नहीं मिलता'। लेकिन अिससे कार्यकर्ताओं की तथा अुनके कार्य की हानि ही हुअी दिखाअी देती है। अुद्योग से नित्य परिचय न रहने के कारण ज्ञान पिछड़ जाता है। फिर पुराने ज्ञान की पूँजी से ही काम चलाया जाता है। यह ठीक नहीं है। अिसलिअे ग्राम-सेवक को प्रतिदिन कुछ समय—मेरे विचार में, अगर सम्भव हो तो, आधा समय—अुद्योग के लिअे देना चाहिअे। अुसे ग्राम-सेवा का अंग ही समझना चाहिअे।

धैर्य की जरूरत

आप देहातों में जायेंगे; लेकिन वहाँ की जमीन कड़ी होती है। यहाँ संस्था में तुम्हारे लिअे सारी सुभीते की चीजें मौजूद हैं। देहातों में सब असुविधाअें मौजूद होंगी। फव्वर टूट

गयी, बढ़ईगिरी आती नहीं, बढ़ई मिलता नहीं, कोल्हू रुका पड़ा है—अैसी अवस्था में हिम्मत नहीं हारनी चाहिअे। धीरज रखना चाहिअे। छोटी-से-छोटी बात का पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिअे। बल्कि छोटी चीज़ों को अधिक महत्त्व देना चाहिअे। बड़ी बातें सहसा कोअी भूलता ही नहीं; क्योंकि वे बड़ी ठहरीं। अिसलिअे छोटी मालूम पड़नेवाली बातों पर ही अधिक ध्यान देना चाहिअे। अन्यथा अुनके ज्ञान के अभाव में कहीं गाड़ी न रुक जाय। बुनाअी में खासी निपुणता प्राप्त करके अेक आदमी देहात में करघा लगा कर बैठा। लेकिन वह बुनने में निपुण होते हुअे भी करघा जमाना भली भाँति नहीं जानता था। अिसलिअे अुसके करघे पर कपड़ा जितना चाहिअे अुतना अच्छा नहीं बुन सकता था। जो कोअी अुस करघे पर कपड़ा बुनने जाता, अुसका कपड़ा बिगड़ जाता। यह किस बात का नतीजा था? करघा जमाना अेक तुच्छ बात है अैसा समझ कर अुस पर ध्यान न देने का।

वास्तविक प्रमाणपत्र

मुझे जो-कुछ कहना था, मैंने थोड़े में कहा है। तुम्हें आज यहाँ संस्था की तरफ से प्रमाण-पत्र तो मिले हैं। लेकिन सच्चे प्रमाणपत्र जनता से ही प्राप्त करने हैं। और वे तुम्हें सच्ची सेवा के गुण के लिअे ही मिलेंगे। अन्त में मैं आशा करता हूँ कि आपलोग देहातों में जा कर जनता की भलीभाँति सेवा करके वास्तविक प्रमाणपत्रों के अधिकारी बनेंगे।

निर्बल के बल राम

राजनीतिज्ञ तलवारों की मूठों पर रखे हुअे कवचधारी हाथों की संख्या के भरोसे मनसूबे बाँधते हैं; अुनके वह तृतीय नेत्र नहीं होता, जो असहायों की बाँह चुपचाप पकड़ कर सुयोग की राह देखनेवाले अुस महाप्रतापी अदृश्य हाथ के दर्शन कर सके। अपनी शक्तियाँ अिकट्ठी करके बलवान् लोग अपना संघ कायम करते हैं और दुर्बलों को अकेले अपने परमेश्वर के साथ अपना संघ बनाने के लिअे विवश करते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी चेतावनी केवल 'अरण्य-रुदन' है। और जब तक पश्चिम यांत्रिक शान्ति के संगठन में व्यस्त है, तब तक वह अपने अन्याय से पूर्वीय महाद्वीप में छिपी हुअी भूकम्प की शक्तियों को पुष्ट करती रहेगी। पश्चिम को अभी यह भान नहीं हुआ है कि विज्ञान ने अुसे अुत्तरोत्तर अधिकाधिक सत्ता दे कर आत्मघात के लिअे और निशस्त्रों की चुनौती का स्वीकार करने के लिअे ललचाया है। वह नहीं जानती कि यह चुनौती अेक श्रेष्ठतर शक्ति द्वारा दी गयी है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कृपया आप तशरीफ ले जाअिये

[विनोबा]

(तारीख पच्चीस मअी अुन्नीस सो ब्यालीस को वर्धा में राष्ट्रीय युवक संघ के शिविर में राष्ट्रीय युवक संघ, कॉंग्रेस सैनिक दल और प्रांतीय नगर संरक्षक दल के सामने दिया हुआ भाषण)

मतभेदों का बाज़ार गर्म है

मेरा आज व्याख्यान देने के लिअे आने का अिरादा नहीं था। जो भाअी पहले मुझे बुलाने आये थे, अुनको लौटा भी दिया था। अुन्होंने कहा कि फलाने बड़े सज्जन ने आ कर हमें समझाया है, तुम भी आओ। लेकिन मैंने सोचा, जब अितने सज्जन पहले ही आ चुके हैं और आ रहे हैं, तो मेरे जाने की जरूरत नहीं। याने जो कारण वे भाअी मेरे यहाँ आने के लिअे बतला रहे थे, वही मेरी दृष्टि में न आने के लिअे अच्छा कारण था। लेकिन गोपालराव ने बहुत आग्रह किया; अिसलिअे आना पड़ा।

मेरे न आने का दूसरा भी अेक कारण था। आजकल जितने मुँह अुतने विचार बोले जाते हैं। मतभेदों का बाजार-सा लग रहा है। अिस हालत में मैंने सोचा कि जब अितने आदमी आपको अपनी अपनी रायें सुना चुके हैं, तो मेरा अपनी राय सुना देना शायद आपकी बुद्धि को अधिक भ्रम में डाल दे। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा है कि बहुत सुन सुन कर तेरी बुद्धि भ्रम में पड़ गयी है। अिस भ्रमजाल में से जब छूटेगा, तब कहीं तुझे सच्चा ज्ञान होगा। आपके यहाँ पहले अगर दस आदमी आ चुके हों, तो मैं ग्यारहवाँ आ कर, सम्भव है, कि आप की बुद्धि में अधिक भ्रम पैदा कर दूँ। अिससे कार्य की हानि ही होगी। यह सोच कर मैं आना नहीं चाहता था। लेकिन आग्रह-वश आना पड़ा।

सरकारों की अयोग्यता

जवाहरलालजी बहुत दफा मौजूदा सरकार की कड़ी टीका किया करते हैं। वह कहते हैं कि अिसका कारोबार अितना अव्यवस्थित और निकम्मा है कि अुससे बढ़कर निकम्मा दूसरा हो ही नहीं सकता। अिस सरकार की अक्षमता का पार नहीं है। अुनकी टीका से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। लेकिन मेरे विचार में यह हाल सिर्फ हिन्दुस्तान की सरकार का ही नहीं; दुनिया की सभी सरकारों का है। लेकिन हिन्दुस्तान सरकार की अेक खुसूसियत है: अुसने यहाँ की प्रजा को निःशस्त्र बना रक्खा है। अिसलिअे वह बड़ी निश्चिन्त हो कर बड़े आराम से राज्य करती थी। अब अचानक आफत आ गयी है। अुसका सामना करने की बुद्धि और ताकत अब हमारी सरकार में नहीं है। लेकिन यह हिन्दुस्तान सरकार की विशेषता है। परन्तु आज तो जगत् के सभी राज्यतंत्र बेकार साबित हो चुके हैं। अिसका अेक कारण है। अुसपर आपको ध्यान देना चाहिअे। जैसे जैसे यंत्रों की क्षमता बढ़ती जाती है, वैसे वैसे बुद्धि की क्षमता घटती जाती है। अिसलिअे जहाँ देखिये, अव्यवस्था का ही साम्राज्य फैला हुआ है।

नेतृत्व और बुद्धिमत्ता

जबसे अमेरिका जैसा बड़ा और प्रतापी राज्य युद्ध में शामिल हुआ है, तब से युद्ध का सारा कारोबार अमेरिका की ही सलाह से चलता

है। चोबीस हजार मील लंबी दुनिया का सारा व्यवहार, अमेरिका कहती है, हम करेंगे : सामान अिधर से अुधर हमारी सलाह से जायगा, यूरोप का अुद्धार हमारे जरिये होगा, हिन्दुस्तान को हम बचायेंगे, जापान का मुकाबिला हम करेंगे, आस्ट्रेलिया की मदद हम करेंगे।

अमेरिका की तरफ से अुसके अध्यक्ष, रूजवेल्ट यह कह रहे हैं। जो सबसे बुद्धिमान व्यक्ति होता है वही अध्यक्ष चुना जाता है, अैसी बात नहीं। पुराने जमाने में राजा का पुत्र राजा बनता था। कभी कभी नसीब से वह बुद्धिमान होता था। अुसी तरह आज जो व्यक्ति चुने जाते हैं, वे भी नसीब से ही बुद्धिमान होते हैं। ज्यादा संभव यही है कि अुनमें अधिक बुद्धि नहीं होती। जिनमें बुद्धि कम और अहंकार की मात्रा अधिक होती है, वे ही अक्सर चुने जाते हैं। क्योंकि अैसे व्यवहारों में वे ही पड़ते हैं। बुद्धिमान तो दूरदूर ही रहते हैं; क्योंकि वे दुनिया पर कम-से-कम सत्ता चलाने में ही बुद्धिमानी समझते हैं। अिसलिअे, याने अपनी अिस निष्ठा के कारण ही, राजकाज में कम दखल देते हैं। अक्सर जो लोग राष्ट्र के नेता बन जाते हैं, वे बुद्धि से श्रेष्ठ नहीं होते। अुस देश की आम जनता की बुद्धि से चाहे अुनकी बुद्धि कम न हो। शायद कुछ अधिक भी हो। तो भी वे बुद्धिमान नहीं कहे जा सकते।

अिसके अलावा, अुनसे जब कोअी सलाह पूछी जाती है, तो अुन्हें फौरन जवाब देना पड़ता है। फौरन पूछने और फौरन जवाब देने के शीघ्र-औजार तयार हुअे हैं। पाँच दस मिनिट में दुनिया-भर के कारोबार का जवाब देना पड़ता है। यह कोअी हँसी की बात नहीं है। बेचारे क्या करें? जैसा सूझता है, जवाब दे देते हैं। अिसलिअे मैं कहता हूँ कि कारोबार बुद्धि से नहीं चल रहा है। सारा नसीब का खेल है।

युद्ध मनुष्य के हाथ में नहीं रहा

अिसलिअे जब से अमेरिका युद्ध में शामिल हुअी, तभी से मुझे यह विश्वास हो गया कि यह युद्ध अब मानव के हाथ में नहीं रहा, बल्कि मानव ही युद्ध के हाथ में चला गया है। जावा और मलाया में अिनकी बुद्धि चकरा गयी। सूझबूझ धरी रह गयी। तब से सामान्य मनुष्य को भी यह शंका आने लगी है कि अितना बड़ा साम्राज्य चलानेवालों में बुद्धि की अितनी पोल और व्यवस्था-शक्ति की अितनी कमी कैसे रह गयी? सिंगापुर और बर्मा में अिनकी अैसी दुर्दशा क्यों हुअी?

अैतिहासिक जिम्मेवारी का ढकोसला

वे कह सकते हैं कि तुम लड़ाअी से दूर दूर रहते हो, अिसलिअे अैसी बातें कर सकते हो। हमें जो सूझता है, वह करते हैं। तुम अगर हमारी जगह होते और अितनी बड़ी जिम्मेवारी तुमपर होती, तो हमसे भी ज्यादा गलतियाँ करते।

मैं कबूल करता हूँ कि हम काफी भूलें करते। लेकिन मैं पूछता हूँ कि यह जिम्मेवारी आपके सिर पर डाली किसने? वे जवाब देते हैं, "अितिहास ने डाली है: पहले अीस्ट अिंडिया कंपनी कायम हुअी, अिस देश से तिजारत शुरू हुअी, क्लाअिव ने ब्रिटिश राज्य की नींव डाली, वारन हेस्टिंग्ज ने बाकायदा राज्यकारबार जारी किया। अिस तरह अितिहास ने धीरे धीरे यह जिम्मेवारी हमें सौंपी है। अब हम अुसे छोड़ नहीं सकते"।

हम कहते हैं, "अगर आप अितने दूर से यहाँ आ सकते थे, तो जा भी नहीं सकते हैं क्या? क्या वापस जाने से अितिहास के पृष्ठ आपको रोकते हैं? जैसे आने का अितिहास बना, वैसे जानेका भी तो

अितिहास बन सकता है। आने का अितिहास भद्दा और भयानक है। वापस चले जाने का अितिहास अुज्ज्वल और खूबसूरत होगा। अुसमें सुन्दरता और नीतिमत्ता होगी। आप अैतिहासिक जिम्मेवारी के बोझ से नाहक क्यों दबे जा रहे हैं ?"

दूसरे राष्ट्र भी अिसी अैतिहासिक जिम्मेवारी के भ्रमजाल में फँसे हुअे हैं। वे नहीं जानते कि अितिहास आखिर मानव की ही करतूत है। अितिहास हमको बनाता है यह कुछ अंश में सही है। लेकिन अुसी तरह यह भी सही है कि हम भी अितिहास को बनाते हैं। आज तो अैतिहासिक जिम्मेवारी का ढकोसला नाहक हमारे सामने रचा जा रहा है। रूजवेल्ट कहता है, 'प्रशान्त महासागर अमेरिका की बगल में है। अुसकी और अुसमें बसे हुअे टापुओं की जिम्मेवारी हमारी है'। जापान कह सकता है कि हमारा तो टापू ही प्रशान्त महासागर में बसा हुआ है। अिसलिअे हमारी जिम्मेवारी विशेष है। अिस तरह यह जिम्मेवारियों का व्यर्थ का झगड़ा चलता है।

बस कीजिये

लेकिन मेरे विचार में सबसे भयानक वस्तु यह है कि अिस हत्याकाण्ड में आम जनता को निष्कारण दाखिल किया जाता है। जिस जनता को युद्ध से कोअी मतलब नहीं है, अुसका खून बहाया जाता है और अुसके नाम पर दूसरे लोगों का खून बहाया जाता है। यह सारी व्यवस्थापकों की करतूत है। अुसमें आम जनता का कोअी लाभ नहीं है। अिसलिअे दुनिया-भर के व्यवस्थापकों से हम कहते हैं कि अब आप व्यवस्था छोड़ दीजिये। तभी हम सुखी होंगे। हम अपने यहाँ के व्यवस्थापकों से प्रार्थना करें। अमेरिका, अिंग्लैंड, जापान, जर्मनी अपने अपने व्यवस्थापकों से विनति करें। न मालूम वहाँ के लोगों को कब सूझेगी। कम-से-कम हम तो शुरू कर दें। हम अुनसे कहें कि तुमने हजार साल से व्यवस्था के कअी प्रयोग किये। हमें कोअी सुख नहीं हुआ। आपकी व्यवस्था में कअी अुलट-फेर हुअे। अेक में से दूसरी व्यवस्था कायम की गयी। कअी क्रान्तियाँ हुअीं; लड़ाअियाँ हुअीं। लोगों का व्यर्थ संहार हुआ। आपने बहुत प्रयोग कर लिये; अब बस कीजिये। ज्यादा-से-ज्यादा अव्यवस्था और पीड़ा व्यवस्थापक वर्ग ने ही दी है। आपने काफी कोलाहल मचा दिया। अब मेहरबानी करके हट जाअिये; तो हममें ज्यादा शक्ति आयेगी, दुःख मिट जायगा और सुख होगा।

व्यवस्था की क्या जरूरत ?

व्यवस्थापक वर्ग कहता है, तुम्हारी व्यवस्था के लिअे हमारी जरूरत है। हम कहते हैं, हमारी कौनसी जरूरतें तुम पूरी करते हो ? हमें भूख लगती है। परमात्मा की दी हुअी जमीन में हम खेती करते हैं। व्यवस्थापक वर्ग खेती नहीं करता। खेती के द्वारा फसल पैदा करने की कला परमात्मा की कृपा से और दस लाख साल के अनुभव से प्राप्त हुअी है। अिसलिअे हमारी भूख मिटाने के लिअे तुम्हारी कोअी जरूरत नहीं है। प्यास बुझाने के लिअे भी तुम्हारी जरूरत नहीं है। बारिश होती है, जलाशयों में पानी भर जाता है। अिस तरह हमें जमीन में से अन्न और आसमान से पानी मिल जाता है। अब रही हवा। अुसके लिअे भी व्यवस्था की जरूरत नहीं। परमात्मा ने हर अेक को अेक अेक नाक दी है। दस आदमियों को मिला कर अेक नाक नहीं दी। अैसा तो नहीं होता कि अेक आदमी अपनी नाक में हवा बटोर ले और अुसे दस आदमियों

में बाँट दे। आपस आपस के व्यवहार की भी वही बात है। नीतिशास्त्र से हमने विवाह करके कुटुंब-संस्था बनाना सीखा है। सन्तों ने हमें पड़ोसी से प्रेम करना सिखाया है। अिस प्रकार हमारी सारी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। राज्यव्यवस्थापकों के लिअे अब बचता ही क्या है?

सिर्फ अेक ही वस्तु बाकी रह जाती है। किसान को जितनी फसल होगी, अुतनी सारी वह कैसे खायगा? आस्मान के पक्षी और जमीन के चूहे कुछ हिस्सा बटा लेते हैं। लेकिन तो भी अन्न के ढेर लग जायँगे। किसान अुनका क्या करेगा? अिसलिअे किसान का बोझ कम करने की जरूरत है। और व्यवस्थापक वर्ग अुमकी पैदावार का कुछ हिस्सा अिसीलिअे ले लेता है। हम कहते हैं कि किसान के बोझ की फिक्र आप न कीजिये। वह कम अनाज पैदा करेगा। अुसे आराम मिलेगा। अुसके लिअे अुसे आप को टैक्स देने की जरूरत नहीं।

शिक्षण के लिअे भी जरूरत नहीं

अिस तरह जीवन के सभी कार्य व्यवस्थापक वर्ग के बिना ही संपन्न हो जाते हैं। तब व्यवस्थापक वर्ग कहता है कि हम आपको तालीम देते हैं, आपकी रक्षा करते हैं। अिधर का सामान अुधर ले जाने में मदद करते हैं।

अिन कामों के लिअे भी हमें व्यवस्थापक वर्ग की जरूरत नहीं है। बच्चा आस्मान से तो नहीं टपकता। वह बे-माँ-बाप का नहीं होता। पैदा होते ही माँ के स्तन में अुसके लिअे दूध पैदा होता है। अिस तरह माता से अुसे रक्षण मिलता है। माता ही अुसे मातृभाषा सिखाती है। अिस प्रकार अुसे रक्षा और तालीम मिल जाती है। तालीम के लिअे अुसे तीसरे के सुपुर्द करने का सवाल ही कहाँ है? हाँ, बच्चा अगर बिना-माँ-बाप के पैदा होता, तो यह सवाल कठिन हो जाता। बच्चे को माँ-बाप से जो शिक्षा मिलती है, अुससे अच्छी शिक्षा और कहाँ मिल सकती है? आज तो शिक्षा के नाम पर ढोंग ही ढोंग चलता है। अच्छी तालीम किसे मिली, अिसका अुपनिषदों में अच्छा वर्णन दिया है—'मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्'। 'जिस के माता, पिता और आचार्य हैं, अुसने अुत्तम शिक्षा पायी है'। पहली दो बातें व्यवस्थापकों द्वारा नहीं मिलतीं। समाज में ज्ञानी या गुरु का होना भी राज्यव्यवस्था पर निर्भर नहीं है। यह कोअी नहीं कह सकता कि फलाना राज्य था, अिसलिअे अमुक ज्ञानी पुरुष पैदा हुआ। अकबर का राज्य था अिसलिअे तुलसीदास पैदा हुअे हों, अैसी बात नहीं है। सच्चे ज्ञानी स्वयंभू होते हैं। वे सृष्टि से ज्ञान लेते हैं। वे शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा नहीं लेते; अीश्वर की कृपा से ज्ञानी बनते हैं। खुद शिक्षणशास्त्रज्ञ ही कहते हैं कि सच्चे ज्ञानी शिक्षण संस्थाओं के बाहर ही होते हैं।

सरकार शिक्षण को बिगाड़ती है

तो फिर राज्य पद्धति क्या करती है? वह तालीम का अेक ढांचा बना देती है। हुक्म के मुताबिक कुछ बातें लड़कों के दिमाग में ठूँसने की प्रणाली बना देती है। 'टू ऑर्डर' याने 'हुक्म के मुताबिक' माल तैयार करनेवाली पाठशालाअें कायम करती है। अिग्लेंड, रूस, अमेरिका, जर्मनी आदि सभी देशों में यही होता है। अिस प्रकार सरकारी तालीम लोगों को बुद्धि से गुलाम बनाने के लिअे होती है। जर्मनी में लोगों को सिखाया जाता है कि हेर हिटलर को अीश्वर का अवतार मानो। हिन्दुस्तान में सिखाया जाता है कि अंग्रेजों का यहाँ आना जरूरी था। वे यहाँ अच्छी व्यवस्था कर रहे हैं। अुत्तम कार्य कर रहे हैं। अुनके आने से

हिन्दुस्तान का फायदा हुआ है। अिस प्रकार अपने शिक्षा-विभाग के द्वारा सरकार तालीम के कार्य में बिगाड़ ही पैदा करती है। जितने नये नये शोध और प्रयोग हुअे हैं, सरकार के क्षेत्र के बाहर ही हुअे हैं। पेस्टोलॉजी, फ्रेबल, मॉटेसरी आदि के प्रयोग सरकारी महकमे के जरिये नहीं हुअे।

रक्षण का सवाल अेक दुष्ट चक्र

तब वे अन्त में कहते हैं कि हम तुम्हारी रक्षा करते हैं। 'किससे रक्षा करते हैं' ? 'परकीय आक्रमण से'। लेकिन हम पर परकीयों द्वारा आक्रमण ही क्यों होता है ? परकीय आक्रमण का यह भूत व्यवस्थापकों ने ही खड़ा किया है। अगर वे हट जायँ, तो वह अपने आप गायब हो जायगा। हम अपने यहाँ के रक्षकों से कहें कि आप हट जाअिये। जापान, जर्मनी, अिंग्लैंड और अमेरिका के लोग अपने अपने रक्षकों से कहें कि आप हट जाअिये, तो विदेशी आक्रमण के हौअे का डर नहीं रहेगा। किसी देश की आम जनता दूसरे देश की आम जनता पर हमला थोड़े ही करनेवाली है ? जापान के किसान हिन्दुस्तान पर हमला करने थोड़े ही आयेंगे ? आज सुनते हैं कि अमेरिका के सवा दो लाख आदमी यहाँ आये हैं। वे सेना में भर्ती कर कर के यहाँ लाये गये हैं। क्योंकि अमेरिका की रक्षा के लिअे हिंदुस्तान भी अेक फ्रण्ट (मोर्चा) है। आज तो सारा संसार ही 'फ्रण्ट' बन रहा है। अिस फ्रण्ट की भी कोअी सीमा है ? ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार कभी कभी पृथ्वी भी मंगल की कक्षा में आ जाती है। तब अिन दोनों ग्रहों के टकरा जाने का डर रहता है। अिस दृष्टि से तो सारा त्रिभुवन ही हमारा मोर्चा है। अिसका क्या अिलाज ? अेक ही अिलाज है कि हर अेक अपनी अपनी जगह शांतिपूर्वक अपना काम करता रहे और किसीसे न डरे। अपनी कक्षा से बाहर जाने की किसी को जरूरत ही नहीं है। रक्षा का यही सब से सफल अुपाय है। यह रक्षा का प्रश्न अेक दुष्टचक्र है। यह हौआ व्यवस्थापकों का ही खड़ा किया हुआ है। अिस बहाने वे अपने अस्तित्व को हम पर लादने की कोशिश करते हैं। वे कहते हैं, तुमको दूसरों के आक्रमण से बचाने के लिअे हमारी जरूरत है। हम कहते हैं व्यवस्थापकों का होना ही आक्रमण की जड़ है।

फौज किस लिअे ?

हमारी रक्षा करने के बहाने वे फौज रखते हैं। आक्रमण तो कभी-जभी होता है। लेकिन सेना का अुपयोग प्रायः हमको दबाने के लिअे किया जाता है। हम कहते हैं, 'आप हम से अधिक बुद्धिमान हैं तभी तो हमारे व्यवस्थापक हुअे ! अगर हम आपकी बात न मानें, तो हमें समझाअिये। अुसके लिअे लश्कर की क्या जरूरत ? आप हमारे माँबाप-जैसे मार्ग दर्शक है। अपनी बात हम पर लादने के लिअे आप लश्कर की सहायता क्यों लेते हैं ? बाप अपने बच्चे को कोअी बात समझाना चाहे, तो दोनों के बीच में अेक सिपाही की क्या जरूरत' ?

शिक्षक अगर लड़कों से अधिक बुद्धिमान है, तो बुद्धिहीन लड़कों को अपनी बात समझाने के लिअे वह क्या अपने पास अेक सिपाही रखेगा ? लेकिन होता तो अैसा ही है। वह अपने पास अेक निर्जीव सिपाही, अेक छड़ी, रख लेता है। बुद्धिमान शिक्षक का अुसके लड़कों से संबंध रखने के लिअे निर्बुद्ध और निर्जीव छड़ी का अुपयोग कैसे अुपयुक्त हो सकता है ? लेकिन हर अेक दर्जे (क्लास) में वह बराबर चलता है। कहा जाता है कि खाने में अगर थोडी-सी मिर्च हो तो खाना जल्दी हजम

हो जाता है। अुसी तरह छड़ी के साथ शिक्षण दिया जाय तो जल्दी गले अुतरता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि अिस तरह की दलीलें दे कर शिक्षण में छड़ी का और राज्यशास्त्र में लश्कर का समर्थन किया जाता है।

अगर व्यवस्थापक वर्ग बुद्धिमान हैं, तो समाज में जो दूसरे दो-चार बुद्धिमान व्यक्ति होंगे, अुन्हें पहचानने की अक्ल अुसमें होगी। वह अुन्हें और अुनके द्वारा जनता को समझाने की कोशिश करेगा। अुनकी समझ में न आवे, तो फिर समझायगा। बार बार समझाने पर भी समझ में न आवे, तो सब्र करेगा। सब्र भी तो कोअी चीज है? लोगों की समझ में जितना आये, अुतनी ही व्यवस्था करेगा।

लेकिन हमारे व्यवस्थापक तो समझाने की कोशिश नहीं करते। डण्डों से बातें करते हैं। अिसीलिअे अुन्हें लश्कर की जरूरत जान पड़ती है। अिससे स्पष्ट है कि अिन व्यवस्थापकों की व्यवस्था लोगों ने कबूल नहीं की है। वे अुसे जबरदस्ती लादना चाहते हैं। लेकिन यह खुल कर नहीं कह सकते। अिसलिअे बहाना बताते हैं कि हम तुम्हें दूसरों के आक्रमण से बचाने के लिअे लश्कर रखते हैं।

आप फौरन हट जायँ

रक्षण का यह सही अुपाय नहीं है। सही अुपाय अेक ही है। वह यह कि लोग बुद्धिपूर्वक अेकत्र हो कर शान्तिपूर्वक अपना अपना काम करें, हिल-मिलकर रहें और व्यवस्थापकों से कहें कि आप हट जाअिये। कम-से-कम हिन्दुस्तान के लिअे आज ही वह समय आ गया है। हमारे व्यवस्थापकों को अब फौरन हट जाना चाहिअे। हम भी व्यवस्था के सिद्धान्त अनुभव से सीखे हैं। हम अपनी करतूत से अुतनी अव्यवस्था नहीं करेंगे, जितनी कि व्यवस्थापकों ने की है। अितना ज्ञान तो हमें है। आपकी फौज, अदालतें, टैक्स, वगैरा से हमारा काम बिगड़ता है। अिनके अभाव में हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। हमारे पास जमीन है, आस्मान है, नाक है, गला है और भगवान हैं। हम अपनी व्यवस्था कर लेंगे। यह साफ शब्दों में कह देने का मौका आज ही आया है। कम-से-कम हिन्दुस्तान के लिअे तो आ ही गया है। दुनिया के दूसरे राष्ट्रों के लिअे भी आया है। लेकिन वे जब महसूस करेंगे, तब करेंगे।

आज ब्रिटन को नया दर्शन क्यों हुआ?

सवाल अुठाया जाता है कि अगर अंग्रेज चले जायँ, तो हिन्दुस्तान जापान के हमले का मुकाबिला नहीं कर सकेगा। मैं कहता हूँ, कर सकेगा। लेकिन फिर जापान का हमला होगा ही क्यों? जापान तो अिंग्लैंड का शिष्य बन रहा है। साम्राज्यवाद का गुरु तो अिंग्लैंड है। आज ब्रिटिश लोग कहते हैं कि अब हम साम्राज्यवाद को नहीं मानते। श्रीमती रूजवेल्ट कहती हैं कि अब साम्राज्यवाद के दिन लद चुके हैं। क्यों भाअी, क्या अिसका भी पहले से कोअी कैलेंडर बना रक्खा था? क्या अिंग्लैंड की यह प्रतिज्ञा थी कि अुन्नीस सौ ब्यालीस तक ही हम साम्राज्यवादी रहेंगे; बाद में साम्राज्यवाद छोड़ देंगे? यह विचार आज ही क्यों सूझा? मलाया और सिंगापुर में जो अनुभव हुआ अुसका यह परिणाम है। मलाया में अिन लोगों ने देखा कि वहाँ के लोग कोअी मदद नहीं करते; जापानियों से मिल जाते हैं। अितने दूर दूर के देश सम्हालना मुश्किल हो जाता है। अिसलिअे अब ये कहने लगे हैं कि अब साम्राज्यवाद के दिन बीत गये हैं।

लूटने में स्वदेशी धर्म

लेकिन जापान कहता है कि यहाँ 'भी मुन्रो डॉक्ट्रिन' लागू करो। मुन्रो डॉक्ट्रिन के माने हैं

लूटने में स्वदेशी धर्म। जापान के लिअे वह अेक अच्छा सहारा हो गया है। वह कहता है, कहाँ मलाया और कहाँ अिंग्लैंड ? जावा पर डच लोगों का राज्य नहीं होना चाहिअे। लूटने के लिअे अितनी दूर नहीं जाना चाहिअे। यहीं तक अिनका स्वदेशी धर्म पहुंच पाया है।

अिंग्लैंड ने देख लिया कि अितने दूर के देश सम्हालना मुश्किल हो जाता है। मलाया के प्रकरण से वह डर गया है। वह कहेगा, हम डरे नहीं, सावधान हो गये हैं। लेकिन डर और सावधानी की सीमा-रेखा ठहराना मुश्किल है। मलाया में जो अनुभव हुआ वही ब्रह्मदेश में हो रहा है। हिन्दुस्तान में भी वही होने का डर है। अब अुन्हें अिंग्लैंड की रक्षा की पड़ी है। वे समझ गये हैं कि हिन्दुस्तान को बचाने की शक्ति अुनमें नहीं है। बेचारा वेवेल तो साफ साफ कहता है कि हिन्दुस्तान का किनारा अितना बड़ा है कि अुसकी रक्षा हम नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानियों से भी आशा नहीं कर सकते। क्योंकि अुनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया है।

साम्राज्यवाद का स्वभाव

कोअी साम्राज्य अनादि-अनंत नहीं है। लेकिन साम्राज्यवाद का यह स्वभाव है कि वह अपनी प्रतिमा, अपने ही आकार और शक्ल की विरोधी शक्ति, पैदा करके मरता है। अेक साम्राज्य की सन्तान दूसरा साम्राज्य होता है। अुसके बाद तीसरा साम्राज्य आता है। अिस प्रकार साम्राज्यवाद बहु-सन्तानशाली है। अिंग्लैंड के बाद अब जापान आना चाहता है। अिन दोनों की मुठभेड़ में बेचारे हिन्दुस्तान का खात्मा होने का डर है।

अिसलिअे अब हमें अपने व्यवस्थापकों से ही जान छुड़ानी चाहिअे। सिंगापुर में यह साबित हो चुका है कि अुनमें रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है। अितने बड़े दिग्विजयी कहलाते थे। कहते थे, सिंगापुर अैसा मजबूत गढ़ है कि यावच्चंद्र-दिवाकरौ बना रहेगा। परीक्षित भी अैसा जबरदस्त किला नहीं बना सका था। वह सात दिन तक किले के अन्दर ऋषि से ज्ञान-चर्चा करता रहा। मृत्यु ने अुसका वहाँ भी पिंड नहीं छोड़ा। आप भी दुनिया की रक्षा के ठेकेदार बन कर यावच्चंद्र-दिवाकरौ अपना साम्राज्य कायम रखने की बातें करते थे। लेकिन परीक्षित की तरह आपका किला भी आठ-दस रोज में ढह गया। आपको हटना पड़ा। अंग्रेजों को यह अनुभव हो गया कि दस दस हजार मील पर से जनता की मदद के बिना लड़ाअी नहीं लड़ी जा सकती। अंग्रेज कहते आये हैं कि हम आखिर तक लड़ेंगे; हरगिज नहीं हटेंगे। लेकिन हाँगकाँग और सिंगापुर में हटना ही हटना पड़ा। आखिर तक लड़नेवाले थे, तो हटने का मौका ही क्यों आया ? वे कहते हैं कि हम आखिर तक लड़ेंगे। शायद अुनका यह मतलब है कि हम जब पीछे हटेंगे तभी हटेंगे, अुससे पहले नहीं हटेंगे। अिसके सिवा दूसरा कोअी मतलब मुझे तो नहीं नजर आता।

फिर कहने लगे कि रंगून से हटते हटते अुस शहर में अैसी आग लगा दी कि चालीस मील पर से तमाशा देख सकते थे। रंगून किसके बाप का था ? अितनी संपत्ति तबाह हो गयी। किसका नुकसान हुआ ?

क्रिप्स साहब की चाल

क्रिप्स साहब आये। अेक योजना ले कर आये। कहने लगे अिसके साथ शादी कर लो। अुसे हमारे पल्ले बाँध कर हमें लड़ाअी में शामिल कराना चाहते थे। अुनकी यह चाल थी कि अिस तरह हिन्दुस्तान का अनुमोदन मिलने से

लड़ाओी को नैतिक योग्यता मिल जायगी। लेकिन असली लेने-देने की बात अुधारी की थी। कहने लगे लेना-देना लड़ाओी की धूमधाम में नहीं हो सकता। व्यापारियों का अेक नियम है—देते वक्त 'पहले लिख, पीछे दे' और लेते वक्त 'पहले ले, पीछे लिख'। अिसी व्यापारी सूत्र से क्रिप्स काम लेना चाहता था: लड़ाओी के बाद जो कुछ देना है दे देंगे; तब तक हम जैसे नचावें वैसे नाचो। कॉंग्रेस को यह मंजूर नहीं हुआ। गांधीजी फौरन ताड़ गये।

अिससे अराजकता बेहतर है

अिसलिअे गांधीजी अब लेने-देने की बात नहीं करना चाहते। वे कहते हैं भगवान ने यह जमीन हमें दी है; मेहरबानी करके आप यहाँ से हट जाअिये। तब वे वही पुराना अराजकता का सवाल अुठाते हैं। वे तो अव्यवस्था और अराजकता का डर दिखा दिखा कर ही सत्ता चलाते आये हैं। अिसीके भरोसे व्यवस्थापक वर्ग जनता पर अपना सिक्का जमाता आया है। भविष्य के बड़े भयानक चित्र खींचता है। कहता है, हम चले जायँगे तो हिन्दुस्तान में बड़ा भीषण युद्ध होगा। हमें अुसका कोओी डर नहीं है। हिन्दुस्तानियों को सोचना चाहिअे कि अराजकता से हमारा और क्या नुकसान होनेवाला है? आज की व्यवस्था ही पूरी पूरी अव्यवस्था है। अिसके मुकाबिले में अराजकता भी व्यवस्था ही होगी।

हमारा पिण्ड छोड़िये

अिसलिअे व्यवस्थापक वर्ग से हमारा अनुरोध है कि आप हमारी फिक्र न कीजिये। अगर आप हट जायंगे, तो आप भी बचेंगे और हम भी बचेंगे। आप अिसलिअे बचेंगे कि हिन्दुस्तान को छोड़ने से आपकी नैतिक योग्यता बढ़ जायगी, साम्राज्यवाद नष्ट होगा और दुनिया का भला होगा। शायद यूरोप में भी लड़ाओी बन्द हो जायगी। और अगर न हुओी, तो आप यूरोप को सम्हालिये। दूर की चिन्ता न कीजिये। अपनी सारी शक्ति यूरोप में केन्द्रित कीजिये। कृपा कर के हमारा पिण्ड छोड़िये। हम अपने यहाँ ज्यादा-से-ज्यादा व्यवस्था करने की कोशिश कर लेंगे।

अेक महान वस्तु

बापू यही कह रहे हैं। अुनकी योजना आगे चल कर क्या आकार लेगी, सो तो मैं नहीं जानता। लेकिन यह महान वस्तु है। यह सारी दुनिया के लिअे लागू है। केवल अुसका आरम्भ हिन्दुस्तान से हो रहा है। दुनिया मे व्यवस्थापकों का तांता-सा लग रहा है। वह जनता के गले में तांत के समान प्राण-घातक हो रहा है। सारी दुनिया के व्यवस्थापक अगर अपनी अपनी जगह से हट जायें, तो दुनिया में शान्ति होगी और मानवता का कल्याण होगा।

सर्वोदय की दृष्टि

आत्मरक्षा की शर्तें

जो बात हमने 'सर्वोदय' के द्वारा दो तीन दफ़ा देश के सामने रक्खी थी, अुसे आज फिर से दोहराना ज़रूरी है।

ये दिन भूख के हैं। सरकारी फ़ौजें भूखी रहती हैं, आक्रमणकारी फौजें भी भूखी रहती हैं; दुनियाभर के स्वदेशी और परदेशी कुछ कम भूखे नहीं हैं। अैसी हालत मे हम देश में जितना अन्न बचा सकें, अुतना बचाना चाहिअे। हममें जितनी शक्ति हो, अुतनी लगा कर अन्न तैयार करना चाहिअे, कपड़े बुन कर रखने चाहिअे। शहरों को पानी के प्रबन्ध के बारे में स्वावलंबी बनाना चाहिअे।

लेकिन, अिसके साथ अेक चीज़ भूलनी नहीं चाहिअे। जहाँ बड़ा संग्रह हुआ, वहाँ लूट होने ही वाली है। सरकार कहेगी, 'लश्कर के लिअे सब दे दो। जब हमारी जीत होगी, तब अिन सारी बातों का हिसाब होगा और आपको दाम दिया जायगा।' लोग मन में कहते हैं, 'अिस जन्म में भूखे रहोगे तो परलोक में श्राद्ध के पिंडे मिलेंगे', अैसी ही यह बात है।'

अच्छा तो यह है कि साधन-संपत्ति, अन्न-वस्त्र, आदि सब चीज़ें जहाँ जितनी ज़रूरी हैं, अुतनी ही अलग अलग रखनी चाहिअे। आक्रमणकारी फ़ौजें लूटें या अंग्रेज़ी फ़ौजें जला दें, अैसी हालत में हम अपने संग्रह रक्खें ही क्यों?

'संपत्ति केंद्रित न करो, लोकसंख्या केन्द्रित न करो और सत्ता भी केन्द्रित न करो'—यही आत्मरक्षा का सूत्र है।

शहरों की दीवारें हमारी रक्षा नहीं करेंगी। सरकार की फ़ौजें शायद ही हमें बचा सकेंगी। किन्तु हमारी लोकसेवा और हमारे देश की विशालता ही हमारा सबसे विश्वास-पात्र संरक्षण है। फूलों के अन्दर जो मधुबिन्दु होते हैं, वे ही मधुमक्खियों के लिअे सुरक्षित हैं। पर, वे ही बिन्दु जब छत्ते में अिकट्ठे होते हैं, तब अचूक लूटे जाते हैं। अगर भूखों न मरना हो, तो कहीं भी बड़ा संग्रह न रक्खो, बमों से बचना हो, तो कहीं भी लोकसंख्या को केंद्रित न करो और स्वराज्य चाहते हो, तो लोगों की सूक्ष्मशक्ति दबा कर सत्ता केंद्रित न करो—यही देश को बचाने का अेकमात्र अुपाय है। ख़तरे के दिन आ ही गये हैं। लेकिन अगर हम अपनी बुद्धि ठिकाने रख कर व्यवस्थितरूप से काम करेंगे, तो हमें जितने की आशंका है; अुसका दसवाँ हिस्सा भी ख़तरा हमें नही अुठाना पड़ेगा।

१२ : ५ : '४२ का० का०

परिचित स्वयंसेवक

भले ही देर से क्यों न हो, लेकिन देश में अब कुछ स्वयंसेवक दल काम करने लगे हैं और अुनके लिअे अनेक कार्यक्रम सोचे जा रहे हैं। अेक ओर कवायत, लाठी और ब्यूगल का कार्यक्रम सुझाया जाता है; तो दूसरी ओर कताअी, धुनाअी, बीमारों की तीमारदारी आदि सेवा के कार्यक्रम भी बताये जाते हैं। दोनों अच्छे हैं। अहिंसक सेवा में भी दोनों के लिअे अवकाश है। लेकिन अेक महत्त्व का कार्यक्रम अैसे सेवादलों के सामने और रखना आवश्यक है। और वह है देश की भौगोलिक और सामाजिक सर्व्हे याने पैमाअिश और जाँच। स्वयंसेवक-दलों के नौजवान बूट या चप्पल पहन कर पहाड़ों और जंगलों में घूमते जायें, और देश का स्वरूप समझते जायें। 'कुँअे तालाब कहा

कितने हैं, कौन-सा पहाड़ कितना अूँचा है, कौन-सी नदी कहाँ से जाती है, कौन-सा रास्ता किस ओर मुड़ता है, कहाँ तक जाता है, हर गाँव में किस किस्म के कारीगर हैं, हरअेक गाँव की शक्ति कितनी है; कौन-सी चीजें कहाँ बनती हैं; कहाँ मिलती हैं ?—अिन सब बातों का अनुभव-सिद्ध ज्ञान स्वयंसेवकों को होना चाहिअे। काम-चलाअू नक्शा खींचना, हर काम की योजना बनाना, समय का और खर्च का बजट बनाना, किस काम के लिअे कितनी शक्ति आवश्यक है अिसका अंदाजा लगाना, अित्यादि बातें स्वयंसेवकों को आनी ही चाहिअे। जिस प्रदेश में दल काम करता हो, वहाँ के लोगों के जीवन के साथ और अुनके सुख-दुःख के साथ हर अेक स्वयंसेवक का कम या बेशी प्रत्यक्ष परिचय रहना चाहिअे ।

हमारे स्वयंसेवक जनता के सच्चे और अच्छे सेवक बनें, यह तो जरूरी है ही । लेकिन साथ-साथ अिस बात की भी जरूरत है कि जनता अुन्हें केवल अुनके दलवेश (वर्दी) से नहीं, बल्कि अुनके शील स्वभाव से और सेवा से पहचाने और अुन्हें विश्वास-पात्र माने ।

१६ : ५ : '४२ का० का०

अच्छे दिन आ रहे हैं

थोड़े ही दिन पहले यहाँ की रेलवे कम्पनियाँ मथुरा, वृंदावन, नासिक और काशी के चित्र दे दे कर रेल की मुसाफ़री बढ़ाने की कोशिश कर रही थीं । यात्रा के 'राअुण्ड टिकटों,' और 'जोन टिकटों,' की तो भरमार थी । बैल-गाड़ी की तो अुन दिनों कोअी बात भी नहीं पूछता था । गान्धीजी की ग्राम अुद्योग की बातें प्रजाहित-विरोधी और अितिहास को पीछे हटानेवाली मानी जाती थीं । आज वही रेलवे कम्पनियाँ बैलगाड़ी की मुसाफ़री के लुत्फ़ की बातें लोगों के सामने रख रही हैं । सैंकड़ों वर्षों के बाद अैसी अेक बात मिली कि जिसके बारे में परदेशी गोरे और स्वदेशी कालों का अेकमत हो रहा है । वह यह कि रेल की मुसाफ़री कम की जाय और जहाँ मुमकिन हो, बैलगाड़ी का आश्रय लिया जाय ।

पेट्रोल का 'रेशनिंग' होने से देश में बचे हुअे घोडों के भाग्य खुल गये । अब रेल की कठिनाअियों के कारण अगर बैलगाड़ी का युग स्थापित हो जाय, तो अुसे भी 'बुरे का भला नतीजा' ही समझना चाहिअे । आज फौजों की सहूलियत के लिअे रेलगाड़ियाँ कम हो गयी हैं । कल अुठ कर प्रजा की शक्ति कुंठित करने के लिअे भी, याने प्रजा का संगठन तोड़ने की नीयत से, सरकार रेलें, डाकघर, तारघर, आदि बन्द कर सकती है । अैसी हालत में हमें अपने पुराने रास्तों, बैलगाड़ियों, और यात्रा के पड़ावों का स्मरण करना होगा । पुराने जमाने में हर-अेक व्यापारी के पास सैंकडों और हजारों बैल रहते थे । बंजारों के वे दिन अब फिर स्थापित करने होंगे । बड़े बड़े कारवाँ हर किस्म के अिन्त-जाम के साथ शान से देश के अेक सिरे से दूसरे सिरे तक जा रहे हैं और विश्वासपात्र हेजीब (हरकारे) अेक प्रान्त का संदेशा दूसरे प्रान्त तक पहुँचा देते हैं और गाँव के दस-बीस आदमी बैठ कर जो कुछ खबरें मिलती हैं, अुनकी छानबीन करते हैं— अैसे भी दृश्य हमें देखने को मिलेंगे ।

बम्बअी, कलकत्ते जैसे शहरों में आज अपने पड़ोस के कमरे में कौन रहता है, अिसका पता भी हमें नहीं मिलता। आअिन्दा स्थान स्थान पर कहाँ क्या चल रहा है, अिसका पता हरअेक को रखना होगा ।

अैसे जीवन का नतीजा और कुछ भी हो, हमारा प्रजाकीय जीवन जाग्रत, तेजस्वी, समर्थ

और समृद्ध अवश्य होगा; आजकल का निःसत्व जीवन अशक्य होगा। और हम भारत-माता का दर्शन अखबारों के द्वारा नहीं, बल्कि अपने परिपुष्ट जीवन के द्वारा करेंगे।

१३:५:'४२ का० का०

हमारी सरकार और अुसकी फौज

आज तक कॉंग्रेस ने या गांधीजी ने अगर कुछ किया है, तो किसी-न-किसी रूप में, किसी-न-किसी कारणवश, सारे देश मे छोटे-बड़े, भले-बुरे राष्ट्र-सेवकों की अेक खासी फौज तैयार की है। अिन सेवकों ने जितनी ठोस सेवा की, अुतना ही राष्ट्र का संगठन हुआ है।

ये सब राष्ट्र-सेवक कॉंग्रेस की 'सिविल सर्विस' है। ये ही लोग देश को पहचानते है और देश अिन्हें पहचानता है।

अिनमें से जो लोग सत्याग्रह कर चुके है, जेल जा चुके है, जान-माल की बरबादी भुगत चुके हैं, वे ही हमारी स्वराज्य की लड़ाकू फौज है। अिन्हींके आधार पर हम देश को सम्भाल सकते है। जब अंग्रेजों का राज्य यहाँ से मिट जायगा, तब हमारा क्या होगा, अैसी पागल पन की चिंता हम क्यों करें? हमारे पास हर प्रान्त में अपने देशी गवर्नर है; स्थान स्थान पर स्वदेशी सेनापति हैं। अिन लोगों में देशनिष्ठा और तंत्रनिष्ठा काफ़ी मात्रा में है। जिस तरह सरकार जानती थी कि अगर समझौता करना पड़ा तो अिन्हींसे करना होगा, अुसी तरह जनता भी जानती है कि अगर किसीका हुक्म मानना है, तो अिन्हीं देशसेवकों का मानना है। अेक तरह से सोचा जाय, तो हम कह सकते हैं कि हमारी सरकार बिना कोअी नाम धारण किये स्थापित हो चुकी है। अगर हम दीर्घ दृष्टि से और अुदारता मे आपसी झगड़े टाल दें, तो अंग्रेजों के जाने से पहले ही हम अपने देश का राज्य किसी-न-किसी तरह सम्भाल सकेंगे। प्रारंभ में जो थोड़ा खतरा रहता है, वह भी अेक तरह से अच्छा ही है। क्यों कि जो लोग हिम्मती है, प्रजानिष्ठ हैं और हर किस्म की काबिलियत रखते हैं, वे ही आगे आयेंगे। जनता में जितनी स्वराज्यनिष्ठा होगी, अुतने ही हम संगठित और निर्भय हो कर अिस देश में स्वतंत्रता और व्यवस्था स्थापित कर सकेंगे और बाद में, मुहूर्त आते ही, दुनियाभर में धर्म का याने निर्भयता का साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे।

१२:५:'४२ का० का०

युग के साथ युगबुद्धि भी आती है

बचपन में सुनी हुअी बातें है। वे शब्दशः सही है या नहीं यह जाँचने की जरूरत नहीं है। मगर वह जमाना कैसा था, अिसकी कुछ कल्पना होने के लिअे वे निःसंशय काम की हैं।

सावंतवाड़ी-गोवा तरफ़ की बात है। सरकार कमजोर थी। बागी लोग सरकार को लूटते थे और जब सरकार को लूटने का मौका नहीं मिलता था, तब लोगों में से जो खानदान मालदार थे, अुन्हींको लूटते थे। जब बागी लोग आते, तब लोगों को अपने घरों में बनी-बनायी रसोअी जैसी-की-तैसी छोड़ कर जंगल में भाग जाना पड़ता था और वहाँ अेक दिन का फ़ाका करना पड़ता था। या फिर वन-भोजन का अिन्तजाम करना पड़ता था।

जब यह हालत रोज की हो गयी, तब लोगों ने सोचा कि रोज रसोअी छोड़ कर भाग जाना नामुमकिन है। फिर भी भागना तो जरूरी था ही। अिसलिअे अुनलोगों ने बाकायदा नया अिन्तजाम किया। वहाँ के लोग अक्सर भात ही खाते हैं। भात के बड़े बड़े देगों

के गले के पास पीतल के या तांबे के बड़े कड़े अुन लोगों ने लगा दिये। बागी लोग लूट करने आ रहे हैं, अैसा पता चलते ही अेक लंबा बांस दो कड़ों के अंदर डाल कर चार जवान अुस देग को पालकी की तरह अपने कन्धों पर अुठा कर जंगल में भाग जाते और फिर वहाँ तीन बड़े पत्थरों का चूल्हा बना कर और अुसपर देग रख कर जंगल की लकड़ियों से वह अधपका भात पकाते और जंगली पत्तों की पत्तल बना कर सब लोग नमक और मिर्च के साथ अुसे खाते थे।

जब अव्यवस्था के दिन आते हैं, तब लोगों को अव्यवस्था में भी व्यवस्था करने की सूझती है। अगर बुरे दिन आ सकते हैं, तो अुनके साथ साथ असाधारण हिंमत भी आ सकती है। जब मामला पेंचीदा होता है, तब मनुष्य की बुद्धि भी पैनी हो जाती है।

और अेक पुरानी बात याद आती है। कहते हैं कि पूने का आखिरी पेशवा दूसरा बाजीराव बंदूक की आवाज़ से बहुत डरता था। (दन्त-कथा कहती है कि बचपन में अुसे हिरनी का दूध पिलाया गया था।) अंग्रेजों की फ़ौज के सामने से वह अक्सर भाग जाना ही पसंद करता था।

महाराष्ट्र के यह श्रीमंत पेशवा भागते भागते दोपहर को जब किसी गाँव में पहुँच जाते, तब गाँववालों का कर्तव्य हो जाता कि वे अपने मालिक को और अुसके विशाल परिवार को अेक दिन की रसद दें।

अेक दिन का भोजन कोअी मामूली बात नहीं थी। सारे गाँव का करीब करीब सारा अनाज अुसमें खतम हो जाता था। दूसरे दिन गाँव के लोगों के लिअे खाने को शायद ही कुछ बचता था। लोग अैसा बोझ कहाँ तक सहन कर सकते थे? और फ़ौज की ताकत ले कर आये हुअे अपने राजा को खिलाने से अिनकार करने की हिम्मत भी कैसे करते?

लोगों ने अेक रास्ता ढूंढ निकाला। पेशवा आते हैं, अैसा समाचार मिलते ही गाँव के अगुआ पेशवा की पेशवाअी के लिअे दूर तक चले जाते और आदर और भक्ति के साथ अपने मालिक को गाँव की दावत कबूल फ़रमाने का अनुरोध करते। अपने गाँव के अहोभाग्य की बातें करते वे कभी न भूलते।

फिर रसोअी की तैयारी होती और पेशवा के परिवार के लोग स्नान-संध्या में लग जाते। जब आधी रसोअी तैयार हो जाती, तब कहीं से चार आदमी घबड़ाये हुअे दौड़े दौड़े आते और कहते कि अंग्रेजों की बड़ी भारी फौज आ रही है; बिलकुल करीब ही है। अब पेशवा की भोजन के लिअे ठहरने की हिम्मत कहाँ? सब लोग जैसे-तैसे तैयार हो कर वहाँ से कूच करते। भोजन तो दूर रहा, घबड़ाहट के मारे वे अपनी कुछ चीजें भी छोड़ जाते थे।

मालिक को अफ़सोस के साथ बिदा करके गाँव के लोग रसोअी बनने पर सब मिल कर के पेशवा के जयजयकार के साथ भोजन कर लेते और बचा हुआ दूसरे दिन के लिअे रख छोड़ते।

अिस किस्से पर से अुन दिनों राजा और प्रजा का संबंध कैसा हो गया था, वह भी मालूम होता है।

हमारे देश में अैतिहासिक काल में अनेक दफ़ा अराजकता और अव्यवस्था पैदा हुअी है और लोगों ने अुसे अच्छी तरह बरदाश्त भी किया है। शान्ति के दिनों में साहित्य, संगीत, कला और हुनर का विकास होता रहा होगा। विलास तो बढ़ता ही होगा। लेकिन अव्यवस्था

के दिनों में बहादुरी, संगठन-शक्ति, दीर्घदर्शिता, सूझशक्ति और तारतम्य-बुद्धि अधिक से अधिक तेज होती है। शान्ति के दिनों का मुरचा आत्मशक्ति का मारक है। अुसे हटाने के लिअे बीच बीच में अस्वस्थता के दिन निहायत जरूरी हैं। अस्वस्थता, अव्यवस्था, और अंधाधुंधी सामाजिक जीवन के लिअे तेजाब का काम करती है। अैसे दिनों की याचना तो मनुष्य भगवान से कभी नहीं करता। लेकिन जब भगवान कृपालु हो कर अैसे दिन भेज ही देता है, तब, कम-से-कम अुनका स्वागत करने की क्षमता तो जनता में होनी ही चाहिअे।

अहिंसक रह कर सब अत्याचारों का सामना करने की कला जिस प्रजा में है, वह अेक राज्य-व्यवस्था के टूटने पर दूसरी राज्यव्यवस्था अपने ही पुरुषार्थ से स्थापित कर सकती है।

हम चाहें या न चाहें, हमारे देश में अब अंधाधुंधी के दिन तुरन्त आने ही वाले हैं। अुस वक्त न सरकारी पुलीस कौड़ी काम की रहेगी; न फौज के लोग। अुस वक्त जनता के बीच जो भी स्वयंसेवक दल पैदा हुआ हो, वही लोगों की रक्षा कर सकता है। थोड़ी-बहुत मार खाने के बाद लोग भी आपस के निरर्थक झगड़े भूल जाते हैं और हिम्मत, चारित्र्य तथा समाज-निष्ठा जहाँ जहाँ पायी जाती है, वहाँ वहाँ नेतृत्व की स्थापना कर देते हैं।

अैसे दिन अब हमारे यहाँ आ रहे हैं। अुनके लिअे तैयारी करके अपने राष्ट्र को बचा कर दुनिया की सेवा करने के लिअे हमें प्रयत्नशील होना चाहिअे।

१३ : ५ : ४२ का० का०

निपट गुलामी से अराजकता बेहतर

फिर भी अंग्रेजों के हिन्दुस्तान को अेकाअेक छोड़ जाने का जो बुरे से बुरा नतीजा हो सकता है, अुसीका हम विचार करें। अगर गुरखे और पठान हम पर धावा बोल दें, तो क्या पर्वाह है? मौजूदा सरकार जो नैतिक और शारीरिक सतत हिंसा कर रही है, अुसकी अपेक्षा हम अुनकी हिंसा का सामना निःसन्देह ज्यादा अच्छी तरह से कर सकेंगे। जान पड़ता है, श्री स्टोक्स शारीरिक बल को बिलकुल निषिद्ध नहीं मानते। संयुक्त भारत के राजपूत, सिक्ख और मुसलमान योद्धाओं के सम्मिलित प्रयत्न का भरोसा किसी अेक तरफ से या चारों ओर से होने वाले धावे का मुकाबिला करने के लिअे निश्चय ही किया जा सकेगा। लेकिन मान लीजिये कि बुरे से बुरा मौका आया: बंगाल के अुपसागर की तरफ से जापान ने हमें दे मारा, पहाड़ों की ओर से गुरखों ने और वायव्य की ओर से पठानों ने हमें घेर लिया। अगर हम अुन्हें निकाल नहीं सके, तो हम अुनसे सुलह कर लेंगे और पहला मौका पाते ही अुन्हें निकाल बाहर कर देंगे। जिस राज्य का अन्यायी स्वरूप सभी स्वीकार करते हैं, अुसके सामने सिर झुकाने की अपेक्षा, यह नीति ज्यादा बहादुरी की है।..........मैं किसी स्वाभिमानी मनुष्य के लिअे अिससे बढ़कर अपमानकारक स्थिति की कल्पना ही नहीं कर सकता कि वह अपनी और अपने कुटुम्बीयों की सुरक्षा के लिअे अुन्हींका मुंहताज रहे, जिन्हें वह अपने भक्षक समझता है। अपने पौरुष के बदले सुरक्षा खरीदने की बजाय मैं यह अधिक पसन्द करूंगा कि मैं खुद और मेरा सर्वस्व बिलकुल नष्ट हो जाय।

'यंग अिण्डिया'
मअी और दिसंबर १९२१

— गांधीजी

गुलामी का प्रतिकार कैसे करें ?

[गांधीजी से संभाषण]

[तारीख अट्ठाअीस मअी को सवा छह बजे सुबह वर्धा मे खुले हुअे राष्ट्रीय युवक संघ के शिविर में आये हुअे राष्ट्रीय युवक संघ, कॉंग्रेस सैनिक दल और प्रान्तीय नगर रक्षक दलों के स्वयंसेवक गांधीजी से सेवाग्राम मिलने गये थे। वे गांधीजी को कुछ मिनिटों के लिअे ही क्यों न हो, अपने बीच बुलाना चाहते थे। गांधीजी ने अुन्हे सेवाग्राम बुलाया। करीब अेक-सौ दस तरुण चार मील चल कर आये। गांधीजी ने अुन्हें आध घंटे से कुछ ज्यादा समय दिया]

शुरू मे अुनके निर्बल शरीर देख कर खेद प्रकट करते हुअे गांधीजी ने कहा :

"आज-कल हम लोगों के शरीर बिलकुल बगैर स्नायु के हो गये है। मेरे सामने बैठे हुअे अिन लड़कों के शरीर के मेरे शरीर जैसे स्नायु-हीन है। अिन्हें मैं क्या अुपदेश दूं ? अिन्हें तो अेक ही अुपदेश दे सकता हूँ, मोटे-ताजे और तगड़े बनो।"

अिसके बाद गांधीजी ने कहा,

"जो बात मैं कअी बार कह चुका हूँ, अुसीको आज फिर दुहरा दूं,अिससे तो यही अच्छा हो कि तुम लोग कुछ पूछो और अुसका मैं अुत्तर दूं।"

प्रश्न—"अंग्रेजों को यहाँ से कैसे भगाया जाय ?"

अुत्तर—"तुमलोग लाठी-काठी सीखते हो। तुम अुन्हें लाठी से भगाओ,"–गांधीजी ने विनोद में कहा।

प्रश्न—"मगर हमारे पास लाठी हो तब ?"

अुत्तर—"तब तो सब मेरे सम्प्रदाय में आ जाते है। मैंने लाठी छोड़ दी है। तुम लोगों ने भी छोड़ दी है। तुम लाठी-काठी सीखते हो, मै भी हाथ में यह लाठी रखता हूं। लेकिन अुसे किसीके पीठ में नही मारता। वह केवल आधार के लिअे है। अिसी तरह तुम्हारा लाठी-शिक्षण होना चाहिअे। तुम्हारी लाठियाँ किसी की पीठ मे मारने के लिअे नहीं है।

तुम्हारे प्रश्न में दर असल दो प्रश्न आ जाते है : 'हम अंग्रेजों को भगाना चाहते हैं' या 'अुनकी सल्तनत को भगाना चाहते है' ?"

अेक आवाज—"सल्तनत को मिटाना चाहते है।"

अुत्तर—"यही सही है। अंग्रेज बहुत तादाद मे मेरे भाअीबन्द है। सब अंग्रेजो के लिअे मैं यह नही कह सकता। लेकिन चाहता तो हूँ कि सभी अंग्रेजों का भाईबन्द बनूं। अैसा अेक भी अंग्रेज बाकी न रहे जो मेरा भाईबन्द न हो। सिर्फ़ अंग्रेजों का ही नहीं; मैं तो दुनिया भर की सभी कौमों का भाईबन्द बन कर रहना चाहता हूँ। लेकिन अंग्रेजों का विशेषरूप से दोस्त बनना चाहता हूं। क्योंकि अितने वर्षों से अुनसे मेरा संबंध रहा है। चाहे वह संबंध किसी भी तरह का रहा हो—वे मालिक और मैं गुलाम अिस तरह का संबंध ही क्यों न रहा हो—फिर भी संबंध तो रहा है। अिसलिअे मैं अंग्रेजों को खासकर के दोस्त बनाना चाहता हूँ। लेकिन अुनकी सल्तनत, अुनके साम्राज्य, को मिटाना चाहता हूँ। मैं अंग्रेज राज्यकर्ताओं से यहाँ से शान्तिपूर्वक चले जाने को कह रहा हूँ। हम अुनके राज को बिलकुल मिटा देना चाहते है। क्योंकि यह जहर जिस चीज को छूता है, अुसे दूषित कर देता है। यह राज हमारी सब तरह की प्रगति में विघ्नरूप है।

साम्राज्य को हटाने के दो तरीके हैं : अेक तो यह कि हम साम्राज्य को ही मिटा दे और दूसरा यह कि हम ही साम्राज्य में से हट जायँ। मैंने हट जाने का तरीका बतलाया है। अिसके लिअे लाठी की जरूरत नहीं है। दो चीजों की जरूरत है : अेक तो यह ज्ञान कि यह हुकूमत दूसरी किसी भी बुराअी की अपेक्षा ज्यादा बुरी चीज है। और दूसरी यह कि हमे चाहे जो कीमत दे कर अुससे पिण्ड छुड़ाना है। हमें अपने दिल के राजा बन जाना है। मेरा ही अुदाहरण ले लो। मैं अैसा महसूस नहीं करता कि मैं किसी का गुलाम हूँ। मुझे गुलाम बनाने की कोशिश सारी दुनिया भी करे, तो वह निष्फल होगी। वह मुझे गुलाम नही बना सकती। याने मेरे चित्त का स्वामित्व नही ले सकती। मेरे शरीर के साथ वह चाहे जो कर ले। समझ लीजिये कि कोअी मुझसे कहता है कि यह लकड़ी अुठा कर वहाँ रख दो। मेरे शरीर मे लकड़ी अुठाने की ताकत तो है। लेकिन मै अुसका हुक्म नही मानना चाहता। वह सिपाहियों से कहेगा कि अिसे अितनी मार मारो कि मर ही जाय। मै मार खाना कबूल करता हूँ। लेकिन हुक्म नहीं मानता। मैं अपने चित्त का स्वामी हूँ। मनुष्य जब तक किसी से नही दबता, तब तक वह गुलाम नही होता। मैं मार खा कर मर जाअूं, तो मेरा काम निपट जायगा। अिसमें मेरी संपूर्ण विजय होगी। क्योंकि वह मुझसे जो कराना चाहता था, वह नही करा सका। मेरा शव भले ही वह ले ले। जो सुनेंगे वे, कम से कम, अितना तो कहेंगे कि आदमी बहादुर था। हड्डी-पसली चूर-चूर हो गयी, लेकिन हुक्म नही माना।

अिसी तरह हमें अंग्रेजों के साम्राज्य से हट जाना है। अगर वे खुद हट जायें, तो ठीक ही है। मैं अुनको समझा रहा हूँ। दुनिया को भी समझा रहा हूँ। अगर वे न सुनें, तो हम अुन्हें कैसे हटा सकते हैं ? लेकिन अुनके स्वामित्व को हटा सकते है। याने हम अुनके साम्राज्य में से हट सकते हैं। अुनके हुक्म की तामीली करने से अिनकार कर सकते हैं। लकड़ी अुठाने का मामूली दृष्टांत दे कर मैंने तुमको यही समझाया है। हमें अपनी जंजीरें फेंक देने का संकल्प करना है। अपने राज्यकर्ता का हुक्म न मानने की संकल्प शक्ति बढानी है। क्या यह बहुत मुश्किल है ? कोअी किसीको जबरदस्ती गुलाम कैसे बना सकता है ?

हमपर अिस साम्राज्य की सत्ता बड़ी सूक्ष्मता से चलती है। अितनी सूक्ष्मता से कि हमें पता भी नहीं चलता कि साम्राज्य चल रहा है। सेवाग्राम के पटेल के सिवा सेवाग्राम के किसान के पास क्या प्रमाण है कि यह राज्य चल रहा है ? अगर पटेल न रहा, अुसके पास सरकारी दण्ड न रहा, तो कोअी सबूत नही। किसान पटेल से डरते है। अुनके लिअे साम्राज्य अेक अदृष्ट शक्ति है। अिस सत्ता के तरीके अितने सूक्ष्म हैं। अिससे छुटकारा पाने का अुपाय लाठी का प्रयोग नहीं है। हम दूसरे की लाठी के वश न हों, तो हम विजय पाते हैं।

आज दोनो तरफ से अेक ही तरह की शक्तियाँ अेक-दूसरे से लड़ रही हैं। अिग्लेंड, अमेरिका, चीन, रूस और जर्मनी, अिटली, जापान, के बीच लाठी का प्रयोग चल रहा है। सभी राष्ट्र बुद्धिशाली, शक्तिशाली और वैभवशाली है। अुनमें भयानक द्वंद्व चल रहा है। कौन जाने कौन जीतेगा। आज तो दोनों तरफ से संहार हो रहा है। सबसे भयंकर चीज यह है कि अिसमें सिर्फ़ लड़नेवालों को ही नहीं बरन बेगुनाह बच्चों, बूढ़ो, और औरतों को, सब

को, मरना पड़ता है। असी लड़ाओं में मुझे रस नहीं। ओश्वर की कृपा से हमारे पास अुस तरह की शक्ति नहीं है। मैं ओश्वर से असी शक्ति चाहता भी नहीं। मैं, हिटलर या चर्चिल नहीं बनना चाहता। मैं तो हिन्दुस्तान का आज़ाद किसान बनना चाहता हूँ। अभी तक बन नहीं सका हूँ। मुझे तो दूध चाहिये, अुसको दूध नहीं मिलता। दूध के बिना मेरा शरीर नहीं चलता। मैं चाहता हूँ कि मैं अुस किसान से स्पर्धा कर सकूं। अुसे देख कर मुझे अदेखाओ होती है।

लेकिन हिन्दुस्तान का किसान मजबूरन किसान है। वह चाहता तो है बादशाह बनना लेकिन अुसे ज़बरदस्ती किसान बन कर रहना पड़ता है। मैं खुशी से किसान और मज़दूर बन कर रहना चाहता हूँ। अुसमें और मुझमें यह फर्क है। मैं संतुष्ट रहूँगा, वह असंतुष्ट है। मैं अुसके जैसा असंतुष्ट भिक्षुक नहीं बनना चाहता। मैं अपना बादशाह हूँगा। असी जीवन में खुशहाल रहूँगा। यह है मेरा आदर्श।

जब किसान को भी अपनी मर्जी से किसान और मज़दूर रहना मैं सिखा सकूंगा, अुस दिन अुसे मालिक की आज्ञा मानने के लिअे मजबूर करनेवाली बेड़ियाँ भी तोड़ देना सिखा सकूंगा।

मैंने सिर्फ अिशारा कर दिया है। अिसीमें से तुम्हें मार्गदर्शन मिल जायगा। मेरे आदर्श का जितना अनुसरण कर सको, करो। अुसके लिअे हमें तगड़े बनना होगा। व्यायाम कर के स्नायु बढ़ाने होंगे। लेकिन मारपीट करने के लिअे नहीं। मारपीट के लिअे तगड़े बनेंगे, तो खेती और मज़दूरी के काम के नहीं रहेंगे। हमारा आदर्श सैंडो बनना नहीं है। अगर सैंडो से कहा जाता कि लकड़ी का अेक बोझ धूप में यहाँ से वर्धा पैदल पहुँचा दो, तो अुसका खात्मा हो जाता। लेकिन अेक मजदूर पाँच-छह पैसों के लिअे कड़ी धूप में बोझ अुठा कर चला जाता है। अिस तरह का तगड़ा मजदूर बनना हमारा आदर्श है। हमारा व्यायाम अिस प्रकार का होना चाहिअे। रात, दिन, धूप, ठंड की संज्ञा (भान) भी नहीं होनी चाहिअे। हमारे लिअे शीत और अुष्ण अेक चीज़ हो जानी चाहिअे।

हम कूदना-फांदना भी सीखेंगे। मारने के लिअे नहीं, बचाने के लिअे। अेक आदमी बेहोश हो गया है, अुसे अुठा कर लाना है, बीच में खाओी है, दीवार है, अुनको फांदना पड़ेगा। यह सब शक्ति हमारे शरीर में होनी चाहिअे। यही अहिंसक व्यायाम की पद्धति है। लेकिन हम सिर्फ शरीर से ही तगड़े बनना नहीं चाहते। हमें प्रतिकार की वृत्ति पैदा करनी है। अुसके लिअे अपनी बुद्धि और संकल्प-शक्ति को मज़बूत बनाना है। तुममें अगर अिस तरह की शक्ति आ गयी, तो तुम बड़े भारी सेवक बन जाओगे, अिसमें सन्देह नहीं।

प्रश्न—"आप नया आन्दोलन कब शुरू करेंगे?"

अुत्तर—"अेक तरह से मुझे जल्दी भी है और अेक तरह से नहीं भी है। अभी मैं वायुमण्डल बना रहा हूँ। मैं अपनी और लोगों की मर्यादा जानता हूँ। लोगों को समझाना ज़रूरी है। जब तक लिख सकता हूँ, लोगों को समझा रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी योजना का पूरा पूरा रहस्य न तो सरकार समझती है और न जनता ही। अिसलिअे मैं अिन मर्यादाओं को ध्यान में रख कर ही जो कुछ करना है, करूंगा।"

प्रश्न—"हम अगर किसी अत्याचारी को मारने के बदले रस्सी से कस कर बाँध दें, तो क्या वह हिंसा होगी?"

अुत्तर—"अगर किसी पागल को बांध दो, तो हिंसा नहीं है। लेकिन दूसरे को बांधो, तो अुसमें हिंसा है। अिस तरह के प्रश्न पूछ कर हम अहिंसा का विकास नहीं कर सकते। अहिंसा तो अत्याचारी से प्रेम करना सिखाती है। अहिंसक मनुष्य अत्याचारी से डरता नहीं है; अुसपर दया करता है। दया-धर्म बतलाता है कि जिससे हम डरते हैं, अुसपर दया नहीं कर सकते। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'।

लेकिन जब हम अैसा सवाल करते हैं, अुस वक्त हमारे दिल में अहिंसा नहीं होती। हम तो अत्याचारी को हिंसा से रोकना चाहते हैं। अिसीलिअे बांधने की बात अुठती है। अैसी स्थिति में तो मैं यही कहूंगा कि तुमसे जैसे बने, विरोध करो। क्योंकि दूसरा रास्ता भाग जाने का ही रह जाता है। भाग जाने की बात तो मेरे पास हो ही नहीं सकती। लेकिन जो अहिंसक होता है, अुसके दिल में प्रेम और दया होती है। वह किसीसे डरता नहीं। अीश्वर अुसे शक्ति देता है"।

प्रश्न—"लेकिन अंग्रेजों की सत्ता यहाँ से मिटाने की कोशिश में से अराजकता पैदा होगी। सारी जनता में अहिंसा की वृत्ति तो है नहीं। अिसलिअे दंगा-फसाद, हिंसा और अत्याचार होंगे। क्या वह अराजकता अिस व्यवस्थित अराजकता से भी गयी-बीती नहीं होगी? क्या मर्ज से दवा ही ज्यादा खतरनाक नहीं होगी? अुसका प्रतिकार किस तरह किया जाय? या पहले से कोअी तजवीज करना जरूरी नहीं है?"

अुत्तर—"तुम्हारा प्रश्न बहुत अुपयुक्त और महत्त्व का है। बाअीस-तेअीस वर्षों से यही कठिनाअी मेरे सामने रही है। मैं हमेशा सोचता रहा कि जब तक देश में अहिंसा की तैयारी नहीं है, तब तक राह देखनी चाहिअे। लेकिन अब मेरी वृत्ति में परिवर्तन हो गया है। मैं सोचने लगा हूँ कि अगर मैं तैयारी के लिअे बैठा रहूँ, तो मेरा काम प्रलयकाल तक नहीं होगा और शायद देश की तैयारी भी कभी नहीं होगी। और शायद अिस बीच में चारों तरफ फैलनेवाली हिंसा की ज्वालाअें मुझे भी निगल लें। मैंने अपनी अहिंसा में यह दोष पाया। लेकिन फिर भी आज तक मैंने जो प्रयोग किये अुनका परिणाम अच्छा ही हुआ। अुसके लिअे मुझे पश्चात्ताप नहीं है।

लेकिन आज हमें अेक कदम और भी आगे बढ़ना होगा। आज हमपर गुलामी की जो जबरदस्त आपत्ति है, अुस में से निकलने के लिअे हमें हिंसा का खतरा भी अुठाना पड़ेगा। लेकिन अिसके लिअे भी अहिंसक व्यक्ति की अविचल निष्ठा की जरूरत है। मेरी योजना या विचार में भी हिंसा हो ही नहीं सकती। जो अहिंसक होता है अुसका भरोसा अीश्वर पर रहता है। मेरी अहिंसा सदोष रही है। अुस दृष्टि से मेरी शक्ति कम रही है। लेकिन मेरा भरोसा अीश्वर पर है। अिस अर्थ में मेरे लिअे 'निर्बल के बल राम' है। मेरे चित्त के किसी भी कोने में या मेरे जीवन के किसी छोटे-से-छोटे अंश में तनिक भी हिंसा नहीं है। मेरी रग रग में अहिंसा भरी हुअी है। पचास बरस से जो आदमी अेक ही अनुष्ठान करता आया है, अुसके दिल में अेकाअेक फर्क कैसे पड़ सकता है? अिसलिअे मेरे दिल में आज हिंसा पैदा हो गयी है, अैसा नहीं है।

परंतु आम जनता में मेरे जैसी अहिंसा नहीं है। अगर मैं लोगों की हिंसा को न रोक सकूं, तो मुझे वह खतरा भी अुठाना ही है। मैं पामर बन कर नहीं बैठ सकता। मैं तो अहिंसा का ही आन्दोलन करूंगा। लेकिन लोग अुसे न

समझ सकें और संहार होना ही हो, तो मैं अुसे कैसे रोक सकता हूँ ? मैं तो आज की राजपद्धति से अराजकता भी पसन्द करूंगा। क्योंकि यह व्यवस्थित अराजकता अुस अराजकता से भी बदतर है। अैसी भयानक अराजकता मिटाने के प्रयत्न में से जो अराजकता पैदा होगी वह कम भयानक होगी। अुसमें से जो हिंसा होगी, वह अिस राज्य की हिंसा के मुकाबिले में यत्किंचित् होगी। मनुष्य-स्वभाव की दुर्बलता के कारण जो कुछ हिंसा होगी, सो होगी। हमारे देश में करोडों लोगों के पास हथियार नहीं हैं। वे आपस में हिंसा करेंगे तो भी कहाँ तक करेंगे ? आपस आपस में हिंसा कर के मरेंगे, तो भी आगे चल कर अुन्हें मेरी ही बात माननी पड़ेगी। अीश्वर की अिच्छा ही हो, तो अराजकता की जोखिम भी हमें अुठानी ही है। हम तो संहार रोकने के लिअे ही यत्न करेंगे। लेकिन अुसके बाद भी जो संहार होगा, वह अुसीकी मर्जी से होगा। अुसके लिअे मैं गुनहगार नहीं हूंगा। लेकिन जब कि विदेशी आक्रमण के प्रतिकार के बहाने अितनी भयंकर हिंसा चल रही है और अिस सत्ता के रूप में अितनी भयानक व्यवस्थित अराजकता मौजूदा है, तब मैं पामर और निश्चिंत हो कर यहाँ दूध पीते बैठा रहूं, तो मैं गुनहगार साबित हूंगा। क्योंकि फिर तो मेरी अहिंसा बिलकुल नहीं चलेगी। मेरे लिअे यह स्थिति असह्य है। अैसी अहिंसा पर मुझे शर्म होगी। अहिंसा अैसी निकम्मी नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि अुस अराजकता में से ही विशुद्ध अहिंसा का अुदय होगा।

तुम्हारा प्रश्न बहुत ठीक और गंभीर है। वह मेरे लेखों में से हो निकलता है। मैंने अपने लेखों में अुसका जवाब भी दिया है। लेकिन वह जल्दी समझ में नहीं आयगा। क्योंकि आखिर भाषा विचारोंका बहुत अपूर्ण और गरीब वाहन है। मेरे दिल में जितना है, अुसमें से थोडा ही लिख सका हूँ। वाचा की यह मर्यादा है। मैंने जो लिखा है, अुसका अगर मनन करोगे, तो समझ में आ सकता है। हिन्दी, मराठी और गुजराती में अुसे पढ़ो। अंग्रेजी में पढ़ोगे, तो समझ में नहीं आयगा। अुसका मनन करो। मैंने अेक महान विचार देश के सामने अपनी अपूर्ण भाषा में रक्खा है। आज जो लोग मेरी बात समझ नहीं सकते या समझना नहीं चाहते, वे अुसे अनुभव से समझेंगे—अगर वे अिस भयंकर संकट में से जिन्दा रहे तो।

आत्ममर्यादा का तक़ाजा

हमारे लिअे अपने स्वाभिमान के अनुकूल सिर्फ दो ही रास्ते हैं, अगर हमारी मनशा हो, तो डकैती और लूट-खसोट के खिलाफ आत्मरक्षा की, दोषपूर्ण ही क्यों न हो, तैयारी करें, या फिर मनुष्य के हृदय में संनिहित अुदात्त भावनाओं की कद्र करने की अपने पड़ोसियों की शक्ति में विश्वास करें। मेरी समझ में ये दोनों प्रक्रियाअें साथ साथ चलेंगी। लेकिन हमें हर हालत में तीसरा रास्ता टालना ही चाहिअे—याने भय से हमारी रक्षा करने के लिअे अंग्रेजों की गोलियों का भरोसा हरगिज़ नहीं करना चाहिअे। राष्ट्रीय आत्मघात का यह निश्चित रास्ता है।

'यंग अिंडिया'
२५ : ५ : १९२१

—गांधीजी

Reg. No. N.-741

हिंसा के डर से अब मैं रुक नहीं सकता

मेरा यह विश्वास गहरा होता जाता है कि ब्रिटिश सरकार की संगठित हिंसा को शुद्ध अहिंसा के सिवा और कोअी शक्ति नहीं रोक सकती। कअी लोगों का यह ख़्याल है कि अहिंसा अेक क्रियाशील शक्ति नहीं है। मेरे अनुभव ने—बेशक वह अनुभव परिमित है—यह प्रमाणित कर दिया है कि वह अेक अुत्कट क्रियाशील शक्ति हो सकती है। मेरा अभिप्राय अुस शक्ति को ब्रिटिश राज की संगठित हिंसा और अिस देश में ज़ोर पकड़नेवाले हिंसावादी दल की असंगठित हिंसा का मुकाबिला करने के लिअे गतिशील बनाना है। चुपचाप बैठना अुक्त दोनों शक्तियों को पूरा पूरा मौका देने के बराबर है। मुझे मालूम है कि अहिंसा की क्षमता में असंदिग्ध और अविचल श्रद्धा होते हुअे, अब अधिक राह जोहना पाप है।......मैं यह भी कहता आया हूँ कि हर अेक हिंसक कृत्य, शब्द या विचार भी अहिंसक प्रतीकार की प्रगति में बाधा पहुँचाता है। बार बार चेतावनी देने के बाद भी अगर लोग हिंसा का अवलंबन करें, तो, अुस ज़िम्मेवारी के अतिरिक्त जो हर मनुष्य पर दूसरे सभी मनुष्यों के कृत्यों के लिअे आ ही पड़ती है, अधिक ज़िम्मेवारी मैं नहीं स्वीकारूंगा। लेकिन ज़िम्मेवारी का सवाल छोड़ दिया जाय, तो भी अगर अहिंसा वह शक्ति है जिसका दावा संसार के ॠषियों ने किया है और अगर मुझे अुनके प्रयोग के अपने व्यापक अनुभव को झूठ साबित नहीं करना है, तो अब मैं किसी भी वजह से आन्दोलन मुलतवी नहीं कर सकता।

लॉर्ड अिर्विन को पत्र
(१९३०)

—गांधीजी

प्रकाशक:—शंकर त्र्यंबक (दादा) धर्माधिकारी, बजाजवाड़ी, वर्धा (मध्यप्रांत)
मुद्रक:—[illegible], मैनेजिंग एजन्ट, [illegible] प्रि० वर्क्स लिमिटेड, [illegible] रोड, वर्धा।